भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवके उपलक्ष्यमें

भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ

[द्वितीय भाग]

बिहार-बंगाल-उड़ीसा

भारतीय ज्ञानपीठके
संयोजन, सम्पादन एवं निर्देशनके अन्तर्गत

लेखक
बलभद्र जैन

प्रकाशक
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई-४

भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ, भाग-२

बिहार-बंगाल-उड़ीसा

प्रकाशक :
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई–४

प्रथम संस्करण : १९७५
मूल्य : तीस रुपये

© Bharatavarshiya Digamber Jain Tirth-kshetra Committee,
Hirabaug, Bombay–4

प्राप्ति-स्थान :

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन
तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई–४

भारतीय ज्ञानपीठ,
बी–४५।४७ कनॉट प्लेस,
नयी दिल्ली–११०००१

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–२२१००५

आमुख

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीको इस बातका बहुत हर्ष है कि भारतके दिगम्बर जैन तीर्थका द्वितीय भाग कार्यक्रमके अनुसार भगवान् महावीर-जयन्तीके पुनीत अवसरपर प्रकाशित हो रहा है। इसके पहले इस ग्रन्थका प्रथम भाग भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्षके शुभारम्भपर प्रकाशित हो चुका है। हमारी पीढ़ीका यह सौभाग्य है कि हम, जो भगवान्के निर्वाणके ढाई हजारवें वर्षकी परिसमाप्तिके महान् पर्वके साक्षी हैं, उसे मना रहे हैं और भगवान्के तीर्थंकरत्वका गुणगान करके धन्य हो रहे हैं। हमारी आस्थाको आधार देनेवाले, हमारे जीवनको कल्याणमय बनानेवाले, हमारी धार्मिक परम्पराकी अहिंसामूलक संस्कृतिकी ज्योतिको प्रकाशमान रखनेवाले, जन-जनका कल्याण करनेवाले हमारे तीर्थंकर ही हैं। जन्म-मरणके भवसागरसे उबारकर अक्षय सुखके तीरपर ले जानेवाले तीर्थंकर प्रत्येक युगमें 'तीर्थ'का प्रवर्तन करते हैं अर्थात् मोक्षका मार्ग प्रशस्त करते हैं। तीर्थंकरों की इस महिमाको अपने हृदयमें बसाये रखने, और अपने श्रद्धानको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए हमने उन सभी विशेष स्थानों को 'तीर्थ' कहा जहाँ-जहाँ तीर्थकरोंके जन्मादि 'कल्याणक' हुए, जहाँ से केवली भगवान्, महान् आचार्य और साधु 'सिद्ध' हुए, जहाँ के 'अतिशय' ने श्रद्धालुओंको अधिक श्रद्धायुक्त बनाया, उन्हें चमत्कारी प्रभावोंसे साक्षात्कार कराया। ऐसे पावन स्थानोंमें-से कुछ हैं जो 'ऐतिहासिक' कालके पूर्वसे ही पूजे जाते हैं और जिनका वर्णन पुराण-कथाओंकी परम्परासे पुष्ट हुआ है। अन्य तीर्थोंके साथ इतिहासकी कोटिमें आनेवाले तथ्य जुड़ते चले गये हैं और मनुष्यकी कलाने उन्हें अलंकृत किया है। स्थापत्य और मूर्तिकलाने एवं विविध शिल्पकारोंने इन स्थानोंके महत्त्वको बढ़ाया है। अनादि-अनन्त प्रकृतिका मनोरम रूप और वैभव तो प्रायः सभी तीर्थोंपर विद्यमान है।

ऐसे सभी तीर्थस्थानोंकी वन्दनाका प्रबन्ध और तीर्थोंकी सुरक्षाका दायित्व समाजकी जो संस्था अखिल भारतीय स्तरपर वहन करती है, उसे 'गौरव' की अपेक्षा अपनी सीमाओं का ध्यान अधिक रहता है, और यही ऐसी संस्थाओंके लिए शुभ होता है, यह ज्ञान उन्हें सक्रिय रखता है।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी अपनी सीमाओंको अच्छी तरह जानती है, किन्तु वह यह भी जानती है कि जो जैन समाज इन तीर्थोंकी वन्दना करके धन्य होती है, वह इन तीर्थों की रक्षाके लिए तन-मन-धनका योगदान देनेमें सहयोगी रही है, तभी कुछ सम्भव हो पाया है।

भगवान् महावीरके पच्चीस-सौवें निर्वाणका यह महोत्सव ऐसा अवसर है जब तीर्थोंकी सुरक्षाका बहुत बड़ा और व्यापक कार्यक्रम जो कमेटीने बनाया है, और आगे बनानेके लिए तत्पर है, उसमें प्रत्येक भाई-बहनको यथासामर्थ्य योगदान देनेकी अन्तःप्रेरणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह प्रेरणा मूर्त रूप ले और यात्री भाई-बहनोंको तीर्थ-वन्दनाका पूरा सुफल, आनन्द और ज्ञान प्राप्त हो, तीर्थक्षेत्र कमेटीका इस ग्रन्थमालाके प्रकाशनमें यह दृष्टिकोण रहा है।

प्रकाशनकी इस परिकल्पनाको पग-पगपर साधनेका सर्वाधिक श्रेय श्री साहू शान्तिप्रसादजीको है, जिनके सभापतित्व-कालमें इस ग्रन्थकी सामग्रीके संकलन और लेखनका कार्य प्रारम्भ हुआ और अबतक इसके दो भागोंका प्रकाशन उनके निर्देशनमें सम्पन्न हुआ। आगेके तीनों भाग भी उनके निर्देशनमें तैयार हो रहे

हैं। हमारा प्रयत्न है कि महोत्सव वर्षके भीतर इस ग्रन्थमालाके अधिकसे अधिक भाग प्रकाशमें आ जायें। तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बईकी ओरसे इस अवसरपर मैं पुनः श्री साहूजीके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

तीर्थक्षेत्र कमेटी और भारतीय ज्ञानपीठके संयुक्त तत्त्वावधानमें इस ग्रन्थमालाकी सामग्री का संकलन, लेखन और प्रकाशन हुआ है, हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशनमें जिन महानुभावोंका सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उन सभीका तीर्थक्षेत्र कमेटीकी ओरसे आभारी हूँ।

लालचन्द हीराचन्द
सभापति
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

१० अप्रैल, १९७५

प्रस्तुति

'भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ' ग्रन्थमालाका यह दूसरा भाग पहले भागकी ही भाँति भगवान् महावीरके निर्वाण महोत्सवकी स्मृतिमें समर्पित है। ग्रन्थमालाकी पूरी योजना इन दो भागोंसे आगेके तीन भागोंके प्रकाशनोपरान्त पूर्ण होगी।

जैसा कि इन दो भागोंसे स्पष्ट होगा, तीर्थोंके वर्णनमें पौराणिक, ऐतिहासिक और स्थापत्य एवं कलापरक सामग्रीका संयोजन बड़े परिश्रम और सूझ-बूझसे किया गया है। पण्डित बलभद्रजीका इस कार्यमें व्यापक अनुभव है। सामग्रीको सर्वांगीण बनानेकी दिशामें जो भी सम्भव था, कमेटीके साधन, ज्ञानपीठका निर्देशन एवं श्री साहू शान्तिप्रसादजीका मार्गदर्शन व प्रेरणा पण्डितजीको उपलब्ध रही है। भारतीय ज्ञानपीठ-की ओरसे सामग्रीका न केवल सम्पादकीय नियमन हुआ है अपितु सारे मानचित्रोंका निर्माण प्रथम बार कराया गया है। तीर्थक्षेत्र कमेटीने यात्राओंके नियोजन, सामग्री-संकलन, सम्पादन, लेखन तथा फोटोग्राफ्स प्राप्त कराने, मानचित्र बनवाने और ग्रन्थमालाको प्रकाशित करनेमें पर्याप्त धन व्यय किया है। इस सारी सामग्रीपर और इसके प्रकाशनपर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीका सम्पूर्ण अधिकार है।

सामग्री संकलनपर जो धनराशि व्यय हुई है उसके अतिरिक्त कागज, छपाई, जिल्दबन्दी आदि की दरें उत्तरोत्तर बढ़ती गयी हैं। फिर भी कमेटीने इस ग्रन्थमालाको सर्व-सुलभ बनानेकी दृष्टिसे केवल लागत मूल्यके आधारपर दाम रखनेका निर्णय किया है। भारतीय ज्ञानपीठका व्यवस्था-सम्बन्धी जो व्यय हुआ है, और जो साधन-सुविधाएँ इस कार्यके लिए उपलब्ध की गयी हैं, उनका समावेश इस व्यय-राशिमें नहीं किया गया है। भाग १ की तरह इस भागकी भी जनपद सम्बन्धी कुछ प्रतियाँ अलग-अलग छपायी गयी हैं ताकि सम्बन्धित तीर्थक्षेत्र उतने ही अंशकी प्रतियाँ भी प्राप्त कर सकें।

तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा नियोजित की गयी पं. बलभद्रजीकी यात्राओंके अवसर-पर तीर्थोंके मन्त्रियों और प्रबन्धकोंसे जो लेखन-सामग्री या सूचनाएँ उपलब्ध हुई तथा जो सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए हम अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

हमारा विश्वास है कि यह प्रकाशन पर्याप्त उपयोगी, सुन्दर, ज्ञानवर्धक और तीर्थ-वन्दनाके लिए प्रेरणादायक माना जायेगा।

पूरा प्रयत्न करनेपर भी त्रुटियाँ रह जाना सम्भव है। अतः इस ग्रन्थके सम्बन्धमें सुझावों और संशोधनोंका हम स्वागत करेंगे।

लक्ष्मीचन्द्र जैन
मन्त्री
भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली
१० अप्रैल, १९७५

चन्दुलाल कस्तूरचन्द
महामन्त्री
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

प्राक्कथन

तीर्थ

तीर्थ-मान्यता

प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायमें तीर्थोंका प्रचलन है। हर सम्प्रदायके अपने तीर्थ हैं, जो उनके किसी महापुरुष एवं उनकी किसी महत्त्वपूर्ण घटनाके स्मारक होते हैं। प्रत्येक धर्मके अनुयायी अपने तीर्थोंकी यात्रा और वन्दनाके लिए बड़े भक्ति भावसे जाते हैं और आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं। तीर्थ-स्थान पवित्रता, शान्ति और कल्याणके धाम माने जाते हैं। जैन धर्ममें भी तीर्थ-क्षेत्र का विशेष महत्त्व रहा है। जैन धर्मके अनुयायी प्रति वर्ष बड़े श्रद्धा-भावपूर्वक अपने तीर्थोंकी यात्रा करते हैं। उनका विश्वास है कि तीर्थ-यात्रासे पुण्य-संचय होता है और परम्परासे यह मुक्ति-लाभ का कारण होती है। अपने इसी विश्वासकी बदौलत वृद्ध जन और महिलाएँ भी सम्मेद शिखर, राजगृही, माँगीतुंगी, गिरनार जैसे दुरूह पर्वतीय क्षेत्रोंपर भी भगवान्‌का नाम स्मरण करते हुए चढ़ जाते हैं। बिना आस्था और निष्ठाके क्या कोई वृद्धजन ऐसे पर्वतपर आरोहण कर सकता है?

तीर्थकी परिभाषा

तीर्थ शब्द तॄ धातुसे निष्पन्न हुआ है। व्याकरणकी दृष्टिसे इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'तीर्यन्ते अनेन वा।' 'तॄ प्लवनतरणयोः' (भ्वा. प. से.)। 'पातॄतुदि'—(उ. २।७) इति थक्। अर्थात् तॄ धातुके साथ थक् प्रत्यय लगाकर तीर्थ शब्दकी निष्पत्ति होती है। इसका अर्थ है—जिसके द्वारा अथवा जिसके आधारसे तरा जाये। कोषके अनुसार तीर्थ शब्द अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। यथा—

> निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ।
>
> —अमरकोष, तृ. काण्ड, श्लोक ८६
>
> तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजःसु च।
> अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु॥
>
> —मेदिनी

इस प्रकार कोषकारों के मतानुसार तीर्थ शब्द जलावतरण, आगम, ऋषि जुष्ट जल, गुरु, क्षेत्र, उपाय, स्त्री-रज, अवतार, पात्र, उपाध्याय और मन्त्री इन विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है।

जैन शास्त्रोंमें भी तीर्थ शब्दका प्रयोग अनेक अर्थोंमें किया गया है। यथा—

> संसाराब्धेरपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते।
> चेष्टितं जिननाथानां तस्योक्तिस्तीर्थसंकथा॥
>
> —जिनसेनकृत आदिपुराण ४।८

अर्थात् जो इस अपार संसार-समुद्रसे पार करे उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसा तीर्थ जिनेन्द्र भगवान्‌का चरित्र ही हो सकता है। अतः उसके कथन करनेको तीर्थाख्यान कहते हैं।

यहाँ जिनेन्द्र भगवान्‌के चरित्रको तीर्थ कहा गया है।

आचार्य समन्तभद्रने भगवान् जिनेन्द्रदेवके शासनको सर्वोदय तीर्थ बताया है—

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥
—युक्त्यनुशासन ६२

अर्थात् "आपका यह तीर्थ सर्वोदय (सबका कल्याण करनेवाला) है। जिसमें सामान्य-विशेष, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक, अस्ति-नास्ति रूप सभी धर्म गौण-मुख्य रूपसे रहते हैं, ये सभी धर्म परस्पर सापेक्ष हैं, अन्यथा द्रव्यमें कोई धर्म या गुण रह नहीं पायेगा। तथा यह सभीकी आपत्तियोंको दूर करनेवाला है और किसी मिथ्यावादसे इसका खण्डन नहीं हो सकता। अतः आपका यह तीर्थ सर्वोदय-तीर्थ कहलाता है।"

यह तीर्थ परमागम रूप है, जिसे धर्म भी कहा जा सकता है।

बृहत्स्वयंभू स्तोत्रमें भगवान् मल्लिनाथकी स्तुति करते हुए आचार्य समन्तभद्रने उनके तीर्थको जन्म-मरण रूप समुद्रमें डूबते हुए प्राणियोंके लिए प्रमुख तरण-पथ (पार होनेका उपाय) बताया है—

तीर्थमपि स्वं जननसमुद्रत्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम् ॥१०९

पुष्पदन्त-भूतबलि प्रणीत षट्खण्डागम (भाग ८, पृ. ९१) में तीर्थंकरको धर्म-तीर्थका कर्ता बताया है। आदिपुराणमें श्रेयान्सकुमारको दान-तीर्थका कर्ता बताया है। आदिपुराणमें (२।३९) मोक्षप्राप्तिके उपाय-भूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रको तीर्थ बताया है।

आवश्यक निर्युक्तिमें चातुर्वर्ण अर्थात् मुनि-अर्जिका श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध संघ अथवा चतुर्वर्णको तीर्थ माना है। इनमें भी गणधरों और उनमें भी मुख्य गणधरको मुख्य तीर्थ माना है और मुख्य गणधर ही तीर्थंकरोंके सूत्र रूप उपदेशको विस्तार देकर भव्यजनोंको समझाते हैं, जिससे वे अपना कल्याण करते हैं। कल्पसूत्रमें इसका समर्थन किया गया है।

तीर्थ और क्षेत्र-मंगल

कुछ प्राचीन जैनाचार्योंने तीर्थके स्थानपर 'क्षेत्र-मंगल' शब्दका प्रयोग किया है। षट्खण्डागम (प्रथम खण्ड, पृ. २८) में क्षेत्र-मंगलके सम्बन्धमें इस प्रकार विवरण दिया गया है—

तत्र क्षेत्रमंगलं गुणपरिणतासन—परिनिष्क्रमण—केवलज्ञानोत्पत्तिपरिनिर्वाणक्षेत्रादिः। तस्योदाहरणम्—ऊर्जयन्त-चम्पा-पावानगरादिः। अर्धाष्टारत्न्यादि-पञ्चविंशत्युत्तरपञ्च-धनुःशतप्रमाणशरीरस्थितकैवल्याद्यवष्टब्धाकाशदेशा वा, लोकमात्रात्मप्रदेशैर्लोकपूरणापूरितविश्वलोकप्रदेशा वा।

अर्थात् गुण-परिणत-आसन क्षेत्र अर्थात् जहाँपर योगासन, वीरासन इत्यादि अनेक आसनोंसे तदनुकूल अनेक प्रकारके योगाभ्यास, जितेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गये हों ऐसा क्षेत्र, परिनिष्क्रमण क्षेत्र, केवल-ज्ञानोत्पत्ति क्षेत्र और निर्वाण क्षेत्र आदि को क्षेत्र-मंगल कहते हैं। इसके उदाहरण ऊर्जयन्त (गिरनार), चम्पा, पावा आदि नगर क्षेत्र हैं। अथवा साढ़े तीन हाथ से लेकर पाँच सौ पच्चीस धनुष तकके शरीरमें स्थित और केवलज्ञानादिसे व्याप्त आकाश प्रदेशोंको क्षेत्र-मंगल कहते हैं। अथवा लोक प्रमाण आत्म-प्रदेशोंसे लोकपूरणसमुद्घात दशामें व्याप्त किये गये समस्त लोकके प्रदेशोंको क्षेत्र-मंगल कहते हैं।

बिलकुल इसी आशय की ४ गाथाएँ आचार्य यतिवृषभने तिलोयपण्णत्ति नामक ग्रन्थमें (प्रथम अधि-कार गाथा २१-२४) निबद्ध की हैं और उन्होंने कल्याणक क्षेत्रोंको क्षेत्रमंगलकी संज्ञा दी है।

गोम्मटसारमें बताया है—

क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनाम्।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीर्थ शब्दके आशयमें ही क्षेत्र-मंगल शब्दका प्रयोग मिलता है। यदि अन्तर है तो इतना कि तीर्थ शब्द व्यापक है। तीर्थ शब्दसे उन सबका व्यवहार होता है, जो पार करनेमें

पावन हैं। इन स्थानोंमें एक पावन तीर्थ भूमियाँ भी हैं। इन तीर्थ भूमियोंको ही क्षेत्र-मंगल शब्दसे व्यवहृत किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि तीर्थ शब्दका आशय व्यापक है और क्षेत्र-मंगल शब्द का अर्थ व्याप्य है। तीर्थ शब्दके साथ यदि भूमि या क्षेत्र शब्द और जोड़ दिया जाये तो उससे वही अर्थ निकलेगा जो क्षेत्र-मंगल शब्दसे अभिप्रेत है।

तीर्थोंकी संरचनाका कारण

तीर्थ शब्द क्षेत्र या क्षेत्र-मंगलके अर्थमें बहुप्रचलित एवं रूढ़ है। तीर्थ-क्षेत्र न कहकर केवल तीर्थ शब्द कहा जावे तो उससे भी प्रायः तीर्थ-क्षेत्र या तीर्थ-स्थानका आशय लिया जाता है। जिन स्थानोंपर तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण, केवल-ज्ञान और निर्वाणकल्याणकोंमें-से कोई कल्याणक हुआ हो अथवा किसी निर्ग्रन्थ वीतराग तपस्वी मुनिको केवलज्ञान या निर्वाण प्राप्त हुआ हो, वह स्थान उन वीतराग महर्षियों-के संसर्गसे पवित्र हो जाता है। इसलिए वह पूज्य भी बन जाता है। वादीभसिंह सूरिने क्षत्रचूड़ामणि (६।४-५) में इस बातको बड़े ही बुद्धिगम्य तरीकेसे बताया है। वे कहते हैं—

> पावनानि हि जायन्ते स्थानान्यपि सदाश्रयात् ॥
> सद्भिरध्युषिता धात्री संपूज्येति किमद्भुतम् ।
> कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः ॥

अर्थात् महापुरुषोंके संसर्गसे स्थान भी पवित्र हो जाते हैं। फिर जहाँ महापुरुष रह रहे हों वह भूमि पूज्य होगी ही, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। जैसे रस अथवा पारसके स्पर्श मात्रसे लोहा सोना बन जाता है।

मूलतः पृथ्वी पूज्य या अपूज्य नहीं होती। उसमें पूज्यता महापुरुषोंके संसर्गके कारण आती है। पूज्य तो वस्तुतः महापुरुषोंके गुण होते हैं किन्तु वे गुण (आत्मा) जिस शरीरमें रहते हैं, वह शरीर भी पूज्य बन जाता है। संसार उस शरीरकी पूजा करके ही गुणोंकी पूजा करता है। महापुरुषके शरीरकी पूजा भक्तका शरीर करता है और महापुरुषके आत्मामें रहनेवाले गुणोंकी पूजा भक्तकी आत्मा अथवा उसका अन्तःकरण करता है। इसी प्रकार महापुरुष, वीतराग तीर्थंकर अथवा मुनिराज जिस भूमिखण्डपर रहे, वह भूमिखण्ड भी पूज्य बन गया। वस्तुतः पूज्य तो वे वीतराग तीर्थंकर या मुनिराज हैं। किन्तु वे वीतराग जिस भूमिखण्ड पर रहे, उस भूमिखण्डकी भी पूजा होने लगती है। उस भूमिखण्ड की पूजा भक्तका शरीर करता है, उस महापुरुषकी कथा-वार्ता, स्तुति-स्तोत्र और गुण-संकीर्तन भक्तकी वाणी करती है और उन गुणोंका अनुचिन्तन भक्तकी आत्मा करती है। क्योंकि गुण आत्मा में रहते हैं, उनका ध्यान, अनुचिन्तन और अनुभव आत्मामें ही किया जा सकता है।

वीतराग तीर्थंकरों और महर्षियोंने संयम, समाधि, तपस्या और ध्यानके द्वारा जन्म-जरा-मरणसे मुक्त होनेकी साधना की और संसारके प्राणियोंको संसारके दुखोंसे मुक्त होनेका उपाय बताया। जिस मिथ्या-मार्गपर चलकर प्राणी अनादि कालसे नाना प्रकारके भौतिक और आत्मिक दुख उठा रहे हैं, उस मिथ्या-मार्गको ही इन दुखों का एकमात्र कारण बताकर प्राणियोंको सम्यक् मार्ग बताया। अतः वे महापुरुष संसारके प्राणियोंके अकारण बन्धु हैं, उपकारक हैं। इसीलिए उन्हें मोक्षमार्गका नेता माना जाता है। उनके उपकारों-के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने और उस भूमि-खण्डपर घटित घटनाकी सतत स्मृति बनाये रखने और इस सबके माध्यमसे उन वीतराग देवों और गुरुओंके गुणोंका अनुभव करनेके लिए उस भूमिपर उन महापुरुषका कोई स्मारक बना देते हैं। संसारकी सम्पूर्ण तीर्थभूमियों या तीर्थ-क्षेत्रोंकी संरचनामें भक्तोंकी महापुरुषोंके प्रति यह कृतज्ञताकी भावना ही मूल कारण है।

तीर्थोंके भेद

दिगम्बर जैन परम्परामें संस्कृत निर्वाण भक्ति और प्राकृत निर्वाण काण्ड प्रचलित हैं। अनुश्रुतिके अनुसार ऐसा मानते हैं कि प्राकृत निर्वाण-काण्ड (भक्ति) आचार्य कुन्दकुन्दकी रचना है। तथा संस्कृत निर्वाण भक्ति आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित कही जाती है। इस अनुश्रुतिका आधार सम्भवतः क्रियाकलापके टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्य हैं। उन्होंने लिखा है कि संस्कृत भक्तिपाठ पादपूज्य स्वामी विरचित है। प्राकृत निर्वाण-भक्तिके दो खण्ड हैं—एक निर्वाण-काण्ड और दूसरा निर्वाणेतर-काण्ड। निर्वाण-काण्डमें १९ निर्वाण-क्षेत्रोंका विवरण प्रस्तुत करके शेष मुनियोंके जो निर्वाण क्षेत्र हैं उनके नामोल्लेख न करके सबकी वन्दना की गयी है। निर्वाणेतर काण्डमें कुछ कल्याणक स्थान और अतिशय क्षेत्र दिये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत निर्वाण-भक्तिमें तीर्थभूमियोंकी इस भेद कल्पनासे ही दिगम्बर समाजमें तीन प्रकारके तीर्थ-क्षेत्र प्रचलित हो गये—सिद्ध क्षेत्र (निर्वाण क्षेत्र), कल्याणक क्षेत्र और अतिशय क्षेत्र।

संस्कृत निर्वाण भक्तिमें प्रारम्भके बीस श्लोकोंमें भगवान् वर्धमानका स्तोत्र है। उसके पश्चात् बारह पद्योंमें २५ निर्वाण क्षेत्रोंका वर्णन है। वास्तवमें यह भक्तिपाठ एक नहीं है। प्रारम्भमें बीस श्लोकोंमें जो वर्धमान स्तोत्र है, वह स्वतन्त्र स्तोत्र है। उसका निर्वाण भक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह इसके पढ़नेसे ही स्पष्ट हो जाता है। द्वितीय पद्यमें स्तुतिकार सन्मतिका पाँच कल्याणकोंके द्वारा स्तवन करने की प्रतिज्ञा करता है और बीसवें श्लोकमें इस स्तोत्रके पाठका फल बताता है। यहाँ यह स्तोत्र समाप्त हो जाता है। फिर इक्कीसवें पद्यमें अर्हन्तों और गणधरोंकी निर्वाण-भूमियोंकी स्तुति करनेकी प्रतिज्ञा करता है। और बत्तीसवें श्लोकमें उनका समापन करता है। जो भी हो, संस्कृत निर्वाण-भक्तिके रचयिताने प्राकृत निर्वाण-भक्तिकारकी तरह तीर्थ-क्षेत्रोंके भेद नहीं किये। सम्भवतः उन्हें यह अभिप्रेत भी नहीं था। उनका उद्देश्य तो निर्वाण-क्षेत्रोंकी स्तुति करना था।

इन दो भक्तिपाठोंके अतिरिक्त तीर्थ-क्षेत्रोंसे सम्बन्धित कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ दिगम्बर परम्परामें उपलब्ध नहीं है। जो हैं, वे प्रायः १६, १७वीं शताब्दीके बादके हैं।

किन्तु दिगम्बर समाजमें उक्त तीन ही प्रकारके तीर्थक्षेत्रोंकी मान्यताका प्रचलन रहा है—(१) निर्वाण क्षेत्र, (२) कल्याणक क्षेत्र और (३) अतिशय क्षेत्र।

निर्वाण क्षेत्र—ये वे क्षेत्र कहलाते हैं, जहाँ तीर्थंकरों या किन्हीं तपस्वी मुनिराज का निर्वाण हुआ हो। संसारमें शास्त्रोंका उपदेश, व्रत-चारित्र, तप आदि सभी कुछ निर्वाण प्राप्तिके लिए है। यही चरम और परम पुरुषार्थ है। अतः जिस स्थानपर निर्वाण होता है, उस स्थानपर इन्द्र और देव पूजाको आते हैं। अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा निर्वाण क्षेत्रोंका महत्त्व अधिक होता है। इसलिए निर्वाण-क्षेत्र के प्रति भक्त जनताकी श्रद्धा अधिक रहती है। जहाँ तीर्थंकरोंका निर्वाण होता है, उस स्थानपर सौधर्म इन्द्र चिह्न लगा देता है। उसी स्थानपर भक्त लोग उन तीर्थंकर भगवान्के चरण-चिह्न स्थापित कर देते हैं। आचार्य समन्तभद्रने स्वयम्भू-स्तोत्रमें भगवान् नेमिनाथकी स्तुति करते हुए बताया है कि ऊर्जयन्त (गिरनार) पर्वतपर इन्द्रने भगवान् नेमिनाथके चरण-चिह्न उत्कीर्ण किये।

तीर्थंकरोंके निर्वाण क्षेत्र कुल पाँच हैं—कैलास, चम्पा, पावा, ऊर्जयन्त और सम्मेद शिखर। पूर्वके चार क्षेत्रोंपर क्रमशः ऋषभदेव, वासुपूज्य, महावीर और नेमिनाथ मुक्त हुए। शेष बीस तीर्थंकरोंने सम्मेद शिखरसे मुक्ति प्राप्त की। इन पाँच निर्वाण क्षेत्रोंके अतिरिक्त अन्य मुनियोंकी निर्वाण भूमियाँ हैं, जिनमें-से कुछके नाम निर्वाण भक्तिमें दिये हुए हैं।

कल्याणक क्षेत्र—ये वे क्षेत्र हैं, जहाँ किसी तीर्थंकरका गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण (दीक्षा) और केवलज्ञान कल्याणक हुआ है। जैसे मिथिलापुरी, भद्रिकापुरी, हस्तिनापुर आदि।

अतिशय क्षेत्र—जहाँ किसी मन्दिरमें या मूर्तिमें कोई चमत्कार दिखाई दे, तो वह अतिशय क्षेत्र कहलाता है। जैसे श्री महावीरजी, देवगढ़, कुण्डलपुर, पद्मावती आदि। जो निर्वाण क्षेत्र अथवा कल्याणक क्षेत्र नहीं हैं, वे सभी अतिशय क्षेत्र कहे जाते हैं।

तीर्थों का माहात्म्य

संसारमें प्रत्येक स्थान समान हैं, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका प्रभाव हर स्थानको दूसरे स्थानसे पृथक् कर देता है। द्रव्यगत विशेषता, क्षेत्रकृत प्रभाव और कालकृत परिवर्तन हम नित्य देखते हैं। इससे भी अधिक व्यक्तिके भावों और विचारोंका चारों ओरके वातावरणपर प्रभाव पड़ता है। जिनके आत्मामें विशुद्ध या शुभ भावोंकी स्फुरणा होती है, उनमें-से शुभ तरंगें निकलकर आसपासके सम्पूर्ण वातावरणको व्याप्त कर लेती हैं। उस वातावरणमें शुचिता, शान्ति, निर्वैरता और निर्भयता व्याप्त हो जाती है। ये तरंगें कितने वातावरणको घेरती हैं, इसके लिए यही कहा जा सकता है कि उन भावोंमें, उस व्यक्तिकी शुचिता आदिमें जितनी प्रबलता और वेग होगा, उतने वातावरणमें वे तरंगें फैल जाती हैं। इसी प्रकार जिस व्यक्तिके विचारोंमें जितनी कषाय और विषयोंकी लालसा होगी, उतने परिमाणमें, वह अपनी शक्ति द्वारा सारे वातावरणको दूषित कर देता है। इतना ही नहीं, वह शरीर भी पुद्गल-परमाणु और उसके चारों ओरके वातावरणके कारण दूषित हो जाता है। उसके अशुद्ध विचारों और अशुद्ध शरीरसे अशुद्ध परमाणुओंकी तरंगें निकलती रहती हैं, जिससे वहाँके वातावरणमें फैलकर ये परमाणु दूसरेके विचारोंको भी प्रभावित करते हैं।

प्रायः सर्वस्वत्यागी और आत्मकल्याणके मार्गके राही एकान्त शान्तिकी इच्छासे वनोंमें, गिरि-कन्दराओंमें, सुरम्य नदी-तटोंपर आत्मध्यान लगाया करते थे। ऐसे तपस्वी-जनोंके शुभ परमाणु उस सारे वातावरणमें फैलकर उसे पवित्र कर देते थे। वहाँ जाति-विरोधी जीव आते तो न जाने उनके मनका भय और संहारकी भावना कहाँ तिरोहित हो जाती। वे उस तपस्वी मुनिकी पुण्य भावनाकी स्निग्ध छायामें परस्पर किलोल करते और निर्भय विहार करते थे।

इसी आशयको भगवज्जिनसेनने आदिपुराण २।३-२६ में व्यक्त किया है। मगध नरेश श्रेणिक गौतम गणधरकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—"आपका यह मनोहर तपोवन जो कि विपुलाचल पर्वतके चारों ओर विद्यमान है, प्रकट हुए दयावनके समान मेरे मनको आनन्दित कर रहा है। इस ओर ये हथिनियाँ सिंहके बच्चेको अपना दूध पिला रही हैं और ये हाथीके बच्चे स्वेच्छासे सिंहनीके स्तनोंका पान कर रहे हैं।"

इस प्रकारका चमत्कार तो तपस्वी और ऋद्धिधारी वीतराग मुनियोंकी तपोभूमिमें भी देखनेको मिलता है। जो उस तपोभूमिमें जाता है, वह संसारकी आकुलता-व्याकुलताओंसे कितना ही प्रभावित क्यों न हो, मुनिजनोंकी तपोभूमिमें आते ही उसे निराकुल शान्तिका अनुभव होने लगता है और वह जबतक उस तपोभूमिमें ठहरता है, संसारकी चिन्ताओं और आधि-व्याधियोंसे मुक्त रहता है।

जब तपस्वी और ऋद्धिधारी मुनियोंका इतना प्रभाव होता है तो तीन लोकके स्वामी तीर्थंकर भगवान्के प्रभावका तो कहना ही क्या है। उनका प्रभाव तो अचिन्त्य है, अलौकिक है। तीर्थंकर प्रकृति सम्पूर्ण पुण्य प्रकृतियोंमें सर्वाधिक प्रभावशाली होती है और उसके कारण अन्य प्रकृतियोंका अनुभाग सुखरूप परिणत हो जाता है। तीर्थंकर प्रकृतिकी पुण्य वर्गणाएँ इतनी तेजस्वी और बलवती होती हैं कि तीर्थंकर जब माताके गर्भमें आते हैं, उससे छह माह पूर्वसे ही वे देवों और इन्द्रोंको तीर्थंकरके चरणोंका विनम्र सेवक बना देती हैं। इन्द्र छह माह पूर्व ही कुबेरको आज्ञा देता है—"भगवान् त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर प्रभुका छह माह पश्चात् गर्भावतरण होनेवाला है। उनके स्वागतकी तैयारी करो। त्रिलोकीनाथके उपयुक्त निवास स्थान बनाओ। उनके आगमनके उपलक्ष्यमें अभीसे उनके जन्म पर्यन्त रत्न और स्वर्ण की वर्षा करो, जिससे उनके नगरमें कोई निर्धन न रहे।"

ऐसे वे तीर्थंकर भगवान् जिस नगरमें जन्म लेते हैं, वह नगर उनकी चरण-धूलिसे पवित्र हो जाता है। जहाँ वे दीक्षा लेते हैं, उस स्थानका कण-कण उनके विराग रंजित कठोर तप और आत्मसाधनासे सुरभित-को प्राप्त हो जाता है। जिस स्थानपर उन्हें केवलज्ञान होता है, वहाँ देव समवसरणकी रचना करते हैं, जहाँ भगवान्‌की दिव्य ध्वनि प्रकट होकर धर्मचक्रका प्रवर्तन होता है और अनेक भव्य जीव संयम ग्रहण करके आत्म-कल्याण करते हैं, वहाँ तो कल्याणका आकाशचुम्बी मानस्तम्भ ही गड़ जाता है, जो संसारके प्राणियों-को आमन्त्रण देता है—'आओ और अपना कल्याण करो।' इसी प्रकार जहाँ तीर्थंकर देव शेष अघातिया कर्मोंका विनाश करके निरंजन परमात्म दशाको प्राप्त होते हैं, वह तो शान्ति और कल्याणका ऐसा अजस्र स्रोत बन जाता है, जहाँ भक्ति भावसे जानेवालोंको अवश्य शान्ति मिलती है और अवश्य ही उनका कल्याण होता है। निर्वाण ही तो परम पुरुषार्थ है, जिसके कारण अन्य कल्याणकोंका भी मूल्य और महत्त्व है।

यह माहात्म्य अन्य मुनियोंके निर्वाण स्थानका भी है। यह माहात्म्य उस स्थानका नहीं है, किन्तु उन तीर्थंकर प्रभुका है या उन निष्काम तपस्वी मुनिराजोंका है, जिनके अन्तरमें आत्यन्तिक शुद्धि प्रकट हुई, जिनकी आत्मा जन्म-मरणसे मुक्त होकर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो चुकी है। इसीलिए तो आचार्य शुभचन्द्रने ज्ञानार्णवमें कहा है—

सिद्धक्षेत्रे महातीर्थे पुराणपुरुषाश्रिते।
कल्याणकलिते पुण्ये ध्यानसिद्धिः प्रजायते॥

सिद्धक्षेत्र महान् तीर्थ होते हैं। यहाँपर महापुरुषका निर्वाण हुआ है। यह क्षेत्र कल्याणदायक है तथा पुण्यवर्द्धक होता है। यहाँ आकर यदि ध्यान किया जाये तो ध्यानकी सिद्धि हो जाती है। जिसको ध्यान-सिद्धि हो गयी, उसे आत्म-सिद्धि होनेमें विलम्ब नहीं लगता।

तीर्थ-भूमियोंका माहात्म्य वस्तुतः यही है कि वहाँ जानेपर मनुष्योंकी प्रवृत्ति संसारकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर उस महापुरुषकी भक्तिसे आत्मकल्याणकी ओर होती है। घरपर मनुष्यको नाना प्रकारकी सांसारिक चिन्ताएँ और आकुलताएँ रहती हैं। उसे घरपर आत्मकल्याणके लिए निराकुल अवकाश नहीं मिल पाता। तीर्थ-स्थान प्रशान्त स्थानों पर होते हैं। प्रायः तो वे पर्वतोंपर या एकान्त वनोंमें नगरोंके कोलाहलसे दूर होते हैं। फिर वहाँके वातावरणमें भी प्रेरणाके बीज छितराये होते हैं। अतः मनुष्यका मन वहाँ शान्त, निराकुल और निश्चिन्त होकर भगवान्‌की भक्ति और आत्म-साधनामें लगता है। संक्षेपमें, तीर्थक्षेत्रोंका माहात्म्य इन शब्दोंमें कहा जा सकता है—

श्रीतीर्थपान्थरजसा विरजीभवन्ति तीर्थेषु विभ्रमणतो न भवे भ्रमन्ति।
तीर्थव्ययादिह नराः स्थिरसंपदः स्युः पूज्या भवन्ति जगदीशमथाश्रयन्तः॥

अहा! तीर्थभूमिके मार्गकी रज इतनी पवित्र होती है कि उसके आश्रय से मनुष्य रज रहित अर्थात् कर्म मल रहित हो जाता है। तीर्थोंपर भ्रमण करने से अर्थात् यात्रा करनेसे संसारका भ्रमण छूट जाता है। तीर्थपर धन व्यय करनेसे अविनाशी सम्पदा मिलती है। और जो तीर्थपर आकर भगवान्‌की शरण ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् भगवान्‌के मार्गको जीवनमें उतार लेते हैं, वे जगत्पूज्य हो जाते हैं।

तीर्थ-यात्रा का उद्देश्य

तीर्थ-यात्राका उद्देश्य यदि एक शब्दमें प्रकट किया जाये तो वह है आत्म-विशुद्धि। शरीरकी शुद्धि तेल-साबुन और अन्य प्रसाधनोंसे होती है। वाणीकी शुद्धि लवंग, इलायची, सौंफ आदिसे होती है, ऐसी लोक-मान्यता है। कुछ लोगोंकी मान्यता है कि पवित्र नदियों, सागरों और भगवान्‌के नाम संकीर्तनसे सर्वांग विशुद्धि होती है। कुछ मानते हैं कि तीर्थ-क्षेत्रकी यात्रा करने मात्रसे पापोंका क्षय और पुण्यका संग्रह हो जाता है। किन्तु यह बहिर्दृष्टि है। बहिर्दृष्टि अर्थात् बाहरी साधनोंकी ओर उन्मुखता। किन्तु तीर्थ-यात्राका उद्देश्य

बाह्यशुद्धि नहीं है, वह हमारा साध्य नहीं है, न हमारा लक्ष्य ही बाह्यशुद्धि मात्र है। वह तो हम घरपर भी कर लेते हैं। तीर्थ-यात्राका ध्येय आत्म-शुद्धि है, आत्माकी ओर उन्मुखता, परसे निवृत्ति और आत्म-प्रवृत्ति हमारा ध्येय है। बाह्य-शुद्धि तो केवल साधन है और वह भी एक सीमा तक। तीर्थ-यात्रा करने मात्रसे ही आत्म-शुद्धि नहीं हो जाती। तीर्थ-यात्रा तो आत्म-शुद्धिका एक साधन है। तीर्थपर जाकर वीतराग मुनियों और तीर्थंकरोंके पावन चरित्रका स्मरण करके हम उनकी उस साधनापर विचार करें, जिसके द्वारा उन्होंने शरीर-शुद्धिकी चिन्ता छोड़कर आत्माको कर्म-मलसे शुद्ध किया। यह विचार करके हम भी वैसी साधनाका संकल्प लें और उसकी ओर उन्मुख होकर वैसा प्रयत्न करें।

कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा बन गयी है कि जिसने तीर्थकी जितनी अधिक बार वन्दना की अथवा किसी स्तोत्रका जितना अधिक बार पाठ किया या भगवान्‌की पूजामें जितना अधिक समय लगाया, उतना अधिक धर्म किया। ऐसी धारणा पुण्य और धर्मको एक माननेकी परम्परासे पैदा हुई है। जिस क्रियाका आत्म-शुद्धि, आत्मोन्मुखतासे कोई नाता नहीं, वह क्रिया पुण्यदायक और पुण्यवर्द्धक हो सकती है, वह भी तब, जब मन में शुभ भाव हों, शुभ राग हों।

पुण्य या शुभ राग साधन है, साध्य नहीं। पुण्य बाह्य साधन तो जुटा सकता है, आत्माकी विशुद्धि नहीं कर सकता। आत्माकी विशुद्धि आत्माके निज पुरुषार्थसे होगी और वह शुभ-अशुभ दोनों रागोंके निरोधसे होगी। तीर्थ-भूमियाँ हमारे लिए ऐसे साधन और अवसर प्रस्तुत करती हैं। वहाँ जाकर भक्त जन उस भूमिसे सम्बन्धित महापुरुषका स्मरण, स्तवन और पूजन करते हैं तथा उनके चरित्रसे प्रेरणा लेकर अपनी आत्माकी ओर उन्मुख होते हैं। पुण्यकी प्रक्रिया सरल है, आत्म-शुद्धिकी प्रक्रिया समझनेमें भी कठिन है और करनेमें भी।

किन्तु एक बात स्मरण रखनेकी है। भक्त जन घाटेमें नहीं रहता। वह पाप और अशुभ संकल्प-विकल्पोंको छोड़कर तीर्थ-यात्राके शुभ भावोंमें लीन रहता है। वह अपना समय तीर्थ-वन्दना, भगवान्‌का पूजन, स्तुति आदिमें व्यतीत करता है। इससे वह पुण्य संचय करता है और पापोंसे बचता है। जब वह आत्माकी ओर उन्मुख होता है तो कर्मोंका क्षय करता है, आत्म-विशुद्धि करता है। अर्थात् स्वकी ओर उपयोग जाता है तो असंख्यात गुनी कर्म-निर्जरा करता है और पर (भगवान् आदि) की ओर उपयोग जाता है तो पुण्यानु-बन्धी पुण्य संचय करता है। यही है तीर्थ-यात्राका उद्देश्य और तीर्थयात्राका वास्तविक लाभ।

तीर्थ-यात्रासे आत्म-शुद्धि होती है, इस सम्बन्धमें श्री चामुण्डराय 'चारित्रसार' में कहते हैं—

तत्रात्मनो विशुद्धध्यानजलप्रक्षालितकर्ममलकलंकस्य स्वात्मन्यवस्थानं लोकोत्तरशुचित्वं, तत्साधनानि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रतपांसि तद्वन्तश्च साधवस्तदधिष्ठानानि च निर्वाणभूम्यादिकानि। तत्प्राप्त्युपायत्वाच्छु-चिव्यपदेशमर्हन्ति। (अशुचि अनुप्रेक्षा)

अर्थात् विशुद्ध ध्यानरूपी जलसे कर्म मलको धोकर आत्मामें स्थित होनेको आत्माकी विशुद्धि कहते हैं। यह विशुद्धि अलौकिक होती है। आत्म-विशुद्धिके लिए सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-चारित्र, सम्यक्-तप और इनसे युक्त साधु और उनके स्थान निर्वाणभूमि आदि साधन हैं। ये सब आत्म-शुद्धि प्राप्त करनेके उपाय हैं। इसलिए इन्हें भी पवित्र कहते हैं।

गोम्मटसारमें आचार्य नेमिचन्द्रने कहा है—

"क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनां निष्क्रमणकेवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानम्।"

अर्थात् निष्क्रमण (दीक्षा) और केवल-ज्ञानके स्थान आत्मगुणोंकी प्राप्तिके साधन हैं।

तीर्थ-पूजा

वसुनन्दी श्रावकाचारमें क्षेत्र-पूजाके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है—

'जिणजम्मण णिक्खमणे णाणुप्पत्तीए तित्थचिण्हेसु।
णिसिहीसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा' ॥४५२॥

अर्थात् जिन भगवान्की जन्मकल्याणक भूमि, निष्क्रमण कल्याणक भूमि, केवलज्ञानोत्पत्ति स्थान, तीर्थचिह्न स्थान और निषीधिका अर्थात् निर्वाण-भूमियोंमें पूर्वोक्त विधानसे की हुई पूजा क्षेत्र-पूजा कहलाती है।

आचार्य गुणभद्र 'उत्तर-पुराण' में बतलाते हैं कि निर्वाण-कल्याणकका उत्सव मनानेके लिए इन्द्रादि देव स्वर्गसे उसी समय आये और गन्ध, अक्षत आदिसे क्षेत्रकी पूजा की और पवित्र बनाया।

'कल्पान्निर्वाणकल्याणमन्वेत्यामरनायकाः।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य तत्क्षेत्रमपवित्रयन् ॥
—उत्तरपुराण ६६।६३

पाँचों कल्याणकोंके समय इन्द्र और देव भगवान्की पूजा करते हैं। और भगवान्के निर्वाण-गमनके बाद इन कल्याणकोंके स्थान ही तीर्थ बन जाते हैं। वहाँ जाकर भक्त जन भगवान्के चरणचिह्न अथवा मूर्तिकी पूजा करते हैं तथा उस क्षेत्रकी पूजा करते हैं। यही तीर्थ-पूजा कहलाती है। वस्तुतः तीर्थ-पूजा भगवान्का स्मरण कराती है क्योंकि तीर्थ भी भगवान् के स्मारक हैं। अतः तीर्थ-पूजा प्रकारान्तरसे भगवान्की ही पूजा है।

तीर्थ-क्षेत्र और मूर्ति-पूजा

जैन धर्ममें मूर्ति-पूजाके उल्लेख प्राचीनतम कालसे पाये जाते हैं। पूजा पूज्य पुरुषकी की जाती है। पूज्य पुरुष मौजूद न हो तो उसकी मूर्ति बनाकर उसके द्वारा पूज्य पुरुषकी पूजा की जाती है। तदाकार स्थापनाका आशय भी यही है। इसलिए इतिहासातीत कालसे जैन मूर्तियाँ पायी जाती हैं और जैन मूर्तियोंके निर्माण और उनकी पूजाके उल्लेखसे तो सम्पूर्ण जैन साहित्य भरा पड़ा है। जैन धर्ममें मूर्तियोंके दो प्रकार बतलाये गये हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम। कृत्रिम प्रतिमाओंसे अकृत्रिम प्रतिमाओंकी संख्या असंख्य गुणी बतायी है। जिस प्रकार प्रतिमाएँ कृत्रिम और अकृत्रिम बतलायी हैं, उसी प्रकार चैत्यालय भी दो प्रकारके होते हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम।

ये चैत्यालय नन्दीश्वर द्वीप, सुमेरु, कुलाचल, वैताढ्य पर्वत, शाल्मली वृक्ष, जम्बू वृक्ष, वक्षारगिरि, चैत्य वृक्ष, रतिकरगिरि, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, मानुषोत्तर पर्वत, इष्वाकारगिरि, अंजनगिरि, दधिमुख पर्वत, व्यन्तरलोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक और भवनवासियोंके पाताललोकमें पाये जाते हैं। इनकी कुल संख्या ८५६९७४८१ बतलायी गयी है। इन अकृत्रिम चैत्यालयोंमें अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान हैं। सौधर्मेन्द्रने युगके आदिमें अयोध्यामें पाँच मन्दिर बनाये और उनमें अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान कीं।

कृत्रिम प्रतिमाओंका जहाँ तक सम्बन्ध है, सर्वप्रथम भरत क्षेत्रके प्रथम चक्रवर्ती भरतने अयोध्या और कैलासमें मन्दिर बनवाकर उनमें स्वर्ण और रत्नोंकी मूर्तियाँ विराजमान करायीं। इनके अतिरिक्त जहाँ-पर बाहुबली स्वामीने एक वर्ष तक अचल प्रतिमायोग धारण किया था, उस स्थानपर उन्हींके आकारकी अर्थात् पाँच सौ पच्चीस धनुषकी प्रतिमा निर्मित करायी। ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि दूसरे तीर्थंकर अजितनाथके कालमें सगर चक्रवर्तीके पुत्रोंने तथा बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथके तीर्थमें मुनिराज बाली और प्रतिनारायण रावणने कैलास पर्वतपर इन बहत्तर जिनालयोंके तथा रामचन्द्र और सीताने बाहुबली स्वामीकी उक्त प्रतिमाके दर्शन और पूजा की थी।

पुरातात्त्विक दृष्टिसे जैन मूर्ति-कलाका इतिहास सिन्धु सभ्यता तक पहुँचता है। सिन्धु घाटीकी खुदाईमें मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पासे जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें मस्तकहीन नग्न मूर्ति तथा सीलपर अंकित ऋषभ जिनकी मूर्ति जैन धर्मसे सम्बन्ध रखती हैं। अनेक पुरातत्त्ववेत्ताओंने यह स्वीकार कर लिया है कि कायोत्सर्गासनमें आसीन योगी-प्रतिमा आद्य जैन तीर्थंकर ऋषभदेवकी प्रतिमा है।

भारतमें उपलब्ध जैन मूर्तियोंमें सम्भवतः सबसे प्राचीन जैन मूर्ति तेरापुरके लयणोंमें स्थित पार्श्वनाथ-की प्रतिमाएँ हैं। इनका निर्माण पौराणिक आख्यानोंके अनुसार कलिंगनरेश करकण्डुने कराया था, जो पार्श्व-नाथ और महावीरके अन्तरालमें हुआ था। यह काल ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी होता है।

इसके बादकी मौर्यकालीन एक मस्तकहीन जिनमूर्ति पटनाके एक मुहल्ले लोहानीपुरसे मिली है। वहाँ एक जैन मन्दिरकी नींव भी मिली है। मूर्ति पटना संग्रहालयमें सुरक्षित है। वैसे इस मूर्तिका हड़प्पासे प्राप्त नग्नमूर्तिके साथ अद्भुत साम्य है।

ईसा पूर्व पहली-दूसरी शताब्दीके कलिंगनरेश खारवेलके हाथी-गुम्फा शिलालेखसे प्रमाणित है कि कलिंगमें सर्वमान्य एक 'कलिंग-जिन' की प्रतिमा थी, जिसे नन्दराज (महापद्मनन्द) ई. पूर्व. चौथी-पाँचवीं शताब्दीमें कलिंगपर आक्रमण कर अपने साथ मगध ले गया था। और फिर जिसे खारवेल मगधपर आक्रमण करके वापस कलिंग ले आया था।

इसके पश्चात् कुषाण काल (ई. पू. प्रथम शताब्दी तथा ईसाकी प्रथम शताब्दी) की और इसके बादकी तो अनेक मूर्तियाँ मथुरा, देवगढ़, पभोसा आदि स्थानोंपर मिली हैं।

तीर्थ और मूर्तियोंपर समयका प्रभाव

ये मूर्तियाँ केवल तीर्थ क्षेत्रोंपर ही नहीं मिलतीं, नगरोंमें भी मिलती हैं। तीर्थंकरोंके कल्याणक-स्थानों और सामान्य केवलियोंके केवलज्ञान और निर्वाण-स्थानोंपर प्राचीन कालमें, ऐसा लगता है, उनकी मूर्तियाँ विराजमान नहीं होती थीं। तीर्थंकरों के निर्वाण-स्थानको सौधर्मेन्द्र अपने वज्रदण्डसे चिह्नित कर देता था। उस स्थानपर भक्त लोग चरण-चिह्न बनवा देते थे। तीर्थंकरोंके पाँच निर्वाण स्थान हैं। उनपर प्राचीन कालसे अबतक चरण-चिह्न ही बने हुए हैं और सब उन्हींकी पूजा करते हैं। शेष तीर्थ स्थानोंपर प्राचीन कालमें चरण-चिह्न रहे। किन्तु वहाँ मूर्तियाँ कबसे विराजमान की जाने लगीं, यह कहना कठिन है। इसका कारण यह है कि वर्तमानमें किसी भी तीर्थपर कोई मन्दिर और मूर्ति अधिक प्राचीन नहीं है। भारतीय इतिहासकी कुछ शताब्दियाँ जैनधर्म और जैन धर्मानुयायियोंके लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण रहीं, जबकि लाखों जैनोंको बलात् धर्म-परिवर्तन करना पड़ा, लाखोंको अपना मातृ-स्थान छोड़कर विस्थापित होना पड़ा और अपने अस्तित्वकी रक्षा और निवासके लिए नये स्थान खोजने पड़े। ऐसे ही कालमें अनेक तीर्थक्षेत्रोंसे जैनोंका सम्पर्क टूट गया। वे क्षेत्र विरोधियोंके क्षेत्रमें होनेके कारण वहाँकी यात्रा बन्द हो गयी। अनेक मन्दिरोंको विरोधियोंने तोड़ डाला, अनेक मन्दिरोंपर जैनेतरोंने अधिकार कर लिया। ऐसे ही कालमें जैन लोग अपने कई तीर्थोंका वास्तविक स्थान ही भूल गये। फिर भी उन्होंने तीर्थ-भक्तिसे प्रेरित होकर उन तीर्थोंकी नये स्थानोंपर उन्हीं नामोंसे, स्थापना और संरचना कर ली। कुछ जैन तीर्थोंका नवनिर्माण पिछली कुछ शताब्दियोंमें ही किया गया है। उनके मूल स्थानोंकी खोज होना अभी शेष है।

तीर्थोंपर प्रायः चरणचिह्न ही रहते थे और उनके लिए एकाध मन्दिर बनाया जाता था। जब मन्दिरोंका महत्त्व बढ़ने लगा तो तीर्थोंपर भी अनेक मन्दिरोंका निर्माण होने लगा।

तीर्थोंपर तीर्थंकरोंकी जो मूर्तियाँ निर्मित होती थीं उनका अध्ययन करनेसे हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि वे सभी नग्न वीतराग होती थीं। जितनी प्राचीन प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं, वे सभी नग्न हैं। सम्भवतः

मथुरामें सर्वप्रथम ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जिन प्रतिमाओंके चरणोंके पास वस्त्र खण्ड मिलता है। कडोरा या लंगोटसे चिह्नित प्रतिमाओंके निर्माणका काल तो गुप्तोत्तर युग माना जाता है और उस समय भी इस प्रकारकी प्रतिमाओंका निर्माण अपवाद ही माना जा सकता है।

जब निर्ग्रन्थ जैन संघमें-से फूटकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय निकला, तो उसे एक सम्प्रदायके रूपमें व्यवस्थित रूप लेनेमें ही काफी समय लग गया। इतिहासकी दृष्टिसे इसे ईसाकी छठी शताब्दी माना गया है। इसके भी पर्याप्त समयके बाद वीतराग तीर्थंकर मूर्तियोंपर वस्त्रके चिह्नका अंकन किया गया। धीरे-धीरे यह विकार बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँच गया कि जिन-मूर्तियाँ वस्त्रालंकारोंसे आच्छादित होने लगीं और उनकी वीतरागता इस परिग्रहके आडम्बरमें दब गयी। किन्तु दिगम्बर परम्परामें भगवान् तीर्थंकरके वीतराग रूपकी रक्षा अबतक अक्षुण्ण रूपसे चली आ रही है।

तीर्थ-क्षेत्रोंमें प्राचीन कालसे स्तूप, आयागपट्ट, धर्मचक्र, अष्ट प्रातिहार्य युक्त तीर्थंकर मूर्तियोंका निर्माण होता था और वे जैन कलाके अप्रतिम अंग माने जाते थे। किन्तु ११वीं-१२वीं शताब्दियोंके बादसे तो प्रायः इनका निर्माण समाप्त-सा हो गया। इस बीसवीं शताब्दीमें आकर मूर्ति और मन्दिरोंका निर्माण संख्याकी दृष्टिसे तो बहुत हुआ है किन्तु अब तीर्थंकर-मूर्तियाँ एकाकी बनती हैं, उनमें न अष्ट प्रातिहार्यकी संयोजना होती है, न उनका कोई परिकर होता है। उनमें भावाभिव्यंजना और सौन्दर्यका अंकन सजीव होता है।

पूजाकी विधि और उसका क्रमिक-विकास

श्रावकके दैनिक आवश्यक कर्मोंमें आचार्य कुन्दकुन्दने प्राभृतमें तथा वरांगचरित और हरिवंश-पुराणमें दान, पूजा, तप और शील ये चार कर्म बतलाये हैं। भगवज्जिनसेनने इसको अधिक व्यापक बनाकर पूजा, वार्ता, दान, स्वाध्याय, संयम और तपको श्रावकके आवश्यक कर्म बतलाये। सोमदेव और पद्मनन्दिने देवपूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षडावश्यक कर्म बतलाये।

इन सभी आचार्योंने देव-पूजाको श्रावकका प्रथम आवश्यक कर्तव्य बताया है। परमात्मप्रकाश (१६८) में तो यहाँ तक कहा गया है कि "तूने न तो मुनिराजोंको दान हो किया, न जिन भगवान्की पूजा हो की न पंच परमेष्ठियोंको नमस्कार किया, तब तुझे मोक्षका लाभ कैसे होगा ?" इस कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान्की पूजा श्रावकको अवश्य करनी चाहिए। भगवान् की पूजा मोक्ष-प्राप्तिका एक उपाय है।

आदि-पुराण—पर्व ३८ में पूजाके चार भेद बताये हैं—नित्यपूजा, चतुर्मुखपूजा, कल्पद्रुमपूजा और अष्टाह्निकपूजा। अपने घरसे गन्ध, पुष्प, अक्षत ले जाकर जिनालयमें जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना सदार्चन अर्थात् नित्यमह (पूजा) कहलाता है। मन्दिर और मूर्तिका निर्माण कराना, मुनियोंकी पूजा करना भी नित्यमह कहलाता है। मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा की गयी पूजा चतुर्मुख पूजा कहलाती है। चक्रवर्ती द्वारा की जानेवाली पूजा कल्पद्रुम पूजा होती है। और अष्टाह्निकामें नन्दीश्वर द्वीपमें देवों द्वारा की जानेवाली पूजा अष्टाह्निक पूजा कहलाती है।

पूजा अष्टद्रव्यसे की जाती है—जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल। इस प्रकारके उल्लेख प्रायः सभी आर्ष ग्रन्थोंमें मिलते हैं। तिलोयपण्णत्ति (पंचम अधिकार, गाथा १०२ से १११) में नन्दीश्वर द्वीपमें अष्टाह्निकामें देवों द्वारा भक्तिपूर्वक की जानेवाली पूजाका वर्णन है। उसमें अष्टद्रव्योंका वर्णन आया है। धवला टीकामें भी ऐसा ही वर्णन है। आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण (पर्व १७, श्लोक २५२) में भरत द्वारा तथा पर्व २३, श्लोक १०१ में इन्द्रों द्वारा भगवान्की पूजाके प्रसंगमें अष्टद्रव्यों का वर्णन आया है।

पूजन विधिके प्रसंगमें समाजमें कुछ मान्यता-भेद है। अष्टद्रव्योंके नामोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है। केवल मतभेद है सचित्त और अचित्त (प्रासुक) सामग्रीके बारेमें। एक वर्ग की मान्यता है कि अष्ट-द्रव्योंमें जो नाम हैं, पूजनमें वे ही वस्तु चढ़नी चाहिए। इसके विपरीत दूसरी मान्यता है कि सचित्त वस्तुमें जीव होते हैं, उनकी हिंसाकी सम्भावनासे बचनेके लिए प्रासुक वस्तुओंका ही व्यवहार उचित है।

मतभेदका दूसरा मुद्दा है—भगवान्पर केशर चर्चित करनेका। इसके पक्षमें तर्क यह दिया जाता है कि अष्टद्रव्योंमें दूसरा द्रव्य चन्दन या गन्ध है। उसका एक मात्र प्रयोजन है भगवान्पर गन्ध विलेपन करना। दूसरा पक्ष इस बातको भगवान् वीतराग प्रभुकी वीतरागताके विरुद्ध मानता है और गन्धलेपको परिग्रह स्वीकार करता है।

पूजनके सम्बन्धमें तीसरा विवाद इस बातको लेकर है कि पूजन बैठकर किया जाये या खड़े होकर। चौथा विवादास्पद विषय है भगवान्का पंचामृताभिषेक अर्थात् घृत, दूध, दही, इक्षुरस और जल। पाँचवाँ मान्यता-भेद है स्त्रियों द्वारा भगवान्का प्रक्षाल।

इन मान्यता-भेदोंके पक्ष-विपक्षमें पड़े बिना हमारा विनम्र मत है कि भगवान्का पूजन भगवान्के प्रति अपनी विनम्र भक्तिका प्रदर्शन है। यह कषायको कृश करने, मनको अशुभसे रोककर शुभमें प्रवृत्त करने और आत्म-शान्ति प्राप्त करनेका साधन है। साधनको साधन मानें, उसे साध्य न बना लें तो मान्यता-भेदका प्रभाव कम हो जाता है। शास्त्रोंको टटोलें तो इस या उस पक्षका समर्थन शास्त्रोंमें मिल जायेगा। जिस आचार्यने जिस पक्षको युक्तियुक्त समझा, उन्होंने अपने ग्रन्थमें वैसा ही कथन कर दिया। उन्हें न किसी पक्षका आग्रह था और न किसी दूसरे पक्षके प्रति द्वेष-भाव।

हमें लगता है, अपने पक्षके प्रति दुराग्रह और दूसरे पक्षके प्रति आक्रोश और द्वेष-बुद्धि, यह कषाय-में-से उपजता है। इसमें सन्देह नहीं कि सचित्त फलों और नैवेद्य (मिष्ठान्न आदि) का वर्णन तिलोयपण्णत्ति में नन्दीश्वर द्वीपमें देवताओंके पूजन-प्रसंगमें मिलता है, अन्य शास्त्रोंमें भी मिलता है। किन्तु हमारी विनम्र मान्यतामें जब शुद्धाशुद्धि और हिंसा आदिका विशेष विवेक नहीं रहा, उस काल और क्षेत्रमें सुधारवादी प्रवृत्ति चली और इसपर बल दिया गया कि जो भी वस्तु भगवान्के आगे अर्पण की जाये, वह शुद्ध हो, प्रासुक हो, सूखी हो, जिसमें हिंसा की सम्भावनासे बचा जा सके। यही बात गन्ध-विलेपन और पंचामृताभिषेकके सम्बन्धमें है।

धर्म और पुण्य-कार्यको कषायका साधन न बनायें। मनकी चंचलता, मनके संकल्प-विकल्पसे दूर होकर आप भगवान्के गुणोंके संकीर्तन चिन्तन और अनुभवमें अपने आपको जिस उपायसे, जिस विधिसे केन्द्रित करें वही विधि आपके लिए उपादेय है। दूसरा व्यक्ति क्या करता है, क्या विधि अपनाता है, और उस विधि-में क्या त्रुटि है, आप इस पर अपने उपयोगको केन्द्रित न करके यह आत्म-निरीक्षण करें कि मेरा मन भगवान्के गुणोंमें आत्मसात् क्यों नहीं हुआ, मेरी कहाँ त्रुटि रह गयी, तब फिर क्या मतभेद मन-भेद बन सकते हैं? तीन सौ तिरेसठ विरोधी मतोंके विविध रंगी फूलोंसे स्याद्वादका सुन्दर गुलदस्ता बनानेवाला जैनधर्म एक ही वीतराग जिनेन्द्र भगवान्के भक्तों की विविध प्रकार की पूजन-विधियोंके प्रति असुन्दर और असहिष्णु बनकर उनकी मीमांसा करता फिरेगा? और क्या जिनेन्द्र प्रभुका कोई भक्त कषायको कृश करनेकी भावनासे जिनेन्द्र प्रभुके समक्ष यह दावा लेकर जायेगा कि जिस विधिसे मैं प्रभुकी पूजा करता हूँ, वही विधि सबके लिए उपादेय है? नहीं, बिलकुल नहीं। हमारे अज्ञान और कुज्ञानमेंसे दम्भ फूटता है और दम्भ अर्थात् अहंमें-से स्वके प्रति राग और परके प्रति द्वेष निपजता है। यह सम्यक् मार्ग नहीं है, यह मिथ्या-मार्ग है।

तीर्थ-यात्राका समय

यों तो तीर्थ-यात्रा कभी भी की जा सकती है। जब भी यात्रा की जाये, पुण्य-संचय ही होगा। किन्तु अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखकर यात्रा करना अधिक उपयोगी रहता है। द्रव्यकी सुविधा होनेपर यात्रा करना अधिक फलदायक होता है। यदि यात्राके लिए द्रव्यकी अनुकूलता न हो, द्रव्यका कष्ट हो और यात्राके निमित्त कर्ज लिया जाये तो उससे यात्रामें निश्चिन्तता नहीं आ पाती, संकल्प-विकल्प बने रहते हैं। किस या किन क्षेत्रों की यात्रा करनी है, वे क्षेत्र पर्वतपर स्थित हैं, जंगलमें हैं, शहरमें हैं अथवा सुदूर देहाती अंचलमें हैं। वहाँ जानेके लिए रेल, बस, नाव, रिक्शा-ताँगा या पैदल किस प्रकारकी यातायात की सुविधा है, यह जानकारी यात्रा करनेसे पूर्व कर लेना आवश्यक है। इसके साथ-साथ कालकी अनुकूलता भी आवश्यक है। जैसे सम्मेदशिखरकी यात्रा तीव्र ग्रीष्म ऋतुमें अथवा वर्षा ऋतुमें करनेसे बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। उत्तराखण्डके तीर्थोंके लिए वर्षा ऋतु अथवा सर्दीकी ऋतु अनुकूल नहीं है। उसके लिए ग्रीष्म ऋतु ही उपयुक्त है। कई तीर्थोंपर नदियोंमें बाढ़ आनेपर यात्रा नहीं हो सकती। कुछ तीर्थोंको छोड़कर उदाहरणतः उत्तराखण्डके तीर्थ—शेष तीर्थोंकी यात्राका सर्वोत्तम अनुकूल समय अक्टूबरसे लेकर मार्च तकका है। इसमें मौसम प्रायः साफ रहता है, बाढ़ आदिका प्रकोप समाप्त हो चुकता है, ठण्डे दिन होते है। गर्मीकी बाधा नहीं रहती। शरीरमें स्फूर्ति रहती है। यह मौसम पर्वतीय और मैदानी, शहरी और देहाती सभी प्रकारके तीर्थोंकी यात्राके लिए अनुकूल है। भावोंकी अनुकूलता यह है कि यात्रापर जानेके पश्चात् अपने भावोंको भगवानकी भक्ति-पूजा, स्तुति, स्तोत्र, जाप, कीर्तन, धर्म-चर्चा, स्वाध्याय और आत्म-ध्यानमें लगाना चाहिए। अन्य सांसारिक कथाएँ, राजनैतिक चर्चाएँ नहीं करनी चाहिए।

तीर्थ-यात्राका अधिकार

तीर्थ-यात्राका उद्देश्य, जैसा कि हम निवेदन कर आये हैं, पापोंसे मुक्ति और आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करना है। जो भी व्यक्ति इन उद्देश्योंसे तीर्थ-यात्रा करना चाहता है, वह कर सकता है। उसके लिए मुख्य शर्त है जिनेन्द्र प्रभुके प्रति भक्ति। जो प्रदर्शनके लिए ही तीर्थोंपर जाना चाहते हैं, उनके लिए अधिकारका प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु जो विनय और भक्तिके साथ, वहाँके नियमोंका आदर करते हुए तीर्थ-वन्दनाको जाना चाहें, वे वहाँ जा सकते हैं। तीर्थ-यात्रा अधिकारका प्रश्न न होकर कर्तव्यका प्रश्न है। जो कर्तव्यको अपना अधिकार मानते हैं, उनके लिए अधिकारका कोई प्रश्न नहीं उठता। किन्तु जो अधिकारको ही अपना कर्तव्य बना लेते हैं, उनका उद्देश्य तीर्थ-वन्दना नहीं होता, बल्कि उस तीर्थकी व्यवस्थापर अपना अधिकार करना होता है। तीर्थ तीर्थंकरों या केवलियोंके स्मारक हैं। उनकी उपदेश-सभामें सब जाते थे—मनुष्य, देव, पशु-पक्षी तक। उनके पावन स्मारकस्वरूप तीर्थोंमें सब जायें, मनुष्य मात्र जायें, सभी तीर्थ-व्यवस्थापकोंकी यह हार्दिक कामना होती है। किन्तु उनकी इस सदिच्छाका दुरुपयोग करके कुछ लोग उस तीर्थपर ही अधिकार जताने लगें तो यह प्रश्न यात्राका न रहकर व्यवस्थाके स्वामित्वका बन जाता है। जहाँ प्राणीके कल्याण और विश्व-मैत्रीका घोष उठा था, वहाँ यदि कषायके निर्घोष गूँजने लगें तो फिर तीर्थोंकी पावनता कैसे बनी रह सकती है और तीर्थोंके वातावरणमें-से पावनताका वह स्वर मन्द पड़ जाये तो तीर्थोंका माहात्म्य और उनका अतिशय कैसे बना रह सकता है। आज तीर्थोंपर वैसा अतिशय नहीं दीख पड़ता, जैसा मध्यकाल तक था। और उसके जिम्मेदार हैं वे लोग, जो योजनानुसार आये दिन तीर्थक्षेत्रोंके उन्मुक्त वीत-राग वातावरणमें कषायका विषैला धुआँ छोड़कर वहाँ घुटन पैदा किया करते हैं।

प्राचीनकालमें तीर्थ-यात्रा

प्राचीनकालमें तीर्थ-यात्रा कैसे होती थी, इसके लिए कुछ उल्लेख शास्त्रोंमें मिलते हैं अथवा उनके यात्रा-विवरण उपलब्ध होते हैं। उनसे ज्ञात होता है कि पूर्वकालमें यात्रा-संघ निकलते थे। संघका एक संचा-

लक होता था, जो संघका व्यय उठाता था। संघमें विभिन्न वाहन होते थे—हाथी, घोड़े, रथ, गाड़ी आदि। संघके साथ मुनि भी जाते थे। उस समय यात्रामें कई-कई माह लग जाते थे। महाराज अरविन्द जब मुनि बन गये और जब वे एक बार एक संघके साथ सम्मेद-शिखरकी यात्राके लिए जा रहे थे, अचानक एक जंगली हाथी आक्रमणके उद्देश्यसे उनपर आ झपटा। अरविन्द अवधि-ज्ञानी थे। उन्होंने जाना कि यह तो मेरे मन्त्री मरुभूतिका जीव है। अतः उन्होंने उस हाथीको सम्बोधित करके उपदेश दिया। हाथीने अणुव्रत धारण कर लिये और प्रासुक जल और सूखे पत्तों पर निर्वाह करने लगा। वही जीव बादमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर बना। इस प्रकारका कथन पौराणिक साहित्यमें मिलता है।

भैया भगवतीदास कृत 'अर्गलपुर जिन-वन्दना' नामक स्तोत्र है। उससे ज्ञात होता है कि रामपुरके श्रावकोंके साथ भैया भगवतीदास यात्रा करते हुए अर्गलपुर (आगरा) आये थे। उन्होंने अपने स्तोत्रमें आगराके तत्कालीन जैन मन्दिरोंका परिचय दिया है। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय जैन समाज-मे कितना अधिक साधर्मी वात्सल्य था। तब यात्रा संघके लोग किसी मन्दिरमें दर्शनार्थ जाते थे तो उस मुहल्लेके जैन बन्धु संघके लोगोंको देखकर बड़े प्रसन्न होते थे और उनका भोजन, पानसे सत्कार करते थे। दुख है कि वर्तमानमें साधर्मी वात्सल्य नहीं रहा और न यात्रा-संघोंके स्वागत-सत्कारका ही वह रूप रहा।

यात्रा संघोंके अनेक उल्लेख विभिन्न ग्रन्थोंकी प्रशस्तियों आदिमें भी मिलते हैं।

तीर्थ-यात्रा कैसे करें ?

वर्तमानमें यातायातके साधनोंकी बहुलता और सुलभताके कारण यात्रा करना पहले-जैसा न तो कष्ट-साध्य रहा है और न अधिक समय-साध्य। यात्रा-संघोंमें यात्रा करनेके पक्ष-विपक्षमें तर्क दिये जा सकते हैं। किन्तु एकाकीकी अपेक्षा यात्रा-संघोंके साथ यात्रा करनेका सबसे बड़ा लाभ यह है कि अनेक परिचित साथियोंके साथ यात्राके कष्ट कम अनुभव होते हैं, समय पूजन, दर्शन, शास्त्र-चर्चा आदिमें निकल जाता है; व्यय भी कम पड़ता है। रेलकी अपेक्षा मोटर बसों द्वारा यात्रा करनेमें कुछ सुविधा रहती है।

जब यात्रा करनेका निश्चय कर लें तो उसी समयसे अपना मन भगवान्की भक्तिमें लगाना चाहिए और जिस समय घरसे रवाना हों, उसी समयसे घर-गृहस्थीका मोह छोड़ देना चाहिए, व्यापारकी चिन्ता छोड़ देनी चाहिए तथा अन्य सांसारिक प्रपंचोंसे मुक्त हो जाना चाहिए।

यात्रामें सामान यथासम्भव कम ही रखना चाहिए किन्तु आवश्यक वस्तुएँ नहीं छोड़नी चाहिए। उदाहरणके रूपमें यदि सर्दीमें यात्रा करनी हो तो ओढ़ने-बिछानेके रुईवाले कपड़े (गद्दा और रजाई) तथा पहननेके गर्म कपड़े अवश्य अपने साथमें रखने चाहिए। विशेषतः गुजरात, मद्रास आदि प्रान्तोंके यात्रियोंको उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रदेशों के तीर्थोंकी यात्रा करते समय इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए। कपड़ोंके अलावा स्टोव, आवश्यक बरतन और कुछ दिनोंके लिए दाल, मसाला, आटा आदि भी साथमें ले जाना चाहिए।

मैदानी इलाकोंके तीर्थों की यात्रा किसी भी मौसममें की जा सकती है। जिन दिनों अधिक गर्मी पड़ती और वर्षा होती है, उन्हें बचाना चाहिए—जिससे असुविधा अधिक न हो।

तीर्थक्षेत्रपर पहुँचनेपर यह ध्यान रखना चाहिए कि तीर्थक्षेत्र पवित्र होते हैं। उनकी पवित्रताको किसी प्रकार आन्तरिक और बाह्य रूपसे क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए। ज्ञानार्णवमें आचार्य शुभचन्द्रने कहा है—

"जनसंसर्गवाक्चित्तपरिस्पन्दमनोभ्रमाः। उत्तरोत्तरबीजानि ज्ञानिजनमतस्त्यजेत् ॥"

अर्थात् अधिक मनुष्योंका जहाँ संसर्ग होता है, वहाँ मन और वाणीमें चंचलता आ जाती है और मनमें विभ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। यही सारे अनर्थोंकी जड़ है। अतः ज्ञानी पुरुषोंको अधिक जन-संसर्ग छोड़ देना चाहिए।

यदि शास्त्र-प्रवचन, तत्त्व-चर्चा, प्रभु-पूजन, कीर्तन, सामायिक प्रतिक्रमण या विधान-प्रतिष्ठोत्सव आदि धार्मिक प्रसंग हों तो जन-संसर्ग अनर्थका कारण नहीं है, क्योंकि वहाँ सभीका एक ही उद्देश्य होता है और वह है—धर्म-साधना। किन्तु जहाँ जनसमूहका उद्देश्य धर्म-साधना न होकर सांसारिक प्रयोजन हो, वहाँ जन-संसर्ग संसार-परम्पराका ही कारण होता है।

तीर्थ-क्षेत्रोंपर जो जनसमूह एकत्रित होता है, उसका उद्देश्य धर्म-साधन होता है। यदि उस समूहमें कुछ तत्त्व ऐसे हों जो सांसारिक चर्चाओं और अशुभ रागवर्धक कार्योंमें रस लेते हों तो तीर्थोंपर आकर ऐसे तत्त्वोंके सम्पर्कसे यथासम्भव बचनेका प्रयत्न करना चाहिए तथा अपने चित्तकी शान्ति और शुद्धि बढ़ानेका ही उपाय करना चाहिए। यही आन्तरिक शुद्धि कहलाती है।

बाह्य शुचिताका प्रयोजन बाहरी शुद्धि है। तीर्थक्षेत्रोंपर जाकर गन्दगी नहीं करनी चाहिए। मल-मूत्र यथास्थान ही करना चाहिए। बच्चोंको भी यथास्थान ही बैठाना चाहिए। दीवालोंपर अश्लील वाक्य नहीं लिखने चाहिए। कूड़ा, राख यथास्थान डालना चाहिए। रसोई यथास्थान करनी चाहिए। सारांश यह है कि तीर्थोंपर बाहरी सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

स्त्रियोंको एक बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए। मासिक-धर्मके समय उन्हें मन्दिर, धर्म-सभा, शास्त्र-प्रवचन, प्रतिष्ठा-मण्डप आदिमें नहीं जाना चाहिए। कई बार इससे बड़े अनर्थ और उपद्रव हो जाते हैं।

जब तीर्थ-क्षेत्रके दर्शनके लिए जायें, तब स्वच्छ धुला हुआ (सफेद या केशरिया) धोती-दुपट्टा पहन-कर और सामग्री लेकर जाना चाहिए। जहाँ तक हो, पूजनकी सामग्री घरसे ले जाना चाहिए। यदि मन्दिर-की सामग्री लें तो उसकी न्यौछावर अवश्य दे देनी चाहिए। जहाँसे मन्दिरका शिखर या मन्दिर दिखाई देने लगे, वहींसे 'दृष्टाष्टक' अथवा कोई स्तोत्र बोलते जाना चाहिए। क्षेत्रके ऊपर यात्रा करते समय या तो स्तोत्र पढ़ते जाना चाहिए अथवा अन्य लोगोंके साथ धर्म-वार्ता और धर्म-चर्चा करते जाना चाहिए।

क्षेत्रपर और मन्दिरमें विनयका पूरा ध्यान रखना चाहिए। सामग्री यथास्थान सावधानीपूर्वक चढ़ानी चाहिए। उसे जमीनमें, पैरोंमें नहीं गिरानी चाहिए। गन्धोदक भूमिपर न गिरे, इसका ध्यान रखना आव-श्यक है। गन्धोदक कटि भागसे नीचे नहीं लगाना चारिए। पूजनके समय सिरको ढकना और केशरका तिलक लगाना आवश्यक है।

जिस तीर्थपर जायें और जिस मूर्तिके दर्शन करें, उसके बारेमें पहले जानकारी कर लेना जरूरी है। इससे दर्शनोंमें मन लगता है और मनमें प्रेरणा और उल्लास जागृत होता है।

तीर्थ-यात्राके समय चमड़ेकी कोई वस्तु नहीं ले जानी चाहिए। जैसे—सूटकेस, बिस्तरबन्द, जूते, बैल्ट, घड़ीका फीता, पर्स आदि।

अन्तमें एक निवेदन और है। भगवान्‌के समक्ष जाकर कोई मनौती नहीं मनानी चाहिए, कोई कामना लेकर नहीं जाना चाहिए। निष्काम भक्ति सभी संकटोंको दूर करती है। स्मरण रखना चाहिए कि भगवान्‌से सांसारिक प्रयोजनके लिए कामना करना भक्ति नहीं, निदान होता है। भक्ति निष्काम होती है, निदान सकाम होता है। निदान मिथ्यात्व कहलाता है और मिथ्यात्व संसार और दुखका मूल है।

विषापहार स्तोत्रमें कवि धनंजयने भगवान्‌के समक्ष कामना प्रकट करनेवालोंकी आँखोंमें उँगली डालकर उन्हें जगाते हुए कितने सुन्दर शब्दोंमें कहा है—

> इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
> छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात् कश्छायया याचितयात्मलाभः॥

प्रणत हूँ देव! स्तुति कर चुकनेपर मैं आपसे कोई वरदान नहीं माँगता। माँगूँ क्या, आप तो वीतराग हैं। और माँगूँ भी क्यों? कोई समझदार व्यक्ति छायावाले पेड़के नीचे बैठकर पेड़से छाया थोड़े ही माँगता है। वह तो स्वयं बिना माँगे ही मिल जाती है। ऐसे ही भगवान्की शरणमें जाकर उनसे किसी बातकी कामना क्या करना। वहाँ जाकर सभी कामनाओंकी पूर्ति स्वतः हो जाती है।

तीर्थ-ग्रन्थकी परिकल्पना

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी बम्बईकी बहुत समयसे इच्छा और योजना थी कि समस्त दिगम्बर जैन तीर्थोंका प्रामाणिक परिचय एवं इतिहास तैयार कराया जाये। सन् १९५७–५८ में तीर्थक्षेत्र कमेटीके सहयोगसे मैंने लगभग पाँच सौ पृष्ठकी सामग्री तैयार भी की थी और समय-समयपर उसे तीर्थ-क्षेत्र कमेटीके कार्यालयमें भेजता भी रहता था। किन्तु उस समय उस सामग्रीका कुछ उपयोग नहीं हो सका।

सन् १९७० में भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवके उपलक्ष्यमें भारतवर्षके सम्पूर्ण दिगम्बर जैन तीर्थोंके इतिहास, परम्परा और परिचय सम्बन्धी ग्रन्थके निर्माणका पुनः निश्चय किया गया। यह भी निर्णय हुआ कि यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठके तत्त्वावधानमें भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी बम्बईकी ओरसे प्रकाशित किया जाये। भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवकी अखिल भारतीय दिगम्बर जैन समितिके मान्य अध्यक्ष श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजीने, जो तीर्थक्षेत्र कमेटीके भी तत्कालीन अध्यक्ष थे, मुझे इस ग्रन्थके लेखन-कार्यका दायित्व लेनेके लिए प्रेरित किया और मैंने भी उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

प्रस्तुत भाग २ की संयोजना

'भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ' भाग १ में उत्तरप्रदेश और दिल्ली के तीर्थक्षेत्रों का विवरण दिया गया है। उसका प्रकाशन महावीर निर्वाण दिवस १३ नवम्बर १९७४ को हो चुका है। इसमें प्रायः २८० पृष्ठों-की सामग्रीके अतिरिक्त ८४ चित्र और ७ मानचित्र दिये गये हैं। उत्तरप्रदेशके सभी तीर्थोंको ६ जनपदोंमें विभाजित किया गया है—(१) कुरुजांगल और शूरसेन, (२) उत्तराखण्ड, (३) पंचाल, (४) काशी और वत्स, (५) कोशल और (६) चेदि। इन छह जनपदों के मानचित्रोंके साथ एक मानचित्र सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश-के तीर्थोंका दिया गया है। ये मानचित्र भारत सरकारके मानचित्र सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रमाणित और स्वीकृत करा लिये गये हैं। इसलिए इनकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है। इस ग्रन्थके अन्तमें यात्रियोंकी सुविधा-के लिए उत्तरप्रदेशके सम्पूर्ण तीर्थोंका संक्षिप्त विवरण और यात्रा-मार्ग दिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तीर्थ-ग्रन्थमालाका द्वितीय भाग है। इस भागमें बिहार, बंगाल और उड़ीसाके तीर्थक्षेत्रों-का विवरण है। इस भागकी रूपरेखा और तदनुसार सामग्रीका संयोजन इस प्रकार किया गया है—

(अ) बिहार-बंगाल-उड़ीसाको सुविधाके लिए निम्नलिखित जनपदोंमें विभाजित किया गया है :

(१) वज्जि-विदेह जनपद
(२) अंग जनपद
(३) मगध जनपद
(४) भंगि जनपद
(५) बंग जनपद
(६) कलिंग जनपद

(आ) इन तीनों प्रान्तोंके सम्पूर्ण तीर्थक्षेत्रोंका विभाजन उपर्युक्त छह जनपदोंमें इस प्रकार किया है—

१. वज्जि-विदेह जनपद—वैशाली-कुण्डग्राम (कुण्डलपुर), मिथिलापुरी।
२. अंग जनपद —चम्पापुरी, मन्दारगिरि।
३. मगध जनपद—राजगृही, पावापुरी, गुणावा, पाटलिपुत्र।
४. भंगि जनपद—सम्मेदशिखर, भद्रिकापुरी-कोल्हुआ पहाड़।
५. कलिंग जनपद—कटक, भुवनेश्वर, खण्डगिरि-उदयगिरि, पुरी।

बंग जनपदमें जैनधर्मके अनेक सुप्रसिद्ध केन्द्र थे। किन्तु तीर्थक्षेत्र एक भी नहीं था। आज भी बंग देश (बंगला देश और भारतके बंगाल प्रान्त) में जैनोंका कोई तीर्थ विद्यमान नहीं है। प्राचीन कालमें बंग देशमें कर्ण सुवर्ण, कोटिवर्ष, ताम्रलिप्ति, कोपकटक, पहाड़पुर आदि सुप्रसिद्ध जैन केन्द्र थे, किन्तु वे भी तीर्थ नहीं थे और आज तो उनकी पहचान भी दुर्लभ है। इसलिए बंग देशमें किसी तीर्थका नाम नहीं दिया है।

प्रत्येक जनपदके नक्शे भी दिये गये हैं, जिनमें जैन तीर्थोंको लाल चिह्नसे चिह्नित किया गया है। इन जनपदीय नक्शोंमें प्राचीन जनपदोंकी सीमाओंको प्रदर्शित करनेवाले लघु नक्शे भी दिये गये हैं जो जनपदीय नक्शोंमें ही देखे जा सकते हैं। जनपदीय नक्शोंके अतिरिक्त एक बड़ा नक्शा भी दिया गया है, जिसमें बिहार-बंगाल और उड़ीसाके सभी जैनतीर्थ प्रदर्शित किये गये हैं।

इन नक्शोंमें वे जिले और प्रमुख स्थान भी दिखाये गये हैं, जहाँ सराक, सद्गोप, रंगिया, अलकबाबा आदि जातिके लोग निवास करते हैं। ये सभी जातियाँ प्राचीन कालमें जैन धर्मानुयायी थीं और परिस्थिति-वश वे जैनधर्मका परित्याग करनेको बाध्य हो गयीं, किन्तु जैनत्वके संस्कार उनमें अब भी पाये जाते हैं।

इस ग्रन्थ में तीन परिशिष्ट दिये गये हैं—(१) कोटिशिला, (२) बिहार-बंगाल-उड़ीसामें सराक जाति, (३) बिहार-बंगाल-उड़ीसाके जैनतीर्थ; संक्षिप्त परिचय और यात्रा-मार्ग।

आभार प्रदर्शन

पहलेकी तरह इस ग्रन्थमालाके प्रस्तुत ग्रन्थ भाग—२ के निर्माणमें भी मान्य श्री साहू शान्तिप्रसादजी-की प्रेरणा और स्नेह मेरे लिए प्रेरक तत्त्व रहे हैं अतएव उनका मैं चिरऋणी हूँ। भारतीय ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमारानीजी और मन्त्री श्री लक्ष्मीचन्द्रजीका भी आभारी हूँ, जिन्होंने ग्रन्थ-निर्माणकी सभी आवश्यक सुविधाएँ जुटायीं। भारतीय ज्ञानपीठने ग्रन्थकी सामग्री प्राप्त करनेकी दिशामें ही प्रयत्न नहीं किया, नक्शे बनवाने, उन्हें स्वीकृत करवाने और तीर्थोंपर जाकर फोटो लेनेवाले कुशल फोटोग्राफरोंको जुटानेका तथा फोटो-कार्य सम्पूर्ण करवा देनेका दुष्कर दायित्व भी वहन किया है। मैं अपने मित्र डॉ. गुलाबचन्द्रजीके प्रति भी अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने पाण्डुलिपिका निरीक्षण और संशोधन किया। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बईकी कार्यकारिणी तो धन्यवादकी पात्र है ही क्योंकि इस योजनाकी मूल कल्पना और इसकी पूर्तिका समस्त श्रेय और दायित्व उसीका रहा है।

इस ग्रन्थके प्रथम भागका प्रकाशन होनेपर पाठकोंसे उसके लिए जो सराहना और विश्वास प्राप्त हुआ, उससे कमेटीको और मुझे नव स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्राप्त हुई है। आशा है, पाठकोंके उस विश्वाससे प्रस्तुत भाग भी वंचित नहीं रहेगा।

२१ मार्च, १९७५ —बलभद्र जैन

विषयानुक्रम

बिहार-बंगाल-उड़ीसा के दिगम्बर जैन तीर्थ

जैन-दृष्टि से बिहार, बंगाल और उड़ीसा प्रदेश

बिहार

बिहार प्रदेश श्रमण संस्कृतिका प्रमुख केन्द्र रहा है। बिहार प्रदेशमें चौबीस तीर्थंकरोंमें-से बाईस तीर्थंकरोंने निर्वाण प्राप्त किया; छह तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, ज्ञान और निर्वाण कल्याणक हुए। राजनैतिक दृष्टिसे इस प्रदेशके राजगृह, पाटलिपुत्र और चम्पा नगरीने शताब्दियों तक देशकी राजनीतिको प्रभावित किया; प्राचीन भारतके इतिहासमें शिशुनाग वंशसे लेकर गुप्तवंश तकके सभी प्रभावशाली सम्राट् इसी प्रदेशमें हुए और उन्होंने यहीं रहकर सारे भारतपर शासन किया। जनतन्त्र प्रणालीके इतिहासमें इसी प्रदेशने सर्वप्रथम विदेह, वैशाली, कपिलवस्तु, कुशीनारा और पावामें जनतन्त्रकी स्थापना करके उसका सफल परीक्षण किया। इतना ही नहीं, दो स्वतन्त्र जनसत्ताक राज्योंकी संघ-रचना और विभिन्न जनसत्ताक राज्योंकी पारस्परिक मैत्री-सन्धि आदिके सर्वप्रथम प्रयोग इसी प्रदेशमें हुए। उत्तरप्रदेशने जगत्को राम और कृष्ण दिये तो बिहार प्रदेशने महावीर और बुद्ध-जैसे महापुरुष। उत्तरप्रदेशकी अयोध्याने भगवान् रामको जन्म दिया तो बिहार प्रदेशकी मिथिलाने भगवती सीताको पैदा किया। वस्तुतः सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिसे बिहार और उत्तरप्रदेश एक दूसरेके पूरक रहे हैं। आदि तीर्थंकर ऋषभदेवने उत्तरप्रदेशमें जन्म लिया और यहीं (प्रयागमें) प्रथम धर्म-देशना दी। उनकी अन्तिम धर्म-देशना भी उत्तर-प्रदेशमें ही (कैलासमें) हुई। इसी प्रकार अन्तिम तीर्थंकर महावीरने बिहार प्रदेशके कुण्डग्राममें जन्म लिया, विपुलाचलपर प्रथम धर्मोपदेश हुआ और अन्तिम धर्मोपदेश पावामें हुआ। जिस प्रकार रामके बिना सीताका व्यक्तित्व अधूरा है और सीताके बिना रामका चरित्र अपूर्ण है; और जिस प्रकार धार्मिक परम्पराके एक सिरेपर ऋषभदेव हैं तो उसके दूसरे सिरेपर महावीर। इसी प्रकार सभ्यता और संस्कृतिका निकास उत्तरप्रदेशसे हुआ तो उसका पूर्ण विकास बिहार प्रदेश ने किया। इसलिए सांस्कृतिक जागरणके इतिहासमें दोनों प्रदेश एक दूसरेके लिए अपरिहार्य हैं।

तीर्थंकरोंकी लीलाभूमि

बिहार प्रदेशको छह तीर्थंकरोंको जन्म देनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है—शीतलनाथ, वासुपूज्य, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ और महावीर।

भगवान् शीतलनाथका जन्म भद्दिलपुर (वर्तमान भोंदलगाँव) में हुआ। भगवान् वासुपूज्य चम्पा (वर्तमान भागलपुर) में उत्पन्न हुए। भगवान् मल्लिनाथ और नमिनाथने मिथिलापुरीमें जन्म लिया। भगवान् मुनि सुव्रतनाथकी जन्मभूमि राजगृही थी। तथा वैशालीका कुण्डग्राम, जिसे क्षत्रियकुण्ड भी कहते थे, भगवान् महावीरके जन्मसे पवित्र हुआ था।

तीर्थंकरोंके कल्याणक

उपर्युक्त छह तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक बिहार प्रदेशमें ही हुए। भगवान् शीतलनाथके गर्भ और जन्म कल्याणक भद्दिलपुर या भद्रिकापुरीमें मनाये गये तथा इस

नगरीके बाह्य वनमें जो आधुनिक कुलुहा पर्वत कहलाता है—दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए। वासुपूज्य भगवान्‌के चारों कल्याणक चम्पा नगरी (वर्तमान भागलपुर) और इसके बाह्य उद्यान—जो आधुनिक मन्दारगिरि है—में हुए। भगवान् मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ और नमिनाथके चारों कल्याणक अपनी-अपनी जन्म-नगरियोंमें हुए। भगवान् महावीरके गर्भ, जन्म और तप कल्याणक कुण्डग्राम तथा उसके बाह्य उद्यानमें हुए तथा केवलज्ञान कल्याणक जृम्भक ग्राममें।

जहाँ तक तीर्थंकरोंके निर्वाण कल्याणकका सम्बन्ध है, भगवान् ऋषभदेव और नेमिनाथको छोड़कर शेष बाईस तीर्थंकरोंके निर्वाण कल्याणक मनानेका सौभाग्य बिहार प्रदेशको प्राप्त हुआ। इन बाईस तीर्थंकरोंमें भी वासुपूज्य और महावीरको छोड़कर शेष बीस तीर्थंकरोंका निर्वाण सम्मेद शिखरसे हुआ। वासुपूज्य चम्पानगरीसे मुक्त हुए और महावीरका निर्वाण पावासे हुआ।

इस प्रकार बिहार प्रदेशमें तीर्थंकरोंके कुल छियालीस कल्याणक मनाये गये। इन कल्याणकोंसे सम्बन्धित १० तीर्थक्षेत्र हैं—भद्रिकापुरी, कुलुहा, मिथिलापुरी, चम्पापुरी (भागलपुर), मन्दारगिरि, राजगृही, वैशाली-कुण्डग्राम, जृम्भकग्राम, पावापुरी, सम्मेदशिखर।

बंगाल

प्राचीन कालमें 'वंगदेश (वर्तमान बँगलादेश) व्यापारिक दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध था। राजनैतिक दृष्टिसे, लगता है, प्राचीन वंग अग्रपंक्तिमें कभी अपना स्थान नहीं बना पाया। वहाँ ऐसा कोई प्रतापी व्यक्तित्व नहीं उभरा, जिसने दिग्विजय द्वारा चक्रवर्तीका विरुद धारण किया हो। छठी शताब्दीके अन्तमें वंगके राजनैतिक क्षितिजपर शशांक नरेशका उदय हुआ। उसने समूचे वंग, कलिंग, आन्ध्र, कोंगद और कन्नौजको जीत लिया। किन्तु चक्रवर्ती बननेके लिए सम्पूर्ण भरतखण्डकी भूमिको जोतना आवश्यक था। यह शौर्य वह नहीं दिखा सका। बल्कि उसने जैनों और बौद्धोंके मन्दिरों, मूर्तियों और स्तूपोंका निर्मम विध्वंस करके औरंगजेब-जैसे धर्मान्ध व्यक्तियोंकी काली सूचीमें अपना नाम अंकित करा लिया। शशांकके अत्याचारोंका बदला पालनरेशोंने कसकर लिया, किन्तु वे भी ऐसे नरेश नहीं बन सके, जिनको सम्राट् कहा जा सकता।

वंगप्रदेशमें जैनधर्म प्रचारके कुछ ऐसे उल्लेख उपलब्ध होते हैं, जिनके अनुसार ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और महावीरने वंगमें विहार और धर्मोपदेश किया था। कहा जाता है, पार्श्वनाथके धर्म-प्रवचनोंने वंगदेशके सहस्रों व्यक्तियोंके हृदयोंमें जैनधर्मकी अमिट छाप अंकित कर दी थी। पार्श्वनाथके विहार-प्रसंगमें ताम्रलिप्ति और कोपकटक स्थानोंका भी उल्लेख आता है। इन स्थानोंपर वे गये थे। पार्श्वनाथके पश्चात् महावीरने अंग, मगध और कलिंगके समान वंगदेशमें भी विहार करके जन-मानसको जैनधर्मकी शिक्षाओंसे प्रभावित किया था। महावीर तीर्थंकरके व्यक्तित्व और उपदेशोंका प्रभाव जनतापर अत्यधिक पड़ा। मानभूम, वर्द्धमान आदि नगरोंके नाम महावीरके नामोंपर ही रखे गये, ऐसा कहा जाता है। बंगालके इन स्थानों और इनके निकटवर्ती जिलोंमें अनेक प्राचीन जैनमन्दिरोंके भग्नावशेष बिखरे हुए पड़े हैं। इन जिलोंमें अनेक जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। बंगालके विभिन्न भागोंमें फैले हुए सराक बन्धु पार्श्वनाथ और महावीरकी धर्म-परम्पराके जीवित अवशेष हैं।

इतिहास ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि आचार्य अर्हद्बली पुण्ड्रवर्धनमें उत्पन्न हुए थे। अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु ताम्रलिप्तिके निवासी थे। ई. सन् ४७८ (गुप्त सं. १५९) के एक ताम्रपत्रसे

ज्ञात होता है कि बटगोहाली ग्राममें प्रसिद्ध निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य गुहनन्दिका एक जैनविहार था। पहाड़पुरमें खुदाईके फलस्वरूप स्वस्तिकाकार सर्वतोभद्र मन्दिर निकला है, जो सम्भवतः वही बटगोहालीका जैनविहार होगा। इन सब बातोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि बंगप्रदेशमें जैनधर्म-का बहुत प्रभाव और प्रचार था तथा यहाँ जैनधर्मके अनेक सुप्रसिद्ध केन्द्र थे।

उड़ीसा

प्राचीन कालमें कलिंग जैनधर्मका प्रमुख केन्द्र रहा है। अंग और कलिंग दोनोंमें ही बिहारके समान किसी तीर्थंकरका कोई कल्याणक नहीं हुआ, किन्तु तीर्थंकरोंका विहार कलिंगमें बराबर हुआ। सच तो यह है कि अंग, बंग, कलिंग और मगध व्रात्य श्रमणोंके केन्द्र थे। तीर्थं-करोंके सतत विहारसे इन प्रदेशोंमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंका व्यापक प्रचार हुआ। अंग और बंगके समान कलिंगमें भी ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और महावीरका विहार हुआ था। डॉ. नगेन्द्रनाथ वसुके अनुसार पार्श्वनाथके कालमें मयूरभंजमें कुसुम्ब नामक क्षत्रियोंका राज्य था। यह राज्यवंश पार्श्वनाथका अनुयायी था। 'आवश्यक सूत्र' में लिखा है कि भगवान् महावीरने तोषलमें अपने धर्मका प्रचार किया था। तोषलनरेश महावीरके पिता सिद्धार्थके बन्धु थे। तोषलनरेशने भगवान् महावीरको अपने राज्यमें धर्म-प्रचारके लिए आमन्त्रित किया था।

भगवान् महावीरने कलिंगमें जाकर धर्मोपदेश किया। उनके उपदेशसे प्रभावित होकर तोषलनरेशने कुमारी पर्वतपर भगवान्से मुनि-दीक्षा ले ली और तपस्या करके मुक्ति प्राप्त की। उनके निर्वाण-लाभ के कारण कुमारी पर्वत निर्वाण क्षेत्र बन गया। सम्भवतः कलिंग (उड़ीसा) में कुमारी पर्वत (खण्डगिरि-उदयगिरि) ही एक मात्र निर्वाण क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई तीर्थ वहाँ नहीं है।

भगवान् महावीर द्वारा प्रचारित धर्म कलिंगमें शताब्दियों तक बना रहा। यह धर्म वहाँ-का राष्ट्रधर्म बन गया था। जब महापद्मनन्द कलिंगको पराजित करके 'कलिंगजिन' प्रतिमाको अपने साथ पाटलिपुत्र ले गया, तो समस्त कलिंग शोक-सागरमें डूब गया। कलिंगजिनकी प्रतिमा उनके राष्ट्र-देवताकी प्रतिमा थी। वह सम्पूर्ण कलिंगवासियोंकी आराध्य प्रतिमा थी। इस घटनाके प्रायः तीन सौ वर्ष बाद खारवेलने मगधसे इसका बदला लिया। उसने मगध सम्राट् बृहस्पति-मित्रको करारी पराजय दी और कलिंगजिनप्रतिमाको वह अपने साथ ले गया। कलिंगवासी अपने आराध्यको पाकर बहुत प्रसन्न हुए और सम्पूर्ण राष्ट्रने राष्ट्रीय उत्सव मनाया।

इस घटनासे यह निष्कर्ष निकलता है कि जैनधर्म कलिंगमें शताब्दियों तक प्रमुख धर्मके रूपमें रहा। उदयगिरि-खण्डगिरिकी गुफाओंमें अनेक जैन मुनि तपस्या किया करते थे। वहाँ उनके धर्म-सम्मेलन भी होते थे। आज कलिंगमें विभिन्न स्थानोंपर जैन-मूर्तियाँ तो उत्खननके परिणामस्वरूप मिलती हैं, किन्तु कोई प्राचीन जैनमन्दिर देखनेमें नहीं आया। ऐसा लगता है, बंगनरेश शशांक, चोलराज राजेन्द्र और पाण्ड्यराज जटावर्मन, सुन्दर पाण्ड्य आदि धर्मद्वेषी नरेशोंने जैनमन्दिरोंका विनाश कर दिया अथवा उन मन्दिरोंको शैव मन्दिर बना लिया। विनाशका यह चक्र छठी शताब्दीसे प्रारम्भ हुआ जो निरन्तर चलता ही रहा। इस दुश्चक्रके फलस्वरूप कलिंगसे जैनोंको या तो प्राण रक्षार्थ पलायन करना पड़ा, अन्यथा उन्हें बलात् धर्म परिवर्तन करनेको विवश होना पड़ा। इस धर्मोन्मादमें कितने धर्माग्रही लोगोंको प्राण देने पड़े, इसकी संख्याका पता नहीं लगाया जा सकता।

बिहार, बंगाल, उड़ीसाके जनपद

भगवान् वृषभदेवने भारतको ५२ जनपदोंमें विभक्त किया था। भगवान् जिनसेनकृत आदि-पुराणमें उन जनपदोंके नाम इस प्रकार हैं—

सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, वंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कोशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, वाह्लीक, तुरुष्क, शक और केकय।

इन जनपदोंमें-से बिहार, बंगाल, उड़ीसामें निम्नलिखित जनपद सम्मिलित हैं—

अंग, उण्ड्र, कलिंग, वंग, सुह्म, मगध, विदेह और पुण्ड्र।

अंग जनपद—भागलपुरसे मुंगेर तक फैले हुए भूभागको अंग देश कहते थे। इस देशकी राजधानी चम्पापुरी थी। यह भागलपुरसे पश्चिममें दो मील दूर है। पुरातत्त्ववेत्ता कनिंघमने भागलपुरसे २४ मील दूर पत्थरघाटा पहाड़ीके पास चम्पापुरकी स्थिति मानी है। यह गंगातटपर अवस्थित है।

उण्ड्र जनपद—कलिंग और दक्षिण कोशलका मध्यवर्ती पर्वतीय प्रदेश उण्ड्र अथवा ओड्र कहलाता था। केओंझर और मयूरभंजकी दक्षिणी सीमासे लेकर महानदीके बायें तटका समूचा प्रदेश इसमें सम्मिलित था।

कलिंग जनपद—उत्तरमें उड़ीसासे लेकर दक्षिणमें आन्ध्र या गोदावरीके मुहाने तक फैले हुए भूभागको कलिंग जनपद कहा जाता था।

वंग जनपद—यह जनपद अंगके पूर्व और सुह्मके उत्तर-पूर्वमें स्थित था। वर्तमान पूर्वी बंगालको वंग जनपद कहा जा सकता है।

सुह्म जनपद—यह जनपद मध्यप्रदेशके दक्षिण पूर्वमें, अंग देशके नीचे और वंग तथा उत्कलके बीचमें स्थित था। प्रसिद्ध बन्दरगाह ताम्रलिप्तिको भी सुह्म जनपदके अन्तर्गत माना गया है। आचारांग सूत्रके अनुसार यह जनपद राढ़ देशके दो भागोंमें-से एक था।

मगध जनपद—इस जनपदकी सीमा यों थी—उत्तरमें गंगा, पश्चिममें शोण नदी, पूर्वमें अंग और दक्षिणमें छोटा नागपुरका सघन जंगल। दक्षिण बिहारको मगध जनपद कहा जा सकता है। इसकी राजधानी प्रारम्भमें गिरिव्रज या राजगृह थी, पश्चात् कुछ समय चम्पा इसकी राजधानी रही और बादमें पाटलिपुत्रको इसकी राजधानी बना लिया। महाभारतमें मगधका नाम कीकट आया है। वायुपुराणमें राजगृहको कीकट बताया है।

विदेह जनपद—इसकी पहचान बिहार प्रदेशके तिरहुत भागसे की जा सकती है। इसकी राजधानी मिथिला थी। यह प्रदेश मगधके पूर्वोत्तरमें था।

पुण्ड्र जनपद—बंगला देशका मालदा जिला पुण्ड्र जनपद कहलाता था। यहाँके वस्त्र बहुत प्रसिद्ध थे। वे श्यामवर्ण और मणिके समान स्निग्ध होते थे।

बौद्ध साहित्यमें सोलह महाजनपदोंके नाम इस प्रकार मिलते हैं—अंग, मगध, काशी, कोशल, वज्जि, मल्ल, चेति, वत्स, कुरु, पंचाल, मत्स्य, शूरसेन, अस्मक, अवन्ती, गन्धार और कम्बोज।

इसी प्रकार बृहत्कल्पसूत्र भाष्यमें मगध, अंग, वंग, कलिंग, काशी, कोशल, कुरु, कुशार्त, पंचाल, जंगल, सौराष्ट्र, विदेह, वत्स, शाण्डिल्य, मलय, मत्स्य, वरणा, दशार्ण, चेदि, सिन्धु

सौवीर, शूरसेन, भंगि, वट्टा, कुणाल, लाढ़ और अर्ध केकय इन साढ़े पचीस आर्यदेशोंका उल्लेख मिलता है।

बौद्ध साहित्य और बृहत्कल्पसूत्र भाष्यमें उल्लिखित जनपदोंमें उपर्युक्त जनपदोंके अतिरिक्त वज्ज, मल्ल देश भी बिहार-बंगाल-उड़ीसामें सम्मिलित थे।

जनपद और तीर्थक्षेत्र

बिहार-बंगाल-उड़ीसाके जैनतीर्थ किस-किस जनपदमें अवस्थित थे, यह जानना उपयोगी होगा।

अंग जनपद—चम्पापुरी, मन्दारगिरि।
उण्ड्र, पुण्ड्र और कलिंग जनपद—उदयगिरि-खण्डगिरि-पुरी, कोटिशिला।
मगध जनपद—राजगृही, पावापुरी, गुणावा, कुण्डलपुर, पाटलिपुत्र।
वज्जि-विदेह जनपद—वैशाली-कुण्डग्राम, मिथिलापुरी।
भंगि जनपद—सम्मेद शिखर, भद्रिकापुरी, कुलुहा गिरि।

जैन कला और पुरातत्त्व

बंगाल-बिहार-उड़ीसाके विभिन्न स्थानोंपर जैनकला और पुरातत्त्वकी सामग्री उपलब्ध होती है। उत्तर प्रदेश या दक्षिण भारतकी तुलनामें परिणामकी दृष्टिसे भले ही यह प्रचुर न हो, किन्तु गुण और गरिमाकी दृष्टिसे उनसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। सुविधाके लिए हम वहाँकी कलाको पुरातत्त्वकी दृष्टिसे निम्नलिखित भागोंमें विभाजित कर सकते हैं—

(१) तीर्थंकर मूर्तियाँ, (२) जैन गुफाएँ, (३) जैन मन्दिर, (४) जैन प्रतीक, (५) ताम्रशासन।

तीर्थंकर मूर्तियाँ—पुरातत्त्ववेत्ताओंकी मान्यता है कि मूर्ति-कलाका इतिहास मौर्य-कालसे प्रारम्भ होता है। उससे पूर्व यक्ष-पूजा एवं प्रतीक-पूजा होती थी। प्रतीक-पूजा यक्ष-पूजासे भी पूर्वकालकी मानी जाती है। प्रतीकोंमें स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, मीन-युगल, शराव-सम्पुट आदि थे। किन्तु जब अतदाकार स्थापनासे मनुष्यके मनको तृप्ति नहीं हुई, तब उसने तदाकार स्थापनाका प्रारम्भ किया। इस कालमें यक्षोंकी मूर्तियाँ बननी प्रारम्भ हुईं। उसके बाद देव-मूर्तियाँ निर्मित होने लगीं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पाके उत्खननके फलस्वरूप जो मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनसे भारतीय मूर्ति-कलाके सम्बन्धमें पूर्व धारणा बदल गयी है और उसकी परम्परा आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व तक प्रमाणित हो चुकी है। सिन्धु घाटी सभ्यताके कालमें निर्मित कायोत्सर्गासनमें नग्न योगियोंकी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

इसके पश्चात् बिहार प्रदेशमें पटनाके एक मुहल्ला लोहानीपुरसे एक प्रतिमा और एक सिर प्राप्त हुए। यह प्रतिमा हड़प्पाकी मूर्तिके समान मस्तकहीन है। कुहनियों और घुटनोंसे भी खण्डित है। इस मूर्तिपर चमकदार पालिश होनेके कारण पुरातत्त्ववेत्ताओंने इसे मौर्यकालीन माना है। आजकल यह मूर्ति और मस्तक पटना म्यूजियममें सुरक्षित हैं। हड़प्पासे प्राप्त मस्तकहीन नग्न मूर्ति और लोहानीपुरसे प्राप्त उक्त मूर्तिका तुलनात्मक अध्ययन करनेसे दोनोंमें बड़ा साम्य पाया जाता है और दोनों ही पूर्वोत्तर परम्पराकी प्रतीत होती हैं। लोहानीपुरकी यह मूर्ति सिन्धु सभ्यता-कालीन मूर्ति-कलाकी अविच्छिन्न शृंखलाकी एक कड़ीका काम करती है।

इसके पश्चात् हमें उदयगिरि—खण्डगिरिकी गुफाओंमें बनी हुई तीर्थंकर मूर्तियाँ मिलती हैं। इनका निर्माण सम्राट् खारवेल, उनकी अग्रमहिषी, उसके पुत्र कुदेपश्री और वडुख तथा उनके

परिवारीजनोंने कराया था। इसलिए इनका निर्माण-काल ई. पू. अर्ध शताब्दीसे ईसवी सन् का प्रारम्भ काल है।

चम्पापुरी (नाथनगर) में सं. २००० में निर्मित मन्दिरमें कुछ प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इन मूर्तियोंपर लेख नहीं है, किन्तु लांछन है। कुषाण-कालमें मूर्तियोंपर लेख और लांछनकी प्रथाका प्रारम्भ हो गया था। इन मूर्तियोंकी शैली आदिसे भी लगता है कि इनका निर्माण कुषाण-कालमें या इससे कुछ पूर्व हुआ होगा। ये मूर्तियाँ जिस मन्दिर की थीं, वह मन्दिर नष्ट हो चुका है।

राजगृहमें सोनभण्डार गुफाकी दीवालमें कुछ मूर्तियाँ बनी हुई हैं, ये सभी प्रतिमाएँ उसी समय निर्मित की गयी होंगी, जब इन गुफाओंका निर्माण हुआ होगा। पुरातत्त्ववेत्ताओंने इन गुफाओंका निर्माण-काल ईसाकी तीसरी-चौथी शताब्दी माना है। अतः इन मूर्तियोंका निर्माण भी इसी कालमें हुआ माना जा सकता है।

राजगृहके तीसरे और पाँचवें पर्वतोंपर उत्खननके फलस्वरूप जो मन्दिर और जैनमूर्तियाँ निकली हैं, जिनमें कुछ तो अभी उन भग्न मन्दिरोंमें रखी हैं, शेष नालन्दा संग्रहालय अथवा राजगृह नगरके लाल मन्दिरमें रखी हुई हैं, वे प्रायः आठवीं शताब्दी की हैं।

पुरी, कटक, भानपुर, पाकवीर, वैशाली, कुलुहा पर्वत और पावापुरीमें जो प्राचीन मूर्तियाँ हैं, उनका आनुमानिक काल ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियाँ हैं। कुछ मूर्तियाँ ८-९वीं शताब्दीकी भी हैं।

पटना, कलकत्ता और भुवनेश्वरके सरकारी संग्रहालय कला और पुरातत्त्वकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध हैं। इनमें जैनकला और पुरातत्त्वके भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपादान सुरक्षित हैं। जैन पुरातत्त्वकी दृष्टिसे भारतीय संग्रहालयोंमें पटना संग्रहालयका अपना विशिष्ट स्थान है। यहींपर मौर्यकालीन तीर्थंकर मूर्तिका कबन्ध और मस्तक सुरक्षित है। मौर्यकालकी चमरधारिणी यक्षीकी भी एक पाषाण मूर्ति यहाँ रखी हुई है। इनके अतिरिक्त यहाँ कुषाणकाल और कुछ पश्चात्कालीन पाषाण मूर्तियाँ हैं। पटनामें ही श्री गोपीकृष्ण कानोड़ियाके व्यक्तिगत संग्रहालयमें भगवान् पार्श्वनाथ की पाँच फुट उत्तुंग एक खड्गासन पाषाण प्रतिमा सुरक्षित है जो तृतीय शताब्दीकी मानी जाती है। पटनाके राजकीय संग्रहालयमें धातुकी भी २१ जैन प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं। ये विभिन्न स्थानोंसे उपलब्ध हुई थीं और छठी शताब्दी या उसके बाद की हैं। धातुकी इतनी प्राचीन तीर्थंकर प्रतिमाएँ अन्यत्र दुर्लभ हैं।

कलकत्ताके इण्डियन म्यूजियममें पाषाण और धातुकी कुछ जैन प्रतिमाएँ कुषाण और गुप्तयुगकी रखी हुई हैं। भगवान् पार्श्वनाथकी एक ४ फुट ऊँची मूर्ति तथा एक शिलाफलकमें लेटी हुई माता त्रिशलाकी मूर्ति गुप्तयुगकी कलाका प्रतिनिधित्व करती है। यहाँ पाषाण और धातुकी अन्य कई जैन मूर्तियाँ हैं जिनका काल ईसाकी ९-१०वीं शताब्दी माना जाता है।

भुवनेश्वरके राजकीय संग्रहालयमें भी पाषाण और धातुकी कुछ जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। ये प्रायः सभी मूर्तियाँ ८वीं शताब्दी तककी मानी गयी हैं।

जैन गुफाएँ

बिहार-बंगाल-उड़ीसामें जैन गुफाएँ केवल २-३ स्थानोंपर पायी जाती हैं, किन्तु गुफाओंकी संख्या विशाल है। अकेले खण्डगिरि-उदयगिरिपर ही ११७ गुफाएँ हैं। राजगृहीपर दो गुफाएँ हैं।

गयाके पास बराबर पहाड़ीपर ४ गुफाएँ हैं और उससे एक मील दूर नागार्जुनी पहाड़ीपर तीन गुफाएँ हैं। बराबर पहाड़ीकी दो गुफाएँ अशोकने अपने राज्यके १२वें वर्षमें और तीसरी १९वें वर्षमें निर्माण करायीं। नागार्जुनीकी तीनों गुफाओंका निर्माण अशोकके पौत्र दशरथने कराया था। इन सातों गुफाओंका निर्माण आजीवक साधुओंके निमित्त कराया गया था। कुछ विद्वानोंकी मान्यता है कि आजीवक सम्प्रदाय जैनधर्मके अति निकट था, उस सम्प्रदायके संस्थापक मंखलि गोशाल पहले भगवान् महावीरके शिष्य थे। बादमें सैद्धान्तिक मतभेदके कारण वे पृथक् हो गये और उन्होंने अपना नया सम्प्रदाय निकाल लिया। यह सम्प्रदाय केवल दो-तीन शताब्दी तक चला, फिर जैनसंघमें विलीन हो गया। इन कारणोंसे बराबर और नागार्जुनीकी गुफाओंको जैनगुफा मान लेना चाहिए।

आजीवकोंके विहार गुफाओंमें भी होते थे और पृथक् भवनोंके रूपमें भी होते थे। कौशाम्बी-के उत्खननके फलस्वरूप एक ऐसा विहार निकला है जो आजीवकोंका कहा जाता है तथा जिसमें पाँच हजार आजीवक साधु रहते थे। बराबर और नागार्जुनीकी गुफाएँ भी उनके विहार ही थे।

खण्डगिरि-उदयगिरिकी गुफाएँ, जिनकी कुल संख्या ११७ है, ई. पू. पहली शताब्दीके अन्तिम चरणमें बनी थीं। इनमें-से कुछ गुफाएँ बादकी भी हैं। इन गुफाओंमें उदयगिरिकी हाथीगुफामें सम्राट् खारवेल द्वारा उत्कीर्ण प्राकृत भाषाका १७ पंक्तियोंका एक लेख है। सम्राट् अशोकके स्तम्भ-लेखोंके पश्चात् यही लेख ऐतिहासिक महत्त्वका है। इसमें कलिंग सम्राट् खारवेल-के बाल्यकाल एवं उनके राज्यके १३ वर्षोंका व्यवस्थित वर्णन है। खारवेलने अपने राज्यके द्वितीय वर्षमें सातकर्णिको पराजित किया, फिर कृष्णा नदीके तटपर स्थित अशिक नगरपर अधिकार किया। चतुर्थ वर्षमें विन्ध्याचलमें बसे हुए अरकडपुरके विद्याधरोंको जीतकर रथिक और भोजक लोगोंको अपने आधीन किया। वे आठवें वर्षमें मगधपर आक्रमण करके गोरथगिरि तक पहुँच गये। गोरथगिरि और राजगृहके घेरेकी बात सुनते ही यवनराज देमित्रियस अपनी सेना सहित मथुरा छोड़कर भाग गया। दसवें वर्षमें उत्तरापथको जीता। ग्यारहवें वर्षमें उन्होंने पुनः मगधपर आक्रमण किया और मगधनरेश बृहस्पतिमित्रको अपने चरणोंमें झुकाया, इस प्रकार वे अधिकांश भारतको जीतकर चक्रवर्ती सम्राट् बन गये।

इस शिलालेखसे एक महत्त्वपूर्ण बातपर प्रकाश पड़ता है। मगध-विजयके फलस्वरूप उन्होंने अंग और मगधकी मूल्यवान भेंट लेकर राजधानीको प्रयाण किया था। इन भेंटोंमें कलिंग-के राजचिह्नोंके अलावा 'कलिंग-जिन' (ऋषभदेव) की वह मूर्ति भी थी जिसको नन्दराज (महापद्मनन्द) कलिंगसे मगध ले आया था। खारवेलने इस अतिशय सम्पन्न मूर्तिको कलिंग वापस लाकर बड़े उत्सवके साथ विराजमान किया था और इस घटनाकी स्मृतिमें उन्होंने एक विजय-स्तम्भ भी बनवाया था।

इस घटनासे कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। एक तो यह कि नन्द-काल अर्थात् ईसा पूर्व पाँचवीं-चौथी शताब्दीमें भी जैन मूर्तियाँ थीं। दूसरे 'कलिंग-जिन' इस नामसे ही ज्ञात होता है कि इस कालमें एक प्रसिद्ध जैन मन्दिर और मूर्ति थी जो उस प्रदेश-भरमें लोक पूजित थी। तीसरे नन्दराज इस मूर्तिको कलिंगसे ले गया, वह अवश्य जैन धर्मावलम्बी रहा होगा और इस मूर्तिके लिए उसने अपने यहाँ मन्दिर भी बनवाया होगा। चौथे यह कि उस मूर्तिके प्रति कलिंगवासियोंकी श्रद्धा दो-तीन शताब्दी तक उसके अभावमें भी बनी रही और अवसर मिलते ही उनका सम्राट् जब उसे वापस लेकर कलिंग पहुँचा तो सारे कलिंगवासियोंने उस मूर्तिके स्वागतमें राष्ट्रीय उत्सव मनाया।

यहाँकी कई अन्य गुफाओंमें भी लेख हैं, किन्तु वे एक-दो पंक्तियोंमें हैं। सभी लेख ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषामें हैं। इन सम्पूर्ण गुफाओंमें भी रानी गुफा सबसे बड़ी है, अलंकृत है। यह एक विशाल विहार था, जिसमें मुनियोंका निवास था। इसमें नीचे और ऊपर चौदह प्रकोष्ठ हैं। बरामदे हैं, जिनमें प्रतिहारी बने हुए हैं। बैठनेके लिए उच्च आसन बने हुए हैं। यहाँकी मूर्तियाँ सजीव लगती हैं।

इसमें दरवाजों की मेहराब और उनके ऊपर तथा दीवालोंपर अनेक उपाख्यान और प्राकृतिक दृश्य उत्कीर्ण हैं। नीचेकी मंजिलसे ऊपरी मंजिलके दृश्य अधिक सजीव हैं किन्तु ऊपरकी मंजिलकी अपेक्षा नीचेकी मंजिलकी कला अधिक प्राचीन है। एक अन्तर और भी देखनेमें आता है। नीचेकी मंजिलके चित्रांकनमें सामंजस्य और समानता है, किन्तु ऊपरकी मंजिलके दृश्योंमें पार्थक्य है। यह पार्थक्य कलाका है और कलाकारोंका है। लगता है, ऊपरी मंजिलमें कई कलाकारोंका योगदान रहा है।

सर जॉन मार्शलने इस गुफाके सम्बन्धमें लिखा है कि इस गुफाकी कलाके ऊपर कुछ विदेशी प्रभाव है। ऊपरी मंजिलमें एक द्वारपाल यवन वेशभूषामें सुसज्जित है। किन्तु नीचेकी मंजिलमें बना हुआ प्रहरी शुद्ध भारतीय परिधान पहने हैं।

दरवाजेके ऊपरकी रेलिंगमें एक स्त्रीके अपहरण और उसकी रक्षाका बड़ा सुन्दर चित्रण है। एक चित्रांकनमें पंखवाले हिरणपर शरसन्धान करते हुए एक धनुर्धरको दिखाया गया है।

गणेश गुफामें भी इनसे मिलते-जुलते दृश्य अंकित हैं। एक दृश्यमें पुरुष शय्यापर सोया हुआ है, एक स्त्री पुरुषके पाद-मर्दन कर रही है। मंचपुरी गुफामें वृक्ष, लता, पुष्प और जानवरों आदिका भव्य चित्रण है। जय-विजय गुफामें दो यक्षोंके बीच एक पीपलकी पूजा करती हुई दो स्त्रियाँ और दो पुरुष दिखाई पड़ते हैं। स्त्रियाँ पूजाकी सामग्री एक-एक पात्रमें लिये हुए हैं। पुरुषोंमें एक पुरुष हाथ जोड़े खड़ा है, दूसरा पुरुष वृक्षकी एक शाखा में माल्यार्पण कर रहा है। व्याघ्र गुफा छोटी ही है। द्वारमें शिलालेख है जिससे ज्ञात होता है कि यह गुफा जैन मुनि सुभूतिकी थी। खण्डगिरिकी नवमुनि गुफामें दसवीं शताब्दीका एक शिलालेख है, जिसमें जैन मुनि शुभचन्द्रके नामका उल्लेख है। ये जैन मुनि कुलचन्द्रके शिष्य थे और खण्डगिरिमें तीर्थयात्राके लिए आये थे। यहाँ एक 'ललाटेन्दु केशरी गुफा' है जो उत्कलके सोमवंशी नरेश उद्योतकेशरी (अपरनाम ललाटेन्दुकेशरी) ने ९-१०वीं शताब्दीमें बनवायी थीं। इस हिन्दू नरेशने जैन मुनियोंके ध्यानके लिए ९-१०वीं शताब्दीमें यह तथा अन्य कई गुफाएँ बनवायी थीं। इसी कालकी नवमुनि गुफा, बाराभुजी आदि कई गुफाएँ हैं। इससे मालूम पड़ता है कि यह स्थान ईसा पूर्वसे दसवीं शताब्दी तक जैनधर्मका सुदृढ़ केन्द्र था।

राजगृहीकी सोनभण्डार तथा उसकी निकटवर्ती दूसरी गुफाका निर्माण मुनि वैरदेवने जैन मुनियोंके ध्यानके लिए कराया था और उनमें अर्हन्तोंकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करायीं। यद्यपि पुरातत्त्ववेत्ताओंने इन गुफाओंका निर्माण-काल ईसाकी तीसरी-चौथी शताब्दी निश्चित किया है। किन्तु जैन साहित्यके साक्ष्यके आधारपर यह काल ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी अथवा ईसाकी प्रथम शताब्दी सिद्ध होता है। तिलोयपण्णत्तिमें वैरजसका नाम आया है जो अन्तिम प्रज्ञाश्रमण थे। सम्भवतः आर्य वैरदेव ही वैरजस थे।

बिहार-बंगाल-उड़ीसामें इनके सिवाय अन्य कोई उल्लेखनीय जैनगुफा नहीं है।

जैन मन्दिर

इस प्रान्तमें सबसे प्राचीन जैन मन्दिरके चिन्ह बिहारमें पटनाके लोहानीपुर मुहल्लेमें पाये गये हैं। यहाँ एक जैन मन्दिरकी नींव मिली है। यह मन्दिर ८-१० फुट वर्गाकार था। यहाँकी ईंटें मौर्यकालीन सिद्ध हुई हैं। यहाँसे एक मौर्यकालीन रजत सिक्का और एक जिनमूर्ति मिली थी जो पटना म्यूजियममें सुरक्षित है।

इसके पश्चात् पाकवीर-समूहके ध्वस्त मन्दिर हैं। (पाकवीर समूहसे हमारा आशय उन ध्वस्त मन्दिर-मूर्तियोंसे है जो पाकवीर और आस-पास बिखरे पड़े हैं।) ऐसा विश्वास किया जाता है कि पाकवीर और उसके आसपास विस्तृत क्षेत्रमें जैनोंने, जो आजकल सराक कहलाते हैं, अनेक जैनमन्दिरों और मूर्तियोंका निर्माण कराया था। वास्तव में मगध, अंग, ताम्रलिप्ति, बंग, दक्षिण कोशल, तोषल, उण्ड्र, पुण्ड्र और कलिंग जैनधर्मका प्रभाव क्षेत्र था। सम्राट् खारवेलके शासन-काल में तो इस भूभाग में अनेक जैन मन्दिर और मूर्तियाँ बनी थीं, किन्तु उसके पश्चात् भी गुप्त साम्राज्य तक कोई शक्तिशाली तथा धर्मान्ध शासक नहीं हुआ, जो इन जैन मन्दिरों और मूर्तियों को नष्ट करनेकी चिन्ता करता। जब बंगालमें राजा शशांकका उदय हुआ तो वह प्रबल-वेगसे सारे बंगालका स्वामी बन बैठा। फिर उसने तेजीसे उड़ीसा, कोंगद, कन्नौज आदि राज्योंपर अधिकार कर लिया। उसका शासनकाल छठी शताब्दीके अन्तिम कुछ वर्षोंसे लगभग ई. स. ६१९ तक माना जाता है। वह कट्टर वेदानुयायी था। बौद्ध और जैनधर्मसे उसको हार्दिक द्वेष था। अपने सैनिक अभियानोंके समय मार्गमें जो बौद्ध विहार और जैन मन्दिर मिलते थे, उन्हें वह नष्ट करता जाता था। नालन्दाका प्रसिद्ध विश्वविद्यालय उसीने जलाया था, ऐसा माना जाता है।

इसके पश्चात् चोलवंशी राजेन्द्र (ई. स. १०१८ से १०४४) ने पाण्ड्य, केरल, सिंहल, चालुक्य के राजवंशों को पराजित किया। उसने कलिंग, ओड्र, दक्षिण कोशल और बंग तक अपना साम्राज्य-विस्तार किया। फिर उसने नौसैनिक अभियान कर मलय प्रायद्वीप, जावा, सुमात्रा, केडाहपर अपनी विजय-वैजयन्ती फहरायी। कलिंग, ओड्र, दक्षिण कोशल और बंग-अभियानके समय उसकी सेनाने मार्गमें पड़नेवाले सभी जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका व्यापक विनाश किया, जैनोंके समूलोच्छेदका कार्य किया। एक कट्टर शैवके रूपमें उसने जैनधर्म और उसके आयतनोंका निर्मम विनाश किया। जिस प्रकार दक्षिणमें, वीर शैव लिंगायत के आचार्य अप्पारने पल्लव राजा महेन्द्रवर्मा, जो नरसिंह वर्माका पुत्र था, को जैनसे शैव बनाकर जैनोंका विनाश कराया तथा शैव आचार्य सम्बन्दरने अपने सहयोगी सन्त तिरुनावुक्करसरके साथ पाण्ड्य राज सुन्दर पाण्ड्यको जैनसे शैव बनाकर हजारों जैनोंको बलात् शैव बनाया, आठ हजार जैनोंको कोल्हू में पेल दिया। उसने अनेक जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका विध्वंस किया अथवा उन्हें परिवर्तित करके शैव मन्दिर और शिव बना लिया, उसी प्रकार चोलराज राजेन्द्रने १०२९ ई. में और पाण्ड्यनरेश जटावर्मन सुन्दर पाण्ड्यने (सन् १२५१–१२६८) उड़ीसा, कलिंग और बंगालके जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका विध्वंस किया।

सम्भव है, मुस्लिम शासकोंके धर्मोन्मादने भी जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका विध्वंस किया हो।

बिहार-बंगालके हजारीबाग, मानभूम, सिंहभूम, राँची, पटना आदि जिलों और उड़ीसाके अयोध्या, नीलगिरि, अतसपुर, मयूरभंज आदि स्थानोंपर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तककी मूर्तियाँ

---

१. पेरियपुराणम्।

उपलब्ध होती हैं। ये मूर्तियाँ जहाँ बिखरी पड़ी हैं, वहाँ मन्दिरोंके चिह्न भी मिलते हैं। अतः असन्दिग्ध रूपसे ये मन्दिर भी इसी कालके थे।

राजगृहीके उदयगिरि और वैभारगिरि पर्वतोंपर उत्खननमें प्राचीन मन्दिर निकले हैं। वैभारगिरिके ऊपर तो २२ कमरे निकले हैं। प्रत्येक कमरेमें मूर्ति विराजमान हैं। इन गर्भगृहोंको देखनेसे लगता है कि प्राचीन कालमें गर्भगृह बहुत छोटे-छोटे बनाये जाते थे। सभी गर्भगृह ईंटोंके बनाये हुए हैं। इनमें छोटी ईंटोंका प्रयोग हुआ है।

जैन प्रतीक

जैनकलामें प्रतीकोंका विशिष्ट महत्त्व है। जैन प्रतीक वस्तुतः तीर्थंकरोंके समवसरणके विभिन्न अंगोंके स्मारक हैं। धर्मचक्र, स्वस्तिक, वर्धमंगल, नन्द्यावर्त, नन्दिपद, चैत्यवृक्ष या सिद्धार्थवृक्ष, त्रिरत्न, कलश, भद्रासन, मत्स्य, पुष्पमाल, अशोकवृक्ष, पुष्पवृष्टि, दुन्दुभि, छत्र, चमर, भामण्डल, घण्टे, सर्पचिह्न, गंगा-यमुना, तीर्थंकरोंके चिह्न—वृषभ, सिंह आदि जैन प्रतीक माने गये हैं। जैन प्रतीक-योजनामें इन चिह्नों और प्रतीकोंका अपना विशेष स्थान रहा है। प्राचीन जैन मूर्तियों, मन्दिरों और शिलालेखोंमें इनका खुलकर प्रयोग किया जाता था। कुछ विद्वानोंका तो मत है कि प्रतीक-योजना उस समयसे प्रचलित है, जब मूर्ति-कलाका प्रारम्भ भी नहीं हुआ था। उस समय प्रतीकोंकी ही पूजा प्रचलित थी। सिन्धु सभ्यताके अवशेषोंमें हमें कई सीलों और नग्न मूर्तियोंमें त्रिरत्न, वृषभ आदि अंकित मिलते हैं, जिससे उस कालमें भी इन प्रतीकोंके प्रचलन की सिद्धि होती है।

मौर्यकालकी मूर्तियोंमें प्रतीक-योजनाका क्या रूप रहा, यह तबतक नहीं कहा जा सकता, जबतक कि मौर्यकालकी कुछ मूर्तियाँ उपलब्ध न हो जायें। लोहानीपुरसे जो मौर्यकालीन तीर्थंकर-प्रतिमा उपलब्ध हुई है, वह सिर, हाथ और पैरोंसे खण्डित है। अतः उसके आधारपर इस सम्बन्धमें कोई निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं है।

प्रतीक-योजना के अन्तर्गत विविध-प्रतीकोंका सर्वप्रथम स्पष्ट अंकन खण्डगिरि-उदयगिरिकी विभिन्न गुफाओंमें मिलता है। इन प्रतीकोंमें वर्धमंगल, स्वस्तिक, नन्दिपद और चैत्यवृक्ष इन चार प्रतीकोंका प्रयोग हाथीगुफाके शिलालेखमें मिलता है। इस शिलालेखमें वामपार्श्वमें दो और दाहिनी ओर दो चिह्न हैं। जय-विजय गुफामें सिरदलपर दो पुरुष और दो स्त्रियाँ सिद्धार्थ-वृक्षकी पूजा करते हुए अंकित हैं। स्त्रियाँ पात्रमें पूजाका द्रव्य लिये हुए हैं। एक पुरुष बद्धांजलि खड़ा है तथा दूसरा पुरुष माल्यार्पण कर रहा है। इस वृक्षको कुछ लोगोंने भ्रमवश पीपलका वृक्ष मान लिया है जो कि वस्तुतः सिद्धार्थवृक्ष है।

अनन्त गुफाके द्वारके सिरदलपर तीन फणवाली सर्प-युगल मूर्ति अंकित है। पार्श्वनाथका प्रतीक चिह्न सर्प है। धरणेन्द्र और पद्मावती उनके सेवक यक्ष-यक्षिणी हैं, जो नागकुमार जातिके इन्द्र और इन्द्राणी हैं। पार्श्वनाथके साथ कलिंगका सम्बन्ध रहा है। इस तथ्यकी पुष्टि शिल्पीने सर्प-युगल अंकित करके कर दी है। सर जान मार्शलके मतानुसार गुफा-स्थापत्यकी दृष्टिसे यह गुफा संसारमें सर्वप्रथम है। यह ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीकी है।

मूर्तियोंके पादपीठपर धर्मचक्रका अंकन जैनकलाका अपना वैशिष्ट्य है। तीर्थंकरोंके विहारके समय धर्मचक्र आगे-आगे चलता है। इस धर्मचक्र की बदौलत ही तीर्थंकर धर्मचक्री कहलाते हैं। तीर्थंकर केवलज्ञान-प्राप्तिके पश्चात् दिव्यध्वनि द्वारा जो धर्मोपदेश देते हैं, उसे भी

शास्त्रीय भाषामें धर्मचक्र-प्रवर्तन कहा जाता है। इसीलिए प्रारम्भसे ही प्रायः सभी जैन मूर्तियोंके सिंहासनपीठपर मध्यमें या दोनों ओर धर्म-चक्र रहता है।

जैनग्रन्थोंमें सभी तीर्थंकरोंका अलग-अलग जन्म-चिह्न बताया है। जैन मूर्तियोंके पादपीठ-पर वह चिह्न अंकित रहता है। गुप्त-कालसे तो इसका प्रचलन काफी बढ़ गया था। किन्तु इससे पूर्ववर्ती मूर्तियोंके ऊपर चिह्न अंकित करनेकी आम प्रथा नहीं थी। खण्डगिरि-उदयगिरि गुफाओंके वेदिका-स्तम्भों और सिरदलोंपर अकेले चिह्नका भी अंकन मिलता है। राजगृहीकी सोन भण्डार गुफाओंमें मूर्तियोंके पाद-पीठोंपर लांछन अंकित हैं। पाकवीर, कुलुहा आदि स्थानोंपर जो मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं, उनके सिंहासन-पीठपर लांछन बने हुए हैं।

ताम्र-शासन

बंगालके राजशाही जिलेमें पहाड़पुर नामक स्थानसे एक ताम्रशासन या ताम्रपत्र उपलब्ध हुआ है। यह स्थान कलकत्तासे १८९ मील उत्तरकी ओर, और जमालगंज स्टेशनसे ३ मील पश्चिमकी ओर बदलगाछी थानेके अन्तर्गत है। यह ताम्रपत्र गुप्त संवत् १५९ (ई. सन् ४७८) का है। यहाँ एक जैन विहार मन्दिर था, जिसके ध्वंसावशेष चारों ओर बिखरे पड़े हैं। इसके चारों ओर प्राचीन कालमें प्राचीर था। आजकल इसके अवशेष मिलते हैं। मध्यमें एक टीला है। इसके कारण इस स्थानका नाम पहाड़पुर पड़ गया है। इस टीलेके उत्खननसे ही उक्त ताम्रपत्र उपलब्ध हुआ है।

इस ताम्रपत्रमें पंचस्तूपान्वयके निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य गुहनन्दिके जैन विहारका उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार एक ब्राह्मण दम्पतिने पुण्ड्रवर्धनके विभिन्न ग्रामोंमें भूमि खरीदकर वटगोहाली ग्रामके जैन विहारको अर्हत्पूजाके लिए उसे दान किया था। अनुमान किया जाता है कि वटगोहालीका विहार वही होना चाहिए जो पहाड़पुरकी खुदाईसे प्रकाशमें आया है।

खुदाईके फलस्वरूप इस विहारके सम्बन्धमें अनेक तथ्य प्रकाशमें आये हैं। यह विहार विशाल आकारका था। इसका परकोटा लगभग एक हजार वर्ग गजका था। जिसके चारों ओर १७५ से भी अधिक गुफाकार प्रकोष्ठ थे। विहारके चौकमें चारों दिशाओंमें विशाल द्वार थे। चौकके ठीक बीचों-बीच स्वस्तिकके आकारका सर्वतोभद्र मन्दिर था। यह साढ़े तीन सौ फुट लम्बा-चौड़ा था। इसके चारों ओर परिक्रमा बनी हुई थी। मन्दिर तीन मंजिलका था। इनमें-से दो मंजिल तो स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। मन्दिरकी दीवालें और फर्श पकी ईंटोंकी बनी हुई हैं। तीसरी मंजिलके ऊपर शिखर था। आजकल जो अवशेष उपलब्ध हैं, उनमें ७० फुट ऊँची दीवाल अब भी विद्यमान है।

यह मन्दिर स्थापत्य कलाका अनुपम उदाहरण है[१]। इसकी कलाका प्रभाव बर्माके पेगान और मध्य जावाके चण्डी लोटो जोंगरंग और चण्डी सीवु मन्दिरोंपर स्पष्ट परिलक्षित होता है। किन्तु इसकी कलाकी समानता कोई दूसरा मन्दिर नहीं कर सका। सर्वतोभद्र मन्दिरों की परम्परामें यह सम्भवतः प्रथम ज्ञात मन्दिर है और सर्वतोभद्र मन्दिर जैन परम्परा की अपनी विशेषता है। इस सम्पूर्ण विहार-मन्दिरका निर्माण एक ही कालमें हुआ था।

१. The struggle for Empire, Vol. V, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay pp. 637-640.

उक्त ताम्रपत्रमें लिखा है—गुप्त संवत् १५९ में एक ब्राह्मणनाथ शर्मा और उसकी भार्या राम्नीने वटगोहाली ग्राममें पंचस्तूपान्वय निकायके निर्ग्रन्थ आचार्य गुहनन्दिके शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा अधिष्ठित विहार में भगवान् अर्हन्तों की पूजा-सामग्रीके निर्वाहार्थ तथा निर्ग्रन्थाचार्य गुहनन्दिके विहारमें एक विश्राम स्थानके निर्माणार्थ यह भूमि सदाके लिए इस विहारके अधिष्ठाता बनारसके पंचस्तूप निकाय संघके आचार्य गुहनन्दिके शिष्य-प्रशिष्योंको दानमें दी।

आचार्य गुहनन्दि पंचस्तूपान्वयके प्रमुख आचार्य थे। इस पंचस्तूपान्वय की स्थापना आचार्य अर्हद्बलीने की थी। ये पुण्ड्रवर्धनके निवासी थे। इसी पंचस्तूपान्वयमें आगे चलकर षट्खण्डागमके सुप्रसिद्ध टीकाकार आचार्य वीरसेन और आचार्य जिनसेन भी हुए।

वटगोहाली सम्भवतः वट गुफावलीका अपभ्रंश रूप है। इस नामसे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ वटवृक्ष और गुफाएँ बहुत थीं। यह गाँव पौण्ड्रवर्धन नगरसे उत्तर-पश्चिमकी ओर २९ मील तथा वानगढ़ (प्राचीन कोटिवर्ष) से दक्षिण-पूर्वकी ओर ३० मील था। इन दोनोंके मध्यमें वटगोहाली गाँव आबाद था। पौण्ड्रवर्धन और कोटिवर्ष दोनों ही प्राचीन कालमें जैनधर्मके केन्द्र थे। इसलिए इस विहारका बहुत महत्त्व था। पौण्ड्रवर्धन राजनैतिक दृष्टिसे भी बड़ा महत्त्वपूर्ण था। मौर्य और गुप्तकालमें इस नगरमें प्रान्तीय उपरिक (गवर्नर) रहता था। श्रुतकेवली भद्रबाहु और आचार्य अर्हद्बली दोनों ही आचार्य इसी नगरके निवासी थे।

वटगोहाली विहारकी ख्याति विद्या-केन्द्रके रूपमें भी थी। यहाँ अनेक दिगम्बर मुनि रहकर ध्यान-अध्ययन किया करते थे। उनके कारण अनेक यात्री दर्शनोंके लिए और उनका उपदेश सुनने आया करते थे। अनेक छात्र विद्याध्ययनके लिए आते थे। ऐसा लगता है, ईसाकी प्रारम्भिक शताब्दियोंमें पूर्वमें वटगोहाली बिहार, उत्तरमें मथुराका विहार, पश्चिममें सौराष्ट्र स्थित गिरिनगरकी चन्द्रगुफा और दक्षिणमें श्रवणबेलगोल ये चारों दिशाओंमें जैन-तत्त्वविद्याके सुदृढ़ केन्द्र थे।

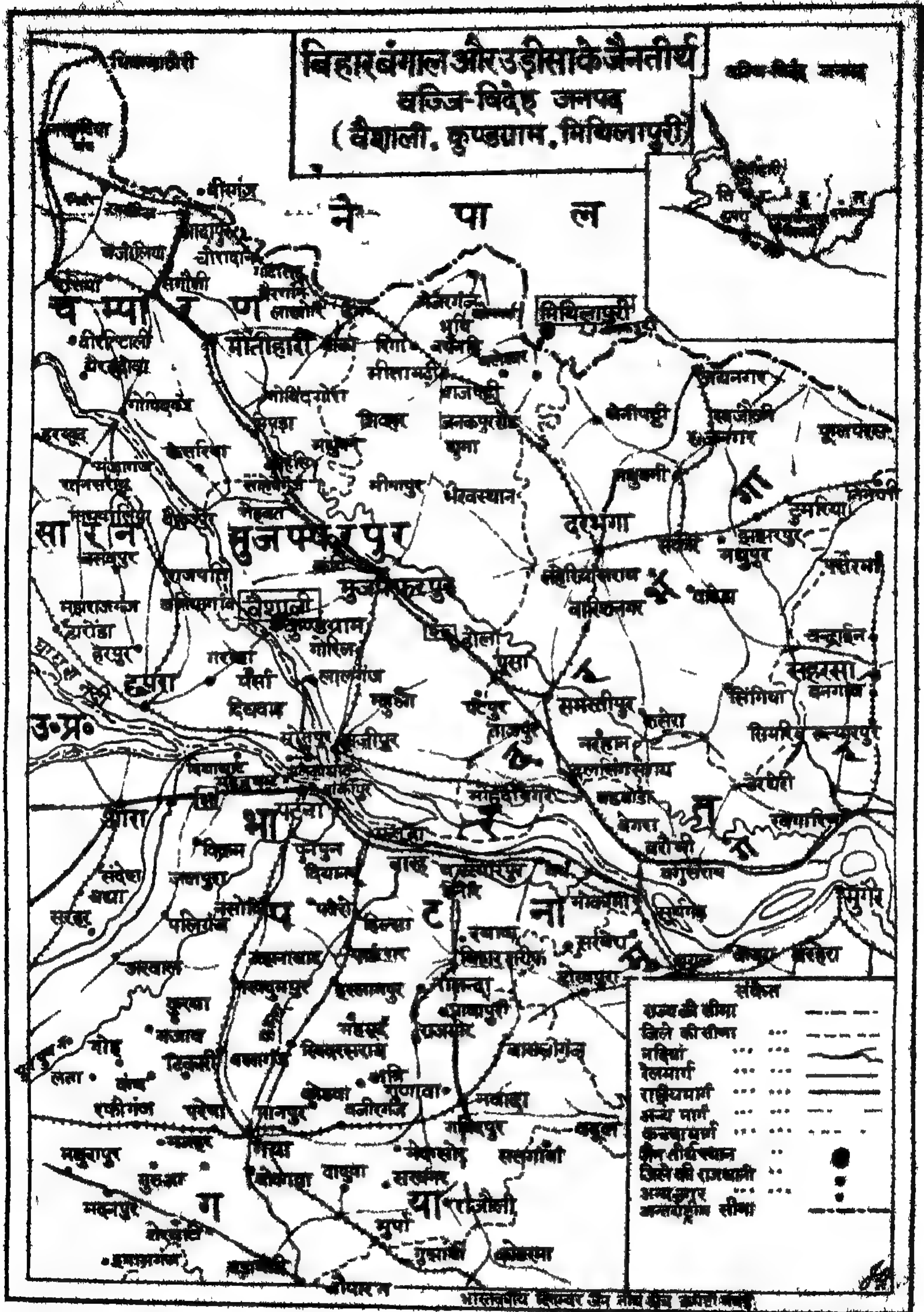
इस विहारकी ख्याति जैन विद्यापीठके रूपमें गुप्तकाल तक रही। गुप्त शासनके तिरोहित होनेपर बंगालमें शशांक नामक हिन्दू राजाका उदय हुआ और प्रबल वेगसे उसने अपने राज्यका विस्तार किया। वह एक धर्मान्ध शासक था। उसने वटगोहाली जैनविहारको बुरी तरहसे क्षति पहुँचायी। सम्भवतः इसके फलस्वरूप इस विहारपर कुछ समय तक ब्राह्मणोंका अधिकार रहा। शशांककी मृत्युके बाद बंगालमें एक शताब्दी तक अराजकताका दौर-दौरा रहा। तब बंगवासियोंने स्वेच्छासे गोपाल नामक सरदारको सन् ७५० में बंगदेशका राजा निर्वाचित कर लिया। इसीसे पालवंश चला। इसका पुत्र धर्मपाल ई. सं. ७७० में गद्दीपर बैठा। पालवंशीनरेश कट्टर बौद्ध धर्मानुयायी थे। धर्मपालने जैन विहारपर अधिकार कर लिया। उसने वटगोहाली के निकट सोमपुर नामक स्थानमें बौद्ध विहारकी नींव डाली और जैनविहारको उसमें सम्मिलित करके एक विशाल बौद्ध विहार बना दिया। इसपर बौद्धोंका अधिकार मुस्लिम शासकोंके काल तक रहा। जब उन्होंने इसे नष्ट कर दिया, तबसे वह भग्न दशामें पड़ा हुआ है।

वटगोहाली अर्थात् आधुनिक पहाड़पुरसे प्राप्त यह ताम्रपत्र ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इससे उस जैन बिहारके सम्बन्धमें प्रकाश पड़ता है, जिसकी ख्याति लगभग सात सौ वर्षों तक विभिन्न रूपोंमें रही।

वज्जि-विदेह जनपद

वैशाली-कुण्डग्राम

मिथिलापुरी



१. भारतके महासर्वेक्षककी अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्रपर आधारित।

© भारत सरकारका प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

२. इस मानचित्रमें दिये गये नामोंका अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रोंसे लिया गया है।

वैशाली-कुण्डग्राम और कुण्डलपुर

भगवान् महावीरकी जन्म-भूमि

सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्मय इस बातमें एकमत है कि भगवान् महावीर विदेहमें स्थित कुण्डग्राममें उत्पन्न हुए थे। जिस ग्रन्थमें भी भगवान् महावीरके जन्म-स्थानका वर्णन आया है, उसमें कुण्डपुरको ही जन्म-स्थान माना है और उस कुण्डपुरकी स्थिति स्पष्ट करनेके लिए 'विदेह कुण्डपुर' अथवा 'विदेह जनपद स्थित कुण्डपुर' दिया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें कुण्डपुर या इससे मिलते-जुलते नामवाले नगर एकसे अधिक होंगे। अतः भ्रम-निवारण और कुण्डपुरकी सही स्थिति बतानेके लिए कुण्डपुरके साथ विदेह लगाना पड़ा। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंके साहित्यमें इस विषयपर ऐकमत्य पाया जाता है। यहाँ दोनों ही सम्प्रदायोंके कुछ प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धरण दिये जाते हैं। ये विषयको स्पष्ट करनेमें विशेष सहायक होंगे—

दिगम्बर साहित्यमें कुण्डपुर

आचार्य पूज्यपाद विरचित संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें भगवान्‌की जन्म सम्बन्धी सभी आवश्यक बातोंपर प्रकाश डालते हुए कहा है—

"सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे।
देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नान्संप्रदर्श्य विभुः ॥४॥
चैत्रसितपक्षफाल्गुनि शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥५॥
हस्ताश्रिते शशांके चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशीदिवसे।
पूर्वाह्णे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम्" ॥६॥

अर्थात् सिद्धार्थ राजाके पुत्र (महावीर) को भारत देशके विदेह कुण्डपुरमें सुन्दर (सोलह) स्वप्न देखकर देवी प्रियकारिणी (त्रिशला) ने चैत्र शुक्ला त्रयोदशीको फाल्गुनि नक्षत्रमें अपने उच्च-स्थानवाले सौम्यग्रह और शुभलग्नमें जन्म दिया और चतुर्दशीको पूर्वाह्णमें इन्द्रोंने रत्नघटोंसे भगवान्‌का अभिषेक किया।

'हरिवंश पुराण'में कुण्डपुरकी स्थितिको कुछ अधिक विस्तारके साथ दिया है। वह इस प्रकार है—

"अथ देशोऽस्ति विस्तारी जम्बूद्वीपस्य भारते।
विदेह इति विख्यातः स्वर्गखण्डसमः श्रिया ॥२।१॥
किं तत्र वर्ण्यते यत्र स्वयं क्षत्रियनायकाः।
इक्ष्वाकवः सुखक्षेत्रे संभवन्ति दिवश्च्युताः ॥२।४॥
तत्राखण्डलनेत्रालीपद्मिनीखण्डमण्डनम्।
सुखाम्भःकुण्डमाभाति नाम्ना कुण्डपुरं पुरम्" ॥२।५॥

अर्थात् इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें लक्ष्मीसे स्वर्गखण्डकी तुलना करनेवाला 'विदेह' नामसे प्रसिद्ध एक बड़ा विस्तृत देश है। उस देशका क्या वर्णन किया जाये, जहाँके सुखदायी क्षेत्रमें क्षत्रियोंके नायक स्वयं इक्ष्वाकुवंशी राजा स्वर्गसे च्युत हो उत्पन्न होते हैं। उस विदेह देशमें कुण्डपुर नामका एक ऐसा सुन्दर नगर है जो इन्द्रके नेत्रोंकी पंक्तिरूपी कमलिनियोंके समूहसे सुशोभित है तथा सुखरूपी जलका मानो कुण्ड ही है।

'उत्तरपुराण'के कर्ता आचार्य गुणभद्रने इस प्रसंगको इसी भाँति लिखा है—

'भरतेऽस्मिन् विदेहाख्ये विषये भवनाङ्गणे ॥७४।२५१
राज्ञः कुण्डपुरेशस्य वसुधारापतत्पृथुः ॥७४।२५२

अर्थात् भरत क्षेत्रके विदेह नामक देश सम्बन्धी कुण्डपुर नगरके राजा सिद्धार्थके भवनके आँगनमें प्रतिदिन रत्नवर्षा हुई।

इन उल्लेखोंसे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि भगवान्‌का जन्म उस कुण्डपुर नामक नगरमें हुआ था जो विदेह देशमें स्थित था।

विदेह जनपद और उसकी सीमाएँ

विदेह जनपदकी सीमा इस प्रकार थी—

गण्डकीतीरमारभ्य चम्पारण्यान्तकं शिवे।
विदेहभूः समाख्याता तीरभुक्ताभिधो मनुः ॥

—शक्ति संगम तन्त्र, पटल ७

अर्थात् गण्डकी नदीसे लेकर चम्पारण्य तकका प्रदेश विदेह अथवा तीरभुक्त कहलाता है। (तीरभुक्त तिरहुतको कहते हैं)।

बृहद् विष्णु पुराणके मिथिलाखण्डमें विदेहकी पहचान और सीमाएँ बताते हुए कहा है—

"गङ्गा-हिमवतोर्मध्ये नदीपञ्चदशान्तरे।
तैरभुक्तिरिति ख्यातो देशः परमपावनः ॥
कौशिकी तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै।
योजनानि चतुर्विंशत् व्यायामः परिकीर्तितः ॥
गङ्गाप्रवाहमारभ्य यावद्धैमवतं वनम्।
विस्तारः षोडशः प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दनः" ॥

अर्थात् गंगा और हिमालयके मध्यमें तीरभुक्त देश है, जिसमें पन्द्रह नदियाँ बहती हैं। पूर्वमें कौशिकी (आधुनिक कोसी), पश्चिममें गण्डकी, उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें गंगानदी है। यह पूर्वसे पश्चिमकी ओर २४ योजन है और उत्तरसे दक्षिणकी ओर १६ योजन है।

इसी विदेह या तीरभुक्ति प्रदेशमें वैशाली, मिथिला आदि नगर थे।

श्वेताम्बर साहित्यमें विदेह कुण्डपुर

भगवान् महावीरको कहीं-कहीं 'विदेह' भी कहा गया है। इसका कारण, कुछ विद्वानोंकी रायमें, उनकी माताका कुल है। महावीरकी माता त्रिशला विदेह कुल की थीं। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें इसके सम्बन्धमें अनेक स्थानोंपर उल्लेख आये हैं। कल्पसूत्र ५।१११ में कहा है—

'विणीए णाए णायपुत्ते णायकुलचन्दे विदेहे विदेहदिण्णे विदेहजच्चे विदेहसुमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु।'

इसी प्रकार आचारांग सूत्रमें[1] उपर्युक्त पाठसे मिलता-जुलता पाठ इस प्रकार मिलता है—

'तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे णाए णायपुत्ते णायकुलचन्दे णायकुलणिव्वत्ते विदेहे विदेहदिण्णे विदेहजच्चे विदेहसुमाले तीसवासाइं विदेहंसिकट्टु आगारमज्झे वसित्ता—

इन अवतरणोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि महावीर ज्ञातृकुलमें उत्पन्न हुए थे, वे विदेहके रहनेवाले थे, विदेहके दौहित्र थे और उनकी माता त्रिशला विदेहदत्ता कहलाती थीं।

श्वेताम्बर सूत्र साहित्यमें कुण्डग्राम, क्षत्रियकुण्ड, उत्तरक्षत्रियकुण्डपुर, कुण्डपुर सन्निवेश, कुण्डग्राम नगर, क्षत्रियकुण्डग्राम आदि अनेक नाम उनके जन्म-नगरके मिलते हैं, किन्तु वे सब एक ही नगरके नाम हैं। यहाँ तत्सम्बन्धी कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं। इनसे भगवान् महावीरके जन्म-स्थानके सम्बन्धमें अपना अभिमत निश्चित करनेमें सहायता मिलेगी।

'उत्तरखत्तियकुण्डपुरसंणिवेसंमि........

—आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध, भावनाख्य चतुर्विंशतितम अध्ययन।

'खत्तियकुण्डग्गामे णयरे........' —कल्पसूत्र द्वितीय क्षण। संख्या २१,२६, २८, ३०, ३२

'कुण्डग्गामे णयरे........' —कल्पसूत्र ५।१००

'उत्तरखत्तियकुंडपुरसंणिवेसस्स........' —आचारांग २।२३।२८

'ज्ञातमस्तीह भरते महीमण्डलमण्डनम्।
क्षत्रियकुण्डग्रामाख्यं पुरं सत्पुरसोदरम्॥' —त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित १०।२

इन अवतरणोंके प्रकाशमें उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर या कुण्डग्राम ही भगवान्‌की जन्म-नगरी है, यह सुस्पष्ट हो जाता है। यह नगर विदेहमें स्थित था, यह हम पहले सिद्ध कर चुके हैं।

इस नगरकी विशेषता बताते हुए हेमचन्द्राचार्यने जो बातें लिखी हैं, वे विशेष ध्यान देने योग्य हैं—

'स्थानं विविधचैत्यानां धर्मस्यैकनिबन्धनम्।
अन्यायैरपरिस्पृष्टं पवित्रं तच्च साधुभिः॥
मृगयामद्यपानादिव्यसनास्पृष्टनागरम्।
तदेव भरतक्षेत्रपावनं तीर्थवद् भुवः॥' —त्रिषष्टि........१०।२

अर्थात् यह नगर नाना प्रकारके चैत्योंका स्थान था। धर्मका साधनभूत था। वहाँ अन्यायोंका तो स्पर्श भी नहीं था। साधुओंसे यह पवित्र था। यहाँके निवासियोंको शिकार, मद्य-पान आदि व्यसनोंका स्पर्श तक नहीं था। वह नगर वास्तवमें भरतक्षेत्रको पवित्र करनेवाला पृथ्वीका मानो तीर्थक्षेत्र ही था।

कुण्डपुरकी यह स्तुति कोरी शिष्टाचारपरक सामान्य प्रशंसा नहीं है। आचार्यने इसमें नगरव्यापी वास्तविकतापर ही प्रकाश डाला है। जिस नगरमें लोकोत्तर वन्दनीय पुरुष तीर्थंकर जन्म लेनेवाले हैं, वह नगर पवित्र होना चाहिए, धार्मिक जनोंका केन्द्र होना चाहिए और वहाँके जनोंमें आचार और विचारकी शुद्धि होनी चाहिए। कुण्डपुर उस कालमें ऐसा ही पवित्र नगर था।

---

1. आचारांगसूत्र—श्रुतस्कन्ध २, अध्याय २४।

अब यह निर्णय करना शेष रह जाता है कि यह कुण्डपुर विदेहमें कहाँ अवस्थित था।

उत्तराध्ययनसूत्रमें[1] भगवान् महावीरको वैशालिक कहा है—'अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालिए'।

'भगवती सूत्र' (२-१-१२-२) की टीकामें अभयदेवसूरिने वैशालिकका अर्थ ही महावीर किया है। इस प्रकार वैशालीके नामपर ही महावीरका नाम वैशालिक प्रसिद्ध हो गया। उस समय वैशाली नगरीमें कुण्डग्राम शामिल था। इसलिए महावीरको जनपद (विदेह) की दृष्टिसे विदेह कहा गया और कुण्डग्राम वैशालीका एक उपनगर था, इसलिए उन्हें वैशालिक कहा गया।

सारांश यह है कि कुण्डग्राम विदेह (तिरहुत) जनपदमें अवस्थित था और वह वैशालीका एक उपनगर था।

माता-पिता-कुल-गोत्र

भगवान् महावीरके पिताका नाम सिद्धार्थ था। वे सर्वार्थ और श्रीमतीके पुत्र थे। आचार्य जिनसेनने 'हरिवंशपुराण'में राजा सिद्धार्थका परिचय बड़े सुन्दर शब्दोंमें इस प्रकार दिया है—

"सर्वार्थ-श्रीमतीजन्मा तस्मिन् सर्वार्थदर्शनः।
सिद्धार्थोऽभवदर्काभो भूपः सिद्धार्थपौरुषः॥ २।१३।"

अर्थात् राजा सर्वार्थ और रानी श्रीमतीसे उत्पन्न, समस्त जनोंके हितको देखनेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी और समस्त अर्थ पुरुषार्थको सिद्ध करनेवाले सिद्धार्थ वहाँके राजा थे।

इसी प्रकार आचार्य जिनसेनने महावीरकी माता त्रिशलाका परिचय देते हुए लिखा है—

"उच्चैःकुलाद्रिसम्भूता सहजस्नेहवाहिनी।
महिषी श्रीसमुद्रस्य तस्यासीत् प्रियकारिणी॥
चेतश्चेटकराजस्य यास्ताः सप्तशरीरजाः।
अतिस्नेहाकुलं चक्रुस्तास्वाद्या प्रियकारिणी॥" —हरिवंशपुराण २।१६-१७।

जो उच्चकुलरूपी पर्वतसे उत्पन्न हुई स्वाभाविक स्नेहकी मानो नदी थी, ऐसी प्रियकारिणी लक्ष्मीके समुद्र स्वरूप राजा सिद्धार्थकी पटरानी थी। जिन सात पुत्रियोंने राजा चेटकके चित्तको अत्यधिक स्नेहसे व्याप्त कर रखा था, उन पुत्रियोंमें प्रियकारिणी सबसे बड़ी पुत्री थी।

राजा सिद्धार्थका कोई दूसरा भी नाम था, ऐसा कोई उल्लेख दिगम्बर परम्पराके शास्त्रोंमें कहीं हमारे देखनेमें नहीं आया। किन्तु श्वेताम्बर सूत्र साहित्यमें उनके नाम—सिद्धार्थ, श्रेयान्स और यशस्वी मिलते हैं।

महारानी त्रिशलाके नाम भी एकसे अधिक प्राप्त होते हैं। दिगम्बर परम्परामें उनके दो नाम बताये गये हैं—प्रियकारिणी और त्रिशला। श्वेताम्बर सूत्रोंमें उनके तीन नाम मिलते हैं—त्रिशलादेवी, विदेहदिन्ना और प्रियकारिणी।

इसी प्रकार भगवान् महावीरके नाम भी अनेक मिलते हैं—वीर, वर्धमान, सन्मति, महावीर, श्रमण अथवा महाश्रमण।

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र ६।१७। २. आचारांग २।२४।१२-१५, कल्पसूत्र ५। ३. हरिवंशपुराण २।१६-१८। ४. आचारांग २।२४।१२-१५, कल्पसूत्र ५। ५. उत्तरपुराण ७४।२७१। ६. उत्तरपुराण ७४।२७६। ७. उत्तरपुराण ७४।२८३। ८. उत्तरपुराण ७४।२९५। ९. आचारांग २।२४।१२-१५, कल्पसूत्र ५।

महाराज सिद्धार्थ और महावीर क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए थे। उनके वंशका नाम ज्ञातृवंश था और उनका गोत्र काश्यप था। महारानी त्रिशलाके पितृपक्षका गोत्र वाशिष्ठ था। ज्ञातृवंशके होनेके कारण महावीरको नातपुत्त (ज्ञातृपुत्र) भी कहा जाता था। बौद्ध साहित्यमें[1] तो महावीर-के लिए सर्वत्र 'निगंठ नातपुत्त' शब्द दिया गया है, जिसका अर्थ है निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र।

श्वेताम्बर साहित्यमें महावीर और सिद्धार्थको सर्वत्र ज्ञातृवंशी और काश्यप गोत्रीय बताया है। यथा—

'समणे भगवं महावीरे णायकुलंसि साहरिये सिद्धत्थराय भवणंसि।' —कल्पसूत्र ४।८९

'खत्तिय कुंडग्गामे णयरे णायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठगुत्ताए...., —कल्पसूत्र द्वितीय क्षण। २१,२६,२८,३०,३२

यही पाठ आचारांग २।२४ में है

'विणीए णाए णायपुत्ते णायकुलचन्दे"' —कल्पसूत्र ५।१११

'समणे भगवं महावीरे णाये णायपुत्ते णायकुलचन्दे...' —आचारांग २।२४।२८

'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' में सिद्धार्थको 'ज्ञातवंश्यः' बताया है और इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न लिखा है।

'भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया....' —उत्तराध्ययन

'लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते...'

'णिव्वाणवादीणिह णायपुत्ते....' —सूत्रकृतांग षष्ठ अध्ययन

इस प्रकार श्वेताम्बर साहित्यमें सर्वत्र सिद्धार्थ महाराज और महावीरको 'णाये, णायपुत्ते या णायकुलचन्दे' लिखा है और हेमचन्द्राचार्यने उन्हें 'ज्ञातवंश्यः' लिखा है। टीकाकारोंने भी 'णाय' का अर्थ 'ज्ञातृ' ही किया है।

किन्तु दिगम्बर साहित्यमें उन्हें 'नाथ वंश' का कहा गया है और प्राकृत ग्रन्थोंमें उन्हें 'णाह' कुलोत्पन्न बताया है, जिसका अर्थ 'नाथ' होता है।

षट्खण्डागमके चतुर्थ वेदना खण्ड भाग ९ (४।१।४४) में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

"कुंडपुर पुरवरिस्सर सिद्धत्थक्खत्तियस्स णाहकुले।
तिसिलाए देवीए देवीसदसेवमाणाए॥"

यही गाथा 'कसायपाहुड' की जयधवला[2] टीकामें आचार्य वीरसेनने 'पज्ज दोस विहत्ती' में उद्धृत की है, जिस प्रकार उन्होंने इसे षट्खण्डागममें उद्धृत किया है। इससे प्रतीत होता है कि यह गाथा वीरसेनाचार्यसे किसी प्राचीन ग्रन्थ की है।

इसी प्रकार 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें उन्हें 'णाह' वंशमें ही उत्पन्न हुआ माना है। गाथा इस प्रकार है—

---

१. अंगुत्तर निकाय अट्ठकथा, अंगुत्तर निकायका सीहसुत्त, अंगुत्तर निकायका वप्पसुत्त, मज्झिम निकायका महासकुलुदायि सुत्त, चूलसारोपम सुत्त, चूलसच्चकसुत्त, महासच्चक सुत्त, चूलदुक्खक्खन्ध सुत्त, अभय राजकुमार सुत्त, देवदहसुत्त, सामगाम सुत्त। दीघनिकायका संगीति परियाय सुत्त, सामञ्ञफल सुत्त, महापरिनिब्बाण सुत्त, पासादिक सुत्त। २. कसायपाहुड, भाग १, पृ. ७८।

"धम्मार कुंथू कुरुवंसजादा णाहोग्गवंसेसु वि वीरपासा ।
सो सुव्वदो जादववंसजम्मा णेमी अ इक्खाकु कुलम्मि सेसा" ॥४।५५०

अर्थात् धर्मनाथ, अरनाथ और कुन्थुनाथ ये तीन तीर्थंकर कुरुवंशमें उत्पन्न हुए। महावीर और पार्श्वनाथ क्रमसे नाथ और उग्रवंशमें, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ यादव वंश (हरिवंश) में तथा शेष तीर्थंकर इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए।

महाकवि धनंजय कृत 'नाममाला' नामक कोषमें महावीरके पर्यायवाची शब्दोंमें 'नाथान्वयः' विशेष उल्लेख योग्य है।—

"सन्मतिर्महतिर्वीरो महावीरोऽन्त्यकाश्यपः ।
नाथान्वयो वर्धमानो यत्तीर्थमिह साम्प्रतम्" ॥११५॥

इसकी व्याख्या करते हुए अमरकीर्तिने 'नाथान्वयः' का अर्थ किया है 'नाथोऽन्वयो यस्य स नाथान्वयः' अर्थात् जिसका वंश नाथ है। भाष्यकारने इसके समर्थनमें किसी प्राचीन ग्रन्थसे एक श्लोक भी उद्धृत किया है, जिसमें तीर्थंकरों और उनके वंशोंका उल्लेख किया गया है। वह श्लोक इस प्रकार है—

"चत्वारः पुरुवंशजा जिनवृषा धर्मादयस्ते पुन-
र्नेमिश्रीमुनिसुव्रतौ हरिकुले वीरोऽथ नाथान्वये ।
शेषाः सप्तदशाधिका जिनवरा इक्ष्वाकुवंशोद्भवाः
प्रोद्यन्मोहविनाशनैकनिपुणाः सङ्घस्य सन्तु श्रियै ॥"

सम्पूर्ण दिगम्बर साहित्यमें जहाँ भी महावीरके वंशका उल्लेख आया है, वहाँ उनका नाथवंश ही मिलता है। नाथवंश भारतके प्राचीनतम चार वंशोंमें-से एक है। भगवज्जिन-सेनाचार्यने 'आदिपुराण'[1] में भगवान् ऋषभदेव द्वारा चार वंशोंकी स्थापनाका इतिहास इस प्रकार दिया है—

"भगवान्‌ने हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ इन चार महाभाग्यशाली क्षत्रियोंको बुलाकर उनका यथोचित सम्मान और सत्कार किया। तदनन्तर राज्याभिषेक कर उन्हें महा-माण्डलिक राजा बनाया। वे राजा चार हजार अन्य छोटे-छोटे राजाओंके अधिपति थे। भगवान्‌ने सोमप्रभका नाम कुरुराज रखा और उसे कुरुदेशका राजा बनाया तथा उससे कुरुवंश चला। भगवान्‌की आज्ञासे हरिने हरिकान्त नाम रखा। उससे हरिवंश चला। अकम्पनको श्रीधर नाम दिया और वह नाथवंशका नायक हुआ। और काश्यप भी भगवान्‌से मघवा नाम पाकर उग्रवंश-का संस्थापक हुआ।"

इसी ग्रन्थमें आगे चलकर सुलोचनाके स्वयंवरके प्रसंगमें नाथवंशका उल्लेख आया है। जब सुलोचनाने जयकुमारके गलेमें वरमाला डाल दी और सम्राट् भरतके ज्येष्ठ पुत्र अर्ककीर्तिको कुछ दुष्ट लोगोंने भड़का दिया, उस समय उसका अनवद्यमति नामक मन्त्री उसे समझाते हुए कहता है—

"जिस प्रकार निषध और नील कुलाचल मेरुपर्वतके उत्तम पक्ष हैं, उसी प्रकार भगवान् आदिनाथने पहले नाथवंश और चन्द्रवंश दोनों ही आपके कुलरूपी पर्वतके उत्तम पक्ष बनाये हैं।"[2]

---

१. आदिपुराण १६।२५९ से २६१। २. आदिपुराण ४४।३१०।

इसी प्रकरणमें आचार्यने अकम्पनको नाथवंशका अधिपति बताया है।

इन प्रमाणोंके प्रकाशमें यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् महावीर नाथवंशीय थे। प्राकृत ग्रन्थोंमें नाथके लिए 'णाह' प्रयुक्त होता आया है। 'णाह' के स्थानपर श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें 'णाय' और बौद्ध साहित्यमें 'नात' या 'नाट' का प्रयोग होने लगा। जिससे नाथके स्थानपर बदलते-बदलते सिद्धार्थ और महावीरका वंश ज्ञातृवंशके नामसे प्रसिद्ध हो गया।

सिद्धार्थ कुण्डपुरके राजा थे, इस विषयमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराएँ सहमत हैं। सभी स्थानोंपर उन्हें कुण्डपुरका राजा बताया है। 'राज्ञः कुण्डपुरेशस्य' 'कुण्डपुरे-पुरवरिस्सर' 'सिद्धार्थोऽस्ति महीपतिः' 'सिद्धत्थे राया' 'सिद्धत्थेणं रण्णो' 'सिद्धत्थस्स रँण्णो' इत्यादि उल्लेखोंमें उन्हें राजा स्वीकार किया है।

उनके महलका नाम नन्द्यावर्त था और वह सात खण्डका था।

ऐसे वैभवसम्पन्न परिवारमें महावीरका जन्म हुआ था। यह कुण्डपुर नगर वैशाली संघ या वज्जि संघमें स्थित था।

वैशाली

हिन्दू पुराणोंके अनुसार वैशालीकी स्थापना इक्ष्वाकु और अलम्बुषाके पुत्र विशाल राजाने की थी। बौद्ध ग्रन्थोंमें इस नगरीके नामकरणका कारण यह बताया गया है कि जनसंख्या बढ़नेसे कई गाँवोंको सम्मिलित करके तीन बारमें इसे विशाल रूप दिया गया। इससे उसका नाम वैशाली पड़ा।

आजकल यह स्थान बसाढ़ नामक गाँवसे पहचाना जाता है। इसके आसपास आज भी बसाढ़के अतिरिक्त बनिया गाँव, कूमन छपरागाछी, वासुकुण्ड और कोल्हुआ आबाद हैं। समयके परिवर्तनके साथ यद्यपि प्राचीन नामोंमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य हो गया है किन्तु इन नामोंसे प्राचीन नगरोंकी पहचान की जा सकती है, जैसे वैशाली, वाणिज्यग्राम, कोल्लाग सन्निवेश, कर्मारग्राम और कुण्डपुर। बौद्ध साहित्यके अनुसार वैशालीमें प्राचीन कालमें कुण्डपुर और वाणिज्य-ग्राम भी मिले हुए थे। दक्षिण-पूर्वमें वैशाली थी, उत्तर-पूर्वमें कुण्डपुर था और पश्चिममें वाणिज्य-ग्राम था। कुण्डपुरके आगे उत्तर-पूर्वमें 'कोल्लाग' नामक एक सन्निवेश था। उसमें प्रायः ज्ञातृवंशीय क्षत्रिय रहते थे। इसी कोल्लाग सन्निवेशके पास ज्ञातृवंशीय क्षत्रियोंका दूतिपलाश उद्यान और चैत्य[11] था। इसीलिए इसे 'नायषंडवणे' अथवा 'नायसंडे उज्जाणे'[12] कहा गया है।

कुण्डपुर सन्निवेशकी स्थिति

कुण्डग्राम या कुण्डपुर वज्जीदेशके अन्तर्गत एक नगर था। यहाँ ज्ञातृवंशीय क्षत्रिय रहते थे। बौद्ध ग्रन्थ 'दीघ निकाय' के 'महापरिनिब्बाण सुत्त' में महात्मा बुद्धकी उस अन्तिम यात्राका

---

१. आदिपुराण ४३।१३२। २. उत्तरपुराण ७४।२५२। ३. षट्खण्डागम भाग १ (४।१।४४)। ४. त्रिषष्टि-शलाकापुरुष चरित १०।३।४। ५. कल्पसूत्र २।५०। ६. कल्पसूत्र ४।६८, ४।८६। ७. कल्पसूत्र ४।७२। ८. उत्तरपुराण ७४।२५३-२५४। ९. रामायण वाल्मीकि १।४७।११-१२, वायुपुराण ८६।१६-२२, विष्णु-पुराण (४।१।४८-४९) के अनुसार विशालके पिताका नाम इक्ष्वाकुवंशी तृणबिन्दु था। १०. मज्झिमनिकाय-अट्ठकथा महासिंहनाद सुत्त वण्णना। ११. विपाकसूत्र १। १२. कल्पसूत्र ११५, आचारांग सूत्र २।१५।२२।

वर्णन है जो उन्होंने राजगृहसे कुशीनाराके लिए की थी। उस यात्रा-विवरणके अनुसार महात्मा बुद्ध पाटलिग्राममें गंगा पार करके कोटिग्राम पहुँचे। वहाँसे नादिका या नाटिका गये। वहाँसे वैशाली। प्रो. जैकोबी[1] बौद्ध ग्रन्थोंके इस कोटिग्रामको ही कुण्डग्राम स्वीकार करते हैं। डॉ. होर्नेले[2] का मत है कि महावीरका जन्म वैशालीके एक उपनगर कोल्लागमें हुआ था, जहाँ दुति-पलाश चैत्य था। उनके मतसे कोल्लाग सन्निवेशमें नात या नाय क्षत्रियोंका निवास था।

राहुल सांकृत्यायन भगवान् महावीरको ज्ञातृवंशीय तथा वर्तमान जथरिया जातिको ज्ञातृ-वंशके वंशज बताते हैं। उनका मत है कि ज्ञातृ शब्दका ही रूपान्तर होकर जथरिया बन गया है—ज्ञातृ (ज्ञातर>जतर>जथर) इका (इया)=जथरिया, जैथरिया। महावीरका गोत्र काश्यप था तथा जथरियोंका गोत्र भी काश्यप है। रत्ती परगना, जिसमें बसाढ़ (प्राचीन वैशाली)-है, आजकल भी जथरियोंका केन्द्र है। महावीरके कालमें वज्जीदेशमें नादिक नामक एक ग्राम था जहाँ ज्ञातृवंशी क्षत्रिय रहते थे। इस नादिकाका ही संस्कृत रूप ज्ञातृका होता है। उसी नादिकासे रत्ती शब्द बन गया—रत्ती>लत्ती>नत्ती>नाती>नादि (पाली) 'दीघ निकाय'की सुमंगल विलासिनो टीकामें एक स्थानपर इस नाम भेदका स्पष्टीकरण किया गया है—

'नादिकाति एतं तलाकं निस्साय द्विण्णं चुल्लपितु महापितु पुत्तानं द्वे गामा। नादिकेति एकस्मिं ञातिगामे।'

इसमें बताया है कि ञातिक (ज्ञातिक) और नादिक दोनों नाम एक ही स्थानके हैं। ञातिगाम (ज्ञातिगाम) होनेसे ञाति नाम पड़ा और नादिक तड़ाग (तालाब) के निकट होनेसे नादिक कहलाया।

आगम ग्रन्थोंके[4] अनुसार कुण्डपुरके दो भाग थे—दक्षिण कुण्डपुर सन्निवेश और उत्तर कुण्डपुर सन्निवेश। क्षत्रिय कुण्डग्राम उत्तरमें था जिसमें मुख्यतः ज्ञातृवंशी क्षत्रिय रहते थे और ब्राह्मण कुण्डग्राम दक्षिणमें था जिसमें मुख्यतः ब्राह्मण निवास करते थे।

भगवती सूत्रके[5] अनुसार ब्राह्मणकुण्डनगरके ईशानकोण (उत्तर-पूर्व) में बहुशाल चैत्य था। उस नगरमें ऋषभदत्त ब्राह्मण और उसकी देवानन्दा ब्राह्मणी रहते थे। वे दोनों श्रमणोपासक थे। एक बार भगवान् महावीर वहाँ पधारे और वे बहुशाल चैत्यमें ठहरे। देवानन्दा खूब सजधजकर दासियोंसे घिरी हुई भगवान्के दर्शनोंके लिए गयी। ब्राह्मण-दम्पतिने भगवान्से दीक्षा ले ली।

इस ब्राह्मणकुण्डनगरके पश्चिममें क्षत्रियकुण्ड नामका नगर था। वहाँ जमाली रहता था। उस समय क्षत्रियकुण्डनगरमें शृंगारक, त्रिक, चतुष्क और चत्वरमें बहुतसे मनुष्य कोलाहल कर रहे थे। 'वे क्षत्रियकुण्डग्राममें-से बाहर निकले और ब्राह्मणकुण्डग्राममें होकर बहुशाल चैत्यमें गये। जमालीने अपने महलपर बैठे हुए सोचा—आज क्षत्रियकुण्डग्राममें क्या इन्द्र महोत्सव, स्कन्द महोत्सव, मुकुन्द महोत्सव, नाग महोत्सव, यक्ष महोत्सव, भूत महोत्सव, कूप महोत्सव, सरोवर महोत्सव, नदी महोत्सव, ह्रद महोत्सव, पर्वत महोत्सव, वृक्ष महोत्सव, चैत्य महोत्सव या स्तूप महोत्सव है जो ये उग्रकुल, भोगकुल, राजकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातृकुल और कुरुवंशके क्षत्रिय, क्षत्रियपुत्र, भट, भटपुत्र आदि कहाँ जा रहे हैं? जब पता लगा तो जमाली अश्वरथमें सवार होकर बहुशाल चैत्य

---

१. Prof. Jacobi's Jain Sutras, Introduction in SBE XXII p. XI.। २. Dr. Hoernel, Upasagadasao, p. 4 and his Jainism and Buddhism.। ३. राहुल सांकृत्यायन कृत 'पुरातत्त्व निबन्धावली', पृ. १०८-१०९। ४. आचारांग २।१५।१७-२४-२८। कल्पसूत्र २।२१-२६-२८-३०-३२। ५. भगवतीसूत्र ९।३३। ६. औपपातिक सूत्र ५७।१-२, ५८।१, ५९।२, ६०।२, रायपसेणी सूत्र १०।११।

पहुँचा। वहाँ पुष्प, ताम्बूल, जूते, आयुध वगैरह अलग किये। वस्त्रको उत्तरासंग किया, आचमन किया। परम शुचीभूत होकर हाथ जोड़कर महावीर स्वामीके पास आया।"

—भगवती सूत्र ९।३३

इस उल्लेखोंसे यह मालूम पड़ता है कि उत्तर क्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश और दक्षिण ब्राह्मणकुण्डपुर सन्निवेश अथवा क्षत्रिय कुण्डग्रामनगर और ब्राह्मण कुण्डग्रामनगर दोनों प्रायः मिले हुए थे। वास्तवमें कुण्डपुर सन्निवेशके दो भाग थे जिसमें उत्तरी भागमें क्षत्रियों (विशेषतः ज्ञातृवंशी) और दक्षिणी भागमें ब्राह्मणोंकी बस्ती थी। ब्राह्मणकुण्डग्रामके ईशान कोणमें प्रसिद्ध बहुशाल चैत्य था। क्षत्रियकुण्डग्रामके ईशान कोणमें कुछ आगे चलकर 'कोल्लाग' सन्निवेश था। यह सन्निवेश भी ज्ञातृवंशी क्षत्रियोंका था। क्षत्रियकुण्डपुरके बाहर ही 'ज्ञातखण्डवन' नामक एक उद्यान था जो ज्ञातृवंशियोंका था।

वैशालीका तीसरा भाग वाणिज्यग्राम नगर था। इसमें प्रायः व्यापारी-बनिये रहते थे। यह पश्चिमकी ओर आबाद था। इसके ईशान कोणमें प्रसिद्ध द्युतिपलाश चैत्य और उद्यान था। चैत्य और उद्यान दोनों ही ज्ञातृवंशी क्षत्रियोंके थे।

वस्तुतः वैशाली तीन भागों या जिलोंमें[४] विभक्त थी—वैशाली, कुण्डग्राम और वाणिज्य-ग्राम। ये तीनों ही नगर भिन्न-भिन्न थे। ये एक दूसरेसे कितनी दूर थे, यह तो कहीं उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु आगम ग्रन्थोंमें तथा अन्यत्र ऐसे उल्लेख प्रायः मिलते हैं, जिनसे यह मालूम पड़ता है कि ये तीनों नगर अलग-अलग बसे हुए थे। महावीर एक बार सिद्धार्थपुरसे वैशाली गये। वहाँ उनकी पूजा गणपतिने की। वैशालीसे भगवान् वाणिज्यग्रामकी ओर गये। मार्गमें गण्डकी नदीको पार किया। यह उल्लेख इस प्रकार है—

> नाथोऽपि सिद्धार्थपुराद् वैशालीं नगरीं ययौ।
> शङ्खः पितृसुहृत्तत्राभ्यानर्च गणराट् प्रभुम् ॥१३४॥
> ततः प्रतस्थे भगवान् ग्रामं वाणिजकं प्रति।
> मार्गे गण्डकिकां नाम नदीं नावोत्ततार सः ॥१३५॥

—त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित पर्व १० सर्ग ४

इस प्रकरणमें एक बात विशेष उल्लेख योग्य है। भगवान् कूर्मग्रामसे सिद्धार्थपुर आये थे और वहाँ से वैशाली गये थे। यदि सिद्धार्थपुरको हम कुण्डपुर स्वीकार कर लें और कूर्मग्रामको कर्मारग्राम मान लें तो यह असंगत न होगा। महावीरने आगमोंके अनुसार ज्ञातृखण्ड वनमें दीक्षा ली थी। वे वहाँसे कर्मारग्राम चले गये। सम्भवतः यह गाँव लुहारों आदि की बस्ती थी और कुण्डपुरके निकट ही बसी हुई थी।

'त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित' के उपर्युक्त उल्लेखमें कुण्डपुर न लिखकर आचार्यने महाराज सिद्धार्थके नामपर उसे सिद्धार्थपुर लिख दिया है।

यदि हमारी यह धारणा सही है तो इसका अर्थ यह है कि कुण्डग्राम और वैशाली निकट अवस्थित थे और वे गण्डकके पूर्वी तटपर थे तथा वाणिज्यग्राम गण्डकके पश्चिमतट पर स्थित था।

---

१. आचारांग २।१५।२२। २. कल्पसूत्र ५।१२२। ३. भगवती सूत्र १०।४, विपाक सूत्र १। ४. The Life of Buddha, by Rockhill—p. 62.

वैशाली संघ

वैशालीमें महावीरसे कुछ पूर्वसे ही गणसंघ प्रणाली प्रचलित थी। सम्भवतः इस गणसत्ताक राज्यकी स्थापना ईसवी सन्‌से लगभग सात शताब्दी पूर्वमें गंगाके तटपर हुई थी। इससे लगे हुए विदेह राज्यका अन्त जनकवंशी निमिके पुत्र [1]कलारके समयमें हो चुका था। इसके बाद विदेह राज्य लिच्छवियोंके गणसंघमें मिल गया।

इतिहासकार इस महत्त्वपूर्ण घटनाका अभी तक न तो कालनिर्धारण ही कर पाये हैं और न विस्तारसे ही इसके सम्बन्धमें प्रकाश डाल सके हैं। हमारी विनम्र सम्मतिमें जनकवंशके अन्तिम राजा कलारको प्रबुद्ध जनता ने उसके दुराचारके कारण जानसे मार डाला, तब जनता ने मिलकर यह निश्चय किया कि अब भविष्यमें विदेहमें राजतन्त्रकी स्थापना नहीं की जायेगी, बल्कि जनताका अपना राज्य होगा, जिसका शासन जनताके लिए जनता द्वारा होगा। इस निश्चयके परिणामस्वरूप विदेहमें जनताने विदेह गणसंघकी स्थापना की। उस समय वैशालीमें लिच्छवि संघ भी मौजूद था। कुछ समय बाद दोनों गणसंघोंके राजाओंने परस्पर बैठकर सन्धि कर ली और विदेह गणराज्य विशाल वैशाली संघमें मिला दिया गया। इस संघका नया नाम 'वज्जी-संघ' निश्चित हुआ। इस गणसंघकी राजधानी वैशाली बनायी गयी। विदेहके गणराज चेटकको वज्जीसंघका गणराज या राजप्रमुख निर्वाचित किया गया। हमारी इस धारणाका आधार यह है कि चेटककी पुत्री त्रिशलाको 'विदेह दिन्ना' कहा गया है। महावीरको भी इसी कारण कई स्थानों पर 'विदेहे, विदेहदिण्णे, विदेहजच्चे, विदेह सूमाले' आदि विशेषणोंसे स्मरण किया गया है।

पारस्परिक सन्धिका रूप कुछ भी रहा हो, किन्तु दो गणराज्य परस्पर मिलकर एक महासंघ बन गया। यह घटना भी महावीर और बुद्धके उदयसे पूर्वकालकी है।

इस गणराज्यकी सीमाएँ इस प्रकार थीं—पूर्वमें वन्यप्रदेश, पश्चिममें कोशल देश और कुसीनारा-पावा, जो मल्लोंके गणराज्य थे। दक्षिणमें गंगा और गंगाके उस पार मगध साम्राज्य था। उत्तरमें हिमालयकी तलहटीका वन्यप्रदेश। बौद्ध ग्रन्थोंके आधारपर इस गणराज्यका विस्तार २३०० वर्गमीलमें था। सातवीं शताब्दीमें 'युवानच्वांग' नामका एक बौद्धयात्री भारत आया था। उसने लिखा है कि 'इस राज्यका क्षेत्रफल पाँच हजार [2]ली है।'

शासन-व्यवस्था

वज्जीसंघमें ९ राजा मुख्य थे और उनके ऊपर एक गणपति या राजप्रमुख होता था। इस संघमें आठ कुलोंके नौ गण थे। गणपरिषद्‌में सम्मिलित भोगवंशी, इक्ष्वाकुवंशीय, ज्ञातृवंशीय, कौरववंशीय, लिच्छविवंशीय, उग्रवंशीय और विदेह इन कुलोंका वर्णन जैनागमोंमें मिलता है। किन्तु आठ कुलोंमें इनके अतिरिक्त और कौन-सा कुल था, यह कुछ भी पता नहीं चलता है। सम्भवतः आठवाँ कुल राजकुलके नामसे प्रसिद्ध था। इस संघको लिच्छवि संघ भी कहा जाता था। इन अष्टकुलोंको वज्जियोंका अष्टकुल कहा जाता था। वास्तवमें ये सभी कुल लिच्छवि थे। इनमें ज्ञातृवंशी सर्वप्रमुख थे।

---

१. 'मज्झिम निकाय' का 'मखादेव सुत्त'। 'ललित विस्तर' में इस राजाका नाम 'सुमित्र' दिया है।
२. Ancient Geography of India, by Cunningham (edited by S. N. Mazoomdar) p. 657—१ मील = ५.९२५ या ६ ली। १ योजन = ८ मील। ४. सूत्र कृताङ्ग २।१, आचाराङ्ग ११२।

गण-शासन वस्तुतः शासन नहीं, एक व्यवस्था होती है। उसमें दायित्व उसके प्रत्येक सदस्यपर होता है। गणका स्वामी गणपति होता है, और गण-परिषद् उसकी प्रतिनिधि होती है। वैशाली संघमें भी यही बात थी।

इस अष्टकुलके वज्जी संघमें अलिच्छवि भी थे, ब्राह्मण-बनिये भी थे, कम्मकर और दास भी थे। किन्तु शासनमें उनका कोई भाग नहीं था। संघकी ओर से सम्पूर्ण सुरक्षा और विकासके आश्वासन एवं अवसर उन्हें उपलब्ध थे। वैशालीमें अनेकों कोट्यधीश भी थे, जिनका वाणिज्य सुदूर यवद्वीप, स्वर्णद्वीप, पश्चिममें ताम्रपर्णी, मिश्र, तुर्क तक फैला हुआ था। किन्तु लिच्छवि संघमें उनकी कोई आवाज या प्रतिनिधित्व नहीं होता था। वस्तुतः देशका शासन लिच्छविगणके हाथमें था। वही अपने सदस्योंको चुनता था और प्रत्येक सदस्यको राजा कहा जाता था। ये सभासद् 'गणराजानः' कहलाते थे। कौटिलीय अर्थशास्त्रमें लिच्छवियोंके संघको 'राजशब्दोपजीवी' कहा है। 'महावस्तु संग्रह ग्रन्थ'में लिखा है कि वैशालीमें १ लाख ६८ हजार राजा रहते हैं।[1] 'एकपण्ण जातक'के अनुसार वहाँ सदैव राज्य करवाते हुए रहनेवाले राजाओंकी संख्या ७७०७ होती थी। उतने ही उपराजा होते थे। उतने ही सेनापति, उतने ही भण्डारी।

गण-परिषद्का एक सार्वजनिक राजभवन होता था, जिसे सन्थागार कहा जाता था। इसमें बैठकर गण सदस्य राज्यव्यवस्था—सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक विषयोंपर विचार करते थे। इनके निर्णय प्रायः सर्वसम्मत होते थे। किन्तु यदि किसी विषयपर मतभेद होता था तो उसका निर्णय छन्दके आधारपर किया जाता था। शलाकाग्राहक छन्द शलाकाएँ लेकर सदस्योंके पास जाते थे। ये शलाकाएँ दो प्रकारकी होती थीं—काली और लाल। लाल शलाका प्रस्तावके समर्थनके लिए होती थीं और काली शलाकाएँ प्रस्तावके विरोधके लिए होती थीं। गणपति प्रस्तावपर तीन बार सदस्योंसे पूछते थे। मतभेद होनेकी दशामें ही छन्दशलाकाओंका प्रयोग किया जाता था। शलाकाग्राहक जब सब सदस्योंको शलाकाएँ बाँट चुकते तो डलियामें बाकी बची हुई शलाकाओंकी गणना करके गणपति छन्द-निर्णय घोषित कर देते थे। उस निर्णयको फिर सभीको स्वीकार करना पड़ता था।

ये गणसभाएँ अकसर होती रहती थीं। ढोल पीटकर सभाकी घोषणा की जाती थी। इसमें प्रत्येक सदस्य सम्मिलित होता था और काम समाप्त होनेपर तत्काल सभा समाप्त हो जाती थी।[2]

वज्जीसंघके निकट ही मल्लगणसंघ और कासी-कोल गणसंघ थे। इस कालमें दो मल्ल देश थे—एक पश्चिम मल्ल और दूसरा पूर्व मल्ल। मुलतानके आसपासका प्रदेश पश्चिम मल्ल कहलाता था और पावा-कुशीनाराके पासकी भूमि पूर्व मल्ल। पूर्वी मल्ल ही इतिहास-प्रसिद्ध मल्लगणसंघ था। यह वैशालीके पश्चिममें और कोशलके पूर्वमें स्थित था। मगधसे कोशल जाते समय मल्ल देश बीचमें पड़ता था। आधुनिक गोरखपुर और सारन जिलोंका अधिकांश भाग प्राचीन मल्लसंघमें था।

जब उपर्युक्त तीनों गणसंघोंमें-से किसीके ऊपर भी किसी ओर से आक्रमणकी आशंका होती थी तो इन तीनों संघोंकी पारस्परिक मैत्री-सन्धिके अनुसार वैशालीकी गणसन्था तीनों संघोंकी युद्ध उद्वाहिकाकी संयुक्त सन्निपात भेरीकी विशिष्ट बैठक बुलाती थी। उसमें वज्जीगण अष्टकुलके नौ प्रतिनिधि, मल्ल संघोंके नौ राजा, कासी-कोलके अठारह राजा, तीनों संघोंकी युद्ध उद्वाहिकाके

---

१. महावस्तु संग्रह १।२७१। २. सुमंगल विलासिनी।

सदस्य तथा तीनों गणसंघोंके गणपति सम्मिलित होते थे। इस कालमें वज्जीसंघके गणपतिका नाम चेटक, कासी-कोल गणके राजप्रमुखका नाम विश्वभूति और मल्लोंके गणप्रमुखका नाम रोहक था।

इस संयुक्त सन्निपात भेरीकी बैठकमें महासेनापतिका निर्वाचन किया जाता था। वह फिर अपनी युद्ध उद्वाहिकाका संगठन करता था।

प्रजापर किसी प्रकारका कोई कर नहीं था। पुराने कर भी समाप्त कर दिये गये थे।

न्याय व्यवस्था

वैशालीमें निरपराधीके दण्डित होने और अपराधीके दण्डसे बचनेकी सम्भावना प्रायः नहीं थी। वहाँकी न्याय व्यवस्था अत्यन्त निष्पक्ष थी। यदि कोई व्यक्ति चोरीके अपराधमें पकड़ा जाता था तो वह सबसे पहले विनिश्चय महामात्रके पास ले जाया जाता था। यदि महामात्र उसे निर्दोष पाते तो वह छोड़ दिया जाता। यदि अपराधी सिद्ध होता तो उसे वोहारिकोंके पास भेज दिया जाता। दोषी साबित होनेपर वोहारिको अन्तोकारिकोंके पास, वह सेनापतिके पास, सेनापति उपराजाके पास, उपराजा राजाके पास भेज देता था। राजा सर्वोच्च अधिकारी होता था। यदि राजा उसे दोषी पाता तो वह 'पवनिपोत्थक' (कानूनकी तत्कालीन पुस्तक) के अनुसार सजा सुना देता था।[2]

विवाह-विधान

प्रार्थना करनेपर किसी लिच्छवीके लिए पत्नीका चुनाव लिच्छवीगण करता था।[3]

वैशाली तीन जिलोंमें विभक्त थी। (जैसा कि हम पूर्वमें कह आये हैं) लिच्छवियोंमें यह रिवाज प्रचलित था कि जो स्त्री प्रथम जिलेमें उत्पन्न होती थी, उसका विवाह प्रथम जिलेमें ही होता था। जो मध्य जिलेमें पैदा होती थी, उसका विवाह प्रथम और द्वितीय जिलेमें होता था। जो तीसरे जिलेमें उत्पन्न होती थी, उसका विवाह किसी भी जिलेमें हो सकता था। किन्तु वैशालीकी कोई स्त्री वैशालीसे बाहर विवाह नहीं कर सकती थी।[4]

वैशालीका वैभव

वैशाली अत्यन्त समृद्ध नगरी थी। उस समय वैशालीमें एक-एक गव्यूति (१ गव्यूति=२ मील) की दूरी पर तीन प्राकारें बनी हुई थीं। तीनों प्राकारोंमें गोपुर थे, अट्टालिकाएँ थीं तथा कोठे बने हुए थे।[5]

'विनयपिटक'[6]के अनुसार वैशाली अत्यन्त समृद्धिशाली और जन-जनसे परिपूर्ण थी। उसमें ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम और ७७७७ पुष्करिणियाँ थीं।

तिब्बतसे प्राप्त कुछ ग्रन्थोंके अनुसार वैशालीमें ७००० सोनेके कलशवाले महल, १४००० चाँदीके कलशवाले महल तथा २१००० ताँबेके कलशवाले महल थे। इन तीन प्रकारके महलोंमें क्रमशः उत्तम, मध्यम और जघन्य कुलके लोग रहते थे।

---

१. सुमंगल विलासिनी। २. सुमंगल विलासिनी Vol. I, पृ. ३५६, महापरिनिब्बाणसुत्त। ३. भिक्खुनिविभंग संघादिसेस द्वितीय भाग, पृ. २२५। ४. The Life of the Buddha by Rockhill, p. 62. ५. एकपण्ण जातक, पृ. १२८। ६. विनयपिटक महावग्ग ८।१।१।

नगरके मध्यमें एक 'मंगल पुष्करिणी' थी। इसका जल अत्यन्त निर्मल था। समय-समयपर इसका जल बदला जाता रहता था। इसमें लिच्छवियोंके अतिरिक्त किसी अन्यको—अलिच्छविको स्नान-मज्जन करनेका निषेध था। इस पुष्करिणीमें पशु और पक्षी तक प्रवेश नहीं कर सकते थे। इसके ऊपर लोहेकी जाली रहती थी। इसके चारों ओर पक्की प्राचीर बनी हुई थी। चारों दिशाओंमें द्वार और सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। द्वारों पर सशस्त्र प्रहरी रहते थे। यदि कोई किसी प्रकार चोरीसे इस पुष्करिणीमें अवगाहन या स्नान करनेका साहस करता था तो उसको मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। जब राजाओं (सदस्यों) का चुनाव होता था, उस समय नवीन राजाके अभिषेककी रस्म इस पुष्करिणीमें स्नान करके ही सम्पन्न होती थी। कभी-कभी गण-संघ किसी विशेष व्यक्तिको भी इसमें स्नान करनेकी अनुमति प्रदान कर देता था।

इस पुष्करिणीकी ख्याति सुदूर देशों तक थी। कभी-कभी दूसरे देशके राजा लोग इसमें स्नान करनेके लिए संघसे अनुमति देनेकी प्रार्थना करते थे। किन्तु गणसंघने कभी किसी बाहरी व्यक्तिकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

नगर वधू

वैशालीमें एक कानून प्रचलित था कि नगरकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या विवाह नहीं कर सकती थी। कानून द्वारा उसे 'नगर वधू' अथवा 'नगर शोभिनी' बनाकर सर्वभोग्या बना दिया जाता था। उस समय महानामन नामक लिच्छवीकी एक कन्या थी, जिसका नाम था आम्रपाली। (कहते हैं, यह कन्या उसे आम्रवनमें कपड़ेमें लिपटी हुई मिली थी। इसलिए उसका नाम आम्रपाली रख दिया था।)

जब वह १२-१३ वर्षकी थी तो उस बालिका का सौन्दर्य लोगोंकी निगाहमें आया। यह बात गण-परिषद् तक पहुँची। वहाँ वह बालिका बुलायी गयी और उसे सर्वसम्मतिसे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी स्वीकार किया गया तथा उसके पिता महानामनको यह बता दिया गया कि उसकी कन्याको 'नगर वधू' का सम्मानपूर्ण पद देनेका निश्चय वैशालीगणने किया है। महानामनकी स्वीकृति मिलनेपर आम्रपालीको नृत्य, गान, वार्तालाप और स्वागत करनेकी शिक्षा विधिपूर्वक दी गयी। जब वह इन बातोंमें निष्णात हो गयी, तब उसे गण-परिषद्के समक्ष बुलाकर 'जनपद-कल्याणी' का सम्मानपूर्ण पद दिया गया और मंगल-पुष्करिणीमें मंगल-स्नान महोत्सवपूर्वक किया गया। इस प्रकार वह 'नगर-वधू' घोषित हो गयी।

बौद्ध ग्रन्थोंसे पता चलता है कि एक बार महात्मा बुद्ध वैशाली पधारे थे, उस समय आम्रपालीने बुद्धको संघ-सहित भोजनका निमन्त्रण दिया था। जब बुद्ध संघ सहित उसके आवासमें जाकर भोजन कर चुके, उस समय आम्रपालीने अपना आराम (उद्यान) भिक्षुसंघको भेंट कर दिया और स्वयं भिक्षुणी बन गयी।

वैशालीके लिच्छवी

वैशालीमें लिच्छवियोंका गणशासन था। वैशालीके अष्टकुल लिच्छवी थे। किन्तु इतिहासकारोंके समक्ष एक प्रश्न उठता रहा है कि ये लिच्छवी कौन थे? क्या ये विदेहके मूल निवासी थे अथवा कहीं बाहरसे आकर यहाँ बस गये थे? ये और ऐसे ही कई प्रश्न हैं जिनका समाधान होना अभी शेष है।

डॉ. विन्सेण्ट ए. स्मिथकी मान्यता है कि लिच्छवी मूलतः तिब्बती थे।[1] डॉ. विद्याभूषण मानते हैं कि लिच्छवी पर्शियन थे।[2] वे अपने मूल निवास स्थान निसिबी (Nisibi) से निकलकर भारत और तिब्बतमें बस गये। डॉ. हौजसन (Hodgson) का मत है कि वे सीथियन थे।[3] वैजयन्ती कोषमें वर्णन मिलता है कि एक क्षत्रिय कुमारीका विवाह व्रात्यके साथ हुआ जो लिच्छवी था। अमरसिंह, हलायुध, हेमचन्द्र आदिके अनुसार वे क्षत्रिय और व्रात्य थे।

वोटलिंक (Bohtlingk), रोथ (Roth) और मौनियर विलियम्सका अभिमत है कि ये लोग राजवंशी थे।[4]

मि. दुल्वा (Dulva) ने सिद्ध किया है कि लिच्छवी क्षत्रिय थे।[5] उन्होंने बौद्ध ग्रन्थोंका एक अवतरण इसकी पुष्टिमें दिया है कि जब 'मौग्गलायन भिक्षाके लिए वैशालीमें प्रविष्ट हुए, उस समय लिच्छवी मगध सम्राट् अजातशत्रुका प्रतिरोध करनेके लिए बाहर निकल रहे थे। लिच्छवियोंने भक्तिपूर्वक उनसे पूछा—'भगवन् ! हमलोग अजातशत्रुके विरुद्ध इस युद्धमें विजयी होंगे या नहीं ?' मौग्गलायनने उत्तर दिया—'हे वशिष्ठगोत्रियो ! तुम्हारी विजय होगी।' इससे सिद्ध होता है कि लिच्छवी क्षत्रिय थे क्योंकि वशिष्ठगोत्रीय क्षत्रिय होते थे।

'दीघनिकाय'—महापरिनिव्वाणसुत्तमें आया है कि बुद्धके निर्वाण होनेपर उनके अवशेष-प्राप्तिके लिए लिच्छवियोंने दावा किया और कहा कि हम भी भगवान् की जातिके हैं—'भगवं पि खत्तिओ, मायं पि खत्तिया।'

सम्पूर्ण जैन-दिगम्बर और श्वेताम्बर साहित्यमें महावीर और उनके पिता तथा माताको क्षत्रिय बताया है। वे ज्ञातृवंशी लिच्छवी क्षत्रिय थे। जैन वाङ्मयके अनुशीलनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि लिच्छवी कहीं बाहरसे आकर यहाँ नहीं बसे थे, अपितु यहींके मूल निवासी थे।

लिच्छवियोंके स्वभाव, शील, रहन-सहन, उनके रीति-रिवाज आदिके सम्बन्धमें किसी एक ग्रन्थमें पूरा वर्णन नहीं मिलता है, बल्कि विभिन्न बौद्ध ग्रन्थों और जैनागमोंमें बिखरा हुआ विवरण प्राप्त होता है। उस सबको संकलित करनेपर लिच्छवियोंकी कुछ स्पष्ट तसवीर बन सकती है।

वैशालीके लिच्छवी युवक*स्वातन्त्र्य प्रिय, मौजी, सुन्दर और जीवन रससे लबालब भरे हुए थे। वे सुन्दर वस्त्र पहनते थे। अपने रथोंको तेज चलाते थे।[6]

बुद्धने भी एक बार अपने भिक्षुओंसे कहा था कि जिन्होंने त्रायस्त्रिंशके देवता न देखे हों, वे इन लिच्छवियोंको देख लें।

लिच्छवियों की वेशभूषाके सम्बन्धमें बौद्ध ग्रन्थ 'महावस्तु' में बड़ा रोचक वर्णन मिलता है। उससे ज्ञात होता है कि लिच्छवी लोगोंको नयनाभिराम और पंचरंगी वेशभूषा अधिक प्रिय थी। वे लोग अरुणाभ, पीताभ, श्वेताभ, हरिताभ और नीलाभ वस्त्र पहनकर जब बाहर निकलते थे तो उनकी शान और शोभा देखते ही बनती थी। जो लोग अरुणाभ वस्त्र पहनते थे, उनके घोड़े, लगाम, चाबुक, अलंकार, मुकुट, छत्र, तलवार की मूंठपर लगी मणियाँ, पादुका और हाथकी पंखी तक लाल होती थीं।

---

१. Ind. Ant. Vol. XXXII, pp. 233-236. २. Ind. Ant. Vol. XXXVII pp. 78-80. ३. Collected essays by Hodgson (Trubner's edition) p. 17. ४. A Sanskrit English Dictionary by Monier Williams, p. 902, Edition 1899. ५. The Life of the Buddha, by Rockhill, p. 97, Footnote. ६. Watter's Yuan Chwang, Vol. II, p. 79.

इसी प्रकार जिन्हें पीत वर्ण प्रिय था, उनके वस्त्र, घोड़े, उनकी लगाम, चाबुक, अलंकार, मुकुट, छत्र, तलवारकी मूँठ, मणि, पादुका और हाथकी पंखी पीत वर्णकी होती थी।

जिनकी अभिरुचि श्वेत वर्णमें थी—उनके वस्त्र, घोड़े, लगाम, चाबुक, अलंकार, मुकुट, छत्र, तलवार की मूँठ, मणि, पादुका और हाथकी पंखी श्वेत होते थे।

जो लोग हरित वर्ण पसन्द करते थे, वे अपनी वस्त्र-सज्जा, घोड़े, लगाम, चाबुक, अलंकार, मुकुट, मुकुटकी मणि, छत्र, तलवार की मूँठ, पादुका और हाथका पंखा तक हरित वर्णके रखते थे।

और जिन्हें नील वर्ण प्रिय था, वे वस्त्र और अलंकार नील वर्णके धारण करते थे, उनके घोड़े, उनकी लगाम और चाबुक तक नीले वर्णके होते थे। वे मुकुट भी नीले रंगके धारण करते थे। मुकुटकी मणियाँ भी नीले वर्ण की होती थीं। छत्र भी नीला, तलवारकी मूँठ भी नीली, मूँठमें जड़ी मणि भी नीली, पादुकाका रंग भी नीला, हथपंखी भी नीली।

इससे लगता है कि लिच्छवी कितने शौकीन, रंगीन मिजाज, फैशनपरस्त और अभिरुचि-सम्पन्न थे। उनका जीवन अत्यन्त सुरुचिपूर्ण और उल्लासमय था।

लिच्छवी उत्सवप्रिय थे। उनके यहाँ सदा कोई न कोई उत्सव होता ही रहता था। शुभरात्रिका उत्सवमें खूब गीत-नृत्य होते थे। वाद्य-यन्त्र बजाये जाते थे। पताकाएँ फहरायी जाती थीं। राजा, सेनापति, युवराज सभी इसमें सम्मिलित होते थे और सारी रात मनोरंजन करते थे।[1]

वे ललितकलाके बड़े शौकीन थे। चैत्य और उद्यान बनवानेका उन्हें बहुत शौक था।

उनकी बुद्धके प्रति श्रद्धा नहीं थी और वे चैत्योंको मानते थे।[2] वे आत्माके सम्बन्धमें सांख्य और वेदान्तसे भिन्न विचार रखते थे। वे आत्मा, नरक आदिमें विश्वास करते थे।[3] वे बहुत सुन्दर खिलाड़ी थे। वे तेजतर्रार, स्वाभिमानी और गरम मिजाजके थे। उनमें अपना अपराध स्वीकार करनेका नैतिक साहस था।[4]

लिच्छवियोंमें परस्परमें बड़ा प्रेम और सहानुभूति थी। यदि एक लिच्छवी बीमार पड़ जाता था तो दूसरे लिच्छवी उसे देखने आते थे। किसी लिच्छवीके घरमें कोई उत्सव होता तो सभी लिच्छवी उसमें सम्मिलित होते थे। अगर कोई विदेशी राजा लिच्छवी भूमिमें आता तो सारे लिच्छवी उसके स्वागतको जाते।[5]

युवक वृद्धजनों की विनय करते थे। स्त्रियोंके साथ बलात्कार नहीं होता था। वे प्राचीन धार्मिक परम्पराओंका निर्वाह करते थे। सभी लिच्छवियोंकी धार्मिक निष्ठा निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन धर्मके प्रति थी और वे उसका बराबर पालन करते थे। एक बार स्वयं बुद्धने वज्जीसंघके सेनापति सिंहसे कहा था—'सिंह! तुम्हारा कुल दीर्घ कालसे निगंठों (निर्ग्रन्थों) के लिए प्याऊकी तरह रहा है[6]।' किन्तु वे लोग इतने उदार भी थे कि वैशालीमें बुद्ध, मक्खलीपुत्त गोशाल, संजय वेलट्ठिपुत्त आदि जो भी तीर्थिक आते थे, उनके प्रति भी वे सम्मान प्रकट करते थे, उनके भोजन-निवास की व्यवस्था करते थे। किन्तु उनकी धार्मिक श्रद्धा तो केवल निगंठ-नातपुत्त महावीरके प्रति ही थी।

---

१. The Life of Buddha, by Rockhill, p. 63 २. Beal's Life of Hiuen Tsiang, Introduction, p. XXIII. ३. Dr. B. M. Barua, Petavatthu, p. 46. ४. चुल्लवग्ग। ५. सुमंगलविलासिनी। ६. सीह सुत्त।

उस कालमें भारतमें विशेषतः पूर्वी भारतकी महानगरियोंमें दास-प्रथाका जोर था। बाजारों-हट्टोंमें विभिन्न देशोंसे पकड़कर लाये गये दास और दासियाँ बिकने आते थे। कई बार दासोंके सौदागर सम्भ्रान्त परिवारके बालक-बालिकाओं और तरुण स्त्री-पुरुषों तकको उड़ा ले जाते थे। वे जंजीरोंमें बाँधकर रखे जाते थे और जानवरोंके समान उनके साथ क्रूर व्यवहार किया जाता था। एक बार इन क्रूर सौदागरोंके चंगुलमें फँसनेपर जीवन-भर दास-जीवन व्यतीत करनेपर बाध्य होना पड़ता था। ये सौदागर सुदूर पल्हव, यवन, काम्बोज, पारसीक आदि देशोंसे सुन्दर युवतियोंको बेचने लाते थे। ये दास-दासी रूप, वय, वर्ण आदिके अनुसार मूल्यमें बेचे-खरीदे जाते थे। राजघरानों, श्रेष्ठीजनों और सम्पन्न परिवारोंमें दासियोंके रेवड़ रहते थे और उनसे अवैध और जारज सन्तान उत्पन्न होती थीं।

वैशाली भी दास-प्रथाके इस रोगसे बच नहीं पायी। यहाँ लिच्छवियोंसे अधिक अलिच्छवि-जन थे, जिनके यहाँ दास-दासियोंकी खपत होती थी। हाँ, यह बात अवश्य थी कि राजतन्त्री नगरोंकी अपेक्षा वैशालीमें दासोंके साथ सहृदय और मानवोचित व्यवहार होता था तथा एक बार वैशालीमे आनेके बाद वह दास वैशालीसे बाहर बिक नहीं सकता था।

वैशालीमें दासोंकी संख्या कितनी थी, यह तो निश्चयपूर्वक कहना कठिन है, किन्तु ब्राह्मणी देवानन्दाका जो चरित्र भगवती[1] सूत्रमें दिया है, उससे ज्ञात होता है कि उस समय वैशालीमें अलिच्छवी सम्भ्रान्त जनोमें दास-दासियाँ रखनेका बहुत रिवाज था। 'भगवती सूत्र'के अनुसार जब ब्राह्मणी देवानन्दा ब्राह्मण कुण्डग्रामके बाहर बहुशाल चैत्यमें ठहरे हुए भगवान् महावीरके दर्शनोंके लिए चली तो उसके साथ बर्बर देश, चउसिम देश, ऋषिगण देश, खारुगणिका देश, यवन देश, पल्लवित देश, ह्लासिका देश, लकुसित देश, अरब देश, सिंहल, द्रमिल, पुलिन्द, पुष्कल, वहल, मुरण्ड, शबर, पारस्य आदि देशोंकी सुसज्जित दासियाँ थी। इससे पता चलता है कि उस कालमे दासोंका व्यापार कितना समुन्नत था तथा कोई इसे बुरा नही समझता था। इतना ही क्यों, दास-दासियोंकी जिसके पास जितनी अधिक संख्या होती थी, उसी परिमाणमें वह पुण्यात्मा समझा जाता था। मनुष्यके क्रय-विक्रयकी इस क्रूर प्रथाका अन्त तीर्थंकर महावीरने किया।

गणपति चेटक

जैन साहित्य[2]में वैशाली संघके गणपतिका नाम चेटक दिया गया है। उनका तथा उनके परिवारका परिचय हरिषेण कथाकोषमें दिया गया है, जिसका आशय इस प्रकार है—

वैशाली नगरीके राजा चेटक थे। उनकी रानीका नाम सुभद्रा था। इनके सात पुत्रियाँ थी—प्रियकारिणी, सुप्रभा, प्रभावती, सिप्रादेवी (प्रियावती), सुज्येष्ठा (ज्येष्ठा), चेलना और चन्दना[3]।

इसी ग्रन्थमें अन्यत्र[4] चेटकके माता-पिताका नाम 'यशोमती' और 'केक' दिया है।

उत्तरपुराण[5]में चेटककी पुत्रियोंके नामोमें कुछ अन्तर है। उसके अनुसार प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और चन्दना ये सात पुत्रियाँ थीं। इन नामोंमें क्रमके साधारण अन्तरके अतिरिक्त केवल एक नाममें अन्तर है। कथाकोषमें सिप्रादेवी (प्रियावती) दिया है, जबकि उत्तरपुराणमें मृगावती नाम आया है।

---

१. ९।३३। २. निरयावलियाओ, पृ. २७। ३. हरिषेण कथाकोष, कथा ९७। ४. वही, पृ. ५५।
५. उत्तरपुराण, पर्व ७५।

इन पुत्रियोंके अतिरिक्त 'उत्तरपुराण'के अनुसार राजा चेटकके दस पुत्र भी थे, जिनके नाम इस प्रकार थे—धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, सुकुम्भोज, अकम्पन, पतंगक, प्रभंजन और प्रभास।

इन पुत्रियोंके सम्बन्धमें भी इस पुराणमें कुछ विस्तृत जानकारी मिलती है। ऐतिहासिक और राजनैतिक परिप्रेक्ष्यमें यह जानकारी बड़ी उपयोगी है, साथ ही रोचक भी।

विदेह देशके कुण्डपुरमें नाथवंशके शिरोमणि राजा सिद्धार्थ थे। बड़ी पुत्री प्रियकारिणी उनकी स्त्री हुई।

वत्सदेशकी कौशाम्बी नगरीमें चन्द्रवंशी राजा शतानीक थे। मृगावती उनसे विवाही गयी।

दशार्ण देशके हेमकच्छ नगरके नरेश सूर्यवंशी दशरथ थे। सुप्रभाका विवाह उनके साथ हुआ।

कच्छ देशकी रोरुक नगरीमें उदयन राजा राज्य करता था। प्रभावती उनको दी गयी।

गान्धार देशके महीपुर नगरके नरेश सत्यकिने चेटकसे उनकी पुत्री ज्येष्ठाकी याचना की, किन्तु चेटकने उसे स्वीकार नहीं किया। सत्यकिने इसके लिए वैशालीके साथ युद्ध भी किया, किन्तु वह पराजित हो गया और लज्जाके कारण वह मुनि बन गया।

एक बार ज्येष्ठा और चेलनाके चित्र देखकर मगध नरेश श्रेणिक बिम्बसार दोनों कन्याओं-पर आसक्त हो गये। तब उनके बुद्धिमान् पुत्र अभयकुमारने राजा श्रेणिकका सुन्दर चित्र बनवाया और व्यापारी बनकर युक्तिसे चेटकके घरमें गया। वहाँ उन दोनों कन्याओंको वह चित्रपट दिखाया। देखते ही दोनों उसपर मोहित हो गयीं। अभयकुमारने पहलेसे ही एक सुरंग तैयार करवा ली थी। उसने दोनोंको सुरंगके द्वारपर पहुँचनेका संकेत कर दिया। फलतः दोनों बहनें यथा समय संकेत स्थान पर पहुँचीं। दोनोंमें चेलना अधिक चतुर थी। वह ज्येष्ठासे बोली—'मेरा हार तो घर पर ही रह गया है। तू जाकर जल्दी लेआ।' भोली-भाली ज्येष्ठा उसके चकमेमें आ गयी। वह ज्यों ही हार लेने गयी, चेलना अभयकुमारको लेकर सुरंग द्वारा राजगृहके राजमहलोंमें पहुँच गयी। चेलनाको देखकर श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने चेलनाका बड़ा सम्मान किया और अपनी पटरानी बना दिया।

जब ज्येष्ठा हार लेकर संकेत स्थान पर पहुँची तो वहाँ चेलनाको न पाकर बड़ी निराश हुई। वह वहींपर रातभर प्रतीक्षा करती रही। प्रातःकाल होनेपर लज्जा और भयके कारण वह घरपर नहीं गयी, और आर्यिकाओंके पास जाकर दीक्षा ले लेती।

चन्दनाको उद्यानसे एक विद्याधर उड़ा ले गया। मार्गमें उसकी स्त्री मिल गयी। उसके भयके मारे उसने चन्दनाको भयानक जंगलमें छोड़ दिया। चन्दना वहाँसे विधि-विधानके क्रूर व्यंग्योंको सहन करती हुई कौशाम्बीमें सेठ वृषभसेनके पास पहुँच गयी। सेठने उसे पुत्री मानकर रख लिया। चन्दनाके रूप-लावण्यको देखकर सेठानी उससे ईर्ष्या करने लगी। एक दिन जब सेठ कहीं परदेश गये हुए थे, सेठानीने चन्दनाके बाल काट दिये, उसे जंजीरोंसे बाँध दिया और खराब भोजन देने लगी। एक दिन भगवान् महावीर आहारके लिए नगरीमें पधारे। भगवान्‌को देखकर चन्दना आहार देनेके लिए आगे बढ़ी। उसकी जंजीरें स्वतः टूट गयीं। उसने भक्तिपूर्वक भगवान्-को आहार दिया। इस आहार-दानके प्रभावसे देवोंने रत्नवर्षा की, पुष्प बरसाये, देव-दुन्दुभी बजने लगी। देवलोग उसकी और उसके दानकी प्रशंसा करने लगे।

१. हरिषेण कथाकोष-कथा ९७।

भगवान्‌के आहारका समाचार सुनकर कौशाम्बी नरेशकी रानी मृगावती वहाँ आयी। वहाँ अपनी छोटी बहनको देखकर उसे बड़ा आश्चर्यमिश्रित हर्ष हुआ। चन्दनासे सम्पूर्ण समाचार जानकर वह इसे अपने साथ ले गयी और अपने पिताको समाचार भेज दिया। वहाँसे उसके भाई आ गये। एक दिन सब लोग भगवान्‌के दर्शनोंके लिए गये। वहाँ वैराग्य उत्पन्न होनेसे चन्दनाने आर्यिका-दीक्षा ले ली। वे भगवान्‌के आर्यिका संघकी गणिनी बन गयीं।

श्वेताम्बर आगमोंमें भी चेटकके सात पुत्रियाँ मानी हैं। किन्तु नामोंमें साधारण-सा अन्तर है। उनके अनुसार प्रभावती, पद्मावती, शिवादेवी, मृगावती, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा और चेलना ये सात पुत्रियाँ थीं। भगवती सूत्र और 'कल्पसूत्र' में इनके सम्बन्धमें कुछ विस्तृत विवरण मिलता है जो यहाँ दिया जा रहा है—

प्रभावती सिन्धु सौवीर के राजा उदायनके साथ ब्याही गयी। इसकी राजधानी वीतभय-पट्टन थी। प्रभावती पटरानी थी। वह जिनेन्द्र भगवान्‌की एक प्रतिमाकी प्रतिदिन पूजा किया करती थी। जब उसे अपनी मृत्युका निश्चय हो गया तो उसने दीक्षा ले ली और वह प्रतिमा अपनी विश्वस्त दासीको दे दी, जिससे पूजा, उपासना होती रहे। कुछ वर्ष पश्चात् दासीका विवाह अवन्ती-नरेश चण्डके साथ हो गया। वह अपनी पत्नी और उक्त प्रतिमाको अपने हाथी मालगिरि पर ले गया। राजा उदायनको जब ज्ञात हुआ तो उसने राजा चण्डपर आक्रमण कर दिया और उसे बन्दी बना लिया। किन्तु जब उदायन मूर्ति लेने पहुँचा तो मूर्ति वहाँसे हिली तक नहीं। वह चण्डको बन्दी बनाकर ले गया। मार्गमें जब उसे ज्ञात हुआ कि चण्ड भी जैन है तो उदायनने उसे रिहा कर दिया और उससे क्षमा माँगी।

एक बार महावीर विहार करते हुए वीतभयपट्टन पधारे। उदायन उनके दर्शनोंके लिए गया। दर्शन करके भगवान्‌का उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसे वैराग्य हो गया। उसने अपने भांजे केशीकुमारको राज्य देकर भगवान्‌के पास दीक्षा ले ली।[1]

द्वितीय पुत्री पद्मावती अंगनरेश दधिवाहनके साथ ब्याही थी। एक बार वत्सनरेश शतानीकने चम्पापर आक्रमण किया। दधिवाहन युद्धमें मारा गया। किसी सैनिकने उसकी रानी धारिणी (पद्मावती) को पकड़ लिया और उसे अपनी स्त्री बनाना चाहा। रानी अपनी जीभ काटकर मर गयी। तब उस सैनिकने उनकी पुत्री वसुमतीको कौशाम्बी नगरीके चौराहे पर लाकर बिक्रीके लिए बैठा दिया। उसे धनावह सेठने मोल लेकर उसका नाम चन्दना रख दिया और अपनी पुत्री बनाकर घर ले गया। एक बार सेठकी पत्नी मूलाने ईर्ष्यावश चन्दनाके बाल काट दिये, उसे देहलीमें बैठाकर सूपमें खानेके लिए नाकले दे दिये और साँकलमें बाँधकर कहीं चली गयी। तभी अभिग्रह धारण करके भगवान् महावीर भिक्षाके लिए निकले। भगवान्‌ने अभिग्रह पूरे हुए जानकर उसके हाथसे आहार लिया।[2]

शिवदेवी अवन्ती नरेश चण्डप्रद्योतको विवाही गयी। मृगावती वत्सनरेश शतानीककी पटरानी बनी। इतिहास प्रसिद्ध उदयन इसीका पुत्र था। ज्येष्ठाका विवाह महावीरके ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धनके साथ हुआ। चेलना श्रेणिककी पटरानी थी। सुज्येष्ठा जीवन भर कुँआरी रही।

अवन्तीनरेश चण्डप्रद्योतने कौशाम्बीकी पटरानी मृगावतीकी सुन्दरता पर मोहित होकर एक बार कौशाम्बीपर आक्रमण किया था। किन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिल पायी। मृगावतीने

---

१. भगवती सूत्र। २. कल्पसूत्र, श्रीमद्विनयविजयगणि विरचित सुबोधिका वृत्ति, षष्ठः क्षणः, पृष्ठ १६९।

उदयनके राज्यारोहणके कुछ वर्ष बाद भगवान् महावीरके पास जाकर जैन आर्यिकाकी दीक्षा ले ली।

चेलनाके तीन पुत्र हुए—कुणिक (अजातशत्रु), हल्ल और विहल्ल। कुणिक युवराज था। उसने अपने पिता श्रेणिकको बन्दी बनाकर राजगद्दी पर अधिकार कर लिया। जब श्रेणिककी मृत्यु हो गयी तो कुणिकको अपने व्यवहार पर बहुत दुःख हुआ और वह अपनी राजधानी पाटलिपुत्रसे हटाकर चम्पा ले गया[1]।

श्वेताम्बर आगमोंके इन विवरणोंसे दिगम्बर शास्त्रोंके तत्सम्बन्धी उल्लेखोंमें जो अन्तर है, वह स्पष्ट है। श्वेताम्बर साहित्यमें त्रिशलाको चेटककी बहन माना है, ज्येष्ठाका विवाह नन्दीवर्धनके साथ बताया है, चन्दनाको दधिवाहनकी पुत्री स्वीकार किया है और चेटककी सन्तानोंमें सात पुत्रियोंके अतिरिक्त कोई पुत्र नहीं माना है, जबकि दिगम्बर साहित्यमें चेटकके दस पुत्रोंके नाम मिलते हैं। उन पुत्रोंमें सिंहभद्र भी एक पुत्र है, जिसको बौद्ध[2] साहित्यमें वैशालीका सेनापति बताया है।

चेटक भगवान् पार्श्वनाथकी परम्पराके अनुयायी थे। उनका प्रण था कि मैं अपनी पुत्री किसी अजैनको नहीं दूँगा। इसलिए उन्होंने अपनी इच्छासे जिन चार पुत्रियोंका विवाह किया, वे जैन राजाओंको ही विवाही गयीं। सिद्धार्थ, शतानीक, दशरथ, उदयन ये चारों राजा जैन थे। चेलनाका विवाह चेटकने नहीं किया था, बल्कि चेलना और श्रेणिकने परस्पर प्रेम-विवाह किया था। श्रेणिक उस समय बुद्धका अनुयायी था, किन्तु चेलनाने कुछ समय बाद उसे महावीरका अनुयायी बना दिया।

चेटककी इस प्रतिज्ञाको उनकी निश्चल धर्म-निष्ठा कहा जा सकता है।

चेटक पक्के निशानेबाज थे[3], किन्तु एक दिनमें एकसे अधिक निशाना नहीं लगाते थे। उनकी मृत्यु किस प्रकार हुई, यह जानना भी रोचक होगा। किन्तु उनकी मृत्युका सम्बन्ध वैशालीके पतनसे जुड़ा हुआ है, अतः उसी प्रसंगमें इसका उल्लेख करना उपयुक्त होगा।

वैशालीके पतनकी भूमिका

पूर्वी भारतके शक्तिशाली गणराज्य वैशालीका पतन किन कारणोंसे हुआ? क्या साम्राज्यवादी अजातशत्रुकी उद्दाम लालसा और कुटिल दुरभिसन्धिने वैशालीके जनतन्त्री रूपका विनाश किया अथवा किसी अन्य व्यक्तिकी कुटिल इच्छाओंपर वैशालीकी बलि हुई? ये तथा ऐसे ही कुछ अन्य प्रश्न हैं, जिनका निष्पक्ष उत्तर आजका इतिहास चाहता है। इस प्रसंगमें हम [4]बौद्ध साहित्यका अवतरण देना आवश्यक समझते हैं। इससे इन प्रश्नोंका समाधान पानेमें सहायता मिल सकेगी। अट्ठकहामें वर्णित है कि "उस समय राजा मागध अजातशत्रु वैदेही पुत्र बज्जीपर चढ़ाई करना चाहता था। वह ऐसा कहता था—'मैं इन ऐसे महर्द्धिक, ऐसे महानुभाव वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा, वज्जियोंका विनाश करूँगा, उनपर आफत ढाऊँगा।'

तब अजातशत्रुने मगधके महामात्य वर्षकार ब्राह्मणसे कहा—'आओ ब्राह्मण! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचनसे भगवान्के पैरोंमें शिरसे वन्दना करो। आरोग्य, अल्प आतंक, लघु उत्थान, सुख विहार पूछो—'भन्ते! राजा वन्दना करता है, आरोग्य पूछता है।' और यह कहो—'भन्ते! राजा वज्जियोंपर चढ़ाई करना चाहता है। वह ऐसा कहता है—

१. कल्पसूत्र, भगवती सूत्र। २. सीहसुत्त। ३. भगवती सूत्र। ४. दीघनिकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त।

'मैं इन वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा।' भगवान् जैसा तुमसे बोलें, उसे यादकर मुझसे कहो। तथागत अयथार्थ नहीं बोला करते।'

'अच्छा, भो!' कह वर्षकार ब्राह्मण अच्छे-अच्छे यानोंको जुतवाकर, बहुत अच्छे यानपर आरूढ़ हो अच्छे यानोंके साथ राजगृहसे निकला और जहाँ गृध्रकूट पर्वत था, वहाँ चला। जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ सम्मोदन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठकर भगवान्से बोला—'भो गौतम! राजा आप गौतमके पैरोंमें शिरसे वन्दना करता है...वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा।'

(१) उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्के पीछे खड़े भगवान्को पंखा झल रहे थे। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको सम्बोधित किया—'आनन्द! क्या तूने सुना है, वज्जी (सम्मतिके लिए) बराबर बैठक (सन्निपात) करते हैं, सन्निपात-बहुल हैं?'

'सुना है, भन्ते! वज्जी बराबर...'

'आनन्द! जबतक वज्जी बैठक करते रहेंगे, सन्निपात-बहुल रहेंगे, (तबतक) आनन्द! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।'

(२) 'क्या आनन्द! तूने सुना है, वज्जी एक ही बैठक करते हैं, एक ही उत्थान करते हैं, वज्जी एक ही करणीयको करते हैं?'

'सुना है, भन्ते! ....'

'आनन्द! जबतक....'

(३) 'क्या सुना है, वज्जी अप्रज्ञप्त (गैरकानूनी) को प्रज्ञप्त (विहित) नहीं करते, प्रज्ञप्तका उच्छेद नहीं करते। जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही पुराने वज्जिधर्म (नियम) को ग्रहणकर बरतते हैं?'

'भन्ते! सुना है....'

'आनन्द! जबतक....'

(४) 'क्या आनन्द! तूने सुना है, वज्जियोंके जो महल्लक हैं, उनका वे सत्कार करते हैं, गुरुकार करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं। उनकी सुनने योग्य मानते हैं?'

'भन्ते! सुना है....'

'आनन्द! जबतक....'

(५) 'क्या सुना है, जो वह कुल-स्त्रियाँ हैं, कुल-कुमारियाँ हैं, उन्हें छीनकर वह जबर्दस्ती नहीं बसाते?'

'भन्ते! सुना है...'

'आनन्द! जबतक...'

(६) 'क्या सुना है, वज्जियोंके नगरके भीतर या बाहरके जो चैत्य हैं, वे उनका सत्कार करते हैं, पूजते हैं। उनके लिए पहले किये गये दानको, पहले की गयी धर्मानुसार बलि (वृत्ति) को लोप नहीं करते?'

'भन्ते! सुना है....'

'आनन्द! जबतक....'

(७) 'क्या सुना है, वज्जी लोग अर्हतोंकी अच्छी तरह धार्मिक रक्षा, आवरण, गुप्ति करते हैं? किसलिए? भविष्यमें अर्हत् राज्यमें आवें, आये अर्हत् राज्यमें सुखसे विहार करें।'

'सुना है, भन्ते !...'

'जबतक....'

तब भगवान्‌ने वर्षकार ब्राह्मणको सम्बोधित किया—

'ब्राह्मण ! एक समयमें वैशालीके सारन्दद-चैत्यमें विहार करता था। वहाँ मैंने वज्जियोंको यह सात अपरिहाणीय धर्म (अ-पतनके नियम) कहे। जबतक ब्राह्मण ! यह सात अपरिहाणीय धर्म वज्जियोंमें रहेंगे, इन सात अपरिहाणीय धर्मोंमें वज्जी दिखलाई पड़ेंगे, तबतक ब्राह्मण ! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।'

ऐसा कहनेपर वर्षकार ब्राह्मण भगवान्‌से बोला—

"हे गौतम ! इनमें-से एक भी अपरिहाणीय धर्मसे वज्जियोंकी वृद्धि ही समझनी होगी, सात अपरिहाणीय धर्मोंकी तो बात ही क्या है। हे गौतम ! राजाको उपलाप (रिश्वत देना) या आपसमें फूटको छोड़ युद्ध करना ठीक नहीं। हन्त ! हे गौतम ! अब हम जाते हैं। हम बहुकृत्य, बहुकरणीय (बहुत कामवाले) हैं।

ब्राह्मण ! जिसका तू काल समझता है।

तब मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, आसनसे उठकर चला गया।"

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि महात्मा बुद्धने चाणाक्ष वर्षकारको गूढ़ संकेत दिया और उसने उस संकेतको समझ लिया। स्पष्ट ही यह संकेत यह था कि जबतक वज्जियोंका ऐकमत्य भंग नहीं किया जायेगा, तबतक वज्जियोंको कोई हानि नहीं पहुँचायी जा सकेगी। यदि महात्मा बुद्धको वज्जियोंको हानि पहुँचाना अभीष्ट न होता तो वे वर्षकारके द्वारा अजातशत्रुको वज्जियोंको उच्छिन्न करनेके संकल्पसे विरत करनेका उपदेश दे सकते थे। भले ही उनके उपदेशको अजातशत्रु स्वीकार करता या न करता।

इस सन्दर्भमें महात्मा बुद्धके जीवनकी एक महत्त्वपूर्ण घटनाका स्मरण हो आया। श्रावस्ती नरेश प्रसेनजित्‌ने एक बार शाक्य संघसे अपने लिए एक कन्या माँगी। तब शाक्योंने एकत्रित होकर विचार किया—'राजा प्रबल है। यदि न देंगे तो वह हमारा नाश कर देगा। किन्तु कुलमें वह हमारे समान नहीं है। तब क्या करना चाहिए।' तब बुद्धके छोटे चाचाके पुत्र महानामने कहा—'मेरी दासीकी कोखसे उत्पन्न वासभखत्तिया नामक अत्यन्त सुन्दरी कन्या है, उसे देंगे।' यह निश्चय कर उस कन्याको प्रसेनजित्‌को दे दिया। उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम विडूडभ रखा। राजाने छोटी उमरमें ही उसे सेनापतिका पद दे दिया।

जब वह सोलह वर्षका था, तब वह अपनी ननिहाल पहुँचा तो शाक्योंने उससे छोटी उमरके बालकोंको देहात भेज दिया। संस्थागारमें उसे बुलाकर सबका परिचय कराया—ये तुम्हारे मातामह हैं, ये तुम्हारे मातुल हैं आदि। उसने सबको नमस्कार किया—किन्तु उसे किसीने भी नमस्कार नहीं किया। यह बात उसकी दृष्टिसे छिपी नहीं रह सकी। उसने पूछा भी—'क्या है, मुझे एक भी वन्दना नहीं करता।' तब शाक्य राजाओंने उत्तर दिया—'तुमसे छोटे कुमार देहात गये हुए हैं।' शाक्योंने उसका बहुत सत्कार किया। वह कुछ दिन वास कर वहाँसे अपने परिकरके साथ चला, तब एक दासी संस्थागारमें उसके बैठनेके फलकको दूध-पानीसे धोती 'यह वासभ-खत्तिया दासीके पुत्रके बैठनेका फलक है' कह निन्दा करती थी। विडूडभका एक आदमी अपना हथियार भूलकर उसे लेनेके लिए लौटा। उसने उस समय विडूडभ कुमारकी निन्दाके उस शब्दको सुन, उसने वह बात पूछकर उसने सेनामें कह दिया। इससे बड़ा कोलाहल मचा। उसे सुनकर

विदूडभने चित्तमें ठान लिया—'वह मेरे बैठनेके तख्तको क्षीरोदकसे धोते हैं। मैं राजगद्दी पर बैठ, उनके गलेका रक्त ले, अपने तख्तको धुलवाऊँगा। उसके श्रावस्ती जानेपर अमात्योंने उस बातको राजासे कहा। राजाने शाक्योंसे क्रुद्ध हो वासवखत्तिया-विदूडभ दोनों माता-पुत्रको दिये सम्मानको छीनकर उन्हें दास-दासीके योग्य स्थान दिलाया। कुछ दिन बाद शास्ता (बुद्ध) राजमहलमें जाकर बैठे। राजाने आकर वन्दना कर उनसे सब कह दिया। शास्ताने कहा—'महाराज ! शाक्योंने अयुक्त किया। महाराज ! मैं तुमको कहता हूँ, वासवखत्तिया राजदुहिता है। क्षत्रिय राजाके गेहमें उसने अभिषेक पाया है। विदूडभ भी क्षत्रिय राजासे उत्पन्न हुआ है। माताका गोत्र क्या करेगा। पिताका गोत्र काफी (प्रमाण) है।' सुनकर राजाने सन्तुष्ट हो फिर माता-पुत्रको उनका प्रकृत परिहार (सम्मान) दे दिया। (धम्मपद अट्ठकहा ४।३)

बुद्धने शाक्योंके अपराधकी पैरवी करके प्रसेनजित्को शान्त करनेके लिए जिस प्रकार युक्ति दी, वैसी युक्ति वे अजातशत्रुको उसके संकल्पसे विरत करनेके लिए वैशालीके सम्बन्धमें नहीं दे पाये। कारण स्पष्ट था। शाक्य संघ उनका अपना संघ था। उन्होंने विदूडभसे इस बातको कहा था। प्रसंग इस प्रकार था—

"विदूडभ भी राज्य प्राप्त कर उस वैरको स्मरण कर सभी शाक्योंके मारनेके लिए बड़ी सेनाके साथ निकला। उस दिन भगवान् कपिलवस्तुके पास जाकर एक कबरी छाया वाले वृक्षके नीचे बैठे थे। वहाँ पास ही में विदूडभकी राज्य-सीमामें बड़ी घनी छायावाला बरगदका वृक्ष था। विदूडभने शास्ताको देख, जाकर वन्दना कर कहा—'भन्ते ! ऐसे गर्मीके समय इस कबरी छाया-वाले वृक्षके नीचे बैठे हैं। इस घनी छायावाले बरगदके नीचे बैठें।'

'ठीक है महाराज ! ज्ञातकों (भाई-बन्दों) की छाया ठण्डी होती है।' कहनेपर शास्ता ज्ञातकोंको बचानेके लिए आये हैं—सोच, शास्ताको वन्दना कर, श्रावस्तीको ही लौट गया।' (धम्मपद अट्ठकहा ४।३)

बुद्धने अपने ज्ञातकोंको बचानेका तीन बार प्रयत्न किया। इस घटनाको प्रसेनजित्को बुद्ध द्वारा दिये गये उत्तरके साथ पढ़ने पर हमारी उस धारणाकी पुष्टि हो जाती है जो हम ऊपर प्रकट कर चुके हैं। चौथी बार जब बुद्ध वहाँ विद्यमान नहीं थे, तब विदूडभने आकर शाक्य-कुलका उच्छेद कर दिया। इसके पश्चात् पुनः कभी शाक्य संघ नहीं बन पाया। अस्तु।

इसके पश्चात् वर्षकार राजाके पास गया। राजाने उससे पूछा—'आचार्य ! भगवान्ने क्या कहा ?' उसने कहा—'भो ! श्रमणके कथनसे तो वज्जियोंको किसी प्रकार भी लिया नहीं जा सकता। हाँ, उपलापन (रिश्वत) और आपसमें फूट होनेसे लिया जा सकता है।' तब राजाने कहा—'उपलापनसे हमारे हाथी-घोड़े नष्ट होंगे। भेद (फूट) से ही पकड़ना चाहिए।'

इसके पश्चात् किस प्रकार वर्षकारने योजनाबद्ध रीतिसे राजासे दिखावटी झगड़ा करके वैशालीमें जाकर कूटयन्त्र फैलाया और फूट डालकर वैशालीको पराजित किया, इसका विस्तृत वर्णन उक्त सुत्तकी अट्ठकहामें दिया गया है।

वैशाली की पराजय

श्रेणिकके पुत्र अजातशत्रु और वैशालीके बीच युद्ध किस कारण हुआ, इस सम्बन्धमें श्वेताम्बर आगमोंमें पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

कुणिक (अजातशत्रु) जब गर्भमें था, तब उसकी माता चेलनाको भयंकर दोहला हुआ कि मैं अपने पतिकी छातीका मांस खाऊँ। इस दोहलेसे उसे बड़ा दुख हुआ। उसने अपने पतिसे

भी अपने इस दुखकी चर्चा की। श्रेणिकने उसे समझा-बुझा दिया। किन्तु रानी दोहलेको भूल नहीं सकी। वह समझ गयी कि गर्भमें कोई भयंकर उत्पाती जीव आया है। इसलिए पुत्र उत्पन्न होते ही रानीने उसे घूरेपर फिकवा दिया। श्रेणिकको जब ज्ञात हुआ तो वह उसे उठा लाया और उसका यथावत् लालन-पालन हुआ। बड़ा होनेपर कुणिक बड़ा उद्दण्ड, महत्त्वाकांक्षी और उच्छृंखल प्रकृतिका बना।

चेलनाके तीन पुत्र थे—कुणिक, हल्ल और विहल्ल। श्रेणिकने कुणिकको युवराज बना दिया। उसने हल्लको एक सुन्दर हाथी दिया, जिसका नाम सचेतक था और विहल्लको बहुमूल्य रत्नहार दिया।

श्रेणिक की कई रानियोंका भी वर्णन आगमोंमें आया है। इन रानियोंके नाम—सुनन्दा, धारिणी, क्षेमा, चेलना, कोशलदेवी थे। इन रानियोंकी कुछ सन्तानें घर-बार छोड़कर प्रव्रजित हो गयीं। उस समय अजातशत्रुके अतिरिक्त दस पुत्र और थे। अजातशत्रुने अपने इन दस भाइयोंको राज्यका लोभ देकर अपनी ओर मिला लिया और अपने पिताको बन्दी बना लिया।

कुछ समय पश्चात् श्रेणिककी मृत्यु हो गयी। जिन परिस्थितियोंमें उनकी मृत्यु हुई, उससे अजातशत्रुको गहरा आघात लगा। उसने शोक भुलानेके लिए अपनी राजधानी राजगृहसे हटाकर चम्पाको बनाया। वहाँ हल्ल और विहल्ल हाथीपर चढ़कर मौज करते-फिरते थे। अजातशत्रुकी रानी पद्मावती थी। उसने अपने पतिके कान भरे। उसके सिखानेपर अजातशत्रु एक दिन अपने दोनों भाइयोंसे बोला—यह गन्धहस्ती और हार मुझे अपने पुत्र उदयनके लिए चाहिए। वह घूमा करेगा।

दोनों भाइयोने सोचा—'यह तो राजा है, बलवान् है। यदि विरोध किया तो जबरदस्ती छीन लेगा। लेकिन पिताने इसे राज्य दिया था और हमें ये दोनों चीजें। तब हम ये क्यों दें।' विचार-विमर्शके बाद वे दोनों चुपकेसे वहाँसे खिसक गये और वैशालीमें अपने नाना चेटकके पास जा पहुँचे। अजातशत्रुको पता चला तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने वैशालीके गणपति चेटकके पास दूत भेजा और कहलाया कि या तो तुम हल्ल-विहल्लको हाथी और हार सहित वापस भेज दो, या फिर युद्धके लिए तैयार हो जाओ। चेटकने शरणागतोंकी रक्षाके लिए युद्ध स्वीकार किया।

अजातशत्रुने दसों भाइयोंको बुलाकर उनसे कहा—तुम लोग तीन हजार हाथी, तीन हजार घोड़े और तीन कोटि पदाति लेकर आओ। वे सभी भाई इतनी-इतनी सेना ले आये। अजातशत्रु-की फौजमें ३३००० हाथी, ३३००० घोड़े, ३३ कोटि मनुष्य थे। वह अपनी फौज सजाकर चला और अंग जनपदके मध्य होते हुए विदेह जनपदमें जो वैशाली नगरी थी, उसके निकट जा पहुँचा।

"अंग जणवयस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव विदेह जणवये जेणेव वेसाली, नगरी तेणेव प्रहारेत्थ गमणाए।"[1]

राजा चेटकको कुणिकके अभियानका पता चला तो उन्होंने "नवमल्लइ नवलच्छइ कासी कोसलगा अठारस गणरायाणो" अर्थात् काशी, कोशलके नौ मल्ल और नौ लिच्छवि इन १८ गणराजाओंको बुलाकर परामर्श किया। फलतः प्रत्येक राज्यने ३००० हाथी, ३००० रथ, ३००० घोड़े और तीन कोटि पदाति सेना दी। इस प्रकार चेटककी कुल सैन्य शक्तिमें ५७००० हाथी, ५७००० रथ, ५७००० घोड़े और ५७ कोटि मनुष्य थे।

---

१. निरियावलिका, ९६।

वे अपनी सेना लेकर विदेह जनपदके मध्यमें होकर जहाँ देशका अन्त था, वहाँ आये। कुणिकने चेटककी सेनासे एक योजन दूर अपना पड़ाव डाला।

दोनों ओरसे भयंकर युद्ध हुआ। कुणिकने गरुडव्यूहकी रचना की तो चेटकने शकटव्यूह बनाया। चेटकका लक्ष्य-वेध अमोघ था। किन्तु वे एक दिनमें एक ही लक्ष्य-सन्धान करते थे। फल यह हुआ कि उनके अमोघ बाणोंसे प्रतिदिन कुणिकका एक भाई मारा जाता रहा। इस प्रकार दस दिनमें दसों भाई मारे गये। अब कुणिक की विजयकी सम्भावना धूमिल पड़ गयी। उसकी सेनाका बहुभाग नष्ट हो गया। जो सैनिक बचे थे, उनका भी मनोबल गिर चुका था। तभी दैवी चमत्कार हुआ। कुणिकने शक्रेन्द्र और चमरेन्द्रको स्मरण किया, जो उसके पूर्वजन्मके मित्र थे। स्मरण करते ही दोनों इन्द्र मित्रकी सहायताके लिए दौड़े आये। उन्होंने दो यन्त्रचालित भयंकर अस्त्र दिये। एकका नाम था रथमूसल यन्त्र और दूसरा था महाशिलाकण्टक।

रथमूशल महास्त्र—यह एक लौह निर्मित विराटकाय बिना योद्धा और बिना सारथीका रथ था। इसपर किसी भी शस्त्रका कोई प्रभाव नहीं होता था। जो कोई इस लौहयन्त्रकी चपेटमें आ जाता, उसीकी चटनी बन जाती। इस यन्त्रके द्वारा चौरासी लाख (?) व्यक्तियोंका संहार हुआ।

महाशिलाकण्टक—इस यन्त्रमें कंकड़-पत्थर, काठ-कबाड़ जो कुछ तुच्छसे तुच्छ साधन मिले, उन्हींको वह बड़े वेगसे शत्रुपर फेंकता था और वह फेंका हुआ पदार्थ महाशिलाकी भाँति शत्रुपर आघात करता था। इस यन्त्रसे ९६ लाख (?) व्यक्तियोंका विनाश हुआ।

चेटक असहाय बने अपने पक्षका यह भीषण विनाश देख रहे थे। वे अपने दौहित्र अजातशत्रुको मारना नहीं चाहते थे। अतः निराश होकर वे एक कुएँमें कूद पड़े और समाप्त हो गये। उनके मरते ही वैशालीकी सेनाने हथियार डाल दिये। इस प्रकार तत्कालीन भारतके सबसे शक्तिशाली और समृद्ध गणसत्ताक राज्यका पतन हो गया। वज्जीसंघ, मल्लसंघ सबपर अजातशत्रुका अधिकार हो गया। हल्ल और विहल्लने मुनिदीक्षा ले ली।

—भगवतीसूत्र, सातवाँ शतक, नौवाँ उद्देश्य

बौद्ध साहित्यमें वैशालीके विरुद्ध अजातशत्रुके अभियानका कारण और घटना कुछ अन्य ढंगसे दिये हैं। जो इस प्रकार हैं—

उस समय सुनीथ और वर्षकार मगधके महामात्य पाटलिग्राममें वज्जियोंको रोकनेके लिए नगर बसा रहे थे।

गंगाके घाटके पास आधा योजन अजातशत्रुका राज्य था और आधा योजन लिच्छवियोंका। वहाँ पर्वतके पाद (जड़) से बहुमूल्य सुगन्धवाला[1] माल उतरता था। उसको सुनकर अजातशत्रुके—'आज जाऊँ, कल जाऊँ' करते ही लिच्छवी एक राय, एक मत हो पहले ही जाकर सब ले लेते थे। अजातशत्रु पीछे जाकर उस समाचारको पा क्रुद्ध हो चला आता था। वह दूसरे

१. गंगाके किनारे एक किला था। इससे थोड़ी दूर एक पहाड़ था। उसकी तलहटीमें रत्नोंकी खान थी। लिच्छवियों और अजातशत्रुमें सन्धि थी कि रत्नोंका समान बँटवारा होगा। किन्तु उद्दण्ड लिच्छवियोंने सन्धि तोड़ दी। अजातशत्रु बहुत बिगड़ा। उसने लिच्छवियोंको दण्डित करनेकी सोची किन्तु संख्यामें वे अधिक थे। अतः उसने उनसे मित्रता करनेका प्रयत्न किया। किन्तु कुछ समय बाद उसने यह विचार छोड़ दिया। उसने कूटनैतिक प्रयत्नों द्वारा लिच्छवियोंमें फूट डाल दी और तब उन्हें जीत लिया।—सुमंगल विलासिनी (बर्मी संस्करण) Simon Hewavitarn's Bequest Series no. 1, Revised by Namissar, p. 99.

गर्व भी वैसा ही करते थे। तब उसने अत्यन्त कुपित हो ऐसा सोचा—'गण (प्रजातन्त्र) के साथ युद्ध मुश्किल है। उनका एक प्रहार भी बेकार नहीं जाता। किसी एक पण्डितके साथ् मन्त्रणा करके कुछ करना अच्छा होगा।' यह सोच उसने वर्षकार ब्राह्मणको (तथागतके पास) भेजा। (और जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है, वर्षकार तथागतसे संकेत पाकर लौटा और वैशालीमें आकर परस्पर भेद डलवा दिया। जब भेद पड़ गया तो अजातशत्रुने आक्रमण करके वैशाली पर अधिकार कर लिया।) —अट्ठकथा

जैन और बौद्ध दोनों ही परम्पराओंमें युद्धके कारण और युद्धका रूप पृथक्-पृथक् दिये गये हैं। किन्तु दोनोंका फलितार्थ एक है—अजातशत्रुने वैशाली संघ तथा उसके साथ उसके समीपवर्ती अन्य गणराज्योंको पराजित करके उनपर अपना अधिकार कर लिया। वैशाली यद्यपि अजातशत्रुके अधीन हो गयी, किन्तु उसे पराधीनता निरन्तर सालती रही। वह अजातशत्रुके बाद पुनः स्वतन्त्र हो गयी। सम्भवतः उस समय विदेह और वैशाली संघ दोनों पृथक् हो गये किन्तु सहयोग और सौहार्द दोनोंमें बराबर बना रहा।

मगध साम्राज्यमें सम्मिलित होने पर भी लिच्छवी प्रभावहीन नहीं हुए। ईसाकी तीसरी शताब्दीमें लिच्छवी काफी शक्तिशाली हो गये। चतुर्थ शताब्दीके प्रारम्भमें घटोत्कच गुप्तके पुत्र प्रथम चन्द्रगुप्तने पाटलिपुत्रमें गुप्त साम्राज्यकी नींव रखी। उसका विवाह लिच्छवी कुलकी कन्या कुमारदेवीके साथ हुआ था। डॉ. स्मिथकी मान्यता है कि लिच्छवियोंकी सहायतासे चन्द्रगुप्तने मगधका राज्य प्राप्त किया था। प्राचीन कालमें वैशालीके लिच्छवी मगध नरेशोंके प्रतिद्वन्द्वी थे। लिच्छवि-कुलके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होनेपर ही चन्द्रगुप्तकी प्रतिष्ठा बढ़ी थी।

चन्द्रगुप्तके पुत्र समुद्रगुप्तने अनेक राज्योंको जीतकर चक्रवर्तीका विरुद धारण किया। उसने अपने पिता चन्द्रगुप्तके नामसे एक स्वर्ण मुद्रा भी चलायी, जिसके एक तरफ चन्द्रगुप्त और अपनी माता कुमारदेवीकी मूर्ति अंकित करायी और दूसरी ओर सिंहारूढ़ा देवी—लक्ष्मी की मूर्ति अंकित करायी, जिसके नीचे 'लिच्छवयः' लिखा हुआ था। इसी प्रकार इलाहाबाद किलेके स्तम्भ लेखमें समुद्रगुप्त अपना परिचय 'लिच्छवि दौहित्र' कहकर देता है।

इन तथ्योंसे प्रमाणित होता है कि गुप्तनरेशोंके मनमें लिच्छवियोंके प्रति आभारकी भावना थी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उस कालमें लिच्छवियोंकी शक्ति और राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पुनः बढ़ गयी थी।

महावीरकी जन्मभूमिके सम्बन्धमें भ्रान्ति

भगवान् महावीर वैशाली संघके कुण्डपुरमें उत्पन्न हुए थे, यह ऊपर अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। वे ज्ञातृवंशी काश्यपगोत्री क्षत्रिय थे। अब भी उस प्रदेशमें काश्यप गोत्री जथरिया विद्यमान हैं जो वस्तुतः ज्ञातृवंशी हैं और ज्ञातृ शब्द ही अपभ्रंश होकर जथरिया कहलाने लगा है। किन्तु यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि जैन लोग उस कुण्डपुरको भूल गये और नाम-साम्यके कारण अन्य कुण्डपुरोंको भगवान्‌की जन्मभूमि मानने लगे एवं उन्हीं स्थानोंकी यात्रा करने लगे।

दिगम्बर सम्प्रदायके लोग नालन्दासे प्रायः दो मील दूर स्थित 'कुण्डलपुर' को भगवान्‌की जन्मभूमि मानते हैं।

श्वेताम्बर लोग पूर्व बिहारमें लिच्छुआड़ और क्षत्रियकुण्डको भगवान्‌की जन्मभूमि मानते हैं। यह स्थान पूर्व बिहारमें क्यूल स्टेशनसे पश्चिमकी ओर आठ कोस दूर है तथा लखीसराय

जंकशनसे १८ मील है। लिच्छुआड़ गाँवमें धर्मशालाके बीचमें वीरप्रभुका देवालय है। धर्मशालासे दक्षिणकी ओर क्षत्रियकुण्ड पहाड़ी है। यहाँ छोटे-छोटे दो देवालय बने हुए हैं। पहाड़ीके ऊपर भगवान्‌का देवालय है। यहींपर महावीर स्वामीके च्यवन, जन्म और दीक्षा ये तीन कल्याणक माने जाते हैं।'[1]

इस प्रकारकी भूलें होना असाधारण है। वह भी उस स्थितिमें, जब दोनों सम्प्रदायोंकी आचार्य परम्परा निरवच्छिन्न चलती रही तथा उस प्रदेशमें जैनोंका कभी सर्वथा अभाव नहीं हुआ। ऐसी दशामें ऐसी असाधारण भ्रान्तियोंका कारण भी असाधारण रहा होगा। इतिहासके पृष्ठोंको पलटने तथा उसका गहरा अध्ययन करनेपर हमें पता चलता है कि वैशाली-कुण्डपुर मगध-सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारके काल तक अविजित रही। इतना ही नहीं, श्रेणिकको वैशाली गणराज्यसे बुरी तरह पराजित होना पड़ा था। किन्तु उसके पुत्र अजातशत्रुने मगधकी इस पराजयका बदला सूद सहित वसूल किया। वैशाली और मल्ल गणराज्योंकी भीषण जन-धन हानि तो हुई ही, रथमूशल यन्त्र और महाशिलाकण्टक यन्त्रने तो वैशालीमें प्रलयका दृश्य उपस्थित कर दिया। अधिकांश मकान क्षत-विक्षत हो गये, फसलें जला दी गयीं, हट्ट-बाजार लूट लिये गये। क्षत्रियोंके भीषण संहारके बाद उनके आवास सूने हो गये। वणिक् लोग वाणिज्यग्रामको छोड़कर भाग गये। आजीविकाकी टोहमें बहुत-से रहे-बचे क्षत्रिय भी बाहर चले गये और बस्ती बसाकर रहने लगे। ऐसा लगता है, वे लोग जन्मभूमिसे उखड़ तो अवश्य गये, किन्तु अपने जातीय गौरवको भूल नहीं पाये। उन्हें प्रति क्षण यह स्मरण रहा कि वे लोग अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरके कुल-गोत्रके हैं। अतः जहाँ उन्होंने बस्ती बसायी, उसका नाम उन्होंने कुण्डलपुर और क्षत्रियकुण्ड रख लिया और वहींपर उन्होंने अपनी जाति और वंशके उस लोकोत्तर महापुरुषकी स्मृतिको सुरक्षित रखा। जब स्थिति सामान्य हो गयी तो वाणिज्यग्रामके हट्ट-बाजार फिर आबाद हो गये। भागे हुए वणिक् पुनः लौट आये और उन्होंने अपने व्यवसायको सँभाला। क्षत्रिय लोग भी वापस आते गये और प्रबल पुरुषार्थसे उन्होंने टूटे हुए मकानोंको फिर खड़ा किया। कुछ वर्षोंके पश्चात् वैशालीमें फिर जीवनके चिह्न दीखने लगे।

अजातशत्रुकी मृत्युके बाद उदयन मगधकी गद्दीपर बैठा। किन्तु वह अपने पिताके समान न तो महत्त्वाकांक्षी था और न उतना नीतिज्ञ ही। वह इन विजित गणराज्योंको दबाकर नहीं

---

१. मुम्बई जैन स्वयंसेवक मण्डल रजत महोत्सव स्मारक ग्रन्थ सं. २००१, पृ. ५०। यह क्षत्रियकुण्ड लिच्छुआड़के निकट मुंगेर जिलेमें है। (१) इतिहास-ग्रन्थोंसे पता चलता है कि यह भू-भाग अंगदेश या मोदगिरिके अन्तर्गत रहा था, विदेहमें कभी नहीं था। जबकि महावीरकी जन्मभूमि विदेहमें थी। (२) यह क्षत्रियकुण्ड पहाड़पर बसा हुआ है। किन्तु किसी जैनशास्त्रमें प्राचीन क्षत्रियकुण्डपुरके पहाड़पर बसे होनेका उल्लेख नहीं मिलता। (३) प्रस्तुत क्षत्रियकुण्डके पास एक नाला बहता है किन्तु यह गण्डक नदी नहीं है। आज भी गण्डक वैशालीके निकट बहती है। (४) क्षत्रियकुण्डग्राम वैशालीके निकट था। किन्तु प्रस्तुत क्षत्रियकुण्डके निकट वैशालीके कोई चिह्न तक नहीं हैं। (५) विदेह गंगाके उत्तरमें है, जबकि क्षत्रियकुण्ड गंगाके दक्षिणमें है। (६) बसाढ़ (प्राचीन वैशाली) के आसपास अब भी पुराने नामवाले ग्राम हैं। (७) पुरातत्त्व विभागने सिद्ध कर दिया है कि वासुकुण्ड ही वस्तुतः क्षत्रियकुण्ड है। (८) वहाँकी जैनेतर जनताका भी विश्वास है कि वासुकुण्ड ही महावीरकी जन्मभूमि है। इन सब कारणोंसे श्वेताम्बरोंके क्षत्रियकुण्डको भगवान् महावीरकी जन्मभूमि नहीं माना जा सकता। —An early history Vaishali by Yogendra Mishra pp, 221-22.

रख सका और वे स्वतन्त्र हो गये। इसके पश्चात् वैशाली यद्यपि अपने पूर्व गौरव और महत्त्वको प्राप्त नहीं कर सकी, किन्तु वह स्वतन्त्र हो गयी और अपनी स्वतन्त्रताको उसने ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी तक बनाये रखा। मौर्य शासनके प्रारम्भिक वर्षोंमें ही सम्राट् चन्द्रगुप्तने इन गणराज्यों-को समाप्त कर दिया।

मौर्य साम्राज्यकी स्थापनासे पूर्व भारतमें अनेक लोकतन्त्रीय राज्य थे। यूनानी दूत मेग-स्थनीजका कहना है कि उसके समयमें अधिकांश नगरोंने लोकतान्त्रिक व्यवस्था अपना रखी थी। सिन्धु तटपर अश्वक (अस्यसिओय और अस्सेकेनाय), मालव (मल्लोई), क्षुद्रक (आक्सीड्रकेयी), आर्जुनायन (अग्गलस्सोई) आदि अनेक गणराज्य थे जिन्हें चन्द्रगुप्तने अपने साम्राज्यमें मिला लिया। वस्तुतः मौर्य साम्राज्यकी स्थापना इन लोकराज्योंके लिए विनाशकारी सिद्ध हुई।

मौर्य साम्राज्यके पतनके बाद कुछ नये-पुराने लोकराज्योंका उदय हुआ, जिन्हें गुप्तवंशके सम्राट् समुद्रगुप्तने ईसाकी चौथी शताब्दीमें सदाके लिए समाप्त कर दिया। निश्चय ही समुद्रगुप्तके काल तक वैशाली गणराज्यका अस्तित्व था। वैशालीके लिच्छवियोंकी सहायतासे चन्द्रगुप्त (प्रथम) ने गुप्त साम्राज्यकी स्थापना की थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि लिच्छवी इस कालमें भी काफी शक्ति-सम्पन्न थे।

किन्तु समुद्रगुप्तने जिस प्रकार गंगा-सिन्धुके काँठेमें बसे हुए यौधेय, आर्जुनायन, मालव आदि गणराज्योंको नष्ट कर दिया, उसी प्रकार पूर्वी भारतके वैशाली, विदेह आदि गणराज्योंको सदाके लिए समाप्त कर दिया। इतिहासका यह कैसा क्रूर मजाक है कि शिशुनागवंशी अजातशत्रु भी वैशालीका दौहित्र था और गुप्तवंशी समुद्रगुप्त भी वैशालीकी पुत्रीका पुत्र था। पर इन दौहित्रोंने ही अपनी ननिहालका क्रूर विनाश किया।

ऐसा लगता है कि समुद्रगुप्तने वैशालीको बिलकुल बरबाद कर दिया, क्योंकि पाँचवीं-छठी शताब्दीके बाद वैशाली राजनैतिक क्षितिजसे सदाके लिए अस्त हो गयी। वह खण्डहरों और मलवेका ढेर बन गयी। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग सातवीं शताब्दीमें वैशालीमें गया। किन्तु उसे समृद्ध वैशालीके स्थानपर भग्नावशेष मिले। थोड़े-बहुत घर बचे हुए थे। उसने लिखा है—'निर्ग्रन्थोंके अनुयायी बहुसंख्यामें मिले।' ऐसे भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि पालवंशी राजाओंके शासन-काल (ई. स. ७५०-१२००) में यहाँ जैन तीर्थंकरोंकी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई। तिब्बतका एक बौद्ध भिक्षु धर्मस्वामिन (ई. स. ११९७-१२६४) ने भारतका भ्रमण सन् १२३४-१२३६ तक किया। १२३४ में वह वैशालीमें पहुँचा था। किन्तु उसने यहाँ जैनोंका कोई उल्लेख नहीं किया। उसके पूछनेपर लोगोंने उसे बताया कि 'तुरुष्क सेनाके आक्रमणकी अफवाहोंके कारण यहाँके निवासी भाग गये हैं।' सम्भवतः इस कालमें कोई जैन यहाँ नहीं रहा था। ह्वेन्त्सांगके कालमें श्रावस्ती और पाटलिपुत्र भी खण्डहर हो गये थे। श्रावस्तीसे पाटलिपुत्रको जो व्यापार-मार्ग जाता था, उसीपर वैशाली अवस्थित थी। इन नगरोंके विनाशका अर्थ है—इन व्यापारिक केन्द्रों-का विनाश हो गया या किया गया। सम्भवतः इन्हीं परिस्थितियोंमें जैन लोग वैशालीको छोड़ गये। कुछ समय बाद वे भगवान् महावीर की जन्मभूमिको भूल गये, वहाँ आना-जाना भी बन्द हो गया और नये स्थानोंपर पुराने नामसे नये तीर्थकी स्थापना हो गयी।

दिगम्बर सम्प्रदायमें नये तीर्थका नाम 'कुण्डलपुर' रख लिया गया। इस भूल-भ्रान्तिको साहित्यिक समर्थन भी मिल गया, जिससे भ्रान्तिके परिमार्जनकी आवश्यकताका अनुभव नहीं हो सका। बौद्ध, श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्पूर्ण साहित्यमें महावीरकी जन्म-नगरीका नाम

सर्वत्र कुण्डपुर (अथवा कुण्डग्राम, क्षत्रियकुण्ड) ही मिलता है। किन्तु कुछ प्राचीन शास्त्रोंमें जन्म-नगरीका नाम 'कुण्डलपुर' दिया है। यथा—

"सिद्धत्थराय प्रियकारिणी हिं णयरम्मि कुण्डले वीरो।
उत्तर फग्गुणि रिक्खे चित्तसिया तेरसीए उप्पण्णो ॥
धम्मार कुंथू कुरुवंसजादा णाहोग्गवंसेसु वि वीरपासा।
सो सुव्वदो जादववंसजम्मा णेमीउ इक्खाकुकुलम्मि सेसा ॥"

—तिलोयपण्णत्ति ४।५४९-५५०

इसी प्रकार—

"आसाढ जोण्ण पक्ख छट्ठीए कुण्डलपुर णगराहिव णाहवंश सिद्धत्थ णरिन्दस्स तिसिला-देवीए गब्भमागंतेणु तत्थ अट्ठादिवसाहिय णवमासे अच्छिम चइत्त सुक्ख पक्ख तेरसीए उत्तरा फग्गुणी णक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो ॥"

—षट्खण्डागम, चतुर्थ वेदनाखण्ड ४।१।४४, पृ. १२१

इस प्रकार प्राचीन आर्षग्रन्थोंमें कुण्डलपुरका उल्लेख नालन्दाके निकटवर्ती कुण्डलपुरको महावीरकी जन्म-भूमि माननेमें एक प्रमाण बन गया। किन्तु हमारा विश्वास है, आचार्य यतिवृषभ और आचार्य वीरसेनका कुण्डलपुर लिखनेका आशय उसी कुण्डपुरसे है, जो वस्तुतः महावीरकी जन्म-भूमि है।

भगवान् महावीरकी दीक्षा और विहार

महावीर जब तीस वर्षके हुए तो वे आत्म-कल्याण और लोक-कल्याणकी भावनासे राजपाट, घर-द्वार, परिजन-पुरजन सबकी ममताका त्याग कर चल दिये। वे चन्द्रप्रभा नामकी पालकीमें बैठे। उस पालकीको सबसे पहले भूमिगोचरी राजाओंने, फिर विद्याधर राजाओंने और फिर इन्द्रोंने उठाया था। षण्ड नामक वनमें पहुँचकर वे पालकीसे उतर पड़े और एक शिलापर उत्तरकी ओर मुँह करके बेलाका नियम लेकर विराजमान हो गये। मगसिर वदी दशमीके दिन, जबकि निर्मल चन्द्रमा हस्त और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रके मध्यमें था, तब सन्ध्याके समय भगवान् महावीरने संयम धारण किया।

इस सम्बन्धमें आचार्य गुणभद्रने 'उत्तरपुराण' में लिखा है—

"नाथः षण्डवनं प्राप्य स्वयानादवरुह्य सः।
श्रेष्ठः षष्ठोपवासेन स्वप्रभापटलावृते ॥७४।३०२
निविश्योदङ्मुखो वीरो रुन्द्ररत्नशिलातले।
दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायां शशिनि श्रिते ॥७४।३०३
हस्तोत्तरर्क्षयोर्मध्यं भागं चाथास्तलक्ष्मणि।
दिवसावसितौ वीरः संयमाभिमुखोऽभवत् ॥७४।३०४

पारणाके दिन महावीर कूलग्राम नगरमें पहुँचे और वहाँके राजा कूलके यहाँ आहार लिया।

इसके पश्चात् महावीरका विहार किन-किन गाँवों और नगरोंमें हुआ, इसके सम्बन्धमें दिगम्बर साहित्यमें विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं होता। हाँ, उन देशोंके नामोंका उल्लेख अवश्य मिलता है। श्वेताम्बर आगमोंमें यह वर्णन विस्तार-सहित मिलता है। इसके अनुसार भगवान् महावीर दीक्षाके लिए ज्ञातखण्ड नामक उपवनमें पहुँचे। वहाँ दीक्षा लेकर वे कूर्मारग्राम पहुँचे। वहाँसे कोल्लाग सन्निवेश, मोराक सन्निवेश, अस्थिकग्राम, वाचाला, सेयंविया, सुरभिपुर, थूणाक

सन्निवेश, नालन्दा, राजगृह, ब्राह्मणगाँव, चम्पापुरी, कालाय सन्निवेश, पत्तकालय, कुमारा सन्निवेश, चोराक सन्निवेश, पृष्ठचम्पा, कयंगला, श्रावस्ती, नंगलागाँव, आवत्ता, कलंबुका। वहाँसे अनार्य राढ़देश, आर्य मलय देश, भद्दिलनगरी आदि।

ग्रामोंकी इस सूचीसे यह सिद्ध हो जाता है कि महावीरने कुण्डपुरके षण्डवन (जिसे ज्ञातृवंशियोंका होनेके कारण ज्ञातषण्डवन भी कहा जाता था) में दीक्षा ली। वहाँसे कूर्मारग्राम और कोल्लाग सन्निवेश पहुँचे, जो वैशाली कुण्डपुरके पास ही ज्ञातृवंशियोंके नगर थे।

बिहारके इन ग्रामोंको ध्यानपूर्वक देखनेपर यह भी पता चलता है कि वैशाली कुण्डग्रामके पास एक कोल्लागसन्निवेश था और नालन्दाके समीपवर्ती कुण्डलपुरके निकट भी एक कोल्लाग सन्निवेश था। इस प्रकारका उल्लेख हमें भगवती सूत्रमें मिला, जो इस प्रकार है—

"तीसेणं णालिन्दा वाहिरियाए अदूरसामंते एत्थणं कोल्लाए णामं सण्णिवेसे होत्था। सण्णिवेस वज्जओ। तत्थणं कोल्लाए सण्णिवेसे बहुलेणाम माहणे परिवसइ।"

कोल्लाग सन्निवेशके लिए नालन्दाके मध्यमें होकर जाना पड़ता था।

कुण्डलपुर क्षेत्र

कुण्डलपुर बिहार प्रान्तके पटना जिलेमें स्थित है। यहाँका पोस्ट आफिस नालन्दा है। निकटका रेलवे स्टेशन नालन्दा है। ये दोनों यहाँ दो मीलपर हैं। पक्का रोड है। इसके पासमें गुणावा, राजगृही, पावापुरी तीर्थ हैं।

यहाँ भगवान् महावीरके गर्भ, जन्म और तप कल्याणक हुए थे, इस प्रकारकी मान्यता कई शताब्दियोंसे चली आ रही है। यहाँपर एक शिखरबन्द मन्दिर है, जिसमें भगवान् महावीरकी श्वेत वर्णकी ४½ फुट अवगाहनावाली भव्य पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा वीर सं. २४८० में श्री ज्ञानदेवी ध. प. मनोहरलाल कनोड़िया कलकत्ताने प्रतिष्ठित करायी। इस प्रतिमाके अतिरिक्त यहाँ ६ पाषाण प्रतिमाएँ हैं तथा २ धातु प्रतिमाएँ हैं। मन्दिरमें गर्भगृह, प्रदक्षिणापथ तथा सभामण्डप हैं। मन्दिरके बाहर एक छतरीके नीचे भगवान्के चरण विराजमान हैं। श्री तनसुखलालसेठी अडंगाबादने यह छतर, चरण सं. २४८५ में बनवाये। मन्दिरके चारों ओर धर्मशाला है, जिसमें १९ कमरे और दो कुएँ हैं। वार्षिक मेला चैत सुदी १२ से १४ तक भगवान् महावीरके जन्म कल्याणकको मनानेके लिए होता है। क्षेत्रका प्रबन्ध भारतीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके तत्त्वावधानमें बिहार प्रान्तीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, आरा द्वारा होता है।

यह क्षेत्र आधुनिक बड़गाँव नामक ग्रामके बाहर है।

पहले यहाँ दोनोंका ही सम्मिलित मन्दिर और धर्मशाला थी किन्तु बादमें वे श्वेताम्बर सम्प्रदायके अधिकारमें चली गयीं। अनन्तर वीर सं. २४३९ में यहाँपर कलकत्ताके सेठ मुन्नालाल द्वारकादासजीकी ओर से नवीन दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशालाका निर्माण किया गया।

एक बात विशेष उल्लेखनीय है। श्वेताम्बर समाज इस कुण्डलपुरको भगवान् महावीरका जन्म-स्थान नहीं मानती। इसको तो वह भगवान् महावीरके गणधर इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूतिकी जन्मभूमि मानती है। उनके अनुसार लक्खीसरायसे १८ मील तथा नवादा स्टेशनसे २२ मील दूर लिछुआड़-क्षत्रियकुण्ड (जिला मुंगेर) भगवान् महावीरका जन्म-स्थान है। उसके पास ही पहाड़की तलहटीमें जो वन है, वह ज्ञातखण्ड वन है। यहीं भगवान्ने दीक्षा ली थी ऐसा उसका विश्वास है।

यद्यपि अब जैन तथा जैनेतर विद्वानोंने बसाढ़ (वैशाली) को एकमतसे भगवान् महावीरकी जन्मभूमि मान लिया है। जैन समाजने भी इस मान्यताको स्वीकार कर लिया है। किन्तु शताब्दियोंसे जिस कुण्डलपुरकी एक जैन तीर्थके रूपमें मान्यता रही है, उसको भविष्यमें भी तीर्थ माना जाता रहेगा।

वैशालीका पुनरुद्धार

ऊपर बताया जा चुका है कि वैशालीका अन्तिम विनाश ईसाकी छठी शताब्दीमें हुआ था। जब सातवीं शताब्दीमें चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग आया था, उस समय उसे वैशाली, श्रावस्ती और पाटलिपुत्र तीनों प्राचीन नगर ध्वस्त दशामें मिले थे। ईसा पूर्व छठी शताब्दीमें ये तीनों ही राजधानियाँ थीं तथा तीनों ही अत्यन्त समृद्ध और शक्तिशाली थीं। इनके नष्ट होनेसे पाटलिपुत्रसे वैशाली होकर श्रावस्तीको नदी-मार्गसे होनेवाला व्यापार समाप्त हो गया। इससे यहाँके लिच्छवी बाहर चले गये। वे आवास और आजीविकाकी खोजमें नेपाल-वर्मा, तिब्बत और लद्दाख तक जा पहुँचे। इन देशोंमें जाकर वे चुपचाप नहीं बैठ गये। नेपालमें लिच्छवियोंने ई. स. ८७९-८८० तक शासन[1] किया। वर्माके अराकान प्रदेशमें किसी चन्द्रवंशी राजाने सन् ७८९ में वैथाली (वैशाली) का निर्माण किया।[2] तिब्बत और लद्दाखके राजा अपने-आपको लिच्छवियोंका वंशज बताते हैं।[3]

बहुत-से जैन अन्य प्रदेशोंमें चले गये। कुछ जैन दक्षिण बिहारमें चले गये। ऐसा लगता है, जैनोंका वैशालीके साथ सम्पर्क सम्भवतः १३-१४वीं शताब्दी तक ही थोड़ा-बहुत रहा। उसके बाद उनका रहा-सहा सम्पर्क भी समाप्त हो गया। इस बीच जैनोंके हटनेसे बौद्धों और ब्राह्मणोंके प्रभावमें वृद्धि हो गयी। दक्षिण बिहारमें बौद्धोंके चार विश्व-विद्यालय बहुत प्रसिद्ध थे—नालन्दा, विक्रमशिला, उद्यन्तपुर और वज्रासन। वैशालीमें तो बौद्धोंका प्रभाव पहले भी नहीं था। किन्तु इन विश्वविद्यालयोंमें बौद्धधर्मके प्रकाण्ड विद्वान् रहते थे, जिनकी प्रतिभा और प्रभावके कारण और पालनरेशोंके संरक्षणके कारण बौद्धधर्म बिहार-बंगालमें उस समय टिक सका। उन विद्वानोंमें नागार्जुन, आर्यदेव, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मपाल, शीलभद्र, धर्मकीर्ति, शान्तरक्षित आदि थे।

इधर जैनोंका प्रभाव घट जानेके कारण ब्राह्मणोंका उत्तर बिहारमें—विशेषतः मिथिलामें प्रभाव बढ़ा। इस कालमें न्याय और मीमांसा दर्शनके कई प्रभावशाली विद्वान् यहाँ हुए। जैसे उद्योतकर, वाचस्पति मिश्र, उदयनाचार्य, कुमारिल भट्ट, मण्डन मिश्र, प्रभाकर, मुरारी मिश्र आदि।

इन धर्मनेताओंने जैनधर्मके विरुद्ध वातावरण बनानेमें कोई कसर नहीं छोड़ी। तभी राजनैतिक स्थिति अत्यन्त विषम हो गयी। तुरुष्क आततायियोंके आतंकके कारण इधर भगदड़ मच गयी। सन् १३२४ में तुर्क सुल्तान गियासुद्दीन तुगलकने तिरहुतको रौंद दिया। उसके आक्रमणके बाद यहाँ अनेक मुस्लिम मौलवी आये और उन्होंने इस्लामके प्रचार-प्रसारके लिए जिहाद बोल दिया। शेख मुहम्मद काजी (सन् १४३४ से १४९५) ने वैशालीमें ही अड्डा जमा लिया। इससे रहा-सहा व्यापार भी समाप्त हो गया और जैन यहाँसे बिलकुल उखड़ गये। धीरे-धीरे जैन अपने इस पवित्र तीर्थको बिलकुल ही भूल गये। १४वीं शताब्दीके यति मदनकीर्तिने

---

१. Ancient Nepal, by D. R. Regmi, (Calcutta 1960). २. R. C. Majumdar—Vaishali and Greater India, Homage, pp. 43-44. ३. Cunningham—Ancient Geography of India, Calcutta—ed. 1924, p. 517.

'शासन चतुस्त्रिंशिका' में अनेक तीर्थों और वहाँके प्रसिद्ध जिनबिम्बोंका परिचय दिया है। किन्तु वैशाली-कुण्डपुरका नाम तक उन्होंने नहीं दिया।

अपने इस महान् तीर्थके प्रति जैनोंकी इस दीर्घकालिक उदासीनताको दूर किया कुछ उदारचेता मनस्वी जैनेतर विद्वानोंने। उन्होंने ३१ मार्च १९४५ को 'वैशाली संघ' नामक एक संगठनकी स्थापना की। उस संगठनके सक्रिय कार्यकर्ताओंमें बिहार सरकारके तत्कालीन शिक्षा-सचिव श्री जगदीशचन्द्र माथुर, डॉ. योगेन्द्र मिश्र, श्री जगन्नाथप्रसाद साहू आदि मुख्य थे। उन्होंने वैशालीके सम्बन्धमें साहित्य प्रकाशित किया, पत्रोंमें प्रचार किया। हिन्दू जनताके सहयोगसे वहाँ 'तीर्थंकर महावीर हाई स्कूल' की स्थापना की। २१ अप्रैल १९४८ को संघके प्रयत्नसे भगवान् महावीरके जन्म-स्थानपर महावीर-जयन्ती मनायी गयी, जिसमें हजारों जथरिया भूमिहार सम्मिलित हुए। तब जैनोंका ध्यान इस तीर्थकी ओर गया। तबसे प्रति वर्ष यहाँ महावीर-जयन्ती बिहार सरकार और संघकी ओरसे मनायी जाती है, जिसमें शोभा-यात्रा, विद्वत्सभा, सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं। अब तो यह इस प्रदेशका बहुत बड़ा मेला हो गया है, जिसमें लाखों लोग सम्मिलित होते हैं।

'वैशाली संघ' ने एक और भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उसने सन् १९५२ में Vaishali Institute of Post Graduate Studies and Research in Prakrit and Jainology Vaishali की योजना बनायी। अत्यन्त हर्षकी बात है कि 'वैशाली संघ' और बिहार सरकारने भारतके प्रख्यात उद्योगपति, जैन समाजके महान् नेता, उदारचेता साहू शान्तिप्रसादजी जैनसे इस योजनामें सहयोग देनेका अनुरोध किया। साहूजी रचनात्मक, साहित्यिक और सांस्कृतिक समुन्नयनके प्रबल हामी हैं। उन्होंने उस अनुरोधको सहर्ष स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने संस्थाके भवन और पुस्तकालयके लिए सवा छह लाख रुपये भी स्वीकृत कर लिये। वह संस्था १ दिसम्बर १९५५ में 'Vaishali Research Institute of Prakrit, Jainology and Ahinsa' के नामसे स्थापित हो गयी। पहले कई वर्षों तक यह मुजफ्फरपुरमें चलती रही। भवन बननेपर वैशालीमें आ गयी। यह संस्था बिहार सरकारके नियमन और निर्देशनमें अपने नामके अनुरूप बराबर कार्य कर रही है। इसमें विदेशोंके छात्रोंको भी अध्ययन करनेकी सुविधा है।

वीर निर्वाण संवत् २४७८ सन् १९५१ में जैनोंने 'वैशाली-कुण्डपुर तीर्थ प्रबन्धक कमेटी' की स्थापना की। तबसे यह कमेटी दिगम्बर जैन समाजकी ओरसे तीर्थ सम्बन्धी सारी व्यवस्था कर रही है। उसने 'जैन बिहार' नामसे एक धर्मशाला बनायी है तथा एक बीघा जमीन भी ले ली है जिससे भविष्यमें विकास-कार्य हो सके। इसके निकट ही पर्यटन-विभागकी ओरसे 'टूरिस्ट सेण्टर' बना हुआ है।

वैशाली तीर्थ-दर्शन

गुलजारबाग (पटना) से गंगा तटपर बना हुआ महेन्द्र घाट प्रायः ६ कि. मी. दूर है। इस घाटसे पहलेजा घाटके लिए नियमित स्टीमर सर्विस है। यहाँसे पहलेजा घाट केवल ११ कि. मी. है। पहलेजा घाटसे लगभग २ फर्लांग दूर बस स्टैण्ड और रेलवे स्टेशन है। यहाँसे हाजीपुरके लिए बस और ट्रेन जाती हैं। महेन्द्र घाटसे हाजीपुर ५८ कि. मी. है। पहलेजा घाटसे वैशालीको सीधी बस भी जाती है। हाजीपुरसे वैशाली ३६ कि. मी. है। हाजीपुरसे लालगंज १९ कि. मी. और लालगंजसे वैशाली १७ कि. मी. है। हाजीपुरसे लालगंज और वैशालीके लिए टैक्सी और बस मिलती हैं।

टेक्सी और बस जैन विहारके सामने ही ठहरती हैं। जैन विहार सड़ककी बायीं ओर बना हुआ है। बगलमें पर्यटन केन्द्र और रेस्ट हाउस बने हुए हैं।

राजा विशालका गढ़

जैन विहारके पीछे—लगभग १०० गज दूर—प्राचीन गढ़ है जो राजा विशालका गढ़ कहलाता है। वर्तमानमें यह गढ़ समतल भूमिसे कुछ ऊँचा टीला मात्र है। इसके सम्बन्धमें पुरातत्त्व विभागकी ओरसे ज्ञातव्य बातोंपर प्रकाश डाला गया है जो इस प्रकार है—

"ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह टीला जो राजा विशालके गढ़के नामसे विख्यात है, प्राचीन लिच्छवियोंकी राजधानी वैशालीमें स्थित अनेक दुर्ग तथा महलोंके भग्नावशेषका द्योतक है। इस ईंटोंसे भरे आयताकार टीलेका क्षेत्रफल लगभग १ वर्गमीलसे कुछ ही कम है। समीपवर्ती खेतोंसे टीलेकी ऊँचाई ८ फीट है। यह उत्तरसे दक्षिणकी ओर १७०० फीट लम्बा तथा पूर्वसे पश्चिमकी ओर ८०० फीट चौड़ा है। इसमें चारों तरफ खाई है जो अब प्रायः भर गयी है। जनरल कनिंघमके अनुसार खाईकी चौड़ाई २०० फीट थी, परन्तु अब १२५ फीटसे अधिक नहीं जान पड़ती है। गढ़के दक्षिणकी ओर मध्य भागमें खाईके उस पार जानेके लिए एक प्रशस्त पथ है। इसके ऊपरसे प्राचीन कालमें सड़क आती होगी। इस गढ़का अन्वेषण करनेके लिए सर्वप्रथम भारत सरकारकी ओरसे सन् १८८०-८१ में कनिंघम द्वारा, १९०२-४ में वाश द्वारा और १९१३-१४ में स्फूनर द्वारा खुदाई करायी गयी। तदुपरान्त १९५० में वैशाली संघके तत्त्वावधानमें श्रीकृष्णदेवने नया सिलसिला चलाया और १९५८ से ६० तक काशीप्रसाद जायसवाल इन्स्टीच्यूट-के निर्देशक डॉ. अल्तेकरने यहाँ खुदाई करायी। इन सभी खुदाइयोंमें गुप्तयुगकी १००० से ऊपर मुहरें, मिट्टीकी मूर्तियाँ एवं अन्य अनेक प्रकारकी वस्तुएँ पायी गयीं हैं। खुदाई शुंग युग यानी ईसा-से १५० वर्ष पहले तकके स्तरों तक की जा चुकी है। अनेक दीवारों, कमरों इत्यादिकी रूप रेखा-का ज्ञान हुआ है। श्रेष्ठियों एवं व्यापारियोंकी बहुत-सी मुहरें मिली हैं। प्राचीरोंके कच्चे और पक्के स्तर मिले हैं। अभी यह अनुमानका विषय है कि यह गढ़ केवल प्रशासनका केन्द्र था अथवा व्यापारियों और धार्मिक विहारोंका भी।"

महावीर-जन्मभूमि

जैन विहारसे लगभग ५ कि. मी. दूर भगवान् महावीरकी पावन जन्मभूमि है।

स्थानीय जनताका सदासे दृढ़ विश्वास और आस्था रही है कि बसाढ़ (वैशाली) से सटा हुआ उत्तर पूर्वमें स्थित वासुकुण्ड (कुण्डपुर) ही भगवान् महावीरकी जन्मभूमि है। इन लोगोंने परम्परागत रूपसे उस स्थानकी प्राणपणसे सुरक्षा की है, जिस स्थान पर महाराज सिद्धार्थका नन्द्यावर्त महल था और जहाँ महावीरने जन्म लिया था। यहाँकी जथरिया जाति तो 'ज्ञातृपुत्र महावीर' को अपना महान् पूर्वज मानती ही है, अन्य ब्राह्मणों आदिकी भी महावीरके प्रति महान् श्रद्धा है। उन्हें गर्व है कि वे उस भूमिखण्डके निवासी हैं जहाँ संसारका वह महापुरुष-महावीर उत्पन्न हुआ था। भगवान् महावीरके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके लिए उन्होंने प्रायः दो बीघे जमीन पवित्र भूमिके रूपमें सुरक्षित रखी है, जिसपर उन्होंने आजतक हल नहीं चलाया। उनका विश्वास है कि भगवान् महावीरने यहीं जन्म लिया था। अब यहाँके निवासियोंने उस भूमिको बिहार सरकारको दान कर दिया है, ताकि यहाँ भगवान् महावीरका कोई स्मारक बन सके।

वैशाली कुण्डपुर तीर्थ क्षेत्र कमेटीने इस भूमिके चारों ओर सीमा-चिह्न लगाकर उसकी हदबन्दी कर दी है। यहाँ एक चौकोर कुण्ड बनाकर उसमें पक्का कमल-पुष्प बनवाकर एक शिलापट्ट पर एक ओर प्राकृतमें तथा दूसरी ओर हिन्दीमें निम्नांकित प्रशस्ति अंकित है—

श्री महावीर-स्मारक

णमो जिणस्स भगवदो महावीरस्स
सिद्धत्थराय-तिसलादेवी-तणए हि वड्ढमाण जिणे।
कुण्डपुरसी विदेहे चित्त-सिया-तेरसीए उप्पण्णे ॥१॥
इध जादे भगवं सई अरहा वेसालिए महावीरे।
इध तीसं वासइं संकंताइं कुमार-कालस्स ॥२॥
एत्तो हि से विरत्ते पव्वज्जं संजगाम णायवणे।
सच्च-अहिंसा धम्मं दिदेस लोगंसि बहुकालं ॥३॥
पव्वज्जा कालंसि वि वासावासं दुवालस तहेव।
तेसालि वाणिज्जगामं नीसाए उवगए भगवं ॥४॥
तत्तो एस पदेसो अहल्ल इदि पूजिदो पयत्तणं।
जम्म दिणे भूवइणा दिण्णो रज्जस्सं वीर-सरणत्थं ॥५॥
तज्जम्मदो हि पण-पण-पण वे वासेसु संविदीदेसु।
विक्कम-गणनाएण वि-एग-ख्ग-वे-सुवास विच्छेदे ॥६॥
इध आयादे भारह-रट्ठवई सई सुरज्ज-विधि-वण्णे।
सिरि राजिद पसादे पसाद-गुण-संजुदे धीरे ॥७॥
तेण सुविहि-पुव्वं इध संठविदं वीर-सारगं पुण्णं।
जावच्चन्द दिवामर होदु थिरं वड्ढमाण संसरणं ॥८॥

श्री महावीर-स्मारक

जिन भगवान् महावीरको नमस्कार

सिद्धार्थ राजा और त्रिशलादेवीके पुत्र श्री वर्धमान जिनेश्वरने विदेह प्रदेशके कुण्डपुर नगरमें चैत्र शुक्ला त्रयोदशीको जन्म लिया था ॥१॥

यही वह स्थान है, जहाँ अरहन्त भगवान् वैशालिक महावीरजीने जन्म लिया था और यहीं उनके कुमार-कालके तीस वर्ष व्यतीत हुए थे ॥२॥

इसी स्थानसे वैराग्य उत्पन्न होने पर उन्होंने ज्ञातृ-वन-खण्डमें प्रव्रज्या धारण की थी और बहुत काल तक लोकमें सत्य-अहिंसा धर्मका उपदेश दिया था ॥३॥

प्रव्रज्या-कालमें भी भगवान्ने अपने द्वादश वर्षावास वैशाली और वाणिज्यग्राममें व्यतीत किये थे ॥४॥

तभीसे यह स्थल अहल्य मानकर श्रद्धासे पूजा जाता है। आज महावीर जन्मोत्सवके दिन इस भूमिके स्वामीने उसे महावीरकी स्मृति हेतु बिहार राज्यको प्रदान किया ॥५॥

भगवान् महावीरके जन्मसे २५५५ (दो हजार पाँच सौ पचपन, वर्ष व्यतीत होनेपर तथा विक्रम संवत्के २०१२ वर्ष व्यतीत होने पर, महावीर-जन्मोत्सवके समय सुराज्य विधि प्रवीण, प्रसादगुण संयुक्त, धीर भारत राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादजी यहाँ पधारे और उन्होंने विधिपूर्वक

यहाँ इस महावीर स्मारककी स्थापना की, जिससे वर्धमान भगवान्‌का संस्मरण यावच्चन्द्र दिवाकर चिरस्थायी हो ॥६-८॥

इस शिलापट्टका अनावरण भारतके तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीने सन् १९५६ में महावीर जयन्तीके अवसरपर किया। यह स्थान वासुकुण्ड कहलाता है।

महावीरका यह जन्म स्थान चारों ओर खेतोंसे घिरा हुआ है। पासमें नहर है। यहाँसे लौटते हुए लगभग २-३ फर्लांग पर पूर्वोक्त Vaishali Research Institute of Prakrit, jainology and Ahinsa का भव्य भवन बना हुआ है। इस भवनमें ही पुस्तकालय, अध्यापन कक्ष, अध्ययन कक्ष, अनुसन्धाता निवास, प्राध्यापक निवास आदिकी समुचित व्यवस्था है।

कोल्लाण सन्निवेश

शोध संस्थानसे लगभग ३ कि. मी. दूर अशोक स्तम्भ है। इस स्तम्भको ईसासे लगभग २५० वर्ष पूर्व मौर्य सम्राट् अशोकने अपने शासन कालके २१ वें वर्षमें बनवाया था। स्तम्भ पर कोई प्राचीन लेख नहीं है। कहते हैं, अशोकने पाटलिपुत्रसे लुम्बिनीकी यात्रा करते हुए वैशालीमें पड़ाव किया, उसीकी स्मृतिमें यहाँ उसने स्तम्भ बनवाया था। लुम्बिनीके मार्गमें अन्य स्थानों पर भी अशोक स्तम्भ मिलते हैं। यह चुनारके पत्थरकी एक ही शिलासे बनाया गया है। सातवीं शताब्दीमें चीनी यात्री ह्वेन्त्सांगने इसकी ऊँचाई ५० या ६० फीट बतायी थी, परन्तु इस समय तो जमीनसे ऊपर इसकी ऊँचाई २१ फीट ९ इंच है, शेष जमीनके नीचे है। स्तम्भका शीर्ष भाग घण्टाकार है और उसके ऊपर-ऊपरकी ओर मुँह किये हुए पूरे आकारकी सिंह-मूर्ति बनी हुई है। कनिंघमने सन् १८६१-६२ में स्तम्भके नीचे १४ फुट तक खुदाई करायी थी किन्तु पानी निकल आनेके कारण गहराईका ठीक-ठीक पता नहीं लग सका। उन्होंने शीर्षके पास परिधि ३८ इंच लिखी है। स्तम्भके ऊपर केवल एक सिंह है। वह पिछले पैरों पर बैठा है।

प्राचीन कालमें यहाँ दो स्थल उल्लेखनीय थे—एक तो मर्कट ह्रद और दूसरा कूटागार-शाला। अशोक स्तम्भके निकट एक सरोवर अब भी है और उसे ही लोग मर्कट ह्रद कहने लगे हैं। इसी प्रकार स्तम्भके निकटके एक ऊँचे टीलेको कूटागार शाला कहा जाता है।

इस गाँवका नाम—जहाँ यह स्तम्भ बना हुआ है—वर्तमानमें कोल्हुआ है। वस्तुतः इसका प्राचीन नाम कोल्लाग सन्निवेश था। यह सन्निवेश ज्ञातृवंशी क्षत्रियोंका था।

वाणिज्यग्राम

अशोक स्तम्भसे पुरातत्त्व विभाग द्वारा नवनिर्मित संग्रहालयको जाते हुए मार्गमें बनिया गाँव मिलता है। यह एक छोटा-सा गाँव है। मकान प्रायः कच्चे हैं किन्तु गाँवमें सफाई खूब है। एक विशाल सरोवरके किनारे एक छोटा-सा बौद्ध मन्दिर बना हुआ है जिसमें ८वीं शताब्दी की बुद्धकी धातु प्रतिमा विराजमान है। प्राचीन भारतमें इस गाँवका नाम वाणिज्यग्राम था। भगवान् महावीरके कालमें यह नगर वैशाली संघका सर्वाधिक सम्पन्न नगर था। श्रेष्ठियोंके निगम, चत्वर, हट्ट यहीं पर थे। जल और स्थल मार्गसे व्यापार द्वारा सुदूर देशोंकी सम्पदा खिंचकर इस नगरमें एकत्रित होती रहती थी।

मंगल पुष्करिणी

अशोक स्तम्भसे लगभग ४-५ कि. मी. और बनियागाँवसे प्रायः ३ कि. मी. दूर संग्रहालय बना हुआ है। तथा पी. डब्ल्यू डी. का रैस्ट हाउस है। संग्रहालय पहुँचनेसे कुछ पहले बायीं ओर

एक खेतमें एक झोंपड़ी पड़ी हुई है। कहते हैं, यह वही स्थान है जहाँ बुद्धका निर्वाण होनेपर उनकी भस्म लाकर रखी गयी थी और उसके ऊपर स्तूप बनाया गया था। आजकल तो उस स्थानपर स्तूपके कोई चिह्न दिखाई नहीं देते।

संग्रहालय एक विशाल सरोवरके तटपर अवस्थित है। यह सरोवर ही प्राचीन मंगल पुष्करिणी अथवा अभिषेक पुष्करिणी कहलाता है। यही वह पुष्करिणी है, जिसमें कोई पक्षी तक चोंच नहीं मार सकता था और जिसमें अवगाहन करनेके लिए तत्कालीन बड़े-बड़े सम्राट् उत्सुक रहते थे। किन्तु इसके द्वारोंपर सदा सशस्त्र पहरा रहता था।

वामन पोखर

संग्रहालयसे प्राय: एक मील दूर वामन पोखर (तालाब) है। इस सरोवरमें कुछ वर्षों पूर्व श्याम पाषाणकी पौने दो फुट ऊँची भगवान् महावीरकी एक अति मनोज्ञ प्रतिमा निकली थी। विश्वास किया जाता है कि यह प्रतिमा लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन है। जब यह प्रतिमा निकली थी, उन दिनों जैन तीर्थके रूपमें वैशालीकी प्रसिद्धि नहीं हो पायी थी। अतः हिन्दुओंने इसे अपने मन्दिरमें विराजमान कर दिया। इस मूर्तिके अतिरिक्त अन्य कई हिन्दू मूर्तियाँ भी निकली थीं। वे भी उसी मन्दिरमें विराजमान कर दी गयीं। जब जैनोंको भगवान् महावीरकी प्रतिमाके सम्बन्धमें पता चला तो उन्होंने हिन्दुओंसे इसे माँगा। उन्होंने बड़े प्रेमके साथ इसे जैनोंको सौंप दिया। पहले हिन्दू जनता इसे वामन भगवान्के रूपमें पूजती थी। जब उसे यह पता चला कि यह तो महावीर भगवान्की मूर्ति है, तब तो उसे और भी अधिक हर्ष हुआ, उसके प्रति श्रद्धा भी बढ़ी। तीर्थक्षेत्र कमेटीने वामन पोखरके किनारे और हिन्दू मन्दिरके बिलकुल पीछे एक छोटा-सा मन्दिर बनवाकर यह प्रतिमा विराजमान कर दी। इस मन्दिरमें केवल गर्भगृह है जो ९×९ फुट है। इसमें एक दरकी वेदी है। उपरोक्त प्रतिमा ५ इंच ऊँचे पीठासनपर विराजमान है। पीठासनमें सामने अष्टदल पुष्प अंकित है और उसके दोनों ओर सिंह बने हुए हैं। मूर्तिके दोनों ओर ८ इंच आकारवाले चमरेन्द्र भक्तिभावसे खड़े हुए हैं। इन्द्रोंके गलेमें कण्ठहार, भुजबन्द, मेखला आदि रत्नाभरण हैं। भगवान्के सिरके ऊपर छत्रत्रयी तथा भव्य भामण्डल है। शीर्ष भागके दोनों किनारोंपर दुन्दुभि लिये हुए नभचारी देव दीख पड़ते हैं। मूर्तिपर लेख और श्रीवत्स नहीं हैं। मूलनायकके आगे ७ इंच अवगाहनावाली, वि. सं. २०१३ की प्रतिष्ठित, पीतलकी विघ्निनायक महावीरकी मूर्ति विराजमान है। मन्दिरके ऊपर शिखर है तथा चारों ओर चबूतरा बना हुआ है।

पर्वके दिनोंमें हिन्दू लोग इस पोखरमें स्नान करने आते हैं। वे उक्त मूर्तिके भी दर्शन अवश्य करते हैं।

इस मन्दिरके बगलमें एक मन्दरिया बनी हुई है, जिसमें पद्मावती देवीकी मूर्ति विराजमान है।

मन्दिरकी बायीं ओर सरोवरके तटपर गन्धकुटी बनायी गयी है, मार्बलके एक पक्के चबूतरेके ऊपर तीन कटनियाँ और ऊपर छत्री है। गन्धकुटीमें भगवान् महावीरके ८×३॥ इंच के, सफेद मार्बलके चरण-चिह्न विराजमान हैं। इनपर इस प्रकार लेख उत्कीर्ण है—

"श्री वर्द्धमान स्वामीकी चरणपादुका कुण्डपुर (वैशाली) जन्म-स्थानमें वैशाली तीर्थ-कमेटीने प्रतिष्ठापित की २०१६ वी. २४८६।"

हमारी विनम्र सम्मतिमें यह लेख अत्यन्त भ्रामक है। यह स्थान महावीर भगवान्का

जन्म-स्थान कुण्डपुर नहीं था, किन्तु इस लेखके कारण जनताके मनमें यह भ्रान्त धारणा बद्धमूल हो सकती है कि यही स्थान कुण्डपुर कहलाता था और महावीरका जन्म यहींपर हुआ था।

यहाँसे जैन भवनको लौटते हैं। इस स्थानके चारों ओर सरोवर हैं। प्रायः पूरे वर्ष जलमें होकर ही मन्दिर तक पहुँच सकते हैं। बरसातमें तो रास्तोंमें पानी भर जाता है। अतः मन्दिर तक जा नहीं सकते।

लौटते हुए रास्तेसे जरा हटकर दायीं ओर एक ऊँचे टीलेपर पीर काजी मीरमकी खुली हुई दरगाह है। यहाँ पीरकी कब्र बनी हुई है। इसकी चहारदीवारीके बाहर दो छोटी कब्रें बनी हुई हैं। यहाँ प्रतिवर्ष चैत सुदी ९ को मेला भरता है। हजारों लोग यहाँ मनौती मनाने आते हैं। ऐसी अनुश्रुति है कि महात्मा बुद्धके प्रमुख शिष्य आनन्दका स्तूप यहीं था, जिसके अवशेषोंपर यह दरगाह बनायी गयी।

जैनमन्दिरसे जैनविहार लगभग एक मील है। मार्गमें विशालके गढ़के उत्खननके फलस्वरूप निकले हुए अनेक भवन मिलते हैं, जिनसे वैशालीकी एक झाँकी आँखोंके आगे नृत्य करने लगती है।

कर्मारग्राम

जैनविहारसे वासुकुण्डकी ओर जानेपर मार्गमें ही दायीं ओर कम्मनछपरा नामक ग्राम है। यहाँ महादेवकी खड़ी हुई एक विशाल और चतुर्मुखी पाषाण-प्रतिमा है। यह जाँघों तक जमीनमें गड़ी हुई है। यह २००० वर्ष प्राचीन बतायी जाती है। यहाँ लोग मनौती मनाने आते हैं, किन्तु मनौती मनानेका ढंग बड़ा अद्‌भुत है। जो मनौती मनाता है, वह मूर्तिको पत्थर, ढेले मारता है। अन्धश्रद्धामें लोग यह भी नहीं समझते कि इससे इतनी पुरातात्त्विक महत्त्वकी एक कलामूर्ति खण्डित और विकृत हो जायेगी। पुरातत्त्व विभागके अधिकारी इस मूर्तिको हटाकर संग्रहालयमें सुरक्षित करना चाहते हैं।

वर्तमानका यह कम्मनछपरा ही प्राचीन कर्मारग्राम हो सकता है। इस ग्रामका प्राचीन नाम कहीं-कहीं कूर्मग्राम भी मिलता है। जैन पुराणोंमें कूलग्रामका भी नाम आया है, जहाँ भगवान् महावीरकी प्रथम पारणा हुई थी। भगवान्‌ने ज्ञातृखण्ड वनमें दीक्षा ली थी। यह वन कुण्डपुरके निकट ही था। दो दिनका उपवास करके वे पारणाके लिए कूलग्राममें गये और वहाँके राजा कूलके महलोंमें आहार हुआ। ज्ञातृखण्डवन अवश्य ही कुण्डपुरका बहिरुद्यान होगा। उस उद्यानके निकट कूलग्राम भी होगा। सम्भवतः कूर्मग्राम और कूलग्राम एक ही नगरके नाम थे। इसलिए यह माना जा सकता है कि वर्तमान कम्मनछपरा (प्राचीन कूर्मग्राम अथवा कूलग्राम) में भगवान् महावीरका प्रथम आहार हुआ था।

मार्ग

(१) बड़ी लाइनसे वाराणसी उतरकर छोटी लाइन (N. E. R.) द्वारा वाराणसीसे छपरा, सोनपुर होते हुए हाजीपुर या मुजफ्फरपुर स्टेशनपर उतरकर बस द्वारा ३५ कि. मी. पक्की सड़कसे।

(२) छोटी लाइन (N. E. R.) से आगरा, कानपुर, लखनऊसे गोरखपुर, छपरा, सोनपुर होते हुए पूर्ववत्

(३) बड़ी लाइन (E. R.) से क्यूल, मौकामा, बरौनी होते हुए समस्तीपुर आवें। वहाँसे छोटी लाइन द्वारा मुजफ्फरपुर या हाजीपुर जाकर बस द्वारा।

(४) पटना आकर N. E. R. के जहाजसे पहलेजा घाट उतरकर बस या टैक्सी द्वारा पक्का रोड है।

(५) मुजफ्फरपुरके टूरिस्ट सैक्टरसे सरकारी टूरिस्ट कार सस्तेमें वैशाली घुमानेके लिए मिलती है।

(६) पहलेजा घाटसे हाजीपुर या मुजफ्फरपुर रेल द्वारा जा सकते हैं।

(७) पटनासे मोकामा ब्रिज होकर टैक्सी या कार द्वारा जा सकते हैं। इस मार्गसे १०० मील पड़ता है।

(८) वैशालीमें बस-स्टैण्ड पर ही जैनविहार तथा सरकारी पर्यटक केन्द्रका अतिथि-गृह है।

मिथिलापुरी

कल्याणक क्षेत्र

विदेह देशमें स्थित मिथिलापुरी उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ और इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ की जन्मभूमि है। यहाँ इन दोनों तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए हैं। इस प्रकार आठ कल्याणकोंकी भूमि होनेके कारण यह स्थान हजारों वर्षोंसे तीर्थक्षेत्र रहा है। दोनों तीर्थंकरोंके इन कल्याणकोंके सम्बन्धमें प्राचीन साहित्यमें विस्तृत उल्लेख मिलते हैं। 'तिलोयपण्णत्ति'में भगवान् मल्लिनाथके सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख उपलब्ध होते हैं—

मिहिलाए मल्लिजिणो पहवदिए कुंभअक्खिदीसेहिं।
मग्गसिरसुक्कएक्कादसीए अस्सिणीए संजादो ॥ ४।५४४

अर्थात् मल्लिनाथ जिनेन्द्र मिथिलापुरीमें माता प्रभावती और पिता कुम्भसे मगसिर शुक्ला एकादशीको अश्विनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

मग्गसिर सुद्ध एक्कारसिए तह अस्सिणीसु पुव्वण्हे।
धरदि तवं सालिवणे मल्ली छट्ठेण भत्तेण ॥ ४।६६२

अर्थात् मल्लि जिनेन्द्रने मगसिर शुक्ला एकादशीके दिन पूर्वाह्णमें अश्विनी नक्षत्रके रहते शालिवनमें षष्ठभक्तके साथ तपको धारण किया।

मल्लिनाथने विवाह नहीं किया, वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे। उन्होंने राज्यभार भी नहीं सम्हाला। दीक्षा लेनेके पश्चात् वे केवल छह दिन ही छद्मस्थ अवस्थामें रहे। पश्चात् उन्हें केवलज्ञान हो गया जिसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

फग्गुणकिण्हे वारसि अस्सिणिरिक्खे मणोहरुज्जाणे।
अवरण्हे मल्लिजिणे केवलणाणं समुप्पण्णं ॥ ४।६९६

अर्थात् भगवान् मल्लिनाथको फाल्गुन कृष्णा द्वादशीको अपराह्णमें अश्विनी नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

उक्त ग्रन्थमें नमिनाथके सम्बन्धमें इस प्रकारका उल्लेख है—

मिहिलापुरिए जादो विजयणरिंदेण वप्पिलाए य।
अस्सिणिरिक्खे आसाढसुक्कदसमीए णमिसामी ॥ ४।५४६

अर्थात् नमिनाथ स्वामी मिथिलापुरीमें पिता विजयनरेन्द्र और माता वप्रिलासे आषाढ़ शुक्ला दशमीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।[1]

आसाढ बहुल दसमी अवरण्हे अस्सिणीसु चेत्तवणे।
णमिणाहो पव्वज्जं पडिवज्जदि तदियखवणम्हि ॥ ४।६६४

अर्थात् भगवान् नमिनाथने आषाढ़ कृष्णा दशमीके दिन अपराह्ण कालमें अश्विनी नक्षत्रके रहते चैत्रवनमें तृतीय भक्तके साथ दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा लेनेके पश्चात् वे केवल नौ मास ही छद्मस्थ अवस्थामें रहे। और फिर—

चित्तस्स सुक्कतइए अस्सिणिरिक्खे दिणस्स पच्छिमए।
चित्तवणे संजातं अणंतणाणं णमिजिणस्स ॥ ४।६९८

अर्थात् नमिनाथ जिनेन्द्रको चैत्र शुक्ला तृतीयाको दिनके पश्चिम भागमें अश्विनी नक्षत्रके रहते चित्रवनमें अनन्तज्ञान उत्पन्न हुआ।

पौराणिक-घटनाएँ

जैन पुराणसाहित्य और कथा-ग्रन्थोंमें मिथिलापुरी और उससे सम्बन्धित अनेक व्यक्तियों और घटनाओंका वर्णन मिलता है। जिससे ज्ञात होता है कि मिथिलापुरी एक प्रसिद्ध सांस्कृतिक नगरी थी। ये घटनाएँ इस नगरीका सही मूल्यांकन करनेमें हमें बड़ी सहायता देती हैं। अतः यहाँ इस नगरीमें घटित होनेवाली अथवा इससे सम्बन्धित कुछ घटनाओंका संक्षेपमें उल्लेख करना उपयुक्त प्रतीत होता है।

'हरिवंशपुराण'[2] में उल्लेख है कि जब बलि आदि चार मन्त्रियोंने राजा पद्मसे सात दिनका राज्य पाकर हस्तिनापुरमें पधारे हुए आचार्य अकम्पन और उनके सात सौ मुनियोंके संघ पर घोर अमानुषिक उपसर्ग किये, उस समय मुनि विष्णुकुमारके गुरु मिथिलामें ही विराजमान थे और उन्होंने श्रवण नक्षत्रको कम्पित देखकर दिव्यज्ञानसे जान लिया था कि मुनि-संघ पर भयानक उपसर्ग हो रहा है। यह बात उनके मुखसे अकस्मात् ही निकल गयी। इस बातको निकट बैठे हुए क्षुल्लक पुष्पदन्तने सुन लिया। उन्होंने अपने गुरुसे विस्तार से पूछा। तब गुरुसे उक्त दुर्घटनाका समाचार जानकर और उनके आदेशानुसार वे धरणीभूषण पर्वतपर मुनि विष्णुकुमारके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने सारी घटना सुना दी। तब विष्णुकुमार अपनी विक्रिया ऋद्धिके बलसे हस्तिनापुर पहुँचे और वामन ब्राह्मणका रूप बनाकर बलिसे तीन पग धरती माँगी। बलिने तीन पग धरतीके दानका संकल्प किया। तब विशाल आकार बनाकर विष्णुकुमारने दो पगों में ही सुमेरु पर्वतसे मानुषोत्तर पर्वत तककी पृथ्वीको नाप लिया। अभी एक पग लेना शेष था। आतंक और भयके मारे बलि आदि मन्त्री थर-थर काँपने लगे, वे पैरोंमें गिरकर बार-बार क्षमा माँगने लगे। और तब मुनियोंका वह उपसर्ग दूर हुआ।

हरिषेणकृत 'कथाकोश' में भी मिथिलासे सम्बन्धित एक-दो घटनाओंका उल्लेख मिलता है। तदनुसार, यहाँका नरेश पद्मरथ एक बार सूर्याभनगर गया। वहाँ सुधर्म गणधर विराजमान

१. जिस नगरीमें भगवान् मल्लिनाथ और नमिनाथका जन्म-कल्याणक मनाया गया, उसीमें 'गर्भकल्याणक' भी हुआ। 'तिलोयपण्णत्ति' में पृथक्से गर्भ कल्याणककी तिथियोंका उल्लेख नहीं किया है किन्तु अन्य ग्रन्थोंमें इसके पृथक् भी उल्लेख मिलते हैं—जैसे उत्तरपुराण, पर्व ६६, श्लोक २२ तथा ६९।२५-२६।
२. हरिवंशपुराण, सर्ग २०।

थे। उनका उपदेश सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ। वह चम्पानगरीमें वासुपूज्य भगवान्‌के पास पहुँचा और उनके चरणोंमें मुनि-दीक्षा ले ली। उसे द्वादशांग वाणीका पूर्ण ज्ञान हो गया। अब मुनि पद्मरथ भगवान्‌के गणधर बन गये। उन्हें अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान हो गया और फिर केवलज्ञान भी। आयुके अन्तमें शेष अघातिया कर्मोंका नाश करके निर्वाण प्राप्त किया।[1]

एक अन्य कथा इस प्रकार है—

मिथिलामें नमि नामक राजा था। उसने मुनि-दीक्षा ले ली। किन्तु स्त्रियोंका प्रसंग पाकर वह तीन बार मुनि-पदसे भ्रष्ट हुआ। एक बार नरकी पुत्री कांचनमालाको देखकर, दूसरी बार कुलालपुत्री विश्वदेवीके रूपपर मोहित होकर और तीसरी बार राजसुता वसन्तसेनाके मोहमें फँसकर। इन तीन स्त्रियोंसे तीन पुत्र हुए, जिनके नाम दुर्मुख, करकण्ड और नग्नकि थे। किन्तु अन्तमें ऐसा भी अवसर आया, जब नमिके मनमें संसारसे सच्चा वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने अपने तीनों पुत्रोंके साथ मुनिव्रत धारण कर लिया। एक बार ये चारों मुनि विहार करते हुए एक गाँवमें पहुँचे। दिन अस्त हो रहा था। कुम्हारका आवाँ लगा हुआ था। उसमें मिट्टीके कच्चे बरतन लगे हुए थे। चारों मुनि उस आवाँके निकट ध्यान लगाकर खड़े हो गये। रातमें कुम्हार आया। उसने आवाँमें आग जलायी, जिससे मिट्टीके बरतन पक जायें। कुछ समयमें आग धू-धू करके जलने लगी। चारों मुनियोंके शरीर भी उस आगसे जलने लगे। उन्होंने विशुद्ध भावोंसे आत्माके विशुद्ध स्वभावमें रमण करते हुए शरीर और संसारके प्रति सम्पूर्ण मोहका नाश कर दिया और मोक्ष प्राप्त किया।[2]

इतिहास और परम्परा

मिथिलापुरीकी प्रसिद्धि भगवान् मल्लिनाथ और नमिनाथके कारण हुई थी। पश्चात् इसी नगरीमें राजा जनक हुए, जिनकी पुत्री सीता थीं। उनका विवाह रामचन्द्रजीके साथ हुआ था। भगवान् राम और महासती सीता कोटि-कोटि जनोंकी श्रद्धाके केन्द्र हैं। जनक और सीताके उज्ज्वल चरित्र और देदीप्यमान व्यक्तित्वने मिथिलाको ख्यातिके शिखर तक पहुँचा दिया।

आजकल प्राचीन मिथिलाकी पहचानके लिए कोई चिह्न नहीं मिलता। किन्तु प्राचीन साहित्यसे उसके सम्बन्धमें बहुविध जानकारी प्राप्त होती है जिससे उसके इतिहासपर प्रकाश पड़ता है।

भगवज्जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराण (पर्व १२, श्लोक १५२-१५६) में उन देशोंके नाम मिलते हैं, जिनकी रचना भगवान् ऋषभदेवकी आज्ञासे इन्द्रने की थी। उनमें 'विदेह' भी था। इसकी गणना मध्यदेशके आश्रित देशोंमें होती थी। भगवान् ऋषभदेवने दीक्षा लेनेसे पूर्व अपने सौ पुत्रोंको विभिन्न प्रदेशोंके राज्य दिये थे। उनमें एक पुत्रको विदेह देशका राज्य दिया था।

इस देशपर इक्ष्वाकुवंशके राजाओंने सहस्राब्दियों तक राज्य किया। मल्लिनाथ और नमिनाथ भी इक्ष्वाकुवंशी थे। इसी वंशकी एक शाखामें जनक हुए। जनक एक व्यक्तिका नाम नहीं था, बल्कि यह तो एक पद था। इस वंशके सभी राजाओंको जनक कहा जाता था। हिन्दू पुराणोंसे ज्ञात होता है कि राजा निमि बड़ा अध्यात्मवादी था। जनक, विदेह और मिथिल उसीके नाम थे। उसने मिथिला नगरी बसायी। उसके वंशमें जो राजा हुए, वे सभी जनक कहलाते थे। निमिसे इक्कीसवीं पीढ़ीमें सीरध्वज हुए। उनका यह नाम इस कारण पड़ा क्योंकि उन्होंने सीर (हल) के ध्वज (अग्रभाग) से जमीन जोती थी। सीता उन्हींकी पुत्री थी।[3]

१. हरिषेण कथाकोश—कथा ५९। २. वही—कथा ९८। ३. श्रीमद्‌भागवत, स्कन्ध ९, अध्याय १३।

जनकको प्रसिद्धिका एक कारण और भी है। राजा जनक अध्यात्मवादी थे। उनकी सभामें अध्यात्मकी ही चर्चा होती रहती थी। वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थोंके शुष्क और हिंसापरक क्रिया-काण्डोंसे जनता—विशेषतः क्षत्रिय वर्ग और बहुसंख्यक ऋषि-महर्षि ऊब गये थे और वे उन्हें निरर्थक समझते थे। जनमानसमें जैन तीर्थंकरों—मल्लि और नमिनाथके अहिंसामय उपदेशोंने उद्वेलन उत्पन्न कर दिया था। जनकका अध्यात्म-प्रेम वस्तुतः वैदिक यज्ञवादके विरुद्ध खुला विद्रोह था। यह ऐसी मानसिक क्रान्ति थी, जिसने वैदिक पक्षके याज्ञवल्क्य, अष्टावक्र आदि समर्थ ऋषियों और शुकदेव-जैसे ज्ञानी योगियोंको भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया। श्रीमद्भागवत (११।८।३४) में जनकपुरके आध्यात्मिक वातावरणका चित्रण करते हुए वहाँकी एक वेश्या पिंगलाके उद्गार इस प्रकार दिये हैं—

विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः।
यान्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात् काममच्युतात्॥

अर्थात् इस विदेह नगरीमें मैं ही अकेली ऐसी मूर्ख हूँ जो भगवान्को छोड़कर अन्य पुरुषकी कामना करती हूँ।

इस वंशका अन्त बौद्ध ग्रन्थोंके[1] अनुसार करालके समय हुआ। कौटिलीय अर्थशास्त्रके अनुसार विदेहके राजा करालने एक ब्राह्मण कुमारीके ऊपर अत्याचार किया। इससे प्रजा बिगड़ गयी और उसने राजाको मार डाला। इस प्रकार जनकवंशका अन्त हो गया। इस राजाके काल-में विदेह राज्यका विस्तार तीन सौ लीग था और उसमें सोलह हजार गाँव लगते थे।[2]

इस कालमें विदेहकी सीमा पूर्वमें कौशिकी नदी, पश्चिममें गण्डकी नदी, उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें गंगा थी। सीमाके सम्बन्धमें अन्यत्र निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—[3]

गण्डकीतीरमासाद्य चम्पारण्यान्तकं शिवे।
विदेहभूः समाख्याता तैरभुक्ताभिधा तु सा॥

अर्थात् चम्पारण्यसे लेकर गण्डकी नदीके तट तक विदेहकी सीमा थी और उसीका नाम तीरभुक्ति था।

मिथिला तीर्थके नाम मिथिला, तीरभुक्ति, विदेह हैं। मिथिला विदेह और इसकी राज-धानीका नाम था। सीरध्वज जनककी राजधानी जनकपुर थी। बादमें कुछ समयके लिए विदेहकी राजधानी वैराणसी हो गयी।

जनक-वंशकी राज्य-सत्ता समाप्त होनेपर मिथिलाकी जनताने राजतन्त्रको अस्वीकार कर दिया। उसकी सीमासे मिली हुई वैशालीमें लिच्छवि गणतन्त्र सफलतापूर्वक कार्य कर रहा था। दूसरी ओर पावा और कुशीनारामें मल्लोंके गणतन्त्र थे। ये गणतन्त्र आर्थिक और सामरिक दृष्टि-से समृद्ध थे। उनकी कोई विस्तारवादी या साम्राज्यवादी आकांक्षाएँ भी नहीं थीं। विभिन्न गणतन्त्रोंका पारस्परिक व्यवहार सौहार्दपूर्ण था। दूसरी ओर राजतन्त्रमें राजाकी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा ही सर्वोपरि थी। दो राजतन्त्री राज्योंमें कभी पारस्परिक सौहार्द और विश्वास नहीं हो सकता। फिर बड़े-बड़े मगरमच्छ छोटी मछलियोंको जीवित नहीं रहने देते। इन सब समस्याओं पर विचार करके मिथिलाकी जनताने अपने यहाँ गणतन्त्रकी स्थापना कर ली और उसका नाम

१. मज्झिमनिकायका मखादेव सुत्त। २. सुरुचिजातक ४७९-४०६। ३. शक्तिसंगमतन्त्र, पटल ७।
४. Sir Monier William's Modern India, p. 131.

'वज्जि संघ' रखा। कुछ कालके पश्चात् सम्भवतः ईसा पूर्व सातवीं-छठी शताब्दीमें वैशालीका लिच्छवि संघ और मिथिलाका वज्जी संघ दोनों मिल गये। यद्यपि वैशाली संघ वज्जी संघकी अपेक्षा विशाल एवं सुदृढ़ था किन्तु सद्भावनाके नाते वैशाली संघने दोनोंके सम्मिलित संघका नाम वज्जी संघ स्वीकार कर लिया और वहाँके गणराज चेटकको इस संयुक्त संघका गणराजा मान लिया। वज्जी संघने लिच्छवि गणकी महानता स्वीकार कर ली। फलतः विदेह देशकी राजधानी मिथिलासे उठकर वैशाली में आ गयी।[1] दोनों संघोंके मिलनेसे नया वैशाली गण बड़ा शक्तिशाली हो गया।

विदेह तो एक जनपद या प्रान्त था। वैशाली और मिथिला उस विदेहके अन्तर्गत थे। विदेहको तीरभुक्ति[2] भी कहा जाता था, जिसे आजकल तिरहुत कहते हैं।

विदेहके रहनेवालोंको भी विदेह कहा जाता था। सीताजीको इसीलिए वैदेही कहा जाता है क्योंकि वे विदेहवासिनी थीं। अजातशत्रुको वैदेही-पुत्र कहा गया है क्योंकि उसके पिता श्रेणिक बिम्बसारने लिच्छवि राजकुमारीसे विवाह किया था। उसका वह पुत्र था।

"विदेहोंको ब्राह्मण ग्रन्थोंमें उच्च सभ्यतावाला बताया है। जिस देशमें ये लोग रहते थे, उसे भी विदेह कहते थे। ये लोग संहिताओंसे भी पहलेके हैं। क्योंकि यजुर्वेद संहितामें विदेहकी गायोंका उल्लेख मिलता है जो कि प्राचीन भारतमें विशेष रूपसे विख्यात प्रतीत होती हैं।"[3]

विदेहोंके धार्मिक विश्वास क्या थे, वे किस धर्मको मानते थे, यह जानना भी ऐतिहासिक दृष्टिसे उपयोगी होगा। स्मृतियोंमें विदेहोंको व्रात्य कहा गया है। "व्रात्य वे आर्य जातियाँ थीं जो मध्यदेशके पूरब या उत्तर-पश्चिम (पंजाब) में रहती थीं और जो मध्यदेशके कुलीन ब्राह्मणों-क्षत्रियोंके आचारका अनुसरण नहीं करती थीं। उनकी शिक्षा-दीक्षाकी भाषा प्राकृत थी। उनकी वेषभूषा उतनी परिष्कृत न थी। वे मध्यदेशके आर्योंवाले सब संस्कार नहीं करते थे तथा ब्राह्मणों के बजाय अर्हन्तोंको मानते और चैत्योंको पूजते थे।"

"विदेह प्राचीन भारतकी प्रसिद्ध व्रात्य जातिके थे। वे अर्हन्तोंको मानते थे। उनके पड़ोसी मल्ल लोग भी व्रात्य थे। उनका भी गणराज्य था। मल्ल जनपद वृजि जनपदके ठीक पच्छिम तथा कोशलके पूरबमें था। पावा और कुसावती या कुसीनारा (आधुनिक कसिया) उनके कस्बे थे।"[4]

इससे ज्ञात होता है कि विदेहवासी जैनधर्मके अनुयायी थे। तीर्थंकर मल्लिनाथ और नमिनाथके वहाँ चार कल्याणक हुए थे। उन्होंने वहीं धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था। पार्श्वनाथ और महावीरका अनेक बार वहाँ विहार हुआ था। इसलिए विदेहवासियोंके जीवन-आदर्श अर्हन्त भगवान् थे, उनके उपदेशोंके अनुकूल उनके आचार-विचार थे। विदेह जनपद वस्तुतः जैनधर्मका केन्द्र था।

वैशाली और मिथिलाके दोनों संघोंका एकीकरण होनेके बाद जो एक वज्जी संघ अथवा लिच्छवि गण बना, उसमें भी जैनधर्मका प्रचार जोरोंसे हुआ। बुद्धने भी अपने धर्मका प्रचार इसी क्षेत्रमें किया था। किन्तु इस संघका विनाश श्रेणिकके पुत्र अजातशत्रुने लगभग ई. पू. ४८० में किया। उसने इस राज्यको मगध राज्यमें सम्मिलित कर लिया। किन्तु लिच्छवियोंका प्रभाव

१. Geography of early Budhism, p. 1, भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, पृष्ठ ३१०-३१३। २. बृहद् विष्णुपुराण—मिथिला खण्ड। ३. Tribes in Ancient India, p. 235। ४. भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, पृ. ३१४।

और प्रभुत्व हमें गुप्त-काल तक दिखाई पड़ता है। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्तको लिच्छवि दौहित्र होनेका अभिमान था।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शिशुनाग वंशके ह्रास-कालमें विदेह जनपद फिर स्वतन्त्र हो गया और पुनः वहाँ गणसंघ बना, किन्तु इस बार वैशाली और मिथिला अर्थात् लिच्छवि और वज्जी संघ पृथक् रहे। इसीलिए कौटिल्यने इन्हें अलग-अलग माना है। ह्वेन्त्सांगने भी बज्जीको वैशालीसे पृथक् माना है।

गुप्त वंशके पश्चात् इन दोनों संघोंका अस्तित्व इतिहासमें सदाके लिए लुप्त हो गया। किन्तु वज्जी नाम अबतक प्रचलित है। आज भी चम्पारन जिलेके पहाड़ी थारू लोग अपनेसे भिन्न तिरहुतके सभी निवासियोंको वजी तथा नेपाली लोग वजिमा कहते हैं।

क्षेत्रकी अवस्थिति

यह अत्यन्त दुखकी बात है कि आज मिथिला क्षेत्रका अस्तित्व भी लुप्त हो चुका है। कहते हैं, जनकपुर प्राचीन मिथिलाकी राजधानीका दुर्ग है। पुरनैलिया कोठीसे ५ मीलपर सिगराओ स्थान है। यहाँपर प्राचीन मिथिला नगरीके चिह्न अबतक मिलते हैं। अन्य प्राचीन स्मारक मोतीहारीसे ५ मील पूर्वमें नोनाचरमें, पिपरी रेलवे स्टेशनके पास सीताकुण्ड तथा वेवीदनपर तथा सोहरियाके पास बावनगढ़ीमें हैं।

यहाँ नन्दनगढ़में एक बड़ा टीला है। यहाँ एक चाँदीका सिक्का मिला था जो ईसासे १००० वर्ष पूर्वका माना जाता है।[१] इन सब कारणोंसे—अवशेष और पुरातत्त्व सामग्रीको ध्यानमें रखते हुए हमें विश्वास होता है कि मिथिला तीर्थ यहीं था।

मार्ग

जनकपुरके लिए निम्नलिखित मार्ग हैं—

सीतामढ़ीसे 'जनकपुर-रोड' स्टेशन जाया जा सकता है। वहाँसे जनकपुर ३८ कि. मी. है। सीतामढ़ीसे या दरभंगासे नेपाल सरकार रेलवेके जयनगर स्टेशन तक चले जायें तो वहाँसे जनकपुर तक उक्त रेलवे द्वारा जा सकते हैं। जयनगरसे जनकपुर २९ कि. मी. है।

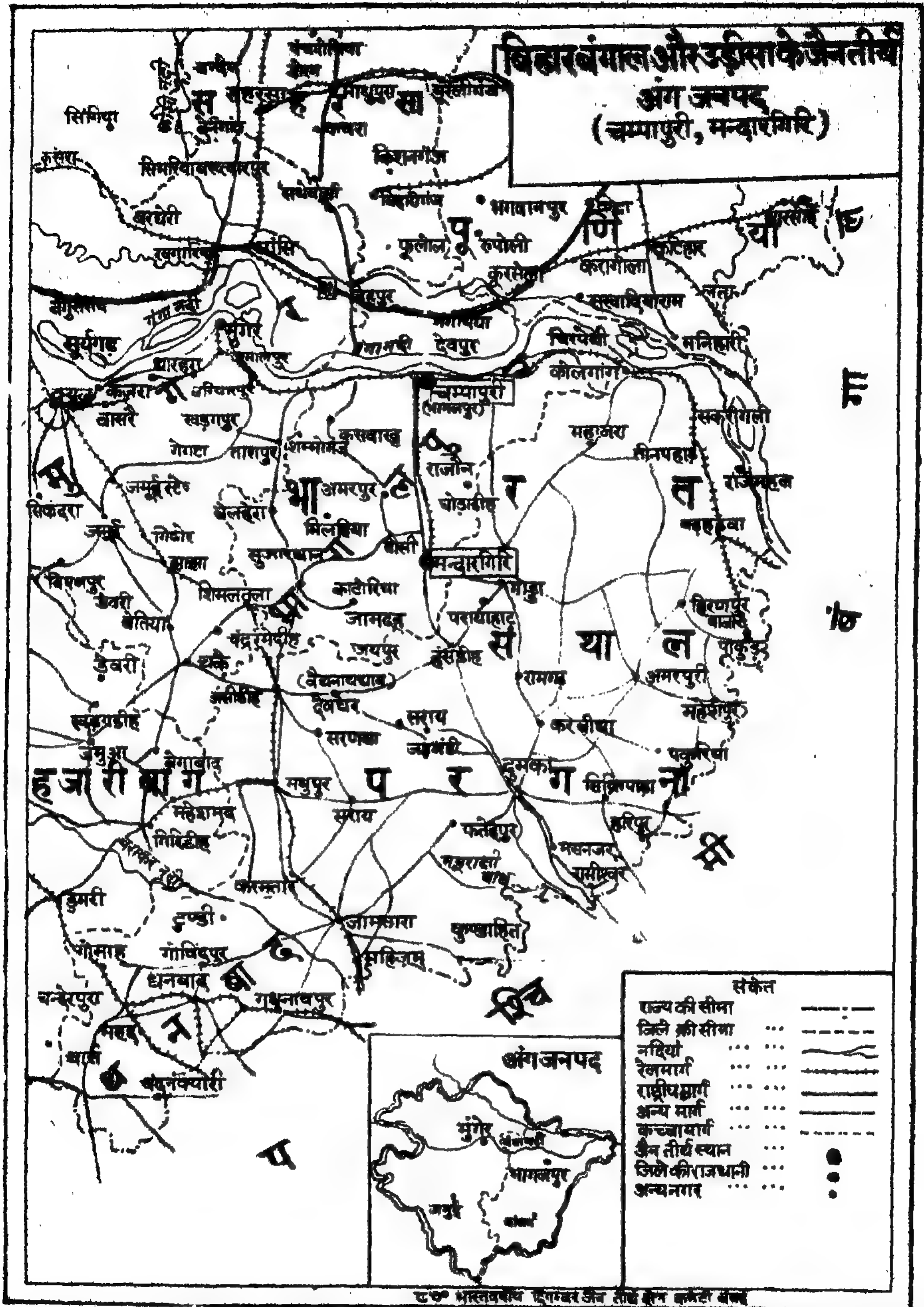


१. Gazett Champaran istrict, 1907।

अंग जनपद

चम्पापुरी

मन्दारगिरि



१. भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित ।

२. इस मानचित्र में दिये गये नामों का अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रों से लिया गया है ।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

चम्पापुरी

तीर्थक्षेत्र

चम्पापुर अत्यन्त प्राचीन तीर्थक्षेत्र है। यहाँ बारहवें तीर्थंकर भगवान् वासुपूज्यके गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इस प्रकार पाँचों कल्याणक हुए थे। केवल यही क्षेत्र ऐसा है, जहाँ किसी तीर्थंकरके पाँचों कल्याणक एक ही स्थानपर हुए। यह महान् सौभाग्य अन्य किसी नगरको प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी पुण्य नगरियाँ तो हैं जहाँ किसी एक तीर्थंकरके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान ये चारों कल्याणक मनाये गये। किन्तु पाँचों कल्याणक केवल चम्पापुरमें ही हुए। इस दृष्टिसे इस नगरीको विशेष महत्त्व प्राप्त है।

भगवान् वासुपूज्य वर्तमान तीर्थंकर परम्परामें बारहवें तीर्थंकर हैं। उनके माता-पिता विजया और वसुपूज्य चम्पानगरके (अंग देशके) रानी-राजा थे। 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें वासु-पूज्यकी जन्म सम्बन्धी आवश्यक जानकारी देते हुए आचार्य यतिवृषभ लिखते हैं।

चंपाए वासुपुज्जो वसुपुज्जणरेसरेण विजयाए।
फग्गुण सुद्ध चउद्दसिदिणम्मि जादो विसाहासु ॥ ४।५३७

अर्थात् वासुपूज्य चम्पा नगरीमें पिता वसुपूज्य तथा माता विजयासे फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

वासुपूज्यके शरीरकी अवगाहना ७० धनुष थी। शरीरका वर्ण मूँगेके समान रक्तवर्ण था। उनकी प्रकृति संवेदनशील थी। जब वे यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए, तब माता-पिताने उनसे विवाह करनेका प्रस्ताव किया। अनेक राजा अपनी कन्याओंका सम्बन्ध लेकर आये। किन्तु संसारके प्राणियोंके साथ जिसकी भावनात्मक एकता स्थापित हो चुकी है और उनके दुःखोंकी निवृत्तिके सम्बन्धमें जिसका चिन्तन मूर्तिमान् रूप लेनेके सम्मुख है, उसे बन्धन क्योंकर रुचिकर होंगे। इसलिए उन्होंने अत्यन्त विनम्रता किन्तु दृढ़तासे विवाह करनेसे इनकार कर दिया। इतना ही नहीं, उस आदर्श प्रेरित युवक प्रभुके सामने जब युवराज-पदका प्रस्ताव आया तो उन्होंने उस पदको भी अस्वीकार कर दिया। इसीलिए आचार्य यतिवृषभने उनके लिए कहा है—

"पढमं चिय परिहरिया रज्जसिरी वासुपुज्जेण ॥"[1]

अर्थात् वासुपूज्य जिनेन्द्रने पहले ही राज्यलक्ष्मीको छोड़ दिया था।

जैन साहित्यमें चौबीस तीर्थंकरोंमें पाँच तीर्थंकरोंको पंचबालयति कहा है, जिन्होंने विवाह नहीं किया और कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ले ली। ये पंचबालयति हैं—वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर।

वासुपूज्य स्वामीका लाक्षणिक चिह्न भैंसा है, जो उनकी प्रतिमाओं पर रहता है। आप इक्ष्वाकुवंशके देदीप्यमान रत्न थे।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, ४।५९८। २. तिलोयपण्णत्ति, ४।६७०।

एक दिन वे संसारके स्वरूपके सम्बन्धमें चिन्तनमें लीन थे, तभी उन्हें अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। सारी घटनाएँ उनके मानसपटल पर चित्रके समान स्पष्ट प्रतिभासित हो उठीं। जन्म-मरण, आदि-व्याधि, चिन्ता-शोक इन द्वन्द्वोंका नाम ही तो संसार है। जब संसारमें दुःख ही दुःख है तो फिर स्पृहा लायक यहाँ है ही क्या? उन्हें दुखोंसे मुक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा प्रबल हो उठी। उन्हें संसारके भोगोंसे विराग हो गया। तभी पाँचवें स्वर्गके ऊपर आठों दिशाओंमें रहनेवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि, एक भवावतारी और अत्यन्त विशुद्ध परिणामवाले लौकान्तिक देव आये। उन्होंने प्रभुके विचारोंका समर्थन किया, सराहना की और अपने स्थानोंको लौट गये।

भगवान् दीक्षा लेनेके लिए तैयार हुए। चारों प्रकारके देव और इन्द्र वहाँ आये और भगवान्को अनर्घ्य शिविकामें ले चले। चम्पानगरके बाहर उद्यानमें, जो वर्तमान मन्दारगिरिपर था, पहुँचकर भगवान् शिविकासे उतर पड़े और पूर्वाभिमुख होकर 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर उन्होंने सम्पूर्ण परिग्रहका त्याग कर अपने हाथोंसे केशलुंचन किया। 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें भगवान्के दीक्षा-कल्याणकके सम्बन्धमें लिखा है—

फग्गुणकसणचउद्दसि अवरण्हे वासुपुज्जतवगहणं।
रिक्खम्मि विसाखाए इगिउववासे मणोहरुज्जाणे ॥४।६५५

अर्थात् वासुपूज्य जिनेन्द्र फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीके दिन अपराह्ण कालमें विशाखा नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें एक उपवासके साथ तप ग्रहण किया। उनके साथ छह सौ छिहत्तर मुमुक्षुओंने भी दीक्षा ली थी।

भगवान्ने अगले दिन महीनगरके राजा सुन्दरके घर खीरसे पारणा किया। वे एक वर्ष तक तप करते रहे। वे विहार करते हुए पुनः मन्दारगिरिपर पधारे। यहाँ उन्हें पाटल वृक्षके नीचे माघ शुक्ला द्वितीया को अपराह्ण कालमें विमल केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो गये। 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें इस सम्बन्धमें निम्नलिखित सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं—

माघस्स सुक्कविदिए विसाहरिक्खे मणोहरुज्जाणे।
अवरण्हे संजादं केवलणाणं खु वासुपुज्जम्मि ॥४।६८९

अर्थात् वासुपूज्य जिनेन्द्रको माघ शुक्ला द्वितीया के दिन अपराह्ण कालमें विशाखा नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

सभी देव और इन्द्र चलकर मन्दारगिरि पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान्को नमस्कार किया और उनके ज्ञानकल्याणककी पूजा की। इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरणकी रचना की और इस पर्वतसे भगवान्की दिव्य ध्वनिकी पावन गंगा प्रवाहित हुई जिसमें अवगाहन करके भव्य प्राणियों ने आत्म-कल्याण किया।

भगवान् संसारका कल्याण करते हुए चम्पानगरीमें पधारे। जब आयुकर्मका अन्त निकट था, तब आपने योग निरोध किया और शेष अघातिया कर्मोंका नाश करके अशरीरी सिद्ध परमात्मा बन गये। इस सम्बन्धमें 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

फग्गुणबहुले पंचमिअवरण्हे अस्सिणीसु चंपाए।
रूपाहियछसयजुदो सिद्धिगदो वासुपुज्जजिणो ॥४।११९६

वासुपूज्य जिनेन्द्र फाल्गुन कृष्णा पंचमीके दिन अपराह्ण कालमें अश्विनी नक्षत्रके रहते चम्पापुरसे सिद्धि (सिद्धगति) को प्राप्त हुए। उनके साथ छह सौ एक मुनियोंने भी निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान् निर्वाण-लाभके समय पल्यंकासनसे विराजमान थे।

आचार्य कुन्दकुन्द-विरचित प्राकृत निर्वाणकाण्डमें भी चम्पापुरसे ही वासुपूज्यके मुक्त होने-का उल्लेख मिलता है—

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्ज जिणणाहो।

इसी प्रकार संस्कृत निर्वाणभक्तिमें भी चम्पाको ही वासुपूज्यका निर्वाणक्षेत्र स्वीकार किया है—

चम्पापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान्।
सिद्धिं परामुपगतो गतरागबन्धः॥

सभी ग्रन्थोंमें चम्पापुरको ही वासुपूज्य भगवान्का निर्वाण-क्षेत्र बताया गया है। किन्तु आचार्य गुणभद्र-विरचित 'उत्तर-पुराण' में मन्दारगिरिको वासुपूज्य स्वामीकी निर्वाण-भूमि लिखा है। वह उल्लेख इस प्रकार है—

'स्थित्वात्र निष्क्रियो मासं नद्या राजतमौलिका।
संज्ञायाश्चित्तहारिण्याः पर्यन्तावलिवर्तिनि॥
अग्रमन्दरशैलस्य सानुस्थानविभूषणे।
वने मनोहरोद्याने पल्यङ्कासनमाश्रितः॥
मासे भाद्रपदे ज्योत्स्ने चतुर्दश्यापराह्णके।
विशाखायां ययौ मुक्तिं चतुर्नवतिसंयतः॥'—पर्व ५८, श्लोक ५१-५३

अर्थात् भगवान् वासुपूज्य स्वामी एक मास तक योग निरोध करके राजतमौलि नदीके तटपर अवस्थित मन्दार पर्वतके मनोहर उद्यानमें पल्यंकासनसे भाद्रपद शुक्ला १४ के अपराह्णमें ९४ मुनियोंके साथ मोक्ष पधारे।

इस उद्धरणसे ज्ञात होता है कि मन्दारगिरिसे ९४ मुनियोंके साथ वासुपूज्य मुक्त हुए। किन्तु इससे कोई विरोध नहीं पड़ता। अंगदेशकी राजधानी चम्पा उस युगमें काफी विस्तृत थी। पुराणोंमें ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जिनमें चम्पाका विस्तार ४८ कोस बताया गया है। मन्दारगिरि तत्कालीन चम्पाका बाह्य उद्यान था और वह चम्पामें ही सम्मिलित था।

वर्तमान मान्यता और अनुश्रुति यह है कि चम्पानालेमें वासुपूज्य भगवान्के गर्भ और जन्म-कल्याणक मनाये गये। मन्दारगिरिमें दीक्षा और केवलज्ञान-कल्याणक हुए तथा चम्पापुरसे भगवान्का निर्वाण हुआ।

प्राचीन सांस्कृतिक नगरी

चम्पा भारतकी प्राचीन सांस्कृतिक नगरियोंमें-से है। भगवान् ऋषभदेवने जिन ५२ जनपदोंकी रचना की थी[1], उनमें अंग भी था जिसकी राजधानी चम्पा थी। भगवान्ने जिन देशोंमें विहार करके जन-जनको कल्याणका मार्ग बताया, उनमें भी अंग था[2]। उत्तर भारतके जिन सोलह

१. सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, वंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कोशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, वाह्लीक, तुरुष्क, शक और केकय इन ५२ देशोंकी रचना भगवान् ऋषभदेवने की।—आदिपुराणपर्व १२ श्लोक ७६-७८। २. काशीमवन्ति-कुरु कोसल-सुह्म-पुण्ड्रान्, चेद्यङ्ग-वङ्ग-मगधान्ध्र-कलिङ्ग-मद्रान्। पाञ्चाल-मालव-दशार्ण-विदर्भदेशान् सन्मार्गदेशन परो विजहार धीरः॥ —आदिपुराण २५।२८७।

महाजनपदोंकी चर्चा प्राचीन साहित्यमें आती है, उनमें भी अंग देश है। बुद्धके कालमें चम्पा भारतकी छह महानगरियोंमें-से एक थी। चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और वाराणसी ये छह महानगरियाँ थीं।

प्राचीन साहित्यमें अंग देश और उसकी राजधानी चम्पाका वर्णन बहुत मिलता है। प्राचीन अंग देश वर्तमान भागलपुर और मुंगेर जिलोंको मिलकर बनता था। यह राज्य अत्यन्त बल-वैभव सम्पन्न था। चम्पा अत्यन्त समृद्ध नगरियोंमें-से थी। इक्ष्वाकुवंशी राजाओंका चम्पाके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। उन्होंने हजारों वर्षों तक उसपर शासन किया है। भगवान् वासुपूज्य भी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए थे।

यहाँ अनेकों धार्मिक और ऐतिहासिक घटनाएँ हुई हैं, जिनका सांस्कृतिक दृष्टिसे विशेष महत्त्व है। यहाँ ऐसी कुछ घटनाओंका उल्लेख किया जा रहा है—

(१) मिथिलाका राजा पद्मरथ एक बार सूर्याभनगरमें गया। वहाँ सुधर्म नामक गणधर विराजमान थे। राजा उनके दर्शनोंके लिए गया। उसने गणधरदेवके दर्शन किये और उनका उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसे बड़ा सन्तोष और आनन्द हुआ। उसने बड़ी विनयके साथ कहा—'भगवन् ! क्या तीनों लोकोंमें कोई ऐसा व्यक्ति है जो आपके समान उपदेश दे सके।' गणधर बोले—'हाँ ! हैं। मेरे समान नहीं, जगद्गुरु त्रिलोकपूज्य भगवान् वासुपूज्य चम्पामें हैं।' राजा बोला—'यदि वे आपसे भी बड़े हैं तो मैं उनके दर्शन अवश्य करूँगा।' राजाने यह कहकर भोगोपभोगोंका त्याग कर दिया और वह वहाँसे चल दिया।

मार्गमें विश्वानल देवने उसपर बड़े उपसर्ग किये। किन्तु विरागरंजित राजा रुका नहीं और वह त्रिलोकीनाथ वासुपूज्य स्वामीके चरणोंमें जा पहुँचा। इसे संसार, शरीर और भोगोंकी क्षणभंगुरताको देखकर बड़ा वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने भगवान्के पास जिनदीक्षा ले ली और शीघ्र ही वह द्वादशांगका वेत्ता होकर भगवान् वासुपूज्यका गणधर बना। अन्तमें गणधर पद्मरथ कर्मोंका नाश करके मुक्त हुए।—हरिषेण कथाकोष–कथा ५१

(२) भगवान् वासुपूज्यके समयमें द्वारावतीमें द्वितीय बलभद्र अचल और नारायण द्विपृष्ठ हुए। जब द्विपृष्ठने अपने शत्रु प्रतिनारायण तारकका संहार करके भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंपर अधिकार कर लिया, उसके बाद वह भगवान् वासुपूज्यके समवसरणमें अनेक बार आया था। इतना ही नहीं, वह वासुपूज्य तीर्थंकरका मुख्य श्रोता माना गया है। अपनी अन्तिम अवस्थामें बलभद्र अचलने वासुपूज्यके चरणोंमें दीक्षा ली और तप करके मुक्ति प्राप्त की।

(३) चम्पानगरीका राजा मघवा था। उसकी रानीका नाम श्रीमती था। उनके गुणवान् आठ पुत्र और अत्यन्त रूपवती रोहिणी नामकी पुत्री थी। कार्तिककी अष्टाह्निकामें रोहिणी मन्दिरमें जाकर प्रतिदिन पूजन करती थी। एक दिन राजाने उसे देखा तो उसे अनुभव हुआ कि अब पुत्री सयानी हो गयी है। इसका विवाह कर देना चाहिए। यह सोचकर राजाने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर परामर्श किया। मन्त्रियोंने विचारकर निवेदन किया कि महाराज ! राजकुमारीका स्वयंवर करना ही उचित होगा। राजाने सब राजाओंके पास दूत और पत्र भेजकर स्वयंवरका समाचार भिजवा दिया। यथासमय बड़े-बड़े राजा और राजकुमार सजधजकर स्वयंवरमें सम्मिलित हुए। रत्नाभरणोंसे अलंकृत अनिन्द्य सुन्दरी रोहिणी अपनी धायके साथ

१. श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें इसे भगवान् वासुपूज्यका पुत्र बताया है।

स्वयंवर-मण्डपमें आयी। उसकी रूप-छटा और सौन्दर्यको देखकर उपस्थित जन विस्मयविस्फारित नयनोंसे उसे निहारते रह गये। धात्री क्रम-क्रमसे राजाओंका परिचय कराती जा रही थी।

हस्तिनापुरके राजा वीतशोकका पुत्र अशोक भी प्रत्याशी राजकुमारोंमें बैठा हुआ था। वह रूपमें कामदेवके समान सुन्दर था। जब धात्रीने उसका परिचय कराया तो रोहिणी उसकी रूप-सुधाका पान करके वहीं चित्रलिखित-सी खड़ी रह गयी। बरबस उसके हाथ उठे और वरमाला राजकुमार अशोकके गलेमें डाल दी। राजकुमारीके इस चुनावकी सबने सराहना की। दोनोंका विवाह हो गया। वर-वधूका यह युगल ऐसा प्रतीत होता था, मानो साक्षात् कामदेव और रति ही हों।

दोनोंका जीवन आनन्द और विलासमें बीतने लगा। एक दिन उल्कापात देखकर महाराज मघवाको संसारकी क्षणभंगुरताका बोध हुआ। उसे संसारसे वैराग्य हो गया। राजकुमारका राज्याभिषेक करके उसने हस्तिनापुरके निकटस्थ अशोक वनमें गुणधर मुनिराजके पास जाकर मुनि-दीक्षा ले ली और घोर तप करने लगा। अन्तमें सम्पूर्ण कर्मोंका नाश करके वह संसारसे मुक्त हो गया।

रोहिणीके आठ पुत्र और चार पुत्रियाँ हुईं। सबसे अन्तमें पुत्र हुआ, जिसका नाम लोकपाल रखा गया। एक दिन राजपथपर कुछ स्त्रियाँ रोती और छाती कूटती हुई आ रही थीं। अशोक और रोहिणी महलोंकी छतपर बैठे प्रकृतिका सौन्दर्य देख रहे थे। अकस्मात् रोहिणीकी दृष्टि शोकाकुल उन स्त्रियोंकी ओर गयी। उन्हें देखकर रोहिणीको बड़ा कुतूहल हुआ। उसने अपनी धाय माँसे पूछा—'माँ! ये स्त्रियाँ कौन-सा नाटक कर रही हैं?'

धायको यह सुनकर क्रोध आ गया। वह रोषसे बोली—'पुत्री! क्या दुखियोंके दुःखका उपहास करना तुझे योग्य है? यह नाटक नहीं है। अपने किसी प्रियजनके वियोगसे ये सब शोकाकुल हैं और अपना दुःख प्रकट कर रही हैं।'

यह सुनकर रोहिणी इस अश्रुतपूर्व बातपर और भी अधिक विस्मित हुई। वह कहने लगी—'धाय माँ! तुम रोष क्यों करती हो। मैं तो यह भी नहीं समझती कि शोक और दुःख किसे कहते हैं।'

महाराज अशोक इस वार्तालापको सुन रहे थे। उन्होंने कहा—'रोहिणी! दुःख और शोक क्या होता है, यह तुम इस प्रकार नहीं समझ सकोगी। मैं तुम्हें समझाता हूँ।' ऐसा कह उन्होंने रोहिणीकी गोदमें-से पुत्र लोकपालको लेकर नीचे फेंक दिया। किन्तु रोहिणीके मनमें न कोई भयका भाव था, न आतंक का। जिसके पास पुण्यका कोष है, वह भयभीत क्यों हो। बच्चा ज्यों ही फेंका, देवताओंने उसे बीचमें ही थाम लिया और अशोक वृक्ष और उसके ऊपर सिंहासन रचकर बालकको उसपर बैठा दिया और उसका अभिषेक करने लगे। देवोंने वहाँ जंगलमें चार जिनालय भी बना दिये।

एक दिन दो चारण मुनि उस अशोक वनमें पधारे। राजा उनके दर्शनोंके लिए गया। राजाने रूपकुम्भ नामक मुनिराजसे पूछा—"भगवन्! रोहिणीने ऐसा कौन-सा पुण्य किया था, जिसके कारण इसे इतना रूप और सुख मिला है।" मुनिराजने अवधिज्ञानसे जानकर उत्तर दिया—"पहले एक भवमें यह पूतिगन्धा नामकी कन्या थी। इसके शरीरसे भयानक दुर्गन्ध आती थी। एक बार इसने पूर्वजन्ममें एक मुनिको भयानक कष्ट दिया था, जिससे अनेक दुर्गतियोंमें पड़कर यह पूतिगन्धा नामकी कन्या हुई थी। तब एक मुनिराजसे इसने इस दुर्गन्धिका कारण और उसकी निवृत्तिका उपाय पूछा। मुनिराजने इसे पूर्वभवोंकी बात बताकर उपाय बताया कि

तू रोहिणी व्रत कर। इसके प्रभावसे तेरा संकट दूर होगा। इसने रोहिणी व्रत किया। उसीका फल है कि इसे इतना रूप और सुख मिला है।" यह सुनकर सबको बड़ी शिक्षा मिली।

एक बार भगवान् वासुपूज्यका समवसरण चम्पानगरीमें आया। राजा और रानी भी उनके दर्शनोंको गये। भगवान्‌का उपदेश सुनकर दोनोंको वैराग्य हो गया। अशोकने मुनि-दीक्षा ले ली और रोहिणी आर्यिका बन गयी। मुनि अशोक भगवान् वासुपूज्यके गणधर बने और अन्तमें मोक्ष पधारे।

रोहिणीने कठोर तप किया और मरकर अच्युत स्वर्गमें देव हुई।

—हरिषेण कथाकोष—कथा ५७

(४) चम्पानगरमें दन्तिवाहन राजा रहता था। उसकी रानीका नाम अभया था। उनके राजश्रेष्ठीका नाम वृषभदत्त था। श्रेष्ठीका एक ग्वाला था, जिसका नाम सुभग था। एक दिन सुभग लौट रहा था। सर्दीके दिन थे। जंगलमें उसे एक मुनि दिखाई दिये जो ध्यान लगाये हुए बैठे थे। ग्वालेको उनपर बड़ी दया आयी—एक भी वस्त्र नहीं और इतनी भयानक सर्दी! वह रात-भर बैठा उनकी वैयावृत्य करता रहा। प्रातःकाल होनेपर मुनिराजने आँखें खोलीं, सुभग-को आशीर्वाद दिया और कहा—'पुत्र! मैं तुझे णमोकार मन्त्र देता हूँ। इसे सदा स्मरण रखना। तेरा कल्याण होगा।'

सुभगको णमोकार मन्त्रपर बड़ी श्रद्धा हो गयी। वह उठते-बैठते उसे सदा याद करता रहता। एक दिन बरसाती नदीमें वह तैरकर आ रहा था कि एक लकड़ीका ठूँठ उसके पेटमें घुस गया और वह मर गया। मरते समय उसके मुखसे णमोकार मन्त्र निकल रहा था। मरकर वह उसी सेठके घर पुत्र हुआ। नाम सुदर्शन रखा गया। जैसा नाम था, वास्तवमें वह वैसा ही सुदर्शन था।

एक दिन रानी अभयाने उसे देख लिया। देखते ही उसपर मोहित हो गयी। सुदर्शनका जैसा कि नियम था वह अष्टमी-चतुर्दशीको रात्रिमें श्मशानमें जाकर ध्यान लगाया करता था। रानीने अपनी एक विश्वस्त दासीको अपने मनकी बात बतायी। दासी बोली—"महारानीजी! आप चिन्ता न करें। मैं सुदर्शन सेठ को किसी न किसी प्रकार आपके पास ले आऊँगी।" और वास्तवमें वह ध्यानस्थ सुदर्शनको उठवा लायी। कामान्ध अभयाने सुदर्शनके सामने निर्लज्ज होकर प्रणय-याचना की, अनेक कुचेष्टाएँ कीं। किन्तु दृढ़ शीलव्रती सुदर्शन विचलित नहीं हुआ। तब हार-कर उस धूर्त स्त्रीने नाखूनोंसे अपने शरीर पर घाव कर लिये, कपड़े फाड़ लिये, बाल बिखेर लिये और शोर मचाने लगी—'यह दुष्ट मेरा सर्वनाश करना चाहता है। मुझे बचाओ, दौड़ो।'

रानीका करुण क्रन्दन सुनकर रक्षक दौड़े आये और सुदर्शनको बाँधकर राजाके समक्ष ले गये। राजाने सुना तो उसे बड़ा क्रोध आया और उसने सुदर्शनको शूलीका आदेश दे दिया। बधिक सुदर्शनको लेकर श्मशानमें पहुँचे और उसे शूली दे दी। किन्तु आश्चर्य कि शूलीके स्थानपर सिंहासन बन गया। सुदर्शनको सिंहासनपर बैठाकर देवता उसकी जयजयकार करने लगे। यह आश्चर्यजनक समाचार राजाके पास पहुँचा। तब राजा दौड़ा आया और आकर उसने सेठ सुदर्शन-से अपने अपराधकी क्षमा माँगी।

सुदर्शनने इसे अपने कर्मोंका दोष बताया। उसने मुनि विमलवाहनसे मुनिदीक्षा ले ली और तपस्या करने लगा। अन्तमें पाटलिपुत्रमें जाकर सम्पूर्ण कर्मोंका नाश करके निर्वाण प्राप्त किया।—हरिषेण कथाकोष—कथा ६०

(५) चम्पानगरीमें शूरसेन राजा राज्य करता था। वहाँ भानुदत्त नामका एक सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था सुभद्रा। उनके चारुदत्त नामका इकलौता पुत्र था। जब वह विवाह योग्य हुआ तो माता-पिताने उसका विवाह कर दिया। किन्तु वह इस अवस्थामें भी विषय-भोगोंसे अनभिज्ञ था। जब कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये, तब उसकी माताको चिन्ता हुई। तब उसे विषयोंकी तरफ प्रवृत्त करनेके लिए दुराचारी पुरुषोंकी संगतिमें डाल दिया। परिणाम यह हुआ कि वह वेश्यागामी हो गया। धीरे-धीरे उसका प्रेम एक वेश्यासे हो गया, जिसका नाम था वसन्तसेना।

अब वह उसी वेश्याके यहाँ रहने लगा। जितने धनकी आवश्यकता होती, वह लिखकर भेज देता और घरसे रुपया आ जाता। जब घरमें रुपया समाप्त हो गया तो आभूषण मँगाने लगा। स्थिति यह हो गयी कि घरमें न पैसा रहा, न जेवर। उसका पिता इसी शोकमें मर गया। माँ और स्त्री भूखों मरने लगे। धन बन्द हो जानेपर वेश्याने भी उसे अपने घरसे निकाल दिया। अपमानित चारुदत्त घर आया। उसने घरकी दुरवस्था देखी तो उसे बड़ा शोक हुआ और अपनी माता तथा स्त्रीको आश्वासन देकर वह व्यापारके लिए परदेश चला गया। कई बार उसे दुर्भाग्यका सामना करना पड़ा। एक बार व्यापारके लिए कपास लेकर चला जा रहा था। जंगलमें पहुँचनेपर देखा कि दावाग्नि लगी हुई है। इतनेमें एक चिनगारी आकर कपासमें आ पड़ी। देखते-देखते सारा कपास भस्म हो गया।

इसी प्रकार एक बार खूब धन कमाकर वह जहाजमें सामान भरकर घरकी ओर रवाना हुआ। मार्गमें जहाज किनारेसे टकराकर डूब गया। किन्तु ऐसी आपत्तियोंसे भी वह घबड़ाया नहीं। उद्यम करता रहा और सफल हुआ। वह प्रचुर धन कमाकर घर लौटा और अपनी माता तथा स्त्रीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा। अन्तमें वह मुनि-दीक्षा लेकर तपस्या करने लगा। उसके प्रभावसे उसने स्वर्गोंके सुख प्राप्त किये। —हरिषेण कथाकोष—कथा ९३

(६) भगवान् मुनि सुव्रतनाथके तीर्थमें हरिषेण चक्रवर्ती हुआ। यह कम्पिलाके राजा सिंहध्वजका पुत्र था। इसने चम्पाकी राजकुमारी मदनावलीसे विवाह करके अपनी ९६००० रानियोंमें उसे पट्टमहिषीका पद दिया।—हरिषेण कथाकोष—कथा ३२

(७) चम्पानगरके धर्मघोष नामक एक श्रेष्ठीने मुनि-दीक्षा ले ली। वे मासोपवासी थे। एक दिन वे पारणाके लिए नगरकी ओर आ रहे थे किन्तु मार्गमें घास उग रही थी। अतः वे गंगाके किनारे एक वटवृक्षके नीचे बैठ गये। उनकी तपस्यासे प्रभावित होकर वहाँ गंगाकी अधिष्ठात्री देवी आयी। उसने मुनिको नमस्कार किया तथा यह जानकर कि इस समय मुनिको प्यासकी बाधा है, भक्तिसे जलसे भरा एक कलश लाकर बोली—'मुनिराज ! आप इस कलशका जल पीकर अपनी तृषा शान्त कीजिए।' मुनि बोले—'देवी ! यह हमारे आचारके विरुद्ध है। हम तुम्हारे हाथका जल पीनेमें असमर्थ हैं।'

देवीको यह सुनकर कुतूहल हुआ—भयंकर प्यासकी बाधा, किन्तु मेरे हाथसे मुनि जल क्यों नहीं ग्रहण करते। वह पूर्वविदेहमें तीर्थंकरके पास गयी और उनसे यही प्रश्न किया। भगवान् तीर्थंकर बोले—'मुनिजन देव-देवियोंका लाया हुआ आहार-जल ग्रहण नहीं करते। देव-देवियाँ तो मुनियोंकी पूजा, प्रातिहार्य आदि कार्य कर सकते हैं।'

तीर्थंकरकी अमृतवाणी सुनकर गंगादेवी गंगातटपर आयी। उसने भक्तिके साथ मुनिके ऊपर शीतल जलकी वर्षा की। मुनि शुक्लध्यानमें स्थित थे। उन्होंने घातिया कर्मोंका नाश करके

केवल-ज्ञान प्राप्त किया और आयुके अन्तमें अघातिया कर्मोंका नाश करके वे सिद्धालयमें जा विराजे। —हरिषेण कथाकोष—कथा १३३

(८) सुभद्रा सतीके शीलकी परीक्षा चम्पामें ही हुई थी। कोटिभट श्रीपाल यहींका राजा था। पुराणप्रसिद्ध अनन्तमती यहीं हुई थी। महावीरके समकालीन धर्मरुचि केवली गृहस्थ दशामें यहाँके शासक थे।

(९) पाण्डवोंकी माता कुन्ती जब कुमारी थी, उस समय पाण्डु एक बार द्वारका गये। वहाँ कुमारी कुन्तीको देखते ही वे मोहित हो गये। कुन्तीकी भी दशा ऐसी ही थी। दोनोंने गन्धर्व-विवाह कर लिया और छिपकर वे मिलते रहे। परिणाम यह हुआ कि कुन्तीको गर्भ रह गया। गर्भ धीरे-धीरे बढ़ने लगा। जब बालक उत्पन्न हुआ तो लोक-लाजके कारण कुन्तीने बच्चे-को कम्बलमें लपेटकर एकान्तमें छोड़ दिया। बड़ा होनेपर वह महारथी कर्ण कहलाया जिसने अंगदेशको जीतकर चम्पाको अपनी राजधानी बनाया। कर्णकी दानवीरताको लेकर अनेक आख्यान प्राचीन वाङ्मयमें मिलते हैं। —हरिवंशपुराण, ५५वाँ सर्ग, श्लोक ८७-९५

(१०) राजा करकण्डुका भी सम्बन्ध चम्पासे रहा था। वह चम्पाके नरेश दन्तिवाहनका पुत्र था। किन्तु नियतिके चक्रमें पड़कर वह श्मशानमें उत्पन्न हुआ। घटना यों घटित हुई। दन्तिवाहनकी महारानी पद्मावतीको दोहला हुआ कि मैं महाराजके साथ पुरुष-वेषमें वर्षाके समय हाथीपर बैठकर वन-विहार करूँ। राजाने रानीकी इच्छानुसार व्यवस्था की। जब राजा और रानी हाथीपर बैठकर वन-विहार कर रहे थे तो ठण्डी-ठण्डी हवा लगते ही हाथी मस्त हो उठा और भागा। महावत और राजा तो किसी वृक्षकी झुकी हुई शाखाको पकड़कर लटक गये और बच गये। किन्तु महारानी हाथीसे नहीं उतर सकी। जब हाथी भागते-भागते थक गया, तब वह एक तालाबमें घुसा। मौका देखकर महारानी हाथीसे कूद पड़ी। वह निकटवर्ती श्मशानमें होकर जा रही थी, तभी प्रसववेदना हुई और वहीं बालकको जन्म दिया।

वहाँ एक शापग्रस्त विद्याधर नरेश अपनी स्त्रीके साथ श्मशानमें चाण्डालके वेषमें रहता था। उसने महारानीसे वह बालक ले लिया और उसका लालन-पालन करने लगा। उसने बालक-का नाम करकण्डु रखा। करकण्डुके प्रभावसे बादमें वह विद्याधर दम्पति शापमुक्त हो गया।

करकण्डु बड़ा हो गया। अचानक एक दिन दन्तिपुरके राजाका स्वर्गवास हो गया। वह निःसन्तान था। अतः मन्त्रियोंने एक हाथीको घड़ा भरकर दिया। यह निश्चय किया गया कि हाथी जिस व्यक्तिका अभिषेक कर दे, उसीको राजा बना दिया जाये। हाथीने करकण्डुका अभिषेक किया। फलतः वह राजा बना दिया गया।

राजा बननेके बाद उसने अनेक राजाओंको जीतकर अपने राज्यका खूब विस्तार किया। चम्पानरेश दन्तिवाहनको उसका यह उत्कर्ष सहन नहीं हुआ। उसने करकण्डुके पास दूत भेजा कि या तो तुम मेरी अधीनता स्वीकार करो अन्यथा युद्ध करो। करकण्डुने युद्ध स्वीकार किया। दोनों आमने-सामने आ डटे। तब पद्मावतीने आकर युद्ध रोका और पिता-पुत्रका परिचय कराया। बिछुड़े हुए पति-पत्नी और पुत्र मिले। दन्तिवाहनने चम्पाका राज्य अपने पुत्र करकण्डुको दे दिया। अब करकण्डुका राज्य अंगसे लेकर वंग, कलिंग, आन्ध्र, पाण्ड्य तक विस्तृत हो गया।

उसने दिग्विजयके समय तेरपुरमें अग्गलदेवका विशाल मन्दिर बनवाया और रत्नमय पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान करायी। यह प्रतिमा तेरपुरके निकटवर्ती धाराशिव गाँवके बाहर एक स्थान खुदवानेपर मिली थी, जहाँ एक हाथी प्रतिदिन सूँड़में जल और कमल लाता था और उसे चढ़ाता था।

एक मुनिराजने इस प्रतिमाका इतिहास बताते हुए कहा कि यह रत्नमय प्रतिमा पहले मलयगिरिपर थी। नभस्तिलक नामक स्थानके दो विद्याधर यात्रार्थ निकले थे। उन्होंने मलय-गिरिपर यह प्रतिमा देखी तो वे अपने जिनालयमें विराजमान करनेके लिए उठा लाये। किन्तु जाते हुए मार्गमें वे यहाँ ठहरे। दूसरे दिन जब वे इसे उठाने लगे तो प्रतिमा नहीं उठी। आखिर उसे यहीं छोड़ना पड़ा। एक बार रथनूपुरके नील और महानील युद्धमें हारकर यहाँ बस गये। उन्होंने यहाँ एक लयण बनवाया। इसके प्रभावसे उसे गयी हुई विद्याएँ मिल गयीं।

लयण, प्रतिमा और मन्दिर सभी अबतक विद्यमान हैं। मन्दिरको बने हुए लगभग २९०० अथवा २८०० वर्ष हो चुके हैं। लयण और प्रतिमाका निर्माण-काल तो सम्भवतः और भी पुराना होगा। लेकिन निश्चय ही लयण और प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथके कुछ पश्चाद्वर्ती काल के हैं।

—करकण्डुचरित्र—मुनि कनकामर विरचित

इस प्रकार न जाने कितनी घटनाएँ चम्पाके साथ जुड़ी हुई हैं, जिनका वर्णन विभिन्न पुराणों और कथाग्रन्थोंमें मिलता है।

इतिहास और पुरातत्त्व

भगवान् आदिनाथ और भगवान् पार्श्वनाथने भारतके जिन क्षेत्रोंमें विहार करके धर्म-देशना दी थी, उनमें अंग देशका भी नाम आता है। चम्पा प्राचीन कालमें अंग देशकी राजधानी थी। इनके पश्चात् भगवान् महावीर भी यहाँ पधारे।

उनके पश्चात् उपासकदसांग सूत्रके अनुसार यहाँ सुधर्मास्वामी पधारे थे। सुधर्मा-स्वामीके पश्चात् केवलज्ञानकी अवस्थामें जम्बूस्वामीका भी पदार्पण हुआ था।

भगवान् महावीरके कालमें चम्पाका राजा दधिवाहन था। वह अधिक प्रभावशाली नहीं था। उसके एक ओर मगध था, जहाँका नरेश श्रेणिक बिम्बसार अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी था। दूसरी ओर वैशालीका वज्जिसंघ था, जिसकी शक्ति उन दिनों अपराजेय समझी जाती थी। वज्जिसंघ प्रजासत्ताक राज्य था। अतः उसकी कोई साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा नहीं थी। किन्तु बिम्बसार-की इच्छा सम्राट् बननेकी थी। अतः उसने महासेनापति भद्रिकके सेनापतित्वमें एक विशाल सेना देकर चम्पाके विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। मगधके महामात्य वर्षकारकी कूटनीति और आर्य भद्रिकके शौर्यने चम्पाको भीषण पराजय दी। चम्पानरेश दधिवाहन मारे गये। चम्पापर मगधका आधिपत्य हो गया। बिम्बसारने चम्पाकी व्यवस्था और शासनकी देखभाल करनेके लिए अपने पुत्र कुणिक अजातशत्रुको उपरिक बनाकर भेजा। अजातशत्रुने वहाँ रहकर बड़ी योग्यतासे शासन किया।

बिम्बसारके जीवन-कालमें ही अजातशत्रुने साम्राज्यकी बागडोर सँभाली और विस्तृत साम्राज्यकी व्यवस्थाके लिए कई परिवर्तन किये। उसकी दृष्टि मुख्यतः वैशाली गणराज्यकी विजय-पर केन्द्रित थी। अतः उसने गंगा और सोही नदियोंके संगमपर पाटलिग्राममें एक सुदृढ़ दुर्गका निर्माण कराया। दूसरे चम्पाको अपनी राजधानी बनाया। इस प्रकार चम्पाको भी मगध साम्राज्यकी राजधानी बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन्तु यह सौभाग्य कितने दिनों तक अक्षुण्ण रहा, इतिहासकार इस सम्बन्धमें प्रायः मौन हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि अजातशत्रु-जैसे महत्त्वाकांक्षी युवक सम्राट्के लिए चम्पाका विशेष महत्त्व था। वहाँ रहकर वह वैशालीके विरुद्ध

---

१. अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग ३, पृ. १०९८।

अभियानकी तैयारी करता रहा। यहाँसे तथा पाटलिग्रामके दुर्गसे अभियान करके उसने वैशाली-पर विजय भी प्राप्त की। इस विजयका परिणाम यह हुआ कि वैशालीके नौ, और मल्लोंके नौ गणराज्योंका ध्वंस हो गया। वे बिलकुल निःशक्त निर्बल हो गये। अजातशत्रुके लिए चम्पाका दूसरा महत्त्व आर्थिक दृष्टिसे था। भौगोलिक दृष्टिसे यह सुदूर पूर्वके व्यापारका मुख्य द्वार था। यहाँसे ताम्रलिप्ति होते हुए सुवर्णद्वीप तक व्यापार पोत चलते थे। चम्पाकी समृद्धिका मुख्य कारण यही था। चम्पापर अधिकार करनेका अर्थ था समृद्धिके स्रोतोंपर अधिकार। अजातशत्रुने इन स्रोतोंपर अधिकार करके मगधको खूब समृद्ध किया।

जिन दिनों अजातशत्रु चम्पामें रहकर शासन-सूत्रका संचालन कर रहा था, उन दिनों एक बार गणधर सुधर्मा स्वामी चम्पा पधारे। भगवान् महावीर और गौतम गणधरको निर्वाण प्राप्त हो चुका था। अब जैन संघके नेता सुधर्म केवली थे। जैसे ही अजातशत्रुने केवली भगवान्के आगमनका समाचार सुना, वह नंगे पाँवों उनके दर्शनोंके लिए गया।

उसके पुत्र उदायिने चम्पासे हटाकर पाटलिपुत्रको अपनी राजधानी बनाया।

यहाँ भगवान् वासुपूज्यकी मान्यता बहुत प्राचीन कालसे चली आ रही थी। इसलिए वासु-पूज्य तीर्थंकरके मन्दिर और मूर्तियाँ भी अति प्राचीन कालमें यहाँ पर थीं, ऐसे प्रमाण उपलब्ध होते हैं। यहाँ जयपुरके सरदार संघवी श्रीदत्त और उसकी पत्नी संघविन सुरजयीने युधिष्ठिर सं. २५५९ (ई. पू. ५४१) में भगवान् वासुपूज्यका एक मन्दिर बनवाया था।[1] ऐसी अनुश्रुति है कि नाथनगरमें जो दिगम्बर जैनमन्दिर है, यह वही पूर्वोक्त मन्दिर है।

क्षेत्र-दर्शन

भागलपुर शहरमें कोतवालीके पास दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशाला है। यहाँसे नाथनगर—जहाँ चम्पापुरी क्षेत्र है—लगभग तीन मील है और शहरके बाहरी अंचलमें है। यहाँ जानेके लिए साइकिल-रिक्शे, स्कूटर और ताँगे मिलते हैं।

नाथनगरकी सड़कसे बायीं ओर लगभग एक फर्लांग कच्चे मार्गसे दिगम्बर जैन धर्मशाला और उसके अन्दर मन्दिर है। धर्मशालाका गजद्वार पार करते ही क्षेत्रकी धर्मशाला है। यह दो-मंजिली है। उससे आगे बढ़नेपर क्षेत्रका कार्यालय मिलता है। फिर द्वार पार करके खुला चौक आता है। वहींपर प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है। इस मन्दिरमें पूर्व और दक्षिणकी ओर स्तूपनुमा अथवा मीनारनुमा दो प्राचीन मानस्तम्भ बने हुए हैं। ये लगभग ५० फुट ऊँचे हैं। इनमें एकमें ऊपर जानेके लिए तथा दूसरेमें नीचे जानेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कहा जाता है कि ये मानस्तम्भ २२०० वर्ष प्राचीन हैं। पहले यहाँ चारों दिशाओंमें मानस्तम्भ बने हुए थे। अनु-मानतः दो सौ वर्ष पूर्व भयानक भूकम्प आया था। उसमें दो मानस्तम्भ नष्ट हो गये। सन् १९३४ में पुनः भूकम्प आया। इसमें वर्तमान मानस्तम्भ भी फट गये थे। उनका जीर्णोद्धार सन् १९३८ में किया गया। पूर्ववाले मानस्तम्भके नीचेसे एक सुरंग जाती थी जो १८० मील लम्बी थी और वह सम्मेद शिखरपर चन्द्रप्रभ भगवान्की टोंकके पास निकलती थी। कुछ लोगोंका कहना है कि यह सुरंग मन्दारगिरि तक जाती थी। किन्तु भूकम्पमें जमीन धसक जानेसे यह सुरंग बन्द हो गयी।

स्तम्भोंके ९ खण्ड या भाग हैं। ऊपर चारों ओर ईरानी शैलीके कंगूरे बने हुए हैं। शीर्ष अठपहलू है। स्तम्भों के ऊपर कलश हैं। एक स्तम्भकी नीचेवाली कोठरीमें संस्कृत तथा अरबी भाषाके प्राचीन लेख उत्कीर्ण हैं। संवत् पढ़नेमें नहीं आता। सम्भवतः यह संवत् ११२१ है।

---

१. See the inscription in Major Francklin's site of Ancient Palibothra, pp. 16-17.

इस मुख्य मन्दिरमें वेदी चार मोटे स्तम्भोंपर आधारित है। मूलनायक भगवान् वासुपूज्य मूँगा वर्णके साढ़े तीन फुट ऊँचे और संवत् १९०४ में प्रतिष्ठित हैं। इसके अलावा ३ धातु प्रतिमाएँ और १ चरण हैं। चारों कोनोंपर चार मन्दरियाँ बनी हुई हैं।

दक्षिण-पश्चिम मन्दरीमें भगवान् वासुपूज्य श्वेतपाषाण, पद्मासनमें विराजे हैं। आगे सहस्र फणावलि युक्त भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति है जो सं. १७४५ में प्रतिष्ठित हुई है। १ धातुमूर्ति है।

पूर्वकी वेदीमें भगवान् वासुपूज्य, जिनकी अवगाहना पौने दो फुट है, १० धातु प्रतिमाएँ तथा ३ पाषाण प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इनमें २ प्राचीन हैं। एक प्रतिमाके साथ गोमेद यक्ष और अम्बिका यक्षिणी बैठी है। यक्षिणीकी गोदमें एक बालक है। दूसरा बालक खड़ा है। ऊपर नेमिनाथ विराजमान हैं। दूसरी प्रतिमा खड्गासन है।

उत्तर-पूर्वकी वेदीमें भगवान् वासुपूज्यके अतिरिक्त एक पाषाण प्रतिमा तथा ७ धातु प्रतिमाएँ हैं, जिनमें ३ तो चौबीसी हैं तथा एक प्रतिमा तीन चौबीसी की है।

दक्षिण-पूर्वकी वेदीमें भगवान् वासुपूज्य तथा १ धातु और १ पाषाण प्रतिमा है।

पुराने सरकारी कागजातोंमें मन्दिरका यह स्थान चम्पापुर राघोपुर टेकरेके रूपमें दर्ज है। इन कागजातोंके अनुसार यह मन्दिर ९०० वर्ष प्राचीन है। इस बातको सिद्ध करनेवाले कागजात अभी तक नाथनगरके स्व. मालजीके घरपर मौजूद हैं। उक्त ब्राह्मण चान्दबाई ब्राह्मणीका वंशज कहा जाता है, जिसे मुगल सम्राट् शाहजहाँने राखो बाँधनेके उपलक्षमें अपनी धर्म-बहन मान लिया था और निर्वाह के लिए आसपासका समूचा इलाका दे दिया था। इससे सम्बन्धित शाही हुक्मनामा अब उक्त ब्राह्मणके स्वर्गवास हो जानेके बाद उसके दामादके पास बताया जाता है। अबतक इस मन्दिरकी तथा कर्णगढ़के नीचेवाले मनकामनानाथके मन्दिरकी सारी चढ़ोतरी (चढ़ावा) वही ब्राह्मण लेता रहा था।

इस मन्दिर के पीछे एक मन्दिर और है जो सेठ घनश्यामदास सरावगी द्वारा सं. २००० में बनवाया गया था। इसमें विराजमान प्रतिमाएँ पुरातत्त्व और कलाकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन मूर्तियोंपर कोई लेख नहीं है, लांछन अवश्य है। मूर्तिलेख न होनेसे जन सामान्यमें यह धारणा प्रचलित है कि ये मूर्तियाँ चतुर्थ कालकी (भगवान् महावीरके समकालीन अथवा उनसे प्राचीन) हैं। किन्तु कुछ लोगोंमें यह धारणा भी बहुप्रचलित है कि ये मूर्तियाँ उपरिलिखित और ईसा पूर्व ५४१ में निर्मित वासुपूज्य स्वामीके मन्दिर की हैं। इसलिए ये भी उतनी ही प्राचीन हैं, जितना कि वह मन्दिर। इसके विरुद्ध दूसरी धारणा भी है और जो तथ्योंके अधिक निकट लगती है। वह यह है कि ये प्रतिमाएँ पहले चम्पानालेके मन्दिरमें विराजमान थीं जो यहाँसे लगभग डेढ़ मील दूर है। यह मन्दिर भी अत्यन्त प्राचीन था और दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंका सम्मिलित मन्दिर था। नीचे श्वेताम्बर मन्दिर था और ऊपर दिगम्बर समाजका। भूकम्प आनेसे मन्दिर धराशायी हो गया। किन्तु प्रतिमाओंको कोई हानि नहीं पहुँची। तब वे प्रतिमाएँ यहाँ लाकर विराजमान कर दी गयीं। इन प्रतिमाओंमें कई प्रतिमाएँ भगवान् आदिनाथकी हैं जो अत्यन्त प्रभावपूर्ण और कलात्मक हैं। मुख्य प्रतिमा या मूल नायक प्रतिमा सलेटी वर्ण पाषाणकी पद्मासनमें पीठ सहित चार फुट अवगाहनावाली है। पीठपर दो बैलोंका लांछन है। जटाएँ बँधी हुई पीछेकी ओर लहरा रही हैं। सिरके ऊपर पाषाणमें तीन छत्र बने हुए हैं। सिरके इधर-उधर दो यक्ष बने हुए हैं।

मूलनायक प्रतिमाके बायीं ओर ऋषभदेवकी एक दूसरी प्रतिमा है। यह भी श्याम वर्णकी है। इसकी अवगाहना डेढ़ फुट है। इसका जटाजूट बड़ा अद्भुत है, लगता है जैसे धारीदार ऊँची

अँगरेजी टोपी हो। नीचे बैलका लांछन है। दो स्त्री-पुरुष भक्तिमें हाथ जोड़े खड़े हैं। इधर-उधर पीछी और कमण्डलु रखे हैं। प्रतिमाके दोनों ओर चँवरवाहक खड़े हैं। सिरके ऊपरी भागमें दोनों ओर पारिजात पुष्पोंकी माला लिये गगनचारी दो देव हैं।

इस प्रतिमाके दायीं ओर दो फुट अवगाहनावाली श्याम वर्णकी ऋषभदेव प्रतिमा है। सिरपर जटाजूट है। नीचे एक स्त्री बालकको गोदमें उठाये हुए है। सम्भवतः यह यक्षिणी है। उसके एक ओर हाथी और दूसरी ओर बैल बने हुए हैं। सिरके दोनों ओर पारिजात पुष्पमाल लिये दो देवियाँ हैं। ऊपर छत्रत्रयी है। छत्रोंके नीचे तथा दायें-बायें आठ मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

इसके पासमें एक बादामी वर्णकी ऋषभदेवकी खड्गासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना लगभग साढ़े तीन फुट है। नीचे वृषभका चिह्न है। सिरपर पगड़ीनुमा जटाजूट है। नीचे धर्मचक्र है।

इस वेदीमें श्याम वर्णकी एक चौबीसी है तथा तीन मूर्तियाँ क्रमशः श्वेत, श्याम और हलकी गुलाबी सं. २४८०, १५९५ और सं. २४८० की हैं।

इन सभी प्रतिमाओंको निर्माण-शैली और भावाभिव्यंजना, इनका शिल्प-विधान और कलापक्ष सभी अत्यन्त समृद्ध और प्रभावक हैं। इनका पाषाण खुरदुरा है। पाषाणको देखकर विश्वास होता है कि इनका निर्माण कुषाण कालमें हुआ होगा। जिस मन्दिरमें ये प्रतिमाएँ पहले विराजमान थीं, वह बहुत प्राचीन था।

इस मन्दिरके बगलमें छोटा मन्दिर है। इसमें रक्तवर्णकी वासुपूज्य स्वामीकी एक फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। एक शिलाफलकमें २४ चरण बने हुए हैं जो २४ तीर्थंकरोंके हैं।

क्षेत्र-मन्दिरके सामने एक विशाल कम्पाउण्डमें एक मन्दिर है जो छपरावालोंका बीसपंथी मन्दिर कहलाता है। इस मन्दिरमें मूलनायक वासुपूज्यकी प्रतिमा श्यामवर्ण ४ फुट अवगाहना, पद्मासनवाली है जो सं. १९४७ में प्रतिष्ठित हुई है। इसके अलावा ४ श्वेत पाषाणकी, २ गुलाबी पाषाणकी तथा २३ धातुकी प्रतिमा हैं। एक प्राचीन चरण चम्पानालेके मन्दिरसे लाकर यहाँ विराजमान किये गये हैं और एक नवीन चरण हैं। बायीं ओर पद्मावतीकी मूर्ति है।

चम्पानालेका मन्दिर यहाँसे लगभग डेढ़ मील है। यह प्राचीन मन्दिर था। किन्तु जब भूकम्पमें मन्दिर गिर पड़ा तो दिगम्बर समाजने अपनी मूर्तियाँ लाकर नाथनगर मन्दिरमें विराजमान कर दीं। बादमें श्वेताम्बर समाजने मन्दिरका पुनः निर्माण कराकर उसे अपने अधिकार में ले लिया। मन्दिर सुन्दर बना है।

इसके निकट कर्णगढ़ है। वर्तमानमें गढ़ तो नहीं, मिट्टीका एक टीला है। कहते हैं, महाभारत-कालमें हुए महाराजा कर्णका गढ़ यहींपर था। इस किलेके उत्तरमें जैनमठ या मन्दिर है। यदि खुदाई की जाये तो इस क्षेत्रमें काफी प्राचीन जैन सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

पहले गंगा नगरसे लगी हुई बहती थी, किन्तु अब लगभग एक मील हट गयी है।

गंगा-तटपर पथारघाटी पर्वत है, जिसे-चौरासीमुनि कहते हैं। इस पहाड़पर चार-पाँच गुफाएँ हैं तथा पहाड़में उत्तरकी ओर ७-८वीं शताब्दीकी चित्रकारी है। जुंगीरा पहाड़ीपर प्राचीन शिलालेख तथा जैन तीर्थंकरोंके चिह्न मिलते हैं।

वार्षिक मेला

क्षेत्रपर कोई उल्लेख योग्य मेला नहीं भरता। भाद्रपद शुक्ला १४ को वासुपूज्य स्वामीके निर्वाणके उपलक्ष्यमें निर्वाणलाडू चढ़ता है।

क्षेत्रकी व्यवस्था

क्षेत्रका प्रबन्ध बंगाल-बिहार-उड़ीसा दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके तत्त्वावधानमें चलता है। छपरावालोंके मन्दिरका प्रबन्ध छपरावालोंके हाथमें है तथा भागलपुरके जैन मन्दिर और धर्मशालाकी व्यवस्था भागलपुरकी दिगम्बर जैन समाज करती है।

भागलपुर शहरका मन्दिर

यहाँ भगवान् वासुपूज्यकी मूलनायक प्रतिमा धातुकी पद्मासनमें है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९२९ में हुई थी। इस मन्दिरमें १४ पाषाणकी तथा २१ धातुकी प्रतिमाएँ हैं, एक चरण हैं तथा तीन प्रतिमाएँ चौबीसी की हैं। बायीं ओरकी चौबीसी सं. १५३४ की है। मध्यकी चौबीसीपर संवत् अंकित नहीं है तथा एक चौबीसी संवत् ११७३ की है।

ये तीनों मूर्तियाँ पटनाके बड़े मन्दिरसे लायी गयी थीं।

यहाँ मन्दिरमें भगवान् पार्श्वनाथकी एक फुट अवगाहनावाली श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ और सातिशय है। इसकी प्रतिष्ठा मसाढ़में हुई थी।

मन्दारगिरि

मार्ग

मन्दारगिरि क्षेत्र बिहार प्रदेशके भागलपुर जिले में भागलपुरसे ४९ कि. मी. दूर स्थित है। भागलपुरसे रेलगाड़ी जाती है। बसें भी जाती हैं। सम्मेदशिखरसे आनेवाले यात्रियोंको मधुवनसे गिरीडीह २२ कि. मी. बस या टैक्सी द्वारा, गिरीडीहसे रेल द्वारा वैद्यनाथ धाम ६९ कि. मी. (बीचमें मधुपुर स्टेशनपर ट्रेन बदलनी पड़ती है)। वैद्यनाथ धामसे बोंसी ७० कि. मी. बस द्वारा यात्रा करनी चाहिए। बोंसीके बस स्टैण्डसे दिगम्बर जैन धर्मशाला २ फर्लांग दूर है और बोंसी स्टेशनके सामने बनी हुई है। क्षेत्रके कार्यालयसे मन्दारगिरि पर्वत ३ कि. मी. दूर है। यह छोटी-सी पहाड़ी है, जो लगभग ७०० फुट ऊँची है।

तीर्थ-क्षेत्र

चम्पापुर क्षेत्रके वर्णनमें बताया जा चुका है कि मन्दारगिरिपर चम्पापुरीका मनोहर उद्यान था, जो प्राचीन चम्पानगरके बाह्य अंचलमें था। इस उद्यानमें भगवान् वासुपूज्यका दीक्षा-कल्याणक हुआ। और यहीं उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इस प्रकार मन्दारगिरिको दो कल्याणक मनानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसीलिए प्रागैतिहासिक कालसे यह पवित्र तीर्थक्षेत्र माना जाता रहा है। यह भी अनुश्रुति है कि भगवान् वासुपूज्यके एक गणधर मन्दरको यहींपर निर्वाण प्राप्त हुआ था।

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्र कार्यालयसे पर्वतकी ओर चलने पर लगभग एक फर्लांग आगे सेठ तलकचन्द कस्तूरचन्द बारामती वालोंका वीर सं. २४६१ में बनवाया हुआ कृष्ण व श्वेत पाषाणका एक दिगम्बर जैन मन्दिर है, जो किसी कारणवश पूरा नहीं बन सका है। कहते हैं, मन्दिरके निर्माण-कार्यमें उस कालमें ८५०००) व्यय हुए थे।

आगे चलनेपर एक तालाब मिलता है जिसको पापहारिणी कहते हैं। निश्चय ही उसे यह नाम भगवान् वासुपूज्यके कारण मिला है। मकर संक्रान्तिके दिन यहाँ वैष्णव लोगोंका मेला भरता है जो १५-२० दिन तक रहता है। सब लोग इस सरोवरमें स्नान करते हैं। इन दिनों सभी लोग पर्वतके ऊपर वासुपूज्य स्वामीकी चरण-वन्दना करने जाते हैं। आसपासके प्रदेशमें जैनेतरोंमें भी वासुपूज्य स्वामीकी मान्यता उसी प्रकार बहुप्रचलित है, जिस प्रकार सम्मेदशिखरके आसपासकी जनतामें पारसनाथकी मान्यता है।

पापहारिणी सरोवर पहाड़ीकी तलहटीमें है। इस तालाबको आदित्यसेनकी रानी कोना-देवीने बनवाया था। हर्षवर्धनकी मृत्युके बाद कन्नौज राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। इस अरा-जकताका लाभ उठाकर आदित्यसेन सातवीं शताब्दीमें मगधका शासक बन बैठा था।[1] इससे ज्ञात होता है कि अंग अब भी मगधके अधिकारमें था।

सरोवरसे आगे बढ़कर पहाड़ीपर कई प्राकृतिक कुण्ड बने हुए हैं, जिनके नाम हिन्दुओंने सीताकुण्ड, शंखकुण्ड आदि रख रखे हैं। पहाड़ीकी चढ़ाई एक मीलसे कुछ अधिक पड़ती है। चढ़नेके लिए पर्वतको काटकर कुछ सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। पहाड़ीके शिखरपर बड़ा दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसके गर्भगृहके द्वारके ऊपर पद्मासन प्रतिमा बनी हुई है। गर्भगृहमें एक गज ऊँची चबूतरानुमा वेदीपर वासुपूज्य भगवान्के प्राचीन चरण विराजमान हैं। श्री लक्ष्मण वासुदेव कारवाणे दि० जैन सांगली निवासीने सं. १९५७ में वेदीका जीर्णोद्धार कराया। गर्भगृहकी दीवाल साढ़े तीन हाथ चौड़ी है। मन्दिर बहुत प्राचीन है। यह अनुमानतः १००० वर्ष या उससे भी प्राचीन होना चाहिए। मन्दिरके ऊपर डबल शिखर है अर्थात् एक शिखरके ऊपर दूसरा शिखर बना हुआ है। शिखरके चारों ओर स्तूपाकार चार चैत्य बने हुए हैं। उनमें मूर्ति नहीं हैं।

बड़े मन्दिरके निकट शिखरबन्द छोटा मन्दिर है। इसमें तीन प्राचीन चरण-युगल बने हुए हैं। सेठ मथुरादास पदमचन्द आगराने वि. संवत् १९८५ में इसकी वेदीका जीर्णोद्धार कराया था। मन्दिरके द्वारपर जैन प्रतिमा थी, किन्तु वह तोड़ दी गयी। उसका स्थान बना हुआ है। इस मन्दिरके चबूतरेके नीचे एक कुण्ड बना हुआ है जो सम्भवतः मन्दिरके निर्माणके समय जलके लिए बनाया गया होगा। किन्तु अब लोग उसे आकाशगंगा कहते हैं।

छोटे मन्दिरसे जरा-सा आगे बढ़नेपर एक शिलाके नीचे चरण बने हुए हैं। यह विशाल शिला इस प्रकार रखी हुई है जिससे छोटी सी खुली हुई गुफा बन गयी है। इस गुफाका जीर्णोद्धार श्री लक्ष्मीबाई अग्रवालकी ओरसे श्रीरामचन्द्र धर्मचन्द्र जैनने वि. संवत् २४९१ में कराया गया। पहाड़ीके नीचे चीर और जमुनिया नामकी दो छोटी-छोटी बरसाती नदियाँ हैं जो कुछ आगे जाकर मिल गयी हैं।

यह पहाड़ी पहले सम्बलपुरके जमींदारोंके अधिकारमें थी। इससे क्षेत्रपर बड़ी अव्यवस्था रहती थी। क्षेत्र उस समय तक विशेष प्रकाशमें भी नहीं आया था। अतः यात्रियोंका आवागमन भी बहुत कम था। क्षेत्रकी दुर्दशा देखकर भागलपुरके एक उत्साही धर्मात्मा सज्जन बा. हरनारायणजीने क्षेत्र सम्बन्धी सारी जानकारी सन् १९११ में भारतीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी बम्बईको दी। कमेटीने फौरन अपने एक इन्स्पेक्टरको सम्बलपुरके जमींदारोंसे मिलनेके लिए भेजा। इन्स्पेक्टरने उन जमींदारोंसे मिलकर क्षेत्रकी व्यवस्था और जीर्णोद्धारकी अनुमति माँगी। किन्तु उन्होंने अनुमति नहीं दी, बल्कि मनमानी माँगें उनकी ओरसे पेश हुईं। क्षेत्रपर

---

१. Corp. Inscription Ind. Vol. III, p. 201.

दिगम्बर जैन समाजका अधिकार किस प्रकार हो, इसकी चिन्ता बराबर बनी रहती थी। उस समय बा. सखीचन्दजी कैसरे हिन्द उस प्रान्तके जनरल पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। कमेटीने इस मामलेमें उनसे सम्बन्ध स्थापित किया और लिखा-पढ़ी की। बा. हरनारायणजी भी उनसे मिले। तब बड़े प्रयत्नोंके बाद वे जमींदार पर्वतके मन्दिरोंकी रजिस्ट्री उक्त क्षेत्र कमेटीके नाम करनेको राजी हुए और २० अक्तूबर १९११ को पहाड़के मन्दिरों आदिकी रजिस्ट्री उक्त क्षेत्र कमेटीके नाम करा ली गयी। इस प्रकार इस क्षेत्रपर दिगम्बर जैन समाजका अधिकार हो गया। आजकल क्षेत्रकी व्यवस्थाका सारा कार्य भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी बम्बईकी ओरसे बिहार प्रान्तीय दिगम्बर जैन तीर्थ कमेटी करती है।

मन्दारगिरिके सम्बन्धमें मि. बेगलरने लिखा है कि पहाड़के ऊपरकी रचना श्रावकों या जैनियोंसे सम्बन्धित है।[1] यहाँ एक कमरेमें चरण विराजमान हैं।

पहाड़के ऊपर तथा नीचे तलहटीमें मकानोंके अवशेष बिखरे पड़े हैं। ये अवशेष चोल राजाओं—विशेषतः छत्रसिंह राजाके कालके हैं।[2]

क्षेत्रपर सम्बलपुरके जमींदारोंका अधिकार कबसे, कितने वर्ष रहा, यह तो ज्ञात नहीं है किन्तु उन्होंने अपने अधिकार-कालमें पर्वतपर कई स्थानोंपर नरसिंह, वामन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और हिन्दू देवियोंकी मूर्तियाँ खुदवा दीं और हिन्दुओंमें यह विश्वास प्रचलित कर दिया कि विष्णुने वासुकिको जिस मन्दराचलसे लपेटकर उसकी रई बनायी और समुद्र-मन्थन किया, वह मन्दर पर्वत यही है। इसके लिए पर्वतपर वासुकि नागकी रगड़के निशान भी बड़े कौशलसे खुदवा दिये।

हिन्दू शास्त्रोंमें समुद्र-मन्थनका वर्णन मिलता तो इसी रूपमें है। उनमें[3] कहा है कि अमृतकी इच्छासे देवों और दैत्योंने समुद्र-मन्थन करनेके लिए परस्परमें सन्धि कर ली। वासुकि नागको भी अमृतका कुछ भाग देनेका आश्वासन देकर उसे नेति (रस्सी) बननेके लिए तैयार कर लिया। मन्दराचलको मथानी (रई) बना। भगवान् विष्णुने कच्छपका रूप धारण करके मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण कर लिया। दैत्य और असुरोंने वासुकिको मुखकी ओरसे पकड़ा और देवताओंने उसे पूँछकी ओर से पकड़ा। समुद्रमें मथानी चलने लगी। उससे चौदह रत्न निकले—विष, कामधेनु, उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, कौस्तुभ मणि, कल्पवृक्ष, अप्सराएँ, लक्ष्मी, वारुणीदेवी, अमृत आदि।

पुराणोंकी इस कथासे इतना ही पता चलता है कि मन्दराचलको मथानी बनाया गया था। किन्तु मन्दराचल कौनसा है, यह निर्णय करना शेष है।

वाराहपुराण[4] में बताया है कि मन्दर गंगाके दक्षिणमें स्थित है और विन्ध्याचलकी शृंखलामें है। यह गढ़वालमें सुमेरुके उत्तरमें हिमालय पर्वतका एक भाग है।

महाभारत (अनुशासन पर्व अ. १९) हिमालय शृंखलाके अलावा और दूसरा मन्दराचल नहीं मानता। कुछ पुराणोंमें बदरिकाश्रम जिस पर्वतपर है तथा जिसपर नर-नारायणका मन्दिर है, उसे मन्दराचल बताया है। किन्तु महाभारत (वनपर्व अ. १६२-१६४) में बताया है कि मन्दर पर्वत पूर्व में है। वह गन्धमादनका एक भाग है और बदरिकाश्रमके उत्तर में है।

---

१. Archaeological urvey of India, Vol. Viii। २. Martin's Eastern India, Vol. II asbihari Bose's, Mandar Hill in Ind. Ant. 1, p. 46। ३. कूर्मपुराण १।१, वामनपुराण अ. ९०। श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ८, अ, ६।९। ४. वराहपुराण, अ. १४३।

वामनपुराण (अ. ४४) के अनुसार पार्वतीसे विवाह करनेके बाद महादेव मन्दराचलपर रहे थे।

इन पुराणोंके उल्लेखोंसे यह स्पष्ट है कि मन्दराचल हिमालय पर्वतका ही एक भाग था और वह बदरिकाश्रम (बद्रीनाथ) वाला या उसका निकटवर्ती पर्वत था। जिस मन्दराचलको मथानी बनानेकी कथा हिन्दू पुराणोंमें दी गयी है, उसका कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध भागलपुर जिलेके मन्दारगिरिके साथ नहीं है, यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है। वामनपुराणके साक्ष्यसे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि महादेवका वास अधिकांशतः हिमालयमें ही रहा है और इसीलिए वे मन्दराचलपर रहे थे, क्योंकि वह भी हिमालयमें था। भागलपुर जिलेके मन्दारगिरिपर महादेवका निवास कभी रहा हो, ऐसा कोई उल्लेख हिन्दू पुराणोंमें देखनेमें नहीं आया।

ऐसी दशामें यह अवश्य चिन्तनीय है कि हिन्दू जनताने मन्दारगिरिको कब और कैसे तीर्थके रूपमें मानना प्रारम्भ कर दिया।

तलहटीका मन्दिर

क्षेत्रपर धर्मशाला बनी हुई है, जिसमें २० कमरे हैं। क्षेत्रका कार्यालय इसीमें स्थित है। सामनेकी ओर शिखरबद्ध मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर बहुत भव्य है। इस मन्दिरमें मूलनायक भगवान् वासुपूज्यकी पद्मासन प्रतिमा मूंगेके वर्णकी है, ४ फुट अवगाहनावाली है। उसके आगे धातुकी १ पद्मासन और १ खड्गासन प्रतिमा है तथा २ चरण-युगल हैं। मूलनायक प्रतिमाकी प्रतिष्ठा वीर सं. २४६९ में हुई थी।

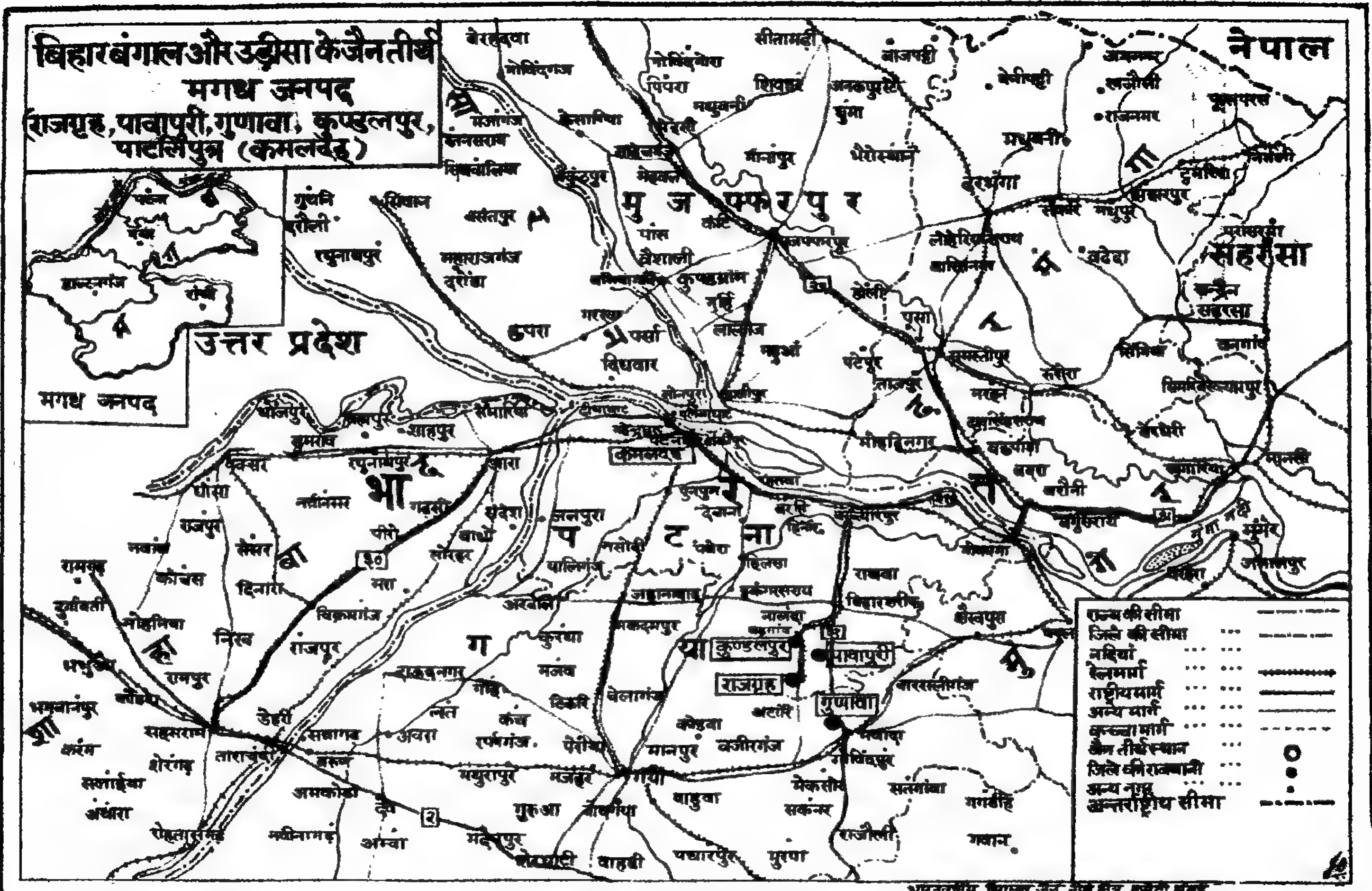
मगध जनपद

राजगृही

पावापुरी

गुणावा

पाटलिपुत्र (कमलदह)



१. भारतके महासर्वेक्षकको अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्रपर आधारित।

© भारत सरकारका प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

२. इस मानचित्रमें दिये गये नामोंका अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रोंसे लिया गया है।

राजगृही

कल्याणक क्षेत्र

राजगृही सहस्रों वर्षोंसे विख्यात तीर्थक्षेत्र है। यहाँ बीसवें तीर्थंकर भगवान् मुनिसुव्रतनाथके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान ये चार कल्याणक मनाये गये। भगवान्के जन्मके सम्बन्धमें 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थसे निम्नलिखित सूचनाएँ प्राप्त होती हैं—

रायगिहे मुणिसुव्वयदेवो पउमासुमित्तराएहिं।
अस्सजुदबारसीए सिदपक्खे सवणभे जादो ॥४।५४५

अर्थात् भगवान् मुनिसुव्रतनाथ राजगृह नगरमें माता पद्मा[1] और पिता सुमित्र राजासे आसोज शुक्ला द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

राजा सुमित्र राजगृहके नरेश थे, हरिवंशके शिरोमणि थे और काश्यपगोत्री थे।

कुमार मुनिसुव्रत जब यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए, तब पिताने तीन ज्ञानधारी अपने पुत्रका राज्याभिषेक किया। राज्य-शासन करते हुए मुनिसुव्रतका काफी काल व्यतीत हो गया। एक दिन बरसातके मौसममें घनघोर घटाएँ घिर रही थीं, घन-घटा भीषण गर्जन कर रही थी। ऐसे मस्तीके आलममें यागहस्तीने आहार बन्द कर दिया। मुनिसुव्रत तो अवधिज्ञानके द्वारा हाथीकी विचारधाराको जानते थे। उन्होंने हाथीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताते हुए उसकी वर्तमान विचारधारा बतायी। किन्तु इससे स्वयं उनके ही मनपर एक अद्भुत प्रभाव पड़ा। उनके मनमें संसार, शरीर और इन्द्रिय-भोगोंके प्रति वैराग्य जागृत हो गया। उन्होंने युवराज विजयका राज्याभिषेक करके उसे राज्य सौंप दिया और स्वयं राजपाट और घर-बार छोड़कर देव-शिविकामें बनकी ओर चल दिये। वहाँ उन्होंने 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर केशलोंच किये और मुनि-दीक्षा ले ली।

इस सम्बन्धमें आचार्य यतिवृषभ 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें लिखते हैं—

वइसाहबहुल दसमी अवरण्हे समणभम्मि णीलवणे।
उववासे तदियम्मि य सुव्वददेवो महावदं धरदि ॥४।६६३

अर्थात् मुनि सुव्रतदेवने वैशाख कृष्ण दशमीको अपराह्ण कालमें श्रवण नक्षत्रके रहते नीलवनमें तृतीय उपवासके साथ महाव्रतोंको धारण किया।

इस प्रकार भगवान्का दीक्षा कल्याणक राजगृहके बाहर वनमें मनाया गया।

दीक्षा लेते ही भगवान्को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। इस प्रकार वे मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान चार ज्ञानके धारी हो गये। वे आत्मिक साधनामें लीन हो गये। एक बार वे राजगृह नगरमें पारणाके निमित्त भी पधारे। वृषभसेन राजाने उन्हें शुद्ध आहार दिया। जब इस तरह तपश्चरण करते हुए ग्यारह माह बीत गये, तब भगवान् पुनः अपने दीक्षावनमें पहुँचे। वहाँ वे एक चम्पक वृक्षके नीचे स्थित होकर दो दिन तक उत्तम ध्यानमें लीन रहे। उनके घाति कर्मोंके बन्धन टूट गये और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

---

१. उत्तरपुराण ६७।२० के अनुसार माताका नाम सोमा था।

इस सम्बन्धमें 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें निम्नलिखित सूचना उपलब्ध होती है—

फग्गुण किण्हे सट्ठी पुव्वण्हे सवणभे य णीलवणे।
मुणिसुव्वयस्स जादं असहायपरक्कमं णाणं ॥४।६९७

अर्थात् मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरको फाल्गुन कृष्णा षष्ठीके पूर्वाह्णमें श्रवण नक्षत्रके रहते नीलवनमें असहाय पराक्रमरूप केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

देवों और इन्द्रोंने तब आकर भगवान्‌के ज्ञानकी पूजा की और केवलज्ञान कल्याणकका उत्सव किया।

इस प्रकार राजगृहमें भगवान् मुनिसुव्रतनाथके चार कल्याणक मनाये गये।

सिद्धक्षेत्र

यह क्षेत्र सिद्धक्षेत्र या निर्वाणक्षेत्र भी है। यहाँके पाँच पहाड़ोंसे अनेक मुनियोंने मुक्ति प्राप्त की है। अतः सिद्धक्षेत्रोंमें इसकी भी गणना की जाती है। आचार्य पूज्यपादने 'निर्वाण भक्ति' में इस सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख किया है जो इस प्रकार है—

'द्रोणीमति प्रवलकुण्डलमेढ्रके च, वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रिवलाहके च, विन्ध्ये च पोदनपुरे वृषदीपके च ॥ १९
सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे, दण्डात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ।
ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः, स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ॥ ३०

ये सब निर्वाण भूमियोंके नाम हैं जहाँसे कर्ममल नष्ट करके साधुओंने सुगति (मुक्ति) प्राप्त की है। इन निर्वाण भूमियोंमें राजगृहीके पाँच पर्वतोंमें वैभार, ऋषिगिरि, विपुलगिरि और बलाहक भी गिने गये हैं।

पाँच पर्वतोंके नामोंमें मत-वैविध्य रहा है। इसलिए आचार्य पूज्यपादने राजगृह नाम न देकर पर्वतोंके नाम दिये हैं। इससे लगता है कि उनके समयमें ये ही नाम प्रचलित रहे होंगे। ये पर्वत सिद्धक्षेत्र रहे हैं जहाँसे अनेक मुनियोंने सिद्धपद प्राप्त किया। यहाँ ऐसे कुछ मुनियोंसे सम्बन्धित घटनाओंका उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है—

(१) एक बार हेमांगद देशमें राजपुर नगरके शहर सुरमलय उद्यानमें भगवान् महावीर पधारे। राजपुरनरेश जीवन्धरकुमार भगवान्‌का आगमन सुनकर बड़ा हर्षित हुआ। वह भगवान्‌का दर्शन करनेके लिए उद्यानमें पहुँचा और उनका उपदेश सुनकर उसके मनमें वैराग्यकी भावना जागृत हो गयी। वह समवसरणसे राजमहल पहुँचा और महारानी गन्धर्वदत्ताके पुत्र वसुन्धरकुमारको विधिपूर्वक राज्य सौंप दिया। फिर सबसे अनुमति लेकर जीवन्धर नरेशने नन्दाढ्य आदि भाइयों और सम्बन्धियोंके साथ परिग्रहका त्याग करके मुनि-दीक्षा ले ली। जीवन्धर महाराजकी माता और स्वर्गीय सत्यन्धर महाराजकी महादेवी विजया तथा अन्य रानियोंने चन्दना आर्या के समीप उत्कृष्ट संयम धारण कर लिया।

कालक्रमसे महावीर प्रभु विहार करते हुए राजगृह पधारे। मुनि जीवन्धर भी भगवान्‌के संघके साथ थे। इस समय वे श्रुतकेवली थे। उन्होंने घोर तप किया और चार घातिया कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया। कुछ समय तक उन्होंने भगवान्‌के साथ विहार किया।

जब भगवान् महावीर पावामें पहुँचे और वहाँ योग निरोध कर निर्वाण प्राप्त किया, उस समय केवली जीवन्धर स्वामी राजगृहके विपुलाचलपर विराजमान थे। उन्होंने वहींपर योग

निरोध कर शेष समस्त कर्मोंका नाश किया और अनन्त, अविनाशी सुखदा मुक्ति प्राप्त की।[1]

(२) एक दिन राजगृहके राजा श्रेणिक विपुलाचलपर विराजमान भगवान् महावीरके दर्शनोंके लिए गये। जाते समय उन्होंने एक वृक्षके नीचे शिलातल पर विराजमान धर्मरुचि नामक मुनिराजको देखा। श्रेणिकने उनकी वन्दना की। किन्तु मुनिराजकी मुखमुद्रा कुछ विकृत हो रही थी, अतः श्रेणिकको कुछ शंका हुई। उन्होंने भगवान्के पास आकर और दर्शन करके गौतम गणधरसे पूछा—प्रभो ! मैंने एक तपस्वी मुनिके अभी दर्शन किये थे, वे कौन हैं, मेरे मनमें यह जाननेकी जिज्ञासा है।

यह प्रश्न सुनकर गौतम गणधरने बताया—चम्पा नगरीमें राजा श्वेतवाहन राज्य करता था। भगवान्का उपदेश सुनकर उसे वैराग्य हो गया और अपने पुत्रका राज्याभिषेक कर मुनि-दीक्षा ले ली। उनके धर्म-प्रेमको देखकर लोगोंने उनका नाम धर्मरुचि रख दिया। आज ये मुनि एक मासके उपवासके बाद नगरमें भिक्षाके लिए गये थे। वहाँ तीन मनुष्य इनके पास आये। उनमें एक व्यक्ति जो लक्षण शास्त्रका जानकार था, बोला—"इन मुनिराजके लक्षण तो राजाओं-जैसे हैं, किन्तु ये भिक्षाके लिए भटकते फिरते हैं।" इसके उत्तरमें दूसरे व्यक्तिने कहा—"ये वास्तवमें राजा ही थे। किन्तु इन्हें वैराग्य हो गया, अतः ये राज्यका भार अपने बालक पुत्रको सौंपकर मुनि हो गये हैं।" यह सुनकर तीसरे व्यक्तिने कहा—"इनके तपसे लाभ क्या है ? इसने लोकव्यहारसे शून्य बालकको राज्य सौंप दिया है और स्वयं अपनी स्वार्थ-स्थितिमें लगा हुआ है। बेचारे बालकको मन्त्री आदिने बन्धनोंमें जकड़ रखा है और राज्यको मिलकर लूट रहे हैं।" श्रेणिक ! तीसरे मनुष्यकी बात सुनकर उन मुनिराजके मनमें रागद्वेषके विचारोंकी भयानक आँधी चल रही है। यदि आगे अन्तर्मुहूर्त तक ऐसी ही स्थिति रही तो वे नरकआयुका बन्ध करनेके योग्य हो जायेंगे। इसलिए राजन् ! तुम जाकर उन मुनिराजको समझाओ कि वे पापध्यान छोड़ दें। उनका स्थितिकरण हो जायेगा तो उनका कल्याण भी हो जायेगा।

गौतम गणधरके वचन सुनकर महाराज श्रेणिक उन मुनिराजके पास पहुँचे और उन्हें समुचित ढंगसे प्रतिबोध दे आये। मुनिराज भी सम्हलकर आत्म-ध्यानमें लीन हो गये और शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्मोंका विनाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तमें निर्वाण प्राप्त किया।

(३) राजगृह नगर में सेठ अर्हद्दास रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम जिनदासी था। उनके एक सुलक्षण, सुदर्शन पुत्र हुआ जिसका नाम जम्बूकुमार रखा गया। अनावृत्त देव उसकी पूजा करता था।

जिस दिन (कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम प्रहरमें) भगवान् महावीरका निर्वाण हुआ, उसी दिन महावीर स्वामीके मुख्य गणधर गौतम स्वामीको केवलज्ञान हो गया। वे सुधर्म आदि गणधरोंके साथ विहार करते हुए राजगृह पधारे और विपुलाचल पर्वतपर आकर विराजमान हुए। गौतम स्वामीके आगमनका समाचार सुनकर श्रेणिक राजाका पुत्र राजगृह नरेश कुणिक परिवार सहित वहाँ आया और प्रभु गौतमसे उपदेश सुनकर कुछ नियम व्रत लिये। इसी अवसरपर श्रेष्ठी-पुत्र जम्बूकुमार भी आया। उसने उपदेश सुनकर और विरक्त होकर दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। किन्तु बन्धु-बान्धवोंने उसे समझाया कि कुछ वर्ष ठहर जाओ, उस समय हम भी

---

१. उत्तरपुराण ७५।६८५-६८७। घातिकर्माणि विध्वस्य जनित्वा गृहकेवली। सार्धं विहृत्य तीर्थेशा तस्मिन्मुक्तिमधिष्ठिते ॥ विपुलाद्रौ हताशेषकर्माशर्माग्रमेष्यति। इष्टाष्टगुणसम्पूर्णो निष्ठितात्मा निरंजनः ॥

तुम्हारे साथ दीक्षा ग्रहण करेंगे। बान्धवोंकी बात मानकर जम्बूकुमारने उस समय दीक्षा लेनेका विचार स्थगित कर दिया।

अब परिवार-जनोंने जम्बूकुमारकी विराग-वृत्ति देखकर उन्हें मोहपाशमें बाँधनेका आयोजन किया। उन्होंने राजगृहके ही सेठ सागरदत्त, सेठ कुबेरदत्त, सेठ वैश्रवणदत्त और सेठ धनदत्तकी रूपवती पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री और रूपश्री नामक कन्याओंके साथ जम्बूकुमारका विवाह कर दिया। रंगभवन पुष्पमालाओंसे अलंकृत था; रत्नचूर्णसे रंगावली की गयी थी। दीपाधारोंमें सुगन्धित तेलके दीप आलोकित थे। सुगन्धित द्रव्योंके धूम्रने कक्षमें स्वप्नलोककी सी सृष्टि कर दी थी।

वह पृथ्वी-तल पर बैठा हुआ था। उसके पास स्वप्न-लोक की परी-सी दिखाई देनेवाली वधुएँ बैठी थीं। माता यह देखनेके लिए कहीं छिपकर खड़ी थी कि मेरा पुत्र इन रूप-बालाओंके पाशमें फँसता है या नहीं।

उसी समय पोदननरेश विद्युद्राजका पुत्र विद्युत्प्रभ धन चुरानेके लिए वहाँ आया। यह विद्युत्प्रभ अपने बड़े भाईसे कुपित होकर पाँच सौ योद्धाओंके साथ घर त्याग कर निकल पड़ा था और विद्युच्चोर नामसे कुख्यात था। वह ज्यों ही कमरेमें घुसा, उसने जम्बूकुमारकी माताको जागता हुआ पाया। उसने मातासे उसके जागनेका कारण पूछा तो उसने विद्युच्चोरको यथार्थ बात बता दी और कहा—"मेरे यही एकमात्र पुत्र है। वह सुबह ही दीक्षा लेना चाहता है। यदि तू उसे उसके संकल्पसे विरत कर सके तो तुझे मैं यथेच्छ धन दूँगी।" विद्युच्चोरने यह स्वीकार कर लिया और वह सीधा वहीं जा पहुँचा जहाँ जम्बूकुमारको नव-वधुएँ समझा रही थीं। विद्युच्चोरने भी उसे संसारके भोगोंकी ओर नाना युक्तियों से आकर्षित करना चाहा। किन्तु जम्बूकुमारपर किसीका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि जम्बूकुमारकी बातोंसे प्रभावित होकर उसकी माता, वधुएँ और वह चोर सभी लोग भोगोंसे विरक्त हो गये और प्रातःकाल होनेपर विपुलाचल पर्वतपर जा पहुँचे। वहाँ सुधर्माचार्यसे सबने दीक्षा ले ली। अनन्तर जब सुधर्माचार्यको विपुलाचलसे निर्वाण प्राप्त हुआ, उसी दिन वहींपर जम्बूस्वामीको केवलज्ञान प्राप्त हुआ।[1]

इसके बाद जम्बूस्वामी चालीस वर्ष तक पृथ्वीपर विहार कर धर्मोपदेश देते रहे। अन्तमें वे अघातिया कर्मोंका नाश कर मुक्त हुए।

वीरकवि कृत 'जम्बूसामिचरिउ' में इस सम्बन्धमें इस प्रकार उल्लेख है—

विउलइरि सिहरि कम्मट्ठ चत्तु।
सिद्धालय सासय सोक्खपत्तु॥ सन्धि १०, कडवक २४

इसी प्रकार कवि राजमल्लने 'जम्बूस्वामीचरितम्' में लिखा है—

ततो जगाम निर्वाणं केवली विपुलाचलात्।
कर्माष्टकविनिर्मुक्तः शाश्वतानन्द-सौख्यभाक्॥

इन दोनों ग्रन्थोंके अनुसार जम्बूस्वामीका निर्वाण विपुलाचलसे[2] हुआ।

---

१. उत्तरपुराण, ७६।११८-१२०। २. प्राकृत निर्वाण काण्डमें जम्बूस्वामीके निर्वाण स्थानके सम्बन्धमें कुछ अन्तर मिलता है। उसमें यह पाठ है—'जंबु मुणिन्दो वन्दे णिव्वुइ पत्तो वि जंबु वण गहणे।' इसमें जिस जम्बु वनका उल्लेख है, वह विपुलाचलपर नहीं मिलता, न वहाँ होनेका उल्लेख ही मिलता है। अतः कुछ विद्वान् 'जम्बु वन मथुरामें था' यह मानकर चौरासीको जम्बूस्वामीका निर्वाण क्षेत्र मानते हैं।

(४) उज्जयिनी नगरीका राजा धृतिषेण था। उसकी रानीका नाम अमलयती था। उन दोनोंके चण्डप्रद्योत नामक पुत्र था। राजाने चण्डप्रद्योतको शिक्षा देनेके लिए विन्यातटवासी कालसन्दीव नामक विद्वान्को नियुक्त कर दिया, जो अठारह भाषाओंका ज्ञाता था। गुरुने अपने राजकुमार शिष्यको सभी भाषाएँ सिखायीं। शिष्यने सत्रह लिपियाँ तो सीख लीं, किन्तु यवन लिपि नहीं सीख सका। एक दिन गुरुको क्रोध आ गया। उन्होंने चण्डप्रद्योतके सिरमें लात मार दी। इसपर राजकुमारको भी क्रोध आ गया, बोला—"तुमने मेरे सिरमें लात मारी है। राजा बननेपर मैं कुठारसे तुम्हारी टाँगें काटूँगा।" गुरु बोले—"कुमार! राजा बननेपर तू मेरे पैर का पट्टबन्ध करेगा।"

कुछ समय पश्चात् कालसन्दीवने मुनि श्रुतसागरसे मुनि-दीक्षा ले ली। चण्डप्रद्योत राजा बन गया। एक बार एक यवन नरेशने राजा चण्डप्रद्योतको यवन-लिपिमें पत्र लिखा। किन्तु उज्जयिनीमें यवन-लिपिको समझनेवाला कोई नही था। तब राजाने उस पत्रको पढ़ा और उसका अर्थ समझ लिया। राजाने तब आज्ञा दी कि "तुम लोग विन्यातटपर जाकर मेरे गुरु कालसन्दीवको लिवाकर लाओ।" दूत गये और अनुनय-अनुरोध करके कालसन्दीव मुनिको लिवा लाये। जब कालसन्दीव आये, तब राजाने गुरु-भक्तिवश गुरुके चरणोंपर कुंकुम चर्चा, उनके दोनों चरणोंपर गाजे-बाजे और वैभवके साथ अष्टापद-मय पट्ट बाँधा, सुगन्धित पुष्प चढ़ाये और उनकी पूजा की। फिर मन, वचन, कायसे उनके चरणोंमें नमोऽस्तु करके बोला—"भगवन्! मुझे दीक्षा देने की कृपा करें।" तब गुरुने उसे मुनि-दीक्षा दी और उसका नाम श्वेतसन्दीव रख दिया।

एक बार गुरु अपने शिष्यके साथ विहार करते हुए राजगृह पहुँचे। उस समय विपुलाचलपर भगवान् महावीरका समवसरण आया हुआ था। गुरु और शिष्य भगवान्के दर्शन करनेके लिए विपुलाचलपर पहुँचे। समवसरणके बाहर राजा श्रेणिक मिल गया। वह श्वेतसन्दीवको देखकर बोला—"नाथ! आपने किनसे दीक्षा ली है?" श्वेतसन्दीव बोले—"राजन्! मेरे गुरु तो महावीर भगवान् हैं। उनके सिवाय और कोई मेरा गुरु कैसे बन सकता है।" इतना कहते ही उनका कुन्द-जैसा धवल शरीर जले हुए अंगारे-जैसा हो गया। यह देखकर श्वेतसन्दीवको बड़ा विस्मय हुआ। वह गौतम गणधरके पास गया। उन्होने कहा—"गुरु-निन्हवके महान् दोषके कारण तुम्हारा वर्ण कृष्ण हो गया है। तुम जाकर गुरुसे प्रायश्चित्त लो।" वह गुरुके पास गया। उसने शुद्ध हृदयसे प्रायश्चित्त लिया और घोर तप किया। फलतः श्वेतसन्दीवको केवलज्ञान हो गया। अन्तमें निर्वाण-पद प्राप्त किया।[1]

(५) मगधमें सुप्रतिष्ठपुर नगर था। नगरके बाहर उद्यानमें सागरसैन मुनि ठहरे हुए थे। एक सियार उन्हें खानेके लिए आया। मुनिने निकट भव्य जानकर उसे उपदेश दिया और उससे कहा—"तू रात्रि-भोजनका नियम ले ले। तेरा कल्याण हो जायेगा।" सियारने नियम ले लिया। एक दिनकी बात है। गर्मीके दिन थे। सियारको प्यास लगी। एक बावड़ीमें वह पानी पीने उतरा किन्तु वहाँ अँधेरा देखकर उसने समझा कि रात हो गयी। वह लौट आया। बाहर प्रकाश देखा तो वह फिर नीचे उतरा और रात समझकर वापस आ गया। इसी तरह करते-करते उसके प्राण निकल गये।

वह मरकर उसी नगरमें धनमित्र सेठके घरमें पुत्र हुआ। प्रीतिंकर नाम रखा गया। धनकी कोई कमी नहीं थी। बड़ा होनेपर उसने भी खूब धन कमाया। एक दिन मुनिके उपदेशसे उसे

१. हरिषेण कथाकोष, कथा २२।

वैराग्य हो गया। वह विपुलाचल पर भगवान् महावीरकी शरणमें जा पहुँचा और दीक्षा ले ली। फिर उन्होंने घोर तपस्या की और घातिया कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्तमें शेष अघातिया कर्मोंका नाश कर परम पद निर्वाण[1] प्राप्त किया।

(६) पाटलिपुत्र नगरका भूपाल विशाख था, विशाखा उसकी रानी थी और वैशाख नामक एक पुत्र था। वैशाख जब बड़ा हो गया तो उसका विवाह कनकश्री राजकुमारीके साथ हो गया। एक दिन मुनिदत्त मुनि आहारके लिए राजमहलमें आये। वैशाखने नवधा भक्तिके साथ उनका प्रतिग्रह किया और आहार दिया। आहार करनेके बाद मुनि जाने लगे तो राजकुमार भी अपनी पत्नीसे पूछकर उनके साथ चल दिया। लेकिन वह फिर लौटकर नहीं आया, उसने मुनि-दीक्षा ले ली। कनकश्री अपने पतिके वियोगमें तड़पती रही। वह इसी वेदनामें मर गयी और मरकर व्यन्तरी हुई।

मुनि वैशाख मासोपवास करते थे। जब वे पारणाके लिए जाते थे तो व्यन्तरी पूर्वजन्मके क्रोधके कारण आहारके समय उपसर्ग करती थी और उनका इन्द्रियवर्धन कर देती थी। एक बार विहार करते हुए वे राजगृह नगर पधारे और पारणाके लिए निकले। रानी चेलनाने उनको पड़गाहा और जब वे आहार लेने लगे, तभी व्यन्तरीने उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। रानीने उपसर्ग समझकर वस्त्रकी आड़ कर दी और निरन्तराय आहार हुआ।

मुनिराज वैशाख विपुलगिरिपर जाकर ध्यानारूढ़ हो गये और घातिकर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् यहींसे उन्होंने शेष कर्मोंका नाश कर मुक्ति प्राप्त की।[2]

(७) राजगृहमें जिनदत्त नामक एक धर्मात्मा सेठ था। वह प्रत्येक चतुर्दशीकी रात्रिमें श्मशानमें जाकर ध्यान किया करता था। एक बार अमितप्रभ और विद्युत्प्रभ नामक दो देवोंने उसकी परीक्षा ली किन्तु सेठ ध्यानसे विचलित नहीं हुआ। तब देवोंने प्रसन्न होकर उसे आकाशगामिनी विद्या दी और यह भी कह दिया कि "यदि तुम यह विद्या किसी दूसरेको भी देना चाहो तो दे सकते हो" उसकी विधि भी बता दी। जिनदत्त सेठ विद्या की सहायतासे अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दनाको जाने लगा।

एक बार सोमदत्त नामक मालीको भी सेठने विधि बता दी। सोमदत्त जिनदत्तके उपदेशानुसार श्मशानमें पहुँचा। उसने एक वटवृक्षकी डालमें एक छींका टाँग दिया। नीचे भूमिपर तेज धारवाले शस्त्रास्त्र गाड़ दिये, जिनके फलक ऊपरको निकले हुए थे। छींकेमें बैठकर सोमदत्त एक छुरीसे छींकेकी रस्सियोंको काटनेके लिए तैयार हुआ किन्तु नीचे तीक्ष्ण फलकवाले शस्त्रास्त्रोंको देखकर वह भयभीत हो गया। उसके मनमें संशय जागा—काश! विद्या सिद्ध न हुई तो मैं इन शस्त्रोंपर गिरकर मर जाऊँगा। यों विचार कर वह पेड़से नीचे उतर आया। वह फिर साहस करके चढ़ा और भयभीत होकर उतर आया।

विद्युच्चोर कहीं छिपा हुआ यह सब देख रहा था। उसने सोमदत्तसे बार-बार वृक्षपर चढ़ने-उतरनेका कारण पूछा। तब सोमदत्तने सेठ जिनदत्त द्वारा प्रदत्त विद्या सिद्ध करने और शस्त्रोंको देखकर डरनेकी बात बतायी। विद्युच्चोर साहसी था। वह बोला—"तुम्हें भय लगता है तो तुम हट जाओ, मैं विद्या-साधन करूँगा।" यों कहकर वह वृक्षपर चढ़ गया और बड़े निश्शंक भावसे मन्त्रोच्चारण करते हुए उसने छींके की रस्सियाँ काट डालीं। अन्तिम रस्सीके कटते ही देवी उपस्थित हुई और पूछा—"क्या आज्ञा है?" विद्युच्चोरने आज्ञा दी—"जहाँ जिनदत्त श्रेष्ठी हों,

---

१. आराधना कथाकोष, कथा १०८। २. हरिषेण कथाकोष, कथा ८।

वहाँ ले चलो।" विद्यादेवी उसे सुमेरु पर्वतपर ले गयी। विद्युच्चोरने जिनदत्त श्रेष्ठीको विनयसे नमस्कार किया और बोला—"आपकी कृपासे मुझे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हो गयी।" विद्या-साधनका इतिहास सुनकर श्रेष्ठीको सन्तोष हुआ। फिर वे दोनों मुनिराजके समीप गये। वहाँ मुनिराजका उपदेश सुनकर विद्युच्चरने मुनि-दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। मुनिराजने इसे भव्यात्मा और अल्पायु जानकर दीक्षा दे दी। विद्युच्चरने कठोर तप करके कर्मोंका नाश कर दिया और केवलज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् शेष अघातिया कर्मोंका नाश करके अक्षय मोक्ष-सुख प्राप्त किया।

इस सन्दर्भमें आराधना कथाकोषमें लिखा है—

केवलज्ञानमुत्पाद्य भक्त्या त्रैलोक्यपूजितः।
शेषकर्मक्षयं कृत्वा प्राप्तवान्मोक्षमक्षयम् ॥४६

—कथा ६

अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त करके त्रिलोकपूजित विद्युच्चर मुनिने शेष कर्मोंका नाश करके अक्षय मोक्ष प्राप्त किया।[1]

(८) पाण्डुक पर्वतपर तपस्या करके गन्धमादन मुनिको निर्वाण प्राप्त हुआ।[2]

(९) भगवान् महावीरके ग्यारह गणधर थे—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म, मण्डिकपुत्र, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचल भ्राता, मेतार्य और प्रभास। इनके सम्बन्धमें दिगम्बर और श्वेताम्बर साहित्यसे जो जानकारी प्राप्त होती है, वह उपयोगी समझकर यहाँ दी जा रही है। इनमें इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीनों सहोदर भ्राता थे। मण्डिकपुत्र और मौर्यपुत्र दोनोंकी माता एक थी।

ये सभी गणधर ब्राह्मण थे, उपाध्याय थे। ग्यारह अंग और चौदह पूर्वके ज्ञाता थे। वज्र-वृषभनाराचसंहननके धारी थे। सबके समचतुरस्र संस्थान था। गणधर बननेपर सबको आमर्षौषधि आदि आठ लब्धियाँ[3] प्राप्त हो गयी थी। दिगम्बर साहित्यमें इनके सम्बन्धमें विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता। केवल इन्द्रभूतिके सम्बन्धमें इतना परिचय मिलता है कि वह गौतम गोत्री विद्वान् ब्राह्मण था। उसके ५०० शिष्य थे। इन्द्र द्वारा महावीर भगवान्के समवसरणमें ले जानेपर मानस्तम्भको देखते ही उसका मान गलित हो गया और जाकर भगवान्के चरणोंमें दीक्षा ले ली। उनके कोटि-कोटि जन्मोंके कर्मबन्ध टूट गये। भगवान्की बीजपदी वाणीको सुनकर उन्होंने श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके पूर्व दिनमें बारह अंगों और चौदह प्रकीर्णकोंकी रचना की।

श्वेताम्बर साहित्यमें इन गणधरोंके सम्बन्धमें कुछ विस्तृत परिचय मिलता है। इनके सम्बन्धमें विशेष ज्ञातव्य इस प्रकार है—

इन्द्रभूति—माता प्रिथिवी, पिता वसुभूति, गोत्र गौतम, मगधमें गोर्वर ग्रामके रहनेवाले थे। इनके ५०० शिष्य थे। ये वेद-वेदांगके ज्ञाता थे। किन्तु इनके मनमें शंका थी कि जीव है या नहीं। इस शंकाका निवारण तीर्थंकर महावीरने किया था। उनकी दिव्यध्वनि इन्द्रभूतिके निमित्त-से उनकी शंकाके समाधान रूपमें प्रकट हुई थी। उनकी कुल आयु ९२ वर्ष की थी, जिसमें ५० वर्ष गृहस्थ अवस्थाके, ३० वर्ष छद्मस्थ दशामें और १२ वर्ष केवलज्ञान दशामें व्यतीत हुए।

---

१. हरिषेण कथाकोषमें विद्युच्चर (जिसको अंजनचोर भी कहा जाता था) को निर्वाण-प्राप्ति न बताकर देवगतिकी प्राप्ति बतलायी है। यथा—विद्युच्चोरश्चिरं तप्त्वा तपः कर्म विनाशनम्। विभिन्नामृतिमासाद्य बभूव विबुधो महान् ॥ २. हरिषेण कथाकोष, कथा १२७। ३. तिलोयपण्णत्ति, ४।९६८-९७१, कथानक ४।

अग्निभूति—माता-पिता-गोत्र और स्थान पूर्ववत्। इनके भी ५०० शिष्य थे। इनके मनमें शंका थी कि कर्म हैं या नहीं? वे फल देते हैं या नहीं। भगवान् महावीरके पास जानेपर इनकी शंकाका भी समाधान हो गया था और वे भगवान्के द्वितीय गणधर बन गये थे। उनकी कुल आयु ७४ वर्षकी थी, जिसमें ४६ वर्ष गृहस्थ दशाके, १२ वर्ष छद्मस्थ दशाके और १६ वर्ष केवली अवस्थाके थे।

वायुभूति—माता-पिता-गोत्र और स्थान इन्द्रभूतिके समान। इनके ५०० शिष्य थे। इन्हें यह सन्देह था कि शरीर और जीव एक ही हैं, भिन्न-भिन्न नहीं हैं। जब ये भगवान् महावीरके पास विपुलाचलपर गये, तो भगवान्ने इसके मनका यह सन्देह दूर कर दिया। एक-एक करके ये तीनों भाई भगवान्को हरानेके लिए बड़े अभिमानमें भरकर गये थे, किन्तु उनका अभिमान समवसरणके बाहर मानस्तम्भको देखकर ही चूर्ण हो गया। भगवान्के चरणोंमें पहुँचकर तो इन्हें एक नवीन प्रकाश मिला और वे भगवान्के गणधर-शिष्य बन गये। इनकी आयु ७० वर्ष की थी, जिसमें ४२ वर्ष गृहस्थ अवस्थामें, १० वर्ष छद्मस्थ दशामें और १८ वर्ष केवली रहकर व्यतीत हुए।

व्यक्त—माता वारुणी, पिता धनमित्र, कोल्लाग सन्निवेश, भारद्वाज गोत्र। इनके भी ५०० शिष्य थे। इन्हें शंका थी कि पृथ्वी आदि भूत हैं या नहीं। महावीर प्रभुने इनकी शंका दूर की और फिर ये उनके शिष्य बनकर गणधर बन गये। इनकी कुल आयु ८० वर्ष की थी। ५० वर्ष गृहस्थावस्थामें, १२ वर्ष छद्मस्थ दशामें और १८ वर्ष केवली दशामें रहे।

सुधर्म—माताका नाम भद्रिला, पिता धर्मिल, कोल्लाग सन्निवेश निवासी, अग्नि वैश्यायन गोत्र। इनके ५०० शिष्य थे। इनके मनमें यह मिथ्या विश्वास जमा हुआ था कि जो इस भवमें जैसा है, दूसरे भवमें वह वैसा ही होगा। इस मिथ्या विश्वाससे उन्हें मुक्ति तब मिल सकी, जब वे प्रभु महावीरके पास विनीत भावसे गये। फिर ये उनके गणधर बन गये। इनकी आयु १०० वर्षकी थी, जिसमें ५० वर्ष गृहस्थीमें रहे। ४२ वर्ष छद्मस्थावस्थामें बिताये और ८ वर्ष अरहन्त अवस्था रही। जिस दिन गौतम इन्द्रभूतिको निर्वाण मिला, इन्हें केवलज्ञान प्रकट हुआ।

मण्डिक पुत्र—माता विजयादेवी, पिता धनदेव, मौर्य सन्निवेश, वशिष्ठ गोत्र। इन्हें शंका थी कि बन्ध-मोक्ष हैं या नहीं। ये महावीर तीर्थंकरके निकट गये और शंका दूर हुई। इनकी कुल आयु ८३ वर्षकी थी, जिसमें ५३ वर्ष गृहस्थ अवस्थामें रहे, १४ वर्ष छद्मस्थ रहे और १६ वर्ष जिनेश्वर पर्यायमें रहे। इनके ४५० शिष्य थे।

मौर्यपुत्र—माता विजयादेवी, पिता मौर्य, मौर्य सन्निवेश, काश्यप गोत्र। इन्हें देवोंके अस्तित्वमें सन्देह था, जो महावीर प्रभुने दूर किया। इनकी आयु ९५ वर्ष थी। ६५ गृहस्थीमें बीते। १४ वर्ष तक छद्मस्थ रहे और १६ वर्ष केवली रहे। इनके पास ४५० छात्र पढ़ते थे।

अकम्पित—माताका नाम जयन्ती, पिताका नाम देव, मिथिलाके रहनेवाले, गौतम गोत्र। इनके ३०० शिष्य थे। नारक हैं या नहीं, इनके मनमें यह शंका थी। इनकी आयु ७८ वर्ष की थी। ४८ वर्ष गृहस्थ रहे। ९ वर्ष छद्मस्थ दशामें व्यतीत हुए और २१ वर्ष केवली रहे।

अचलभ्राता—नन्दा माता, वसु पिता, कोशलके रहनेवाले, हारीतस गोत्र। ३०० शिष्य थे। पुण्यके बारेमें इन्हें संशय था। महावीर भगवान् ने इनका संशय दूर करके इन्हें अपना गणधर बनाया। इनकी आयु ७२ वर्षकी थी। ४६ वर्ष गृहस्थ, १२ वर्ष छद्मस्थ और १४ वर्ष केवली रहे।

मेतार्य—माता वरुणदेवा, पिता दत्त, वत्स जनपदमें तुंगिक सन्निवेश, कौण्डिन्य गोत्र। ३०० शिष्य थे। परलोक है या नहीं, यह सन्देह था, जिसका निवारण महावीर भगवान्ने किया। इनकी आयु ६२ वर्षकी थी। ३६ वर्ष गृहस्थ, १० वर्ष छद्मस्थ और १६ वर्ष केवली रहे।

प्रभास—माता अतिभद्रा, पिता बल, राजगृहके रहनेवाले, कौण्डिन्य गोत्र। ३०० शिष्य थे। इन्हें निर्वाणके सम्बन्धमें शंका थी। जिसका समाधान भगवान् महावीरने कर दिया। गणधर प्रभासकी आयु ४० वर्षकी थी। १६ वर्ष कुमारकाल, ८ वर्ष मुनि अवस्थामें छद्मस्थ और १६ वर्ष केवली अवस्था।

इस प्रकार इन विद्वानोंमें-से प्रत्येकके मनमें कोई न कोई शंका[1] थी। किन्तु ये अभिमानवश, मान-मर्दन करनेके उद्देश्यसे अथवा जिज्ञासावश विपुलाचलपर विराजमान तीर्थंकर महावीरके पास जाते रहे। किन्तु सर्वज्ञ भगवान्का ऐसा लोकातिशयी व्यक्तित्व कि विरोधी भी भक्त बन गये, उन्हें मनकी शंकाका समाधान मिल गया और महावीरके चरणोंमें मुनि-दीक्षा लेकर कृतार्थता अनुभव की। फिर प्रभुने इनको अपना गणधर नियुक्त किया।

ग्यारह गणधरोंमें सभी केवलज्ञानी हुए और सभी मुक्त हुए। उनकी मुक्तिका क्षेत्र कौन-सा था, इसके सम्बन्धमें निम्नलिखित गाथा स्पष्ट प्रकाश डालती है—

परिणिव्वुया गणहरा जीवंते णायए णवजणाउ।
इंदभूई सुहम्मो य रायगिहे निव्वुए वीरे ॥६५८॥

—आवश्यक सूत्र निर्युक्ति—हरिभद्र वृत्ति, पृ. २५६

अर्थात् भगवान् महावीरके जीवन-कालमें नौ गणधर मुक्त हो गये। और भगवान् महावीर-के निर्वाण-गमनके पश्चात् इन्द्रभूति और सुधर्मको निर्वाण प्राप्त हुआ। ये सभी ग्यारह गणधर राजगृहसे मुक्त हुए।

इसी प्रकार 'कल्पसूत्र'में भी इसी आशयको व्यक्त करनेवाला निम्नलिखित पाठ मिलता है—'सव्वेऽवि णं एते समणस्स भगवओ महावीरस्स एक्कारसवि गणहरा दुवाल-संगिणो चउदस-पुव्विणो समत्तगणिपिडगधारगा रायगिहे नगरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं कालगया जाव सव्वदुक्खप्पहीणा। थेरे इंदभूई थेरे अज्जसुहम्मे य सिद्धिगए महावीरे पच्छा दुण्णिवि थेरा परि-निव्वुया।

—श्रीकल्पसूत्रम् समयसुन्दरगणि विरचित कल्पलता व्याख्या सहितम्, व्याख्यान ८, पृ. २१६

उत्तर पुराणमें गौतम स्वामीके निर्वाण-स्थलके सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख है। वे स्वयं राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि मैं विपुलाचलसे[2] निर्वाण प्राप्त करूँगा।

यह कैसे संयोग की बात है कि जिस दिन भगवान् महावीर सिद्ध हुए, उसी दिन गौतम गणधरको केवलज्ञान हुआ। जिस दिन गौतम सिद्ध हुए, उसी दिन सुधर्म स्वामी केवली हुए। सुधर्म स्वामी जिस दिन मुक्त हुए, उसी दिन जम्बूस्वामी केवली हुए। फिर उनके बाद कोई अनुबद्ध केवली[3] नहीं हुए। इस प्रसंग की चर्चा तिलोयपण्णत्ति[4] ग्रन्थमें इस प्रकार दी गयी है—

---

१. जीवे कम्मे तज्जीव भूम तारिसय बन्धमोक्खे य। देवा णेरइए या पुण्णे परलोय णेव्वाणे ॥५९६॥ —आवश्यक सूत्र, हरिभद्रीय वृत्ति, भाग १। २. गौतम स्वामीके सम्बन्धमें मान्यता प्रचलित है कि वे गुणावा (नवादाके निकट) से मुक्त हुए। इस मान्यताका क्या आधार है, यह अन्वेषणीय है। उत्तरपुराण ७६।५१७ का अवतरण निम्न प्रकार है—गत्वा विपुलशब्दादिगिरौ प्राप्स्यामि निर्वृतिम् ॥ ३. उत्तरपुराण, पर्व ७६, श्लोक ५१५ से ५१९ तक। ४. तिलोयपण्णत्ति ४।१४७६-७७।

जादो सिद्धो वीरो तद्दिवसे गोदमो परमणाणी।
जादो तस्सिं सिद्धे सुधम्मसामी तदो जादो॥
तम्मि कदकम्मणासे जंबूसामि त्ति केवली जादो।
तत्थ वि सिद्धिपवण्णे केवलिणो णत्थि अणुबद्धा॥

धर्म-चक्र-प्रवर्तन-क्षेत्र

राजगृहका विपुलाचल इस दृष्टिसे अत्यधिक श्रद्धाका केन्द्र बन गया कि भगवान् महावीरकी दिव्य ध्वनि सर्वप्रथम यहीं खिरी थी; अन्तिम तीर्थंकरने धर्म-चक्रका प्रवर्तन इसी पावन भूमि पर किया था और धर्म-तीर्थकी प्रवृत्ति यहींपर हुई।

भगवान् महावीरको जृम्भिक ग्रामके समीप ऋजुकूला नदीके तटपर मनोहर वनमें साल वृक्षके नीचे वैशाख शुक्ला दशमीके दिन अपराह्न कालमें घातिया कर्मोंके नाशसे केवल ज्ञान हो गया। उसी समय सौधर्म स्वर्गका इन्द्र चारों प्रकारके देवोंके साथ आया और उसने ज्ञानकल्याणककी पूजा की। इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरणकी अद्भुत रचना की। किन्तु भगवान्‌की दिव्य ध्वनि नहीं खिरी। तब इन्द्रने अवधिज्ञानसे जाना कि दिव्य ध्वनिमें इन्द्रभूति गौतम निमित्त बनेंगे। इन्द्र तत्काल इन्द्रभूतिके गाँवमें गया। इन्द्रभूति अत्यन्त अभिमानी व्यक्ति था, वह वेद-वेदांगका पूर्ण ज्ञाता था। उसका शरीर अतिशय देदीप्यमान था। इन्द्र किसी उपायसे इन्द्रभूतिको तीर्थंकर महावीरके पास ले गया, जो उस समय विपुलाचलपर विराजमान थे। इन्द्रने प्रेरणा की कि "हे इन्द्रभूति, तुम जीवतत्त्वके विषयमें जो कुछ पूछना चाहते थे, भगवान्‌से पूछ लो।" इन्द्रभूतिका अभिमान तो मानस्तम्भको ही देखकर गलित हो चुका था। अब भगवान्‌के समक्ष आते ही उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें नमस्कार किया और संयम धारण कर लिया। तभी भगवान्‌की दिव्य ध्वनि हुई, उन्होंने जीवका स्वरूप विस्तारपूर्वक बताया। ६६ दिन से दिव्य ध्वनि नहीं हो रही थी। क्योंकि तीर्थंकरकी वाणीको झेलनेवाला कोई गणधर उस समय तक नहीं था। गौतम इन्द्रभूतिमें गणधर बननेकी पात्रता थी। उनके पाँच सौ ब्राह्मण-शिष्योंने भी तत्काल संयम धारण कर लिया। परिणामोंकी विशुद्धि होनेके कारण गौतमको उसी समय आठ लब्धियाँ प्राप्त हो गयीं, चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान) प्राप्त हो गये। समस्त अंगों और पूर्वोंका ज्ञान हो गया।

भट्टारक महावीर स्वामीके उपदेशसे उन्हें श्रावण बदी प्रतिपदाके दिन पूर्वाह्न कालमें समस्त अंगोंके अर्थ और पद स्पष्ट जान पड़े। उसी दिन अपराह्न कालमें अनुक्रमसे पूर्वोंके अर्थ और पदोंका स्पष्ट बोध हो गया। बोध होनेपर उन्होंने उसी रात्रिके पूर्व भागमें अंगोंकी और पिछले भागमें पूर्वोंकी ग्रन्थ-रचना की। ये भगवान्‌के प्रथम और मुख्य गणधर बने।

'षट्खण्डागम' नामक सिद्धान्त ग्रन्थमें भगवान् महावीरकी इस प्रथम दिव्य ध्वनि या उपदेशको तीर्थ-प्रवर्तनकी संज्ञा दी है—

इम्मिस्से वसप्पिणीए चउत्थ समयस्स पच्छिमे भाए।
चोत्तीस वास सेसे किंचि विसेसूणए संते॥५५॥
वासस्स पढम मासे पढमे पक्खह्मि सावणे बहुले।
पाडिवद पुव्व दिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिह्मि॥५६॥

---

१. उत्तरपुराण, पर्व ७४, श्लोक ३४८ से ३७२।

सावण बहुल पडिवदे रुद्द मुहुत्ते सुहोदार रविणो।
अभिजिस्स पढम जोए जत्थ जुगादी मुणेयव्वो ॥५७॥

—षट्खण्डागम, भाग १, पृष्ठ ६२-६३

अर्थात् इस अवसर्पिणी कल्प कालके दुःषमा-सुषमा नामके चौथे कालके पिछले भागमें कुछ कम चौंतीस वर्ष बाकी रहनेपर वर्षके प्रथम मास अर्थात् श्रावण मासमें प्रथम पक्ष अर्थात् कृष्ण पक्षमें, प्रतिपदाके दिन प्रातःकालमें, आकाशमें अभिजित् नक्षत्रके उदित रहनेपर धर्म-तीर्थकी उत्पत्ति हुई।

श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके दिन रुद्र मुहूतमें सूर्यका शुभ उदय होनेपर और अभिजित् नक्षत्रके प्रथम योगमें जब युगका आरम्भ हुआ, तभी तीर्थकी उत्पत्ति समझनी चाहिए।

धर्मतीर्थकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें षट्खण्डागमके उपर्युक्त कथनसे मिलता-जुलता विवरण 'तिलोयपण्णत्ति' में भी मिलता है जो इस प्रकार है—

सुरखेयरमणहरणे गुणणामे पंचसेलणयरम्मि।
विपुलम्मि पव्वदवरे वीरजिणो अट्ठकत्तारो ॥ तिलोयप. १।६५

अर्थात् देव और विद्याधरोंके मनको मोहित करनेवाले और सार्थक नामवाले पंचशैल नगर (राजगृह) में पर्वतोंमें श्रेष्ठ विपुलाचल पर्वतपर श्री वीर जिनेन्द्र अर्थशास्त्रके कर्ता हुए।

और भी—

एत्थावसप्पिणीए चउत्थकालस्स चरिम भागम्मि।
तेत्तीसवासअडमासपण्णरस दिवससेसम्मि ॥ति. प. १।६८
वासस्स पढममासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स ॥ति. प. १।६९

अर्थात् यहाँ अवसर्पिणीके चतुर्थ कालके अन्तिम भागमें तेंतीस वर्ष आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रहनेपर वर्षके प्रथम मास श्रावणमें कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाके दिन अभिजित् नक्षत्रके उदित रहनेपर धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई।

श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको ही युगका प्रारम्भ हुआ था। यह भी प्रकृतिका अद्भुत संयोग ही है कि युगकी प्रथम तिथि श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको अन्तिम तीर्थंकर महावीरकी प्रथम दिव्य ध्वनि खिरी।

तीर्थंकर महावीरने जिस दिन धर्मतीर्थका प्रवर्तन किया, वह दिन 'वीर शासन-दिवस' के रूपमें पर्व बन गया तथा जिस विपुलाचलपर प्रथम उपदेश हुआ, वह लोकपूज्य तीर्थ बन गया।

अन्य पौराणिक घटनाएँ

भगवान् महावीर अनेक बार राजगृह पधारे और उनका समवसरण विपुलाचल या वैभार गिरिपर अनेक बार लगा। इसलिए उनके अनेक भक्तोंकी कथाएँ जैन पुराणोंमें मिलती हैं। ऐसी घटनाओंका भी उल्लेख पुराणोंमें उपलब्ध होता है, जिनका राजगृहके साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध रहा है। ऊपर प्रायः ऐसे व्यक्तियोंका ही उल्लेख किया गया है, जिनको यहाँ केवलज्ञान

---

१. सावण बहुले पाडिव रुद्दमुहुत्ते सुहोदये रविणो। अभिजस्स पढम जोए जुगस्स आदी इमस्स पुढं ॥ ति. प. १।७० श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके दिन रुद्र मुहूर्तके रहते हुए सूर्यका शुभ उदय होनेपर अभिजित् नक्षत्रके प्रथम योगमें इस युगका प्रारम्भ हुआ, यह स्पष्ट है।

प्राप्त हुआ अथवा जिनको यहाँ निर्वाण प्राप्त हुआ। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य घटनाएँ भी यहाँ घटित हुई हैं जिनका अपना विशेष महत्त्व है।

एक घटना इस प्रकार है—

अयोध्यामें सिद्धार्थ नामक एक श्रेष्ठी था। उसके ३२ स्त्रियाँ थीं किन्तु सन्तान नहीं थी। पुण्योदयसे जयावती सेठानीके पुत्र हुआ, जिसका नाम सुकौशल रखा गया। पुत्र होनेपर पिताने मुनि-दीक्षा ले ली। इससे जयाको बहुत क्रोध आया। उसने अपने घरपर मुनियोंका आना-जाना बन्द कर दिया। जब सुकौशल विवाह योग्य हुआ तो ३२ कन्याओंके साथ उसका विवाह कर दिया।

एक दिन महलकी छतसे उसने एक मुनिको देखा। ये उसके पिता थे। सुकोशलने अपनी मातासे मुनिके सम्बन्धमें जानकारी करनी चाही, किन्तु माताने सही उत्तर न देकर टाल दिया। तब एकान्तमें धाय मातासे पूछा। उसने सब बातें सच-सच बता दीं। सुनते ही सुकौशल सिद्धार्थ मुनिराजके पीछे-पीछे गया और उनसे मुनि-दीक्षा ले ली।

पुत्रके दीक्षित होनेपर जयावती बहुत दुखित हुई। वह उसी दुखमें मर गयी और मरकर राजगृहके पर्वतमें व्याघ्री बनी। एक बार दोनों मुनि राजगृहके पर्वतसे नगरकी ओर पारणाके लिए जा रहे थे। मार्गमें वह व्याघ्री मिली। उसने दोनोंको मार डाला। दोनों मुनि शुद्ध परिणामोंसे मरे और सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए।[1]

जब व्याघ्री सुकोशलके हाथोंको खा रही थी, उस समय उसकी दृष्टि हाथोंके लांछनोंपर जा पड़ी। उन्हें देखते ही उसे पूर्वजन्मका स्मरण (जाति-स्मरण ज्ञान) हो गया। अपने पति और पुत्रकी हत्या करनेका दुख अनुभव करके वह बार-बार पश्चात्ताप करने लगी। वह शुभ भावोंसे मरकर पहले स्वर्गमें देव हुई।

एक अन्य घटनाका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

राजगृह नगरमें नागदत्त सेठ था। उसकी स्त्रीका नाम भवदत्ता था। नागदत्त मायाचारी था। वह मरकर मेंढक हुआ, वह भी अपने घरकी बावड़ी में। एक दिन भगवान् महावीर वैभारगिरिपर पधारे। राजा श्रेणिक और प्रजाजन भगवान्‌के दर्शनोंके लिए गये। इन्द्र और देव भी वैभारगिरिपर दर्शनोंके लिए आये। भीड़भाड़ देखकर और बाजोंकी आवाज सुनकर मेंढक बावड़ीमें-से निकल आया। उसे जाति स्मरण हो गया। उसे पता चल गया कि सब लोग महावीर भगवान्‌के दर्शनोंके लिए जा रहे हैं। वह बावड़ीमें पहुँचा और कमलकी एक कली मुँहमें दबाकर भक्तिवश भगवान्‌की पूजाके लिए चल पड़ा। रास्तेमें एक हाथीके पैरके नीचे आ गया और मर गया। वह शुभ भावोंसे मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव बना।[2]

राजा श्रेणिक और महारानी चेलना

श्रेणिक और चेलनाका कथानक जैन वाङ्मयमें अत्यन्त विश्रुत है। श्रेणिक तो आगामी भवमें तीर्थंकर होनेवाले हैं। चेलना सम्यग्दृष्टि सती थी, जिसने अपने पतिको जैन धर्मका दृढ़ श्रद्धानी बना दिया। इस राजदम्पति और उनके परिवारीजनोंकी धर्म-श्रद्धा, त्याग-तपस्याकी अनेकों घटनाएँ राजगृहमें घटित हुई हैं। उन सबको यहाँ देना सम्भव नहीं है। मात्र २-४ घटनाएँ संक्षेपमें दी जा रही हैं।

---

१. हरिषेण कथाकोष, कथा १२७। २. आराधना कथाकोष, कथा ११४।

राजगृहनरेश उपश्रेणिक वन-भ्रमणके लिए गये हुए थे। वनमें उन्हें एक रूपवती कन्या मिली। यह कन्या उस वनके भीलराजकी पुत्री थी। उपश्रेणिक उस कन्यापर मोहित हो गये। उन्होंने भीलराजसे उसकी याचना की, जिसका नाम तिलकवती था। भीलने कहा—विवाह करनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है किन्तु शर्त यह है कि मेरी पुत्रीसे जो पुत्र हो, वह राजगद्दीका मालिक होगा। उपश्रेणिकने यह शर्त स्वीकार कर ली और तिलकवतीसे विवाह कर उसे ले आये। उससे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम चिलातपुत्र रखा गया।

उपश्रेणिककी पहली रानीसे भी एक पुत्र था, जिसका नाम श्रेणिक था। वह योग्य, वीर और साहसी था। राजा जानता था कि श्रेणिकका ही गद्दीपर अधिकार है, वह योग्य है और प्रजा भी उसे चाहती है। किन्तु अपना वचन रखनेके लिए राजाने श्रेणिकको राज्यसे अकारण निकाल दिया और चिलातपुत्रको राज्य सौंपकर स्वयं मुनि-दीक्षा धारण कर ली।

राजा बनते ही चिलातपुत्रने प्रजापर घोर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। अनेक प्रजाजन शिकायत लेकर श्रेणिकके पास पहुँचे। श्रेणिकने प्रजाकी खातिर मगधपर आक्रमण करके राज्यपर अधिकार कर लिया। चिलातपुत्र भागकर जंगलोंमें जा छिपा। किन्तु जंगलमें रहकर भी चिलातपुत्र जनतापर अत्याचार करता रहा। एक बार छिपकर वह राजगृहमें पहुँचा और स्नान करती हुई सुभद्रा नामक एक कुमारी कन्याको बलात् उठा लाया। जब इसकी शिकायत श्रेणिकके पास पहुँची तो उसने कुछ सैनिकोंको लेकर तत्काल पीछा किया। चिलातपुत्रने भयभीत होकर उस कन्याको जानसे मार दिया और वहाँसे भागा।

भागते-भागते वह वैभारगिरिपर पहुँचा। वहाँ मुनि-संघको देखकर संघके आचार्य मुनिदत्तके चरणोंमें जा पड़ा और रक्षाकी प्रार्थना करने लगा। मुनिराजने उसे अपनी शरणमें ले लिया और उपदेश दिया—"वत्स! तेरी आयु सिर्फ आठ दिनकी शेष है। जिनदीक्षा लेकर तुम्हें अब आत्म-कल्याण करना चाहिए।"

मुनिराजकी यह बात सुनकर चिलातपुत्रने मुनि-दीक्षा ले ली और प्रायोपगमन संन्यास (मरण) ले लिया। जब श्रेणिक उसका पीछा करता हुआ वैभार पर्वतपर पहुँचा और उसे मुनि-अवस्थामें देखा तो उसने उन्हें नमस्कार किया।

जिस सुभद्राको चिलातपुत्रने मार डाला था, वह मरकर व्यन्तरी हुई। उसने मुनि चिलातपुत्रपर बड़ा उपसर्ग किया। किन्तु वे विचलित नहीं हुए और मरकर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए।

राजा श्रेणिक प्रारम्भमें जैनधर्मके अनुयायी नहीं थे, वे महात्मा बुद्धके भक्त थे। किन्तु महारानी चेलना प्रारम्भसे जैनधर्मकी उपासिका थी। वे वैशाली गणतन्त्रके अधिपति राजा चेटककी पुत्री थीं और उनकी बड़ी बहन त्रिशलादेवी अथवा प्रियकारिणी कुण्डग्रामके अधिपति राजा सिद्धार्थके साथ विवाही थीं।

राजा श्रेणिककी धारणा थी कि चेलनाने उनके गुरुओंके साथ अभद्र व्यवहार किया है। इसलिए उसका सारा क्रोध चेलनाके गुरुओं अर्थात् जैन मुनियोंके प्रति था। एक दिन राजा शिकार खेलने गया। उसने वनमें यशोधर नामक एक जैन मुनिको देखा। राजाने क्रोधमें भरकर उनके ऊपर शिकारी कुत्तोंको छोड़ा। किन्तु तपके प्रभावसे कुत्ते मुनिके चरण चाटने लगे। चिढ़कर राजाने उन्हें बाणोंसे छेदना चाहा, किन्तु वे बाण मुनिके चरणोंमें पुष्प बनकर बिखर गये। तब खीजकर श्रेणिक मरे पड़े हुए एक साँपको मुनिके गलेमें डालकर लौट आया। मुनि-हिंसाके इस

तीव्र भावोंके कारण श्रेणिकने उस समय सातवीं नरकायुका बन्ध कर लिया।

इस घटनाका जिक्र राजा श्रेणिकने रानीसे भी किया। रानी सुनते ही व्याकुल हो गयी। तत्काल वह राजाके साथ उस स्थानपर पहुँची, जहाँ मुनिराज विराजमान थे। देखा कि मुनिके ऊपर चीटियाँ फिर रही हैं। कुछ काट रही हैं। कई जगह घाव कर दिये हैं। रानीको बड़ा दुख हुआ। उसने साड़ीके पल्लेसे सारा शरीर साफ किया और मुनिराजको नमस्कार किया। राजा श्रेणिक सब देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। वह भी मुनिके चरणोंमें झुक गया। राजाने जब मरा साँप उनके गलेमें डाला था, तब महर्षिने शाप नहीं दिया था और जब राजाने नमस्कार किया, तब उन्होंने प्रसन्नता प्रकट नहीं की। राजाने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। परिणाम इतने निर्मल हुए कि सातवें नरककी बांधी हुई आयु पहले नरक की रह गयी। बादमें क्षायिक सम्यक्त्व धारण करके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया।

श्रेणिक भगवान् महावीरके प्रधान श्रोता भी थे। जबतक भगवान्का समवसरण राजगृही-में रहता था, वे उनकी सभामें जाते थे और वहाँ अनेक विषयोंपर उनसे प्रश्न करते थे।

महारानी चेलनाका पुत्र वारिषेण बड़ा धर्मात्मा था। वह रात्रिको श्मशानमें जाकर कायोत्सर्ग किया करता था। राजगृहका कुख्यात चोर विद्युच्चोर अपनी प्रेयसी वेश्या मगध सुन्दरी-के आग्रह करनेपर श्रीकीर्ति नामक श्रेष्ठीका हार चुराने गया। जब वह हार चुराकर निकला तो पहरेदारोंने उसे देख लिया। वे उस चोरके पीछे भागे। चोर भागते-भागते श्मशानमें पहुँचा और पकड़े जानेके भयसे वह हार वारिषेण राजकुमारके आगे डालकर कहीं छिप गया। सिपाही पीछा करते हुए आये। उन्होंने वारिषेणके पास हारको पड़ा हुआ देखा तो उन्होंने वारिषेणको ही चोर समझकर पकड़ लिया और राजा श्रेणिकके सामने ले जाकर पेश किया। महाराजको राजकुमारसे ऐसे कुकृत्यकी आशा नहीं थी। अतः आशाके विपरीत यह कृत्य देखकर महाराजको बड़ा क्रोध आया और कुमारको फाँसीकी सजा सुना दी। वधिक कुमारको श्मशानमें ले गये और राजाज्ञा-नुसार उन्होंने कुमारके वधके लिए तलवार गरदनपर मारी। किन्तु कैसा चमत्कार कि जहाँ तलवारकी चोट पड़ी, वहाँ फूलोंकी माला हो गयी, वधिक दंग रह गये। उन्होंने राजा तक यह समाचार पहुँचाया। राजा श्मशानमें स्वयं आये। अनेक प्रजाजन भी आये। राजाने अपनी आँखोंसे यह चमत्कार देखा। उन्होंने राजकुमारसे अपने अविवेकके लिए क्षमा माँगी और महलोंमें चलनेका आग्रह किया। वारिषेण बोले—"आपका कोई अपराध नहीं है। आपने तो अपने कर्तव्य-का पालन ही किया था। यह मेरे अशुभ कर्मका फल था। किन्तु मैंने संसारका असली रूप देख लिया है। इसलिए मैं अब घरपर न जाकर जिनेन्द्रदेवकी शरणमें जाऊँगा और आत्म-हित करूँगा।" यों कहकर वे वनकी ओर चल दिये और श्री सूरदेव मुनिके पास जाकर जिन-दीक्षा ले ली।

एक बार मुनि वारिषेण विहार करते हुए पलाशकूट नगरमें पहुँचे। वे जब आहारको निकले तो उनके बालमित्र पुष्पडालने[२] नवधा भक्तिके साथ उनको आहार दिया। आहार करनेके पश्चात् जब मुनि जाने लगे तो मित्रता और शिष्टाचारके नाते पुष्पडाल उन्हें पहुँचाने गया। वह बचपनकी घटनाएँ सुनाने लगा। सुनाते-सुनाते वे वनमें पहुँच गये किन्तु मुनिने उसे लौट जानेके लिए एक

१. आराधना कथाकोष, भाग १, कथा १९। २. हरिषेण कथाकोष—कथा १० के अनुसार इसका नाम सोमशर्मा था।

बार भी नहीं कहा। वनमें पहुँचने पर मुनि वारिषेणने उसे उपदेश दिया। परिणाम यह हुआ कि पुष्पडालने उनसे मुनिदीक्षा ले ली।

पुष्पडाल मुनि तो बन गया किन्तु उसका मोह अपनी काणी स्त्रीके प्रति बना रहा। बारह वर्ष बीत गये। एक दिन भगवान् महावीरके समवसरणमें दोनों बैठे हुए थे। कोई गन्धर्व कामकी निन्दामें पद्य पढ़ रहा था। उसे सुनकर पुष्पडालकी दबी हुई कामवासना भड़क उठी और वह अपने नगरकी ओर चल दिया। वारिषेण भी उसके साथ चले। वारिषेणके कहनेपर पुष्पडाल वारिषेणके घर चलनेको राजी हो गया। जब दोनों रानी चेलनाके महलोंमें पहुँचे तो चेलनाको सन्देह हुआ कि कहीं मेरा पुत्र चारित्रसे विचलित होकर तो घर नहीं लौटा है। परीक्षाके लिए उसने दो आसन बिछाये—एक काठका, दूसरा सोनेका। वारिषेण सहज भावसे काठके पाटेपर बैठ गये।

थोड़ी देरमें वे सारी स्त्रियाँ, जो वारिषेणको ब्याही थीं, विविध आभूषणोंमें सुसज्जित होकर वहाँ आयीं, मानो स्वर्गसे अप्सराओंका दल अवतीर्ण हुआ हो। जितेन्द्रिय वारिषेण बड़े समता भावसे पुष्पडालकी ओर संकेत करते हुए बोले—"देख रहे हो पुष्पडाल! रूपका यह तरंगित सागर! क्या इनमें-से किसीसे तेरी सोमिला समता रखती है? मैंने इन्हें छोड़ दिया। मैंने इतना विशाल राज्य और वैभव छोड़ दिया। और एक तू है जो अपनी काणी सोमिलाका मोह नहीं छोड़ सका।"

सुनते ही पुष्पडालकी आँखें खुल गयीं। वह गुरुके चरणोंमें गिर पड़ा—"गुरुदेव! मुझे प्रायश्चित्त देकर आत्म-कल्याणका अवसर दें।"

दोनों विपुलाचलपर लौट गये और घोर तप करने लगे। वारिषेण सर्वार्थसिद्धि विमानमें देव हुआ। पुष्पडाल भी देव बना।[1]

ईसवी सन्‌के प्रारम्भ या पूर्वमें सोपारासे एक आर्यिका संघ यात्राके लिए यहाँ आया था। उसमें धीवरी पूतिगन्धा भी थी। वह क्षुल्लिका थी। यहाँ नीलगुफामें उसकी समाधि हुई थी।

मगध साम्राज्यका केन्द्र

भगवान् मुनिसुव्रतनाथ हरिवंशके सूर्य थे। उनके पश्चात् उनका पुत्र सुव्रत हुआ। उसने राजगृहपर शासन किया। उनका पुत्र दक्ष हुआ, जिसकी स्त्री इलासे ऐलेय पुत्र और मनोहरी कन्या हुई। दक्षने अपनी कन्याके ही सौन्दर्यपर मुग्ध होकर उससे विवाह कर लिया। इससे रुष्ट होकर इलादेवी अपने पुत्र ऐलेयको लेकर चली गयी और एक नया नगर बसाया, जिसका नाम इलावर्धन रखा गया। ऐलेय प्रतापी राजा था। उसने दिग्विजय करके राज्यका विस्तार किया। उसने बंग देशमें ताम्रलिप्ति नगर बसाया तथा नर्मदा नदीके तटपर माहिष्मती नगर बसाया। बादमें ये दोनों ही नगर इतिहासमें बड़े प्रसिद्ध हुए।

आगे चलकर इस वंशमें वसु नामका राजा हुआ। यह बड़ा सत्यवादी था। किन्तु वह नारद और पर्वतके विवादमें पर्वतका पक्ष लेनेके लिए झूठ बोला और 'अजैर्यष्टव्यं' इसका अर्थ यह किया कि बकरोंसे यज्ञ करना चाहिए। परिणाम यह हुआ कि तबसे यज्ञोंमें असंख्य जीवोंकी हिंसा होने लगी और वसु नरकमें गया।

---

१. जयसेन विरचित धर्मामृत।

फिर इस वंशमें अनेक राजाओंके बाद बृहद्रथ हुआ। इस प्रकार राजगृहपर शताब्दियों तक हरिवंशी नरेशोंका शासन रहा। बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध हुआ। यह बड़ा प्रतापी राजा था। इसने आधे भारतको जीतकर अर्धचक्रीका गौरव प्राप्त किया। मथुराका राजा कंस इसका माण्डलिक राजा था। राजा कंसके लिए उसने अपनी पुत्री जीवद्यशा दी। कंसने अपने श्वसुरके भरोसे प्रजापर घोर अत्याचार किये। किन्तु श्रीकृष्णने उसे मारकर प्रजाको अन्याय-अत्याचारोंसे मुक्त किया।

इस घटनासे जरासन्ध यादवोंसे रुष्ट हो गया। उसने श्रीकृष्णको मारने तथा यादवोंका दर्प चूर्ण करनेके लिए मथुरा पर कई बार आक्रमण किये। इन आक्रमणोंसे परेशान होकर श्रीकृष्णके नेतृत्वमें मथुरा, शौरीपुर और कीर्तिपुरके समस्त यादव चले गये और पश्चिम दिशामें समुद्रके मध्यमें द्वारिका नगरी बसाकर रहने लगे।

इस समय राजगृहका नाम गिरिव्रज था। जरासन्धने सैनिक दृष्टिसे इसे अत्यन्त सुदृढ़ बनाया था। यह पाँच पहाड़ोंसे घिरा हुआ था। जब यादव लोग द्वारिकामें जम गये तो उन्होंने अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाना प्रारम्भ किया। श्रीकृष्णका प्रभाव भारतके प्रायः सभी राजवंशोंपर छा गया। श्रीकृष्णके इस बढ़ते हुए प्रभावको देखकर जरासन्ध चिन्तित हो उठा। उसने यादवोंके पास दूत भेजा और उनसे कहा कि वे सम्राट् जरासन्धकी अधीनता स्वीकार करें अन्यथा युद्धके लिए तैयार हो जायें। यादवोंने परस्पर परामर्श किया और जरासन्धकी चुनौतीको स्वीकार करके युद्धकी घोषणा कर दी। दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं। देश और विदेशके सम्पूर्ण राजा इस या उस पक्षमें अपनी सेनाओं सहित आ मिले।

दोनों ओरकी फौजें युद्ध के लिए चल पड़ीं। दोनोंका आमना-सामना हस्तिनापुरके निकट कुरुक्षेत्रके विस्तृत मैदानोंमें हुआ। श्रीकृष्णके पक्षमें समुद्रविजय, नेमिनाथ, वसुदेव, बलदेव, पाण्डव तथा सिंहल, वर्वर, यवन, आभीर, कम्बोज, केरल, कोशल, राष्ट्रवर्धन, द्रमिलके राजा और समस्त यादव थे। जरासन्धके पक्षमें दुर्योधन आदि कौरव, कर्ण, शल्य, शकुनि तथा सिन्ध, अवन्ति, अयोध्या, प्राग्ज्योतिष, मद्र, पांचाल, चीन, किरात, गान्धार, माहिष्मती आदिके राजा थे।

दोनों ओरसे भयानक युद्ध हुआ और अन्तमें श्रीकृष्णकी विजय हुई। जरासन्ध, कौरव आदि मारे गये। गिरिव्रजपर नियमानुसार श्रीकृष्णका अधिकार हो गया। वे अर्ध भरतक्षेत्रके स्वामी हो गये और अर्धचक्री नारायणके रूपमें उनका अभिषेक किया गया। श्रीकृष्णने उस समय जरासन्धके द्वितीय पुत्र सहदेवको गिरिव्रजका राज्य और मगध देशका चौथाई भाग दिया। सहदेव गिरिव्रजका राजा बन गया किन्तु गिरिव्रजका वैभव, प्रभाव और आतंक पहले-जैसा नहीं रहा।

इसके पश्चात् राजगृहमें श्रेणिक बिम्बसारके रूपमें एक सबल व्यक्तित्व उभरा, जिसने अपने बाहुबलसे साम्राज्यका विस्तार किया और प्राचीन गिरिव्रजसे उत्तरकी ओर एक मील हटकर राजगृहका पुनर्निर्माण किया। पुराना किला भी भग्न हो चुका था। अतः नये किले का निर्माण किया। शिशुनाग वंशको इतिहासकी किन्हीं पुस्तकोंमें हर्यंङ्क[1] वंश भी कहा है।

श्रेणिकका शासन-काल ई. पू. ६०१ से ५५२ तक अनुमानतः माना जाता है।[2] हिन्दू

---

१. प्राचीन भारत, श्री रमेशचन्द्र मजूमदार (हिन्दी अनुवाद), प्रथम संस्करण, पृ. ७५। २. भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, भाग १, जयचन्द्र विद्यालंकार, प्रथम संस्करण, पृ. ४६३। स्मिथ अपनी आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डियामें इसका राज्यारोहण ई. सं. से ५८२ वर्ष पूर्व मानते हैं।

पुराणोंमें शिशुनाग वंशके राजाओंको व्रात्य कहा है। उनकी शिक्षा-दीक्षाकी भाषा प्राकृत थी। वे अर्हन्तोंको मानते और चैत्योंको पूजते थे।

इस कालमें चार राजवंश अधिक प्रभावशाली थे—मगधमें शिशुनाग, कोशलमें इक्ष्वाकु, वत्समें पौरव और अवन्तिमें प्रद्योत। गणराज्योंमें वैशाली सर्वाधिक प्रभावशाली और समृद्ध राज्य था। इसके अतिरिक्त कपिलवस्तुके शाक्य तथा पावा और कुशीनाराके मल्ल भी गणसत्ताक राज्य थे। सभी राज्योंमें परस्पर शत्रुता थी और प्रायः आपसमें युद्ध होते रहते थे। इनमें से हर एक अपनी प्रभुता स्थापित करनेकी कोशिशमें लगा हुआ था। और मजा यह कि इन राज्योंके राजाओंके पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध भी थे। ये विवाह शुद्ध राजनैतिक थे। वैशाली गणसंघके अध्यक्ष महाराज चेटककी कन्या मृगावतीका विवाह वत्सनरेश शतानीकके साथ हुआ था, जिसका पुत्र उदयन था। चेटककी बड़ी पुत्री त्रिशला (प्रियकारिणी) कुण्डग्रामके राजा सिद्धार्थसे विवाही गयीं। उनकी एक पुत्री चेलनाका विवाह मगध नरेश श्रेणिक बिम्बसारके साथ हुआ। इसी प्रकार उदयनका विवाह अवन्ति नरेश चण्डप्रद्योतकी पुत्री वासवदत्ताके साथ हुआ था। कोशलनरेश प्रसेनजित्की बहनका विवाह मगधनरेश बिम्बसारके साथ हुआ था और कोशल नरेश महाकोशलने अपनी लड़कीके साथ स्नान और शृंगारचूर्णो (नहान-चुन्न मुल्ल) के लिए दहेजमें काशीका राज्य दे दिया, जिसे बादमें मगध राज्यमें मिला लिया गया। छठी शताब्दी ईसा पूर्वके पूर्वार्धमें कोशल, मगध, अवन्ति और वत्स ये चार राज्य ही शक्तिशाली थे। किन्तु जब बिम्बसारने अंगदेशके स्वामीको जीतकर उसकी राजधानी चम्पापर अधिकार कर लिया और उसे अपने राज्यमें मिला लिया तो मगधकी शक्ति बहुत बढ़ गयी और वह उत्तरी भारतका सर्वोच्च राज्य बन गया। राइस डेविसके मतानुसार बिम्बसारके राज्यकी सीमाएँ इस प्रकार थीं—उत्तरमें गंगा, पश्चिममें सोन, पूर्वमें अंग देश और दक्षिणमें छोटा नागपुरका जंगल।

श्रेणिक बिम्बसारका महत्त्व राजनैतिक दृष्टिकी अपेक्षा सांस्कृतिक दृष्टिसे अधिक है। शिशुनाग वंश नाग वंशका[1] एक शाखा माना जाता है। नागवंशी क्षत्रिय परम्परासे वैदिक कर्मकाण्डोंके विरोधी थे। वे व्रात्य थे और श्रमण परम्पराके अनुयायी थे। राजगृह नगरी उस समय श्रमण परम्पराकी केन्द्र थी। वह प्रख्यात तत्त्वचिन्तकों और धर्म संस्थापकों की क्रीड़ाभूमि बनी हुई थी। उस समयके धर्म-नेताओंमें तीर्थंकर महावीरके अतिरिक्त अजित केशकम्बली, मक्खली गोशालक, पूर्ण काश्यप, प्रकुध कात्यायन, संजय बेलट्ठि-पुत्र और महात्मा बुद्ध प्रमुख थे। इनमें सर्वाधिक प्रभावशाली तीर्थंकर महावीर (निग्गण्ठ नाथपुत्त) और तथागत बुद्ध ही थे। शेष पाँच धर्मनेताओंके सम्प्रदाय अधिक दिनों तक नहीं चल पाये। मक्खली गोशालकका आजीवक सम्प्रदाय अवश्य ही कुछ शताब्दियों तक खूब फला-फूला।

ये सभी धर्मनेता वैदिक कर्मकाण्ड, वर्णाश्रम व्यवस्था और हिंसा-मूलक यज्ञोंके घोर विरोधी थे। वैदिक यज्ञवादका एक दुष्परिणाम दास-प्रथा था। यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको दक्षिणाके रूपमें प्रचुर दास और दासियाँ दिये जाते थे। इस कारण उन राज्योंमें, जहाँ वैदिक-कर्मकाण्डके अनुयायियोंकी संख्या अधिक थी, हाट-बाजारोंमें दास और दासियाँ पशुओंकी तरह बिकते थे। वैशालीके अधिपति राजा चेटककी पुत्री राजकुमारी चन्दनबाला कौशाम्बीके बाजारोंमें किस प्रकार बिकने आयी, उसके दुर्भाग्यपूर्ण कथानकसे ही इस भयानक प्रथाका पता चलता है। इन धर्मनेताओंने धर्मके नामपर प्रचारित कुप्रथाओंका प्रबल विरोध किया। इन सबमें सर्वाधिक सफलता महावीर और

---

१. मगध—श्री बैजनाथसिंह विनोद, पृ. १०।

बुद्धको मिली। इन दोनों लोकनायकोंमें जहाँ कुछ समानताएँ थीं, वहाँ मौलिक अन्तर भी थे। समानताएँ तो ये ही थीं कि दोनों ही क्षत्रिय थे, दोनों ही राजवंशी थे, दोनों ही शोषणहीन, ऊँच-नीच भावनाविहीन ऐसी समाजकी रचना करना चाहते थे, जिसका आधार अहिंसा हो। दोनोंने आभिजात्य वर्गकी समझी जानेवाली संस्कृत भाषाको छोड़कर अपने उपदेश जन-सामान्यकी भाषा-में दिये। बुद्धने अपने उपदेशोंके लिए पालिको चुना। महावीरने सर्व-साधारणकी भाषा अर्धमागधी-में अपने सन्देश सुनाये। किन्तु दोनों महापुरुषोंमें समानताकी अपेक्षा अन्तर अधिक रहा और वह अन्तर दृष्टिकोण, आदर्श और सिद्धान्तोंका रहा। बुद्धने मध्यम मार्ग चुना किन्तु महावीरने पूर्ण सत्यका आग्रह नहीं छोड़ा। यही कारण है कि महावीरने हिंसाके साथ जीवन-व्यवहारके किसी क्षेत्रमें समझौता नहीं किया और अहिंसाकी पूर्ण प्रतिष्ठा की। जबकि बुद्ध अहिंसाके क्षेत्रमें कुछ दूर तक ही जा सके।

ऐसा लगता है कि सम्राट् श्रेणिक अत्यन्त उदार शासक था। यही कारण है कि सभी धर्मनेताओंने राजगृह नगरको अपने प्रचारका केन्द्र बनाया था। यद्यपि श्रेणिक प्रारम्भिक जीवनमें बुद्धका अनुयायी था। किन्तु बादमें महारानी चेलनाके प्रयत्नसे उसकी आस्था जैनधर्मके प्रति हो गयी और वह भगवान् महावीरका अनुयायी हो गया। भगवान् महावीरका समवसरण (धर्म-सभा) अनेकों बार राजगृहीके विपुलाचल और वैभारगिरिपर आया और जब भी भगवान्का समवसरण वहाँ आया, श्रेणिक उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने अवश्य गया। इतना ही नहीं, वह भगवान् महावीरके समवसरणका मुख्य श्रोता बन गया। उसने अनेक विषयोंपर जिज्ञासु भावसे भगवान्से हजारों प्रश्न किये। पुराण ग्रन्थोंमें किसी चरित्रके निरूपणकी प्रवृत्ति श्रेणिकके प्रश्न द्वारा ही होती है। कथाके मध्यमें भी हम श्रेणिकको कथासे सम्बन्धित अनेकों प्रश्न करते हुए पाते हैं। जैन साहित्यमें श्रेणिकको क्या स्थान प्राप्त है, यह इस बातसे ही प्रकट है कि वह आगामी उत्सर्पिणी कालमें (आगामी) तीर्थंकर परम्परामें 'पद्मनाभ' नामसे प्रथम तीर्थंकर होनेवाला है।

श्रेणिकके कई पुत्र थे--अभयकुमार, वारिषेण, अजातशत्रु। इनमें अभयकुमार बहुत बुद्धि-मान् और कुशल राजनीतिज्ञ था। वह वर्षों तक श्रेणिकके सान्धिवैग्रहिक पदपर भी रहा। किन्तु फिर उसने मुनि-दीक्षा ले ली। वारिषेण श्रेणिकका उत्तराधिकारी था, युवराज था और श्रेणिककी पट्टमहिषी चेलनाका पुत्र था। किन्तु वह प्रारम्भसे ही राज्यसत्ता और इन्द्रिय-भोगोंकी ओरसे उदासीन रहता था। अतः उसने एक दिन स्वेच्छासे राजपाट त्यागकर मुनि-जीवन अंगीकार कर लिया। अजातशत्रु जन्मसे ही उद्धत, जल्दबाज और महत्त्वाकांक्षी था। चम्पाको विजय करके श्रेणिकने अजातशत्रुको वहाँका उपरिक (गवर्नर) बना दिया था। किन्तु इससे उसकी महत्त्वा-कांक्षा तृप्त नहीं हुई। वह शीघ्रसे शीघ्र मगध-सम्राट् बनना चाहता था।

एक दिन किसी धर्मनेता द्वारा भड़काये जानेपर वह अपने कुछ विश्वस्त सैनिकोंको लेकर राजगृह जा पहुँचा और उसने अपने वृद्ध पिताको कैद करके कारागारमें डाल दिया। वहाँ श्रेणिकको बिना नमककी कांजी और कोदों खानेको दिये जाते थे। वह अपने पिताको दुर्वचन भी कहता था। एक दिन अजातशत्रु भोजन कर रहा था कि उसके पुत्रने उसकी थालीमें पेशाब कर दिया। पुत्र-मोहके कारण उसने थालीमें चावल एक ओर करके खा लिये। पास ही उसकी माँ बैठी हुई थी। वह अपनी माँसे बोला—"माँ! क्या मेरे समान कोई दूसरा व्यक्ति अपने पुत्रसे प्रेम करता होगा?" उसकी माँ बोली—"बेटा! जितना प्रेम तू अपने पुत्रसे करता है, उतना ही तेरे पिता तुझसे करते थे। एक बार जब तू बालक था, तेरी अँगुली पक गयी थी। तू रोता था। तब तेरे

पिता तेरी उस मवादसे भरी अँगुलीको रात-भर मुँहमें दबाये बैठे रहे थे। मुखकी गर्मीसे तुझे कुछ आराम मिला था और तू उनकी गोदमें सो गया था।"

इतना सुनते ही उसे पिताके प्रति किये गये अपने अपराध पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह पिताको कारागारसे छुड़ानेके लिए दौड़ पड़ा। श्रेणिकने अपने उद्दण्ड पुत्रको आते हुए देखा तो उन्हें भय हुआ कि यह आकर मुझे कष्ट देगा। यह सोचकर उन्होंने अपना सिर सींकचोंपर जोरसे दे मारा। क्षुधा और कष्टोंसे वे अत्यन्त निर्बल तो हो ही गये थे। सिर पटकते ही उनका देहान्त[1] हो गया। अजातशत्रुको अपने कृत्योंपर बड़ा दुख हुआ। उसने राजकीय सम्मानके साथ पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया की।

अजातशत्रुने राज्यासीन होते ही आसपड़ोसके राज्योंको जीतना प्रारम्भ किया। उसने कोशल राज्यको जीत लिया। लिच्छवियोंके गणसत्ताक संघपर भी अधिकार कर लिया। लिच्छवियोंकी सैनिक गतिविधिपर नजर रखने और उन्हें दबानेके लिए इसने गंगा और सोनके संगमके निकट पाटलिग्राममें एक किला बनवाया।

श्रेणिक और अजातशत्रुके जीवन-कालमें भगवान् महावीरका विहार राजगृहमें कई बार हुआ था। अजातशत्रु अपने प्रारम्भिक जीवनमें कट्टर जैन था। उसने कई जिन-मन्दिरोंका निर्माण भी कराया था। इस विषयमें डॉ. हर्मन जैकोबीने कल्पना की है कि उसने अपने जैनधर्मी पिताको कारागारमें डाल दिया था। इससे उसे तमाम जैनोंका कोपभाजन बनना पड़ा था। अतः उसे बुद्धकी शरण लेनी पड़ी होगी। अपनी राजनैतिक स्थितिकी सुदृढ़ताके लिए ऐसा करना उसके लिए आवश्यक हो गया होगा, क्योंकि राजगृहमें जैनोंके बाद सबसे प्रभावशाली सम्प्रदाय वही था।

महात्मा बुद्धको निर्वाण-प्राप्ति जिस वर्ष बतायी जाती है, उसी वर्ष राजगृहकी सप्तपर्णी गुफामें बौद्ध साधुओंका प्रथम सम्मेलन हुआ, जिसे प्रथम संगीति कहते हैं। इसमें धम्म और विनयके पाठोंका संकलन किया गया।

---

१. श्रेणिक चरित्र, पुण्याश्रव कथाकोष। बौद्धग्रन्थों (अंगुत्तर निकाय अट्ठकथा आदि) में लिखा है कि अजातशत्रुने अपने पिता बिम्बसारको मार दिया था। अजातशत्रुको उसके पुत्र उदयने, उदयको उसके पुत्र महामुण्डने, महामुण्डको उसके पुत्र नागदासने और नागदासको जनताने मार डाला।—बुद्धचर्या-राहुलसांकृत्यायन, पृ. ४६१। बौद्ध साहित्यके इसी अभिमतको कुछ इतिहासकारोंने सत्य मानकर अपने ग्रन्थोंमें उद्धृत किया है। बौद्ध ग्रन्थोंकी इस धारणाका कारण खोजने पर हमें लगता है कि उनका कथन कल्पित है। श्रेणिक बिम्बसार उदारता वश तथागत बुद्धके पास जाता अवश्य था, किन्तु उसकी धार्मिक श्रद्धा तीर्थंकर महावीरके प्रति थी। अजातशत्रु (कुणिक) पहले भगवान् महावीरका भक्त था, किन्तु बादमें वह देवदत्तका अनुयायी बन गया था और उसीके परामर्शसे उसने अपने पिताको कारागारमें डाला था। (अंगुत्तर निकाय अट्ठकथा)। अजातशत्रु तथागत बुद्धका अनुयायी नहीं बना, यह बौद्धोंके 'सामञ्ञफल सुत्त'से भी स्पष्ट हो जाता है। उसमें लिखा है—"राजाके जानेके थोड़ी देर बाद भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ, यह राजा (भाग्य) हत है, उपहत है। भिक्षुओ! इस राजाने यदि धार्मिक धर्मराजा पिताको जानसे न मारा होता तो इसी आसन पर इसे विरज विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ होता।" (विरज विमल धर्मचक्षु उत्पन्न होनेका आशय बुद्ध,संघ और धर्मपर श्रद्धा। राजाको वह नहीं हुई।) किन्तु बौद्ध ग्रन्थोंमें यह भी उल्लेख मिलते हैं कि तथागत बुद्धके परिनिर्वाणके बाद उनकी अस्थि-भस्मका विभाजन किया गया और वह आठ भागोंमें बाँटा गया। अजातशत्रुने एक भाग पाया, जिसपर राजगृहमें एक स्तूप बनवाया गया।

अजातशत्रुके बाद उसका पुत्र उदायि गद्दीपर बैठा। किन्तु अब मगध साम्राज्यका विस्तार बहुत हो गया था। अतः सुविधाकी दृष्टिसे उसने पाटलिग्रामके स्थानपर पाटलिपुत्र नामक नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया।

इसके पश्चात् राजगृहको कभी यह राजनैतिक गौरव प्राप्त नहीं हो सका और मगध साम्राज्यका केन्द्र राजगृहसे हटकर पाटलिपुत्र बन गया।

इसके पश्चात् हमें राजगृहके नामकी गूँज कलिंग-नरेश खारवेलके हाथी गुम्फा लेखकी सातवीं-आठवीं पंक्तिमें सुनाई देती है। वह मूल पंक्ति इस प्रकार पढ़ी गयी है—

अठमे च वसे महता सेन [ा]....गोरधागिरिं

घातापयिता राजगहं उपपीडपयति एतिन च कंमपदान स [ ] नादेन....सेन-वाहने विप-मुचितुं मधुरं अपमातो यवनरा [ज] [डिमित] .. यछति....पलव

अर्थ—आठवें वर्ष महासेना....गोरथगिरिको तोड़कर राजगृहको घेर दबाया। इनके कर्मोंके अवदान (वीरकथा) के सनादसे यवन राजा दिमित (दिमेत्र) घबड़ायी सेना और वाहनोंको मुश्किलसे बचाकर मथुराको भाग गया।

जब मौर्य साम्राज्यका अन्त होने लगा और अन्तिम मौर्य सम्राट् बृहद्रथ (ई. पू. १९५-१८८) को मारकर उसका सेनापति पुष्यमित्र पाटलिपुत्रकी गद्दीपर बैठा, उस समय दक्षिणमें सातवाहनोंने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। उन्होंने प्रतिष्ठान (पैठण) को अपनी राजधानी बनाया और महाराष्ट्र-कर्णाटकपर अधिकार कर लिया। लगभग इसी समय कलिंगमें भी चेदिवंशी ऐलोंने अपने स्वतन्त्र राज्यकी स्थापना कर ली। इस वंशकी तीसरी पीढ़ीमें सम्राट् खारवेल हुआ। इस युगकी राजनीतिमें यह सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। उसने अपने जमानेके प्रायः सभी राजाओंको जीतकर विशाल साम्राज्यकी स्थापना की। उसकी गौरव-गाथाएँ खण्ड-गिरि-उदयगिरिकी हाथी गुम्फाकी एक शिलापर अंकित हैं। इस ऐतिहासिक महत्त्वके शिलालेख-से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण कलिंग विजय करके उसने सातकर्णि, बहसतिमित्र अथवा बृहस्पति-मित्र, पश्चिमके मूषिक, रठिकोंके भोज, उत्तरापथ (पंजाब), तमिल देश, पिथुण्ड आदि सभी दिशाओंके देशों और राजाओंको हराया और मगधमें सुगांगेय (मौर्योंके महलका नाम) तक पहुँचकर बहसतिमित्रको अपने पैरोंमें गिराया।

इन्हीं दिनों (लगभग १२० ई. पू.) बाख्त्रीके यवनराजा एवुथिदिनने हिन्दूकुश पर्वतको लाँधकर हरैव (हेरात), कपिश, हरउवती (कन्दहार) और जरंक या द्रंगियान (सोस्तान) के प्रदेश दखल कर लिये। उसके बाद दिमेत्र (डेमिट्रियस) ने विशाल यवन सेना लेकर प्रबल वेगसे भारतपर आक्रमण किया। दिमेत्रने मद्र देशकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) को लेकर पंचाल, मथुरा और साकेत (अयोध्या) को ले लिया। उसने मध्यमिका (चित्तौड़से छह मील उत्तर-पूर्वमें प्राचीन नगरीको भी जीत लिया। सचमुच ही इतनी बड़ी विजय नगण्य नहीं कही जा सकती।

तभी खारवेल कलिंगसे राजपथ छोड़कर दुर्गम पहाड़ी मार्गोंसे होता हुआ गोरथगिरि (गयाके पास बराबर पहाड़ी) पहुँचा और उसे जीतकर राजगृहपर घेरा डाल दिया। दिमित्रने खारवेलके इस अभिमानकी बात सुनी तो वह इतना आतंकित हुआ कि अपनी सेना लेकर मथुरा लौट गया। किन्तु खारवेलने उसे छोड़ा नहीं, बल्कि पंजाब तक उसका पीछा किया और भारतसे बाहर भगा दिया।

सम्राट् खारवेलने इसके बाद राजगृहपर फिर एक बार आक्रमण किया। इस आक्रमणमें उसने बहसतिमित्रको अपने पैरोंमें गिराया तथा नन्द वंशका महापद्मनन्द कलिंगसे जिस कलिंग-

जिनकी मूर्तिको ले आया था, उस घटनाके प्रायः पौने तीन सौ वर्ष बाद खारवेल उस मूर्तिको अपने साथ ले गया। और इस तरह अपने राष्ट्रीय अपमानका बदला चुकाया।

राजगृहसे सम्बन्धित बादकी एक और घटना मिलती है जिसके अनुसार विक्रमकी नौवीं शताब्दीमें कन्नौज नरेश आमने राजगृहपर चढ़ाई की। वह बारह वर्ष तक राजगृहका घेरा डाले पड़ा रहा। किन्तु राजगृहवासियोंने हार नहीं मानी। तब इसके पौत्र भोजराजने राजगृहको जीता और जीतनेके बाद इस प्राचीन नगरीमें आग लगा दी, जिससे यह जलकर राखका ढेर बन गयी। इस प्रकार यह ऐतिहासिक नगरी राजनैतिक आकाशसे सदाके लिए लुप्त हो गयी।

पंचशैल

जैन वाङ्मयमें तथा अन्य साहित्यमें राजगृहके कई नाम मिलते हैं—जैसे गिरिव्रज, क्षितिप्रतिष्ठ, वसुमती, चणकपुर, ऋषभपुर, कुशाग्रपुर, राजगृह। इसे पंचशैल भी कहा जाता था। 'षट्खण्डागम'में लिखा है—

पंचसेलपुरे रम्मे विउले पव्वहुत्तमे।
णाणा दुम समाइण्णे देव-दाणव-वंदिदे॥
महावीरेणत्थो कहिओ भवियलोयस्स।

अर्थात् पंचशैलपुर (राजगृह) में रमणीय, नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त, देव और दानवोंसे वन्दित और सर्व पर्वतोंमें उत्तम ऐसे विपुलाचल पर्वतके ऊपर भगवान् महावीरने भव्य जीवोंको उपदेश दिया।

इसी आशयको व्यक्त करनेवाली गाथा 'तिलोयपण्णत्ति[3]' ग्रन्थमें भी मिलती है—

सुरखेयरमणहरणे गुणणामे पंचसेलणयरम्मि।
विउलम्मि पव्वदवरे वीरजिणो अट्ठकत्तारो॥

वास्तवमें राजगृहको पंचशैलपुर इसलिए कहा जाता है क्योंकि वहाँ पाँच पर्वत हैं। विभिन्न ग्रन्थोंमें इन पाँच पर्वतोंके नामोंमें कुछ अन्तर मिलता है। महाभारत (सभा पर्व २१) में इनके नाम वैभार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक आये हैं। पालि ग्रन्थोंमें गिज्झकूट, इसिगिलि, वेभार, वेपुल्ल और पाण्डव नाम दिये हैं।

'षट्खण्डागम'में इन पर्वतोंके नाम ऋषिगिरि, वैभार, विपुलगिरि, छिन्न और पाण्डु दिये हैं। उनकी स्थिति इस प्रकार बतायी है—

पूर्व दिशामें चौकोर आकारवाला ऋषिगिरि नामका पर्वत है। दक्षिण दिशामें वैभार और नैऋत्य दिशामें विपुलाचल नामके पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत त्रिकोण आकारवाले हैं। पश्चिम, वायव्य और सौम्य दिशामें धनुषके आकारवाला फैला हुआ छिन्न नामका पर्वत है। ऐशान दिशामें पाण्डु नामका पर्वत है। ये सब पर्वत कुशके अग्रभागोंसे ढके हुए हैं।[4]

---

१. विविध तीर्थकल्प—वैभारगिरिकल्प। २. षट्खण्डागम १।१।१ (सत्प्ररूपणा १), पृष्ठ ६२। ३. तिलोयपण्णत्ति १।६५। ४. ऋषिगिरिरैन्द्राशायां चतुरस्रो याम्यदिशि च वैभारः। विपुलगिरिर्नैऋत्यामुभौ त्रिकोणौ स्थितौ तत्र ॥५३॥ धनुराकारश्छिन्नो वारुणवायव्यसौम्यदिक्षु ततः। वृत्ताकृतिरैशान्यां पाण्डुः सर्वे कुशाग्रवृताः ॥५४॥—षट्खण्डागमसत्प्ररूपणा १, पृ. ६२। चउरस्सो पुव्वाए रिसिसेलो दाहिणाए वेभारो। णइरिदिदिसाए विउलो दोण्णि तिकोणट्ठिदायारा॥ चावसरिच्छो छिण्णो वरुणाणिलसोमदिसविभागेसु। ईसाणाए पंडू वण्णा सव्वे कुसग्गपरियरणा॥ —तिलोयपण्णत्ति, १।६६-६७।

इसी आशयका समर्थन करनेवाले उल्लेख 'तिलोयपण्णत्ति' में भी उपलब्ध होते हैं।

गिरिव्रजपुरके चार द्वार थे। पहला वैभार और विपुलगिरिके मध्य सूर्यद्वार। दूसरा गिरिव्रजगिरि और रत्नाचलके मध्यमें। यह गजद्वार कहलाता था। तीसरा रत्नागिरि और उदयगिरिके बीच में। चौथा रत्नाचल और चक्रके बीचमें। नगरके बीचमें सरस्वती नदी बहती थी। और उत्तरी द्वारके बगलसे निकलती थी। बानगंगा राजगिरके दक्षिणमें थी। जरासन्धका महल वैभारगिरि और रत्नाचलके बीचकी घाटीके पश्चिमकी तरफ बना हुआ था। जरासन्धकी रंगभूमि या अखाड़ा वैभारकी तलहटीमें, सोन भण्डार गुफाके पश्चिममें एक मील दूर है। भीमसेनका अखाड़ा या मल्लभूमि सोनागिरकी तलहटीमें है। किंवदन्ती है कि भीम और जरासन्ध यहाँ १३ दिन लड़े थे। राजगिरसे छह मील गिरियक पहाड़ी है। वहाँ एक बुर्ज है जो जरासन्धकी बैठक कहलाता है। जैन अनुश्रुतिके अनुसार जरासन्ध प्रतिनारायण था और श्रीकृष्ण नारायण थे। प्रतिनारायणकी मृत्यु नारायणके हाथसे ही होती है, यह प्राकृतिक नियम है। अतः श्रीकृष्णके हाथों ही जरासन्धकी मृत्यु हुई थी।

तीर्थ-दर्शन

राजगृहका राजनैतिक महत्त्व यद्यपि नष्ट हो चुका है किन्तु उसकी धार्मिक महत्ता अबतक अक्षुण्ण है। यहाँ प्रतिवर्ष हजारों जैन यात्री दर्शनार्थ आते हैं। वास्तवमें राजगृह अपनी धार्मिक महत्ताके कारण ही ईसासे अनेक शताब्दियों पूर्वसे ही प्रसिद्ध रहा है। यह नगरी पाँच पहाड़ियोंके बीचमें बसी होनेके कारण बोलचालमें इसका नाम पंच पहाड़ी पड़ गया। इन पाँचों पहाड़ोंमें विपुलाचल, रत्नगिरि, उदयगिरि, स्वर्णगिरि (श्रमणगिरि) और वैभारगिरि सम्मिलित हैं।

आधुनिक राजगृही नगरीमें राजगिर स्टेशनसे पश्चिममें दो फर्लांग दूर दिगम्बर जैन धर्मशाला और दो विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। ये मन्दिर तलहटीके मन्दिर कहलाते हैं। बड़े मन्दिरमें पाँच शिखरयुक्त वेदियाँ हैं। इसका निर्माण दिल्ली निवासी लाला धर्मदास न्यादरमलने करवाकर वीर सं. २४५१ में इसकी प्रतिष्ठा करायी। यह लालमन्दिर कहलाता है। इस मन्दिर की वेदियों और मूर्तियोंका परिचय इस प्रकार है—

बायीं ओरसे—

पहली वेदी—मुख्य प्रतिमा भगवान् महावीरकी श्वेत पाषाण, पद्मासन। इस वेदीमें इस प्रतिमाके अतिरिक्त २ धातु-प्रतिमा तथा धातुकी १ चौबीसी है।

दूसरी वेदी—मुख्य प्रतिमा भगवान् पुष्पदन्तकी है। श्वेत पाषाण, पद्मासन है। इसके अतिरिक्त २ पाषाण प्रतिमाएँ और हैं।

तीसरी वेदी—इस मन्दिरमें मुख्य वेदी यही है और इस वेदीमें मूलनायक भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी प्रतिमा है। श्याम वर्ण, अवगाहना २२ इंच, पद्मासन। इस प्रतिमापर निम्नलिखित लेख अंकित है।

"श्री वीर संवत् २४४९ वि. सं. १९७९ माघ शुक्ला १२ चन्द्रवासरे कुन्दकुन्दाम्नाये दिल्लीनगरे प्रतिष्ठितम्।"

इस प्रतिमाके अतिरिक्त इस वेदीमें ७ पाषाण प्रतिमाएँ और हैं। इनमें ४ श्वेत वर्ण, २ मूँगा वर्ण तथा १ श्याम वर्ण है।

वेदी बड़ी भव्य है। इसके ऊपर सोनेकी चित्रकारी की हुई है। लघु शिखर और दीवालोंपर भी चित्रकारी की हुई है जो दर्शनीय है।

चौथी वेदी भगवान् चन्द्रप्रभकी है। प्रतिमा श्वेत पाषाणकी पद्मासन है।

पाँचवीं वेदीमें कृष्ण पाषाणके भगवान् नेमिनाथ पद्मासनमें विराजमान हैं। इसके अतिरिक्त इस वेदीमें २ पाषाणकी तथा १४ धातुकी प्रतिमाएँ हैं।

गर्भगृह मण्डपसे वापस लौटनेपर बायीं ओरके बरामदेमें कुछ प्राचीन मूर्तियाँ व्यवस्थित ढंगसे रखी हुई हैं। इनमें कुछ मूर्तियाँ वैभारगिरि पर उत्खननमें प्राप्त प्राचीन जैन मन्दिरसे लायी गयी हैं। बायीं ओरसे क्रमशः इन मूर्तियोंका विवरण इस प्रकार है—

१. भगवान् नेमिनाथ, अवगाहना साढ़े चार फुट, सलेटी वर्ण, पद्मासन। भगवान्के आजू-बाजू चमरवाहक खड़े हैं। सिरके पीछे भामण्डल है और सिरपर छत्रत्रय सुशोभित हैं। छत्रोंके इधर-उधर आकाशचारी देवियाँ पुष्पमाल लिये हुए अंकित हैं। पीठासनके दोनों सिरोंपर सिंह बने हुए हैं। मध्यमें धर्मचक्र है और उसके दोनों बाजुओंमें भगवान्का लांछन शंख अंकित है।

२. भगवान् महावीर। अवगाहना पौने तीन फुट, सिलेटी वर्ण, पद्मासन। दोनों ओर अलंकार धारण किये हुए चमरवाहक। सिरके ऊपर छत्रत्रय। दोनों सिरोंपर आकाशचारी युगल। पीठासनके दोनों सिरोंपर सिंह तथा मध्यमें लांछन सिंह।

३. सात अंगुलकी मूँगा वर्णकी पार्श्वनाथ प्रतिमा पद्मासन में।

दो धातु प्रतिमाएँ पाँच-पाँच अंगुलकी पद्मासनमें। तथा एक पद्मासन खण्डित मूर्ति।

४. खड्गासन तीर्थंकर-प्रतिमा। जाँघोंसे नीचेका भाग खण्डित है।

५. किसी जैन मूर्तिकी चरण-चौकी। बीचमें वृषभ लांछन है। उसके इधर-उधर सिंह बने हुए हैं।

६. अम्बिकादेवीकी लगभग •तीन फुटकी पाषाण प्रतिमा, वर्ण सलेटी। सुखासनमें बैठी हुई। गोदमें एक बालक, दूसरा बालक उँगली पकड़े हुए है। सिरपर आम्र-गुच्छक है। उसके ऊपर लगभग १० इंचका सिंहासनका शीर्ष-फलक। देवीके नीचे सिंह बैठा है।

७. तीन फुटका वेदिका-स्तम्भ।

८. एक शिला-फलकमें २४ पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ। फलक खण्डित है। सम्भवतः इसमें तीन चौबीसी रही होगी।

९. एक अलमारीमें पाँच धातु प्रतिमाएँ हैं। १ स्फटिक प्रतिमा है तथा पाषाणकी १ प्रतिमा खण्डित है।

१०. एक शिलाफलकमें नवग्रह।

११. एक पाषाण-स्तम्भका खण्डित भाग।

१२. एक शिलाफलकमें नौ देवियाँ।

१३. नौ देवियाँ।

इनके अतिरिक्त नव देवताकी १ धातु मूर्ति तथा दो पंचपरमेष्ठी धातु-मूर्तियाँ हैं।

इनमें कई मूर्तियाँ आठवीं शताब्दी और उसके बाद की हैं।

बाहरी बरामदेकी वेदीकी मूर्तियाँ

मन्दिरके बाहरी बरामदेमें जो वेदी बनी हुई है, उसमें १३ पाषाण और १९ धातुकी प्रतिमा विराजमान हैं। दो पीतलके मानस्तम्भ बने हुए हैं। इन प्रतिमाओंमें तीन प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं—

१. सवा दो फुट लम्बे एक शिलाफलकमें एक खड्गासन प्रतिमा है तथा ऊपरी भागमें दो पद्मासन प्रतिमाएँ अंकित हैं। लांछन कोई नहीं है, किन्तु ये शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथकी प्रतीत होती हैं।

२. एक श्याम शिलापट्टपर भगवान् पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। सर्पकुण्डली पैरोंसे सिर तक बड़े कलात्मक ढंगसे बनी हुई है। सिरपर सर्पफण मण्डप है। फण भी अत्यन्त कलापूर्ण बना हुआ है। ऊपरके भागमें आकाशचारी देवियाँ पुष्प-वर्षा कर रही हैं। नीचेके भागमें दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं तथा दोनों ओर चार-चार पद्मासन जिन-प्रतिमाएँ बनी हुई हैं।

३. एक प्रतिमा तीर्थंकरकी माताकी है। माता लेटी हुई है। बाल भगवान् उनके पास लेटे हुए हैं। मध्य भागमें एक पद्मासन जिनप्रतिमाका अंकन है। इसके बाद अम्बिकादेवी अपने दोनों बालकोंको लिये बैठी है। सबसे अन्तमें चमरवाहिनी चमर डोल रही है।

धर्मशालाका मन्दिर

इस मन्दिरमें मूलनायक भगवान् महावीरकी श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त १० धातु प्रतिमाएँ और दो धातुके मानस्तम्भ हैं।

गर्भगृह की बाहरी दीवालके आलेमें बायीं ओर पद्मावतीकी पाषाणकी मूर्ति है। इसके शिरोभागपर पार्श्वनाथ विराजमान हैं। इसके पास ही धातु निर्मित दसभुजी चक्रेश्वरी और पद्मावती विराजमान हैं। दायीं ओरके आलेमें क्षेत्रपाल स्थित हैं। इस मन्दिरका निर्माण गिरीडी निवासी सेठ हजारीमल किशोरीलालने कराया था और प्रतिष्ठा वी. सं. २४५० में हुई।

श्वेताम्बर मन्दिर

यहाँ एक श्वेताम्बर मन्दिर और धर्मशाला है। सारा मन्दिर मार्बलका बना हुआ है। मन्दिरका द्वार और छत देलवाड़ाके अनुकरणपर अत्यन्त भव्य और कलापूर्ण बनाया गया है। मन्दिरका बाह्य दृश्य भी रुचिकर है। मन्दिरके सामनेके कमरेमें एक संग्रहालय है। इसमें १७ चरण और २० जिनप्रतिमाएँ रखी हुई हैं। ये सब पहाड़के मन्दिरोंसे लायी हुई हैं। इनमें कई तो गुप्तकाल तथा उससे पूर्वकी भी लगती हैं। अशोक वृक्ष और धर्मचक्र भी हैं जो अत्यन्त कलापूर्ण हैं।

विपुलाचल

धर्मशालासे चलकर कुछ दूरपर सरकारी बँगले मिलते हैं जो रेस्ट हाउसकी तरह प्रयुक्त होते हैं। फिर गर्म जलके छह कुण्ड मिलते हैं। यहाँसे कुछ आगे चलनेपर पहाड़की चढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है। इस पर्वतपर जानेके लिए १५० सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। आधा मील चलने पर एक दिगम्बर जैन टेकरी मिलती है। जहाँ कमलासनपर भगवान् महावीरके चरण विराजमान हैं। इन चरणोंकी लम्बाई १६ अंगुल है। इस मन्दिरका जीर्णोद्धार सौ. चांदबाई धर्मपत्नी सेठ कन्हैया-लाल पहाड्या कुचामन हाल मद्रासने बी. सं. २४९१ में कराया था। इसके बाद एक मील और चलना पड़ता है। यात्रा सुगम है।

पर्वतपर सर्वप्रथम दिगम्बरोंकी टेकरी मिलती है, जिसमें भगवान् चन्द्रप्रभके प्राचीन चरण विराजमान हैं। चरण १६ अंगुलके हैं। इस टेकरीका जीर्णोद्धार सेठ कन्हैयालाल पहाड्या कुचामनने वी. सं. २४८७ में कराया। फिर दिगम्बर जैन मन्दिर मिलता है। इसमें वेदी तथा प्रतिमाका निर्माण श्री भँवरलाल सेठी सुजानगढ़ निवासीने कराया और वि. सं. १९९८ में पाँचवें

पहाड़के मन्दिरकी वेदी-प्रतिष्ठाके समय इसकी भी प्रतिष्ठा करायी। इस मन्दिरमें भगवान् चन्द्रप्रभुकी श्वेत पाषाणकी पौने तीन फुटकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके बायीं ओर एक मन्दिर है जिसमें भगवान् महावीरकी पौने दो फुटकी श्वेत पाषाणकी प्रतिमा है। सन् १९३६ में इसकी प्रतिष्ठा हुई। बायीं ओर आलेमें मुनिसुव्रतनाथकी प्रतिमा तथा दायीं ओर सुधर्मा स्वामीके चरण विराजमान हैं।

इस मन्दिरके बिलकुल निकट एक मन्दिर श्वेताम्बरोंका है। इसमें भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी मूर्ति विराजमान है।

यति मदनकीर्ति विरचित 'शासन-चतुस्त्रिंशिका' (वि. सं. १२८५) से विपुलगिरिपर एक ऐसे दिगम्बर जिनबिम्बका वर्णन मिलता है जो १२ योजन तक दिखाई देता था। श्लोक इस प्रकार है—

सिक्ते सत्सरितोऽम्बुभिः शिखरिणः सम्पूज्य देशे वरे
सानन्दं विपुलस्य शुद्धहृदयैरित्येव भव्यैः स्थितैः।
निर्ग्रन्थं परमार्हतो यदमलं बिम्बं दरीदृश्यते
यावद् द्वादशयोजनानि तदिदं दिग्वाससां शासनम् ॥३३॥

अर्थात् निकटवर्ती नदीके पवित्र जलसे अभिषिक्त विपुलगिरिके श्रेष्ठ प्रदेशमें स्थित शुद्ध हृदयवाले भव्यों द्वारा बड़े आनन्दसे पूजित होकर जो अरहन्त देवका निर्ग्रन्थ एवं निर्मल दिगम्बर जिनबिम्ब बारह योजन तक देखा जाता है सो यह दिगम्बर शासनका माहात्म्य है।

यह विपुलाचलपर विराजमान किसी ऐसी मूर्तिका अतिशय है कि वह बारह योजन तक दिखाई देती रही है। सम्भव है, वह मूर्ति विशालकाय रही हो और वह विपुलगिरिके शिखरपर विराजमान हो जिससे वह बारह योजन तक दिखलाई देती हो। किन्तु इतनी विशाल अवगाहनावाली कोई मूर्ति यहाँ कभी रही हो, इसके कोई प्रमाण या साक्ष्य आज उपलब्ध नहीं हैं। उस मूर्तिका क्या हुआ, इसके सम्बन्धमें भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु तेरहवीं शदीके यतिवर्य मदनकीर्तिके विवरणसे ऐसा लगता है कि यह मूर्ति उनके कालमें विद्यमान थी और सम्भवतः इस चमत्कारी मूर्तिके दर्शन भी उन्होंने किये थे।

भगवान् महावीरका सर्वप्रथम उपदेश इसी विपुलगिरिपर हुआ था और उन्होंने यहींपर आजसे २५३० वर्ष पूर्व श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको धर्मचक्र-प्रवर्तन और धर्म-तीर्थकी स्थापना की थी। इसीकी स्मृतिमें सन् १९४४ में यहाँ पर वीर सेवा मन्दिरके तत्त्वावधानमें वीर शासन जयन्ती मनायी गयी थी। उसके स्मारकके रूपमें यहाँ एक स्तम्भपर अभिलेख अंकित किया गया था, जिसपर यह लिखा हुआ है —

"*In commemoration of the great event of the delivery of the first discourse by Lord Mahavir on this secred spot of the Vipulgiri at Rajgir on this auspicious day, Shravan Krishna Pratipada.*

7th July 1944

रत्नागिरि

यह दूसरा पर्वत है। पहले पर्वतसे यह दो मील पड़ता है, जिसमें एक मीलकी उतराई है और फिर एक मीलकी चढ़ाई। मार्ग ऊबड़-खाबड़ है। यहाँ बाबू धर्मकुमारजीके नामपर ब्रह्मचारिणी पण्डिता चन्दाबाईजी आरा द्वारा निर्मित शिखरबन्द मन्दिर है जिसकी प्रतिष्ठा विक्रम

संवत् १९३६ में हुई थी। यह बड़ा मन्दिर कहलाता है। इसमें मुनिसुव्रतनाथकी कृष्ण वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना चार फुट है। बायीं ओर आलेमें पार्श्वनाथके चरण स्थापित हैं। मन्दिरमें गर्भगृह और बाहर मण्डप है। मन्दिरके निकट टोंक है जो केवली धनदत्त, सुमन्दर और मेघरथका निर्वाण-स्थल माना जाता है।

मन्दिरके बाहर दायीं ओर एक गुमटीमें क्षेत्रपाल हैं। बायीं ओर एक कमरा बना हुआ है।

कुछ आगे चलकर एक गुमटीमें भगवान् चन्द्रप्रभके चरण हैं। इसके निकट ही एक मन्दिर श्वेताम्बर सम्प्रदायका है। इस मन्दिरमें चन्द्रप्रभ और शान्तिनाथकी मूर्तियाँ हैं तथा नेमिनाथ, शान्तिनाथ, पाश्वंनाथ और वासुपूज्य भगवान्‌के चरण हैं। इस पर्वतसे उतरनेके लिए १३०० सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

रत्नागिरि पर्वतसे गृध्रकूट पर्वत तकके लिए सरकारने १८ लाख रुपयोंसे एक रज्जुमार्ग बनवाया है। इसपर १६० व्यक्ति एक साथ आकाश-मार्गसे आ-जा सकते हैं।

उदयगिरि

दूसरे पर्वतसे उतरकर लगभग डेढ़ मीलपर गया-पटना रोड मिलता है। फिर लगभग आधा मील चलकर तीसरे पर्वत (उदयगिरि) की चढ़ाई प्रारम्भ होती है। यह चढ़ाई प्रायः एक मीलकी है और इसके लिए ७८६ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर एक मन्दिर है जिसमें भगवान् महावीरकी एक खड्गासन प्रतिमा है। वर्ण हलका बादामी और अवगाहना छह फुट है। इस मन्दिरका निर्माण कलकत्ता निवासी बाबू दुर्गाप्रसादजी सरावगीने वीर संवत् २४८९ में कराया और मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी।

इसके निकट ही एक श्वेताम्बर मन्दिर है। वेदी खाली है। बायीं ओर चन्द्रप्रभ और दायीं ओर पार्श्वनाथके चरण हैं। इसके आगे चलकर एक गुमटी है। इसमें भगवान् आदिनाथके चरण हैं।

पहाड़से नीचे उतरनेपर एक जलपान गृह समाजकी ओरसे बना हुआ है।

यहाँ निकट ही एक प्राचीन मन्दिरके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। ये अवशेष एक ऊँचे टीलेपर हैं। यहाँ कुछ प्रतिमाएँ निकली थीं जो नीचे लाल मन्दिरमें रख दी गयीं।

इसके निकट एक और प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर निकला है। कहते हैं, २२ वर्ष पहले शाह राजालाल देहलीवालों को स्वप्न हुआ। उसके अनुसार यहाँ खुदाई करायी गयी। फलतः यह मन्दिर निकला। इसमें श्वेत पाषाणके चरण और एक चौबीसी निकली। ये नीचे मन्दिरमें पहुँचा दी गयीं। अब यहाँ एक चबूतरे पर श्याम पाषाणके चरण विराजमान हैं। इन्हें संवत् २०१३ में विराजमान किया गया है। मन्दिरके ऊपर छत नहीं है। मन्दिरके बाहर डबल कम्पाउण्ड बना हुआ है।

इस पर्वतसे उतरते हुए बायीं ओर पर्वतके चरणोंको धोती हुई फल्गु नदी बहती है।

पर्वतसे उतरकर जलपान गृह (श्वेताम्बर और दिगम्बर) बने हुए हैं। दिगम्बर जलपान गृहमें दिगम्बर जैन कार्यालयकी ओरसे जलपानका प्रबन्ध है। पर्वतसे चढ़ने और उतरनेका मार्ग एक ही है।

शंख लेख

इससे कुछ आगे चलकर सड़कके किनारे बायीं ओर पत्थरका छोटा-सा घेरा मिलता है। इसमें पत्थरोंपर शंखलिपिमें अनेक लेख खुदे हुए हैं। यह लिपि पहलीसे पाँचवीं शताब्दी तक भारतमें प्रचलित थी। किन्तु लेख अभी तक पढ़े नहीं जा सके हैं। इस घेरेमें रथोंके चक्कों की गहरी लीक बनी हुई है। इस लिपिमें कुछ लेख सोन भण्डार गुफाओंकी दीवालोंपर भी लिखे हुए हैं।

कुछ लोग ऐसे हैं, जिनमें एक साथ पाँचों पर्वतोंकी वन्दना करनेकी शक्ति नहीं है। वे यहाँसे धर्मशाला लौट जाते हैं। यहाँसे धर्मशाला लगभग एक मील पड़ती है और दूसरे दिन फिर चौथे पर्वत—श्रमणगिरिसे अपनी वन्दना प्रारम्भ करते हैं।

मनियार मठ

सरस्वतीपर लोहेके पुलको पार कर सीधे हाथकी ओर जब ज्ञानगंगाकी धाराकी ओर जाते हैं तो गर्म जलके कुण्डोंसे लगभग ३०० गज चलकर प्राचीन किलेका उत्तरी भाग मिलता है। वहाँसे लगभग एक मीलपर मनियार मठ है। वास्तवमें एक टीलेपर बने हुए प्राचीन जैन मन्दिरका ही यह नाम है। यह टीला १० फुट चौड़े एक कुएँको भरकर बना हुआ है। सन् १८५१ में जनरल कनिंघमने इस कुएँकी खुदाई करायी थी। तब १९ फुटपर जाकर तीन मूर्तियाँ मिली थीं, जिनमें एक नग्न प्रतिमा थी, जिसके सिरपर सप्त फण थे। वास्तवमें यह प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी थी। इसके अतिरिक्त और भी प्राचीन सामग्री निकली थी। यह रानी चेलनाका निर्माल्य कूप भी कहलाता है। इस सम्बन्धमें एक किंवदन्ती है कि रानी चेलना प्रतिदिन स्नान करके पहले दिनके पहने हुए वस्त्र और आभूषण इस कुएँमें डाल देती थी और नये वस्त्राभूषण पहनती थी।

एक मान्यता यह भी है कि यह सेठ शालिभद्रका बनवाया प्राचीन जैन मन्दिर था तथा उस सेठने अपना भण्डार एक कुएँके भीतर गाड़ दिया था। यहाँ निकली मूर्तियोंको देखनेसे यह अनुमान होता है कि यह मन्दिर पहलीसे छठी शताब्दीके बीचका होगा। यह मन्दिर खुदाईके समय गिरा दिया गया था।

इस समय एक ऊँचे टीलेपर एक प्राचीन कूपाकार भवन है। उसके ऊपर टीनका शेड बना हुआ है। इस भवनके चारों ओर मैदानमें प्राचीन भवनके चबूतरेनुमा अवशेष हैं।

पुरातत्त्व विभागकी ओरसे इसके सम्बन्धमें जो सूचना पट्टपर अंकित है, वह इस प्रकार है—

"यहाँकी खुदाईसे कई स्तरोंके मन्दिर और मकान मिले हैं जो कमसे कम पहलीसे छठी शती तकके हैं। कूपाकार मन्दिर सम्भवतः महाभारतमें उल्लिखित मणिनागका मन्दिर था। इसके निकट दूसरी शती ई. की लेखयुक्त मणिनागकी मूर्ति और अनेक टूँटियोंवाले मिट्टीके बर्तन मिले हैं, जिनकी भाँतिके बर्तन आजकल भी नागपूजामें व्यवहृत होते हैं।"

बिम्बसार-बन्दीगृह

मनियार मठसे प्रायः पौन मील दक्षिणकी ओर लगभग २०० गज वर्गाकार क्षेत्र है। जिसके चारों ओर लगभग छह फुट मोटी और कोनोंपर गोल बुर्जोंसे सुरक्षित पत्थरोंकी दीवार बनी हुई है। कहा जाता है, अजातशत्रुने अपने पिता श्रेणिक बिम्बसारको इसी स्थानपर बन्दी बनाकर

रखा था। यहाँकी खुदाईमें पत्थरकी कोठरियाँ भी निकली थीं। एक कोठरीमें लोहेकी जंजीर मिली थी, जिसके एक सिरेपर कुण्डा लगा हुआ था। यह शायद हथकड़ीका काम देता था।

श्रमणगिरि

धर्मशालासे यह पर्वत ३ मील है। इस पर्वतपर १०६१ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। चढ़ाई लगभग २ मील है। इस पर्वतपर पास-पास तीन दिगम्बर मन्दिर और १ श्वेताम्बर मन्दिर बना हुआ है। प्रथम दिगम्बर मन्दिरमें भगवान् शान्तिनाथकी श्याम वर्ण पद्मासन दो फुटी प्रतिमा विराजमान है। यह मन्दिर फीरोजपुर निवासी सेठ डालचन्द तुलसीरामने वीर सं. २४५४ में बनवाया था। दायीं ओर भगवान् महावीरके चरण हैं तथा बायीं ओर भगवान् शान्तिनाथके। मन्दिरमें गर्भगृह तथा बाहर मण्डप है।

दूसरे मन्दिरमें एक वेदीमें भगवान् आदिनाथके कृष्ण पाषाणके चरण विराजमान हैं। बायीं ओरकी वेदीमें भगवान् नेमिनाथके तथा दायीं ओरकी वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथके चरण बने हुए हैं। तीनों ही कृष्ण वर्णके और वीर संवत् २४९२ के हैं।

तीसरी टोंकमें भगवान् शान्तिनाथके श्वेत चरण विराजमान हैं। कहते हैं, यह गुमटी ही इस पर्वतपर सबसे प्राचीन है और इसमें भगवान् शान्तिनाथकी प्रतिमा विराजमान थी।

इसके आगे एक चबूतरेपर क्षेत्रपाल है।

श्वेताम्बर मन्दिरमे महावीर स्वामी और आदिनाथके चरण है। मूल वेदी खाली है।

इस पर्वतको श्रमणगिरि या सोनागिर कहते हैं।

सोनभण्डार गुफा

इस पर्वतके दक्षिणी ढलानपर दो गुफाएँ हैं—एक पश्चिमकी ओर और दूसरी पूर्वकी ओर। पश्चिमी गुफामें ६ फुटका द्वार है। एक खिड़की है जो सरकारने बनवायी है। इसकी दीवालें ६ फुट ऊँची हैं। छत झुकावदार है। इस गुफाकी दीवालोंपर लेख भी हैं, किन्तु वे प्रायः अस्पष्ट और अपाठ्य हैं। द्वारके बायीं ओरकी दीवालपर एक शिलालेखकी केवल दो पंक्तियाँ पुरातत्त्ववेत्ताओंने पढ़ पायी हैं जो इस प्रकार हैं—

"निर्वाणलाभाय तपस्वियोग्ये शुभे ग्रहेऽर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठे।
आचार्यरत्नं मुनिर्वैरदेवः विमुक्तयेऽकारयद्दूर्ध्वंतेजः॥

अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी आचार्य प्रवर वैरदेवने मुक्ति-प्राप्तिके लिए तपस्वियोंके योग्य दो शुभ गुफाओंका निर्माण कराया।

यह लेख लिपि-शैलीके आधारपर तीसरी-चौथी शताब्दीका बताया जाता है।

सन् १९५८ में अपनी प्रथम शोध-यात्राके प्रसंगमें जब यहाँ आया था उस समय इस गुफामें एक समवसरण-स्तम्भमें चतुर्मुखी प्रतिमाएँ (सर्वतोभद्रिका प्रतिमा) थीं। उनमें प्रत्येकका मुख खण्डित था। किन्तु आसनपीठोंपर वृषभ, गज, अश्व और बन्दरोंके जोड़े और उनके बीचमें धर्मचक्र बने हुए थे। इनसे ज्ञात होता था कि ये प्रतिमाएँ क्रमशः तीर्थंकर ऋषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ और अभिनन्दननाथकी थीं। इन सभी प्रतिमाओंके दोनों बगल चँवरधारी खड़े थे।

---

१. Annual Report—Archeological Survey of India, 1905-6, p. 98

सभी प्रतिमाएँ कायोत्सर्ग मुद्रामें थीं। किन्तु सन् १९७३ की इस यात्रामें वह सर्वतोभद्रिका प्रतिमा मुझे नहीं मिली। ज्ञात हुआ, वह चोरी चली गयी। वह प्रतिमा लगभग तीसरी शताब्दीकी थी।

इस गुफाके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती यह भी प्रचलित है कि इसी गुफामें राजा श्रेणिकका स्वर्णकोष छिपा हुआ है। इसीलिए इस गुफाका नाम सोनभण्डार (स्वर्ण भण्डार) चला आता है। सम्भवतः इस कोषके लिए पुरातत्त्व विभागकी ओरसे पिछली दीवालमें बने हुए दरवाजेको खोदनेका प्रयत्न हुआ था। हथौड़ोंकी चोटोंसे भी दरवाजा नहीं टूट पाया और छत टूटनेकी आशंका पैदा हो गयी। तब यह काम छोड़ देना पड़ा।

दूसरी पूर्वी गुफा पहली गुफासे जरा नीचाईपर है। सम्भवतः गुफाके आगे बरामदा और दूसरी मंजिल भी थी जिनके चिह्न अबतक बाकी हैं। इसकी छत गिर चुकी है। द्वारमें घुसते ही दायीं ओर दीवालमें २ खड्गासन और १३ पद्मासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। ये प्रतिमाएँ पाँच कोष्ठकोंमें हैं। बायीं ओरसे इनका विवरण इस प्रकार है—

१. खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा कमलासनपर आसीन है। दोनों बाजुओंमें चरणोंके पास पद्मासन मूर्तियाँ हैं। खड्गासन मूर्तिकी अवगाहना २१ इंच है। मुख खण्डित है। इधर-उधर चमरवाहक हैं। मूर्तिके शिरोभागमें दोनों ओर दो आकाशचारी किन्नर हाथ जोड़े हुए हैं।

२. क्रमांक एकके समान। अन्तर इतना है कि इसमें किन्नर पुष्पमाल लिये हुए हैं।

३. पद्मासन मूर्ति है। चरण चौकीपर मध्यमें धर्मचक्र है। उसके दोनों ओर हाथी हैं। दोनों कोनोंपर पद्मासन प्रतिमा हैं। बायीं ओर चमरवाहक है किन्तु वह खण्डित है। दूसरी ओरका चमरवाहक तोड़ दिया गया है। छातीसे ऊपर मूर्तिका भाग तथा छत्र आदि खण्डित हैं।

४. क्रमांक तीन जैसा ही। केवल हाथीके स्थानपर सिंह है। मूर्तियोंके मुख खण्डित हैं।

५. इस कोष्ठकमें धर्मचक्र है। इधर-उधर सम्भवतः सिंह थे जो खण्डित हैं। चमरवाहकों और मूर्तिका मुख खण्डित है।

बायीं ओरकी दीवालमें एक पद्मासन प्रतिमा है जो खण्डित है। चरणोंके नीचे धर्मचक्र, उसके इधर-उधर सिंह हैं। उनके दोनों ओर पद्मासन मूर्तियाँ हैं। एक ओर चमरवाहक खण्डित है। शेष सारा भाग खण्डित है।

ये गुफाएँ ईसाकी तीसरी शताब्दीकी बनी हुई हैं। जैन मुनि इनका उपयोग तपस्याके लिए करते थे, ऐसा पुरातत्त्व वेत्ताओंका मत है।

यहाँसे लगभग डेढ़ मील पश्चिमकी ओर जरासन्धका अखाड़ा है। गुफासे कुछ आगे बढ़नेपर सोन मन्दिरके अवशेष मिलते हैं। इसमें सर्पफणमण्डित एक मूर्ति निकली थी जो बलरामकी कही जाती है क्योंकि बलराम शेषनागके अवतार माने जाते हैं।

वैभारगिरि

सोनमन्दिरसे कुछ आगे बढ़नेपर वैभार पर्वतकी चढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है। शासनकी ओरसे इस पर्वतके लिए सीढ़ियाँ निर्मित हुई हैं। सीढ़ियोंकी संख्या ५६५ है। शेष पर्वतोंकी सीढ़ियाँ जैन समाजने बनवायी हैं।

पर्वतपर पहले श्वेताम्बर मन्दिर आता है। इसमें पार्श्वनाथकी मूर्ति विराजमान है। मूर्ति श्वेत पाषाणकी पद्मासन है। दायीं ओर बायीं ओर क्रमशः नेमिनाथ और शान्तिनाथके चरण हैं। बायीं ओर कुछ दूरपर शालिभद्रका मन्दिर है।

कुछ आगे बढ़नेपर दिगम्बर मन्दिर आता है। मन्दिरमें महावीर भगवान्‌की ४ फुट अवगाहनावाली श्वेत पद्मासन मूर्ति है। मूर्ति बहुत मनोज्ञ है। इसकी प्रतिष्ठा वीर संवत् २४८९ में भागलपुरके श्री हरनारायण आत्मज वीरचन्द भार्या पुष्पादेवीने करायी थी।

यह वेदी तीन दरकी है। बायीं ओर आचार्य शान्तिसागरजीके चरण हैं तथा दायीं ओर भगवान् आदिनाथके चरण विराजमान हैं। चरण कृष्ण पाषाणके हैं। बायीं ओर दीवालमें एक वेदी है, जिसमें भगवान् नेमिनाथके चरण हैं तथा दायीं ओर भगवान् पार्श्वनाथके चरण हैं। मन्दिरमें गर्भगृह और बाहर मण्डप बना हुआ है।

इस मन्दिरके बायीं ओर महादेव मन्दिरके पथके किनारे एक भग्न जैन मन्दिर है। इस मन्दिरका उत्खनन पुरातत्त्व विभागकी ओरसे हुआ था। यह मन्दिर आठवीं शताब्दीका अनुमान किया जाता है। यहाँ अनेक जैन मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें कुछ मूर्तियोंपर लेख भी अंकित हैं। इस मन्दिरमें गर्भगृहके अतिरिक्त मन्दिरके चारों ओर २२ कोठरियाँ बनी हुई हैं। इनके अतिरिक्त पाँच कमरे अलग बने हुए हैं। गर्भालय और कोठरियोंकी दीवालोंमें ताकनुमा वेदियाँ बनी हुई हैं, जिनमें मूर्तियाँ विराजमान होंगी। इन कोठरियोंमें-से एकमें ७, मुख्य गर्भगृहमें ३ और ८ कोठरियों-में एक-एक मूर्ति विराजमान हैं। शेष कोठरियोंकी वेदियाँ खाली पड़ी हैं। सम्भवतः कुछ मूर्तियाँ नालन्दा म्यूजियममें पहुँचा दी गयी हैं। कुछ मूर्तियाँ चोरी चली गयीं, ऐसा ज्ञात हुआ। कोठ-रियोंके ऊपर छत नहीं है। गर्भगृहके बाहर सभामण्डप और परिक्रमा पथ है। उसके चारों ओर कोठरियाँ बनी हुई हैं।

एक कमरेमें ७ मूर्तियाँ रखी हुई हैं, जिनमें एक मूर्ति बिलकुल घिस गयी है। मूर्तियोंपर लांछन और श्रीवत्स नहीं हैं। इन मूर्तियोंका विवरण इस प्रकार है। बायीं ओरसे—

१. दो फुटकी पद्मासन प्रतिमा। पादपीठके मध्यमें धर्मचक्र। उसके दोनों ओर सिंह। चमरवाहक और ऊपर आकाशचारी गन्धर्व हैं। किन्तु वे अस्पष्ट हैं। सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। यह मूर्ति भगवान् महावीरकी है।

२. एक शिलाफलकमें नेमिनाथकी पद्मासन मूर्ति है। चरण-चौकीपर दो शंखोंके मध्यमें धर्मचक्र है। मूर्तिके ऊपर अलंकृत छत्र है। ऊपर तीन पद्मासन मूर्तियाँ हैं।

३. बिलकुल अस्पष्ट है।

४. खड्गासन प्रतिमा तीन फुटकी अवगाहना, भूरा वर्ण। दो चमरधारी। मुख खण्डित है। पुष्पमालधारी दो आकाशचारी गन्धर्व। प्रतिमाके सिरके ऊपर छत्रत्रय।

५. एक खड्गासन प्रतिमा डेढ़ गज अवगाहना। दो चमरवाहक। पादपीठपर दो शंख लांछन, मध्यमें धर्मचक्र। घुँघराले केश। भव्य भामण्डल। छत्रत्रयी, पुष्पवर्षी गन्धर्व। छत्रोंके दोनों ओर अशोक वृक्ष। ऊपरके भागमें देव-दुन्दुभि। अष्टप्रातिहार्य युक्त नेमिनाथ भगवान्‌की प्रतिमा है।

६. नील वर्णकी एक पद्मासन प्रतिमा। अवगाहना एक गज। नीचे दो पद्मासन मूर्तियाँ। बीचमें चमरधारी अलंकार मण्डित इन्द्र खड़ा है। प्रतिमाके केश कुन्तल घुँघराले हैं। नीचेके भागमें दोनों ओर दो खड़े हुए सिंह दीखते हैं।

७. डेढ़ गज अवगाहना, बादामी वर्ण, कायोत्सर्गासन। स्कन्धचुम्बी कर्ण। अलंकृत केश। ऊपर छत्रत्रयी। दो आकाशगामी गन्धर्व। दो चमरवाहक।

८. इस कमरेके सामने दायीं ओरकी कोठरीमें सवा दो फुटके एक शिलाफलकमें अम्बिका यक्षी और गोमेद यक्ष सुखासनसे बैठे हैं। अम्बिकाकी गोदमें एक बालक है। ऊपर आम्र-गुच्छक

है। उसके बीचमें नेमिनाथ विराजमान हैं। चरणोंके नीचे पाँच भक्त लेटे हुए हैं। एक हाथ जमीन-पर टिका है, दूसरा हाथ छातीपर रखा हुआ है। अर्हन्त प्रतिमाका मुख खण्डित है।

इससे आगे बायीं ओरसे क्रमशः मूर्तियोंका परिचय इस प्रकार है—

९. खण्डित पद्मासन प्रतिमा भगवान् आदिनाथकी है। पादपीठपर दोनों कोनोंपर वृषभ बने हुए हैं। मध्यमें एक पद्मासन प्रतिमा है। बायीं ओर एक भक्त हाथ जोड़े बैठा है। प्रतिमाके एक ओर चमरवाहक खड़ा है जो छातीसे खण्डित है। प्रतिमा पेटके ऊपरसे खण्डित है। इसपर निम्न प्रकार लेख पढ़ा गया है—'देव (य) धर्मो-यं थीरोक (?) स्य अर्थात् थीरोकका दान।

१०. ढाई फुटके शिलापट्टमें पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। प्रतिमा भगवान् महावीरकी है। पादपीठपर सिंह लांछन अंकित है। एक ओर हाथ जोड़े हुए भक्त बैठा है, दूसरी ओर दो स्त्रियाँ हाथ जोड़े हुए बैठी हैं। प्रतिमाके दोनों ओर दो चमरवाहक खड़े हैं। सिरके दोनों ओर दो गजारूढ़ देव हैं, ऊपर छत्रत्रयी है।

११. लगभग साढ़े तीन फुटके शिलाफलकमें पद्मासन प्रतिमा है किन्तु यह खण्डित है। पीठासनपर मध्यमें धर्मचक्र, उसके दोनों ओर शंख और कोनोंपर सिंह हैं। इनके नीचेके भागमें दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। मूर्तिके एक ओर पाँच भक्त एक दूसरेके ऊपर खड़े हैं। दूसरी ओर केवल दो शेष रह गये हैं। सिरपर सुन्दर छत्रत्रयी और दोनों ओर आकाशचारी गन्धर्व हैं।

१२. दस इंची पाषाण-फलकमें पंच बालयति कायोत्सर्ग मुद्रामें विराजमान हैं। ऊपर छत्र है। मुख खण्डित हैं। दो मूर्तियोंके पैर भी खण्डित हैं। छत्र भी बिलकुल अस्पष्ट हैं।

१३. ढाई फुटके शिलाफलकमें लाल पाषाणकी पद्मासन मूर्ति है। सिरपर सर्पफण और छत्रत्रयी है। दोनों ओर चौरीवाहक हैं। चौरीवाहकोंके ऊपर चार-चार मूर्तियाँ हैं। ऊपर आकाशचारी गन्धर्व हैं।

१४. पार्श्वनाथ प्रतिमा। अवगाहना ढाई फुट, वर्ण श्याम, पद्मासन। सिरके ऊपर सर्प-फण, उसके ऊपर छत्रत्रय। दोनों ओर मध्य भागमें चमरवाहक। पादपीठपर मध्यमें सिंह। कोनोंमें दोनों ओर धरणीन्द्र यक्ष और पद्मावती यक्षी।

१५. एक पद्मासन प्रतिमा। अवगाहना सवा दो फुट, श्याम वर्ण। सिर पर छत्रत्रयी, उसके दोनों ओर गजारूढ़ देव। हाथोंमें दुन्दुभि। मध्य भागमें चमरवाहक। पादपीठपर सिंह लांछन। उसके दोनों ओर हाथ जोड़े हुए एक-एक भक्त।

१६. सब कोठरियोंके मध्यमें यह मुख्य गर्भगृह बना हुआ है। शिलाफलक तीन फुट है। भगवान् आदिनाथकी पद्मासन मूर्ति। सिरपर भव्य जटाजूट। केश-राशि कन्धों तक लहरा रही है। सिरपर छत्रत्रयी है। इधर-उधर एक-एक देव और देवी पुष्पमाल लिये हुए हैं। धोती और साड़ीकी चुन्नटें कलापूर्ण हैं। ये भुजबन्ध और गलहार धारण किये हुए हैं। छत्रत्रयीके इधर-उधर एक-एक हाथ निकला हुआ है। प्रतिमाके सिरके पीछे भामण्डल है।

पादपीठपर बीचमें धर्मचक्र और उसके दोनों ओर दो वृषभ लांछन है।

चमरवाहक कर्णकुण्डल, केयूर, भुजबन्ध और हार धारण किये हुए हैं। मूर्तिपर लेख अंकित है।

१७. चार फुटके एक शिलाफलकमें भगवान् महावीर पद्मासनमें कमलासनपर विराजमान हैं। वर्ण सलेटी है। सिरके पीछे अलंकृत भामण्डल, सिरके ऊपर छत्रत्रय, इधर-उधर पुष्पमाल लिये हुए आकाशचारी देव। एक हाथमें दुन्दुभि, एक हाथमें झांझ, ऊपर शीर्ष भागमें दोनों कोनों-पर अंकित हैं। प्रतिमाके दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। पादपीठपर धर्मचक्र है। उसके दोनों ओर

सिंह लांछन है। सिंहासनसे नीचे एक स्त्री लेटी हुई है। अलंकार धारण किये हुए हैं। एक हाथ सिरके नीचे टिकाया हुआ है। पैरोंमें पायल हैं। कटिमें मेखला, गलेमें हार, भुजाओंमें बाजूबन्द, सिरपर जूड़ा है। सिरके नीचे तकिया लगा हुआ है।

१८. पद्मप्रभुकी पद्मासन मूर्ति। एक गजकी अवगाहना, सलेटी वर्ण। इधर-उधर तीन-तीन पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। सिरपर छत्र सुशोभित है। इधर-उधर पुष्पमाल लिये आकाशचारी देवियाँ हैं। मध्य भागमें चमरवाहक खड़े हैं। पादपीठपर कमलका चिह्न अंकित हैं। कोनोंपर सिंह बने हुए हैं।

उपर्युक्त मूर्तियोंमें-से नं. १६ की मूर्तिका लेख इस प्रकार पढ़ा गया है—

"आचार्य वसन्तनन्दिर–दे धर्मो–यः।" अर्थात् आचार्य वसन्त नन्दिन्का धर्मार्थ दान।

सप्तपर्णी गुफा

दिगम्बर मन्दिरके आगे श्वेताम्बरोंके दो मन्दिर और हैं। उनसे आगे जानेपर सप्तपर्णी गुफा है। यह गुफा पहाड़में अकृत्रिम बनी हुई है। जैन साहित्यमें इस गुफाका एहिनिया चोरकी गुफाके नामसे उल्लेख मिलता है। यह छह गुफाओंका समूह है। कहते हैं, बुद्धके परिनिर्वाणके बाद प्रथम बौद्ध संगीति यहीं हुई थी।

जरासन्ध की बैठक

पहाड़की पूर्वी ढलानपर पहाड़से लौटते हुए प्रथम श्वेताम्बर मन्दिरसे आगे एक गुफा है, जिसे मचान या जरासन्ध की बैठक कहा जाता है। यह २२ से २८ फुट तक ऊँची है। तथा ऊपर छतपर इसकी लम्बाई, चौड़ाई ८१॥ × ७८ फुट है। इस चबूतरेकी चिनाईमें किसी प्रकारका मसाला काममें नहीं लिया गया है। यह वस्तुतः निरीक्षण-गृह था। इसे बौद्ध लोग 'पिप्पल गुहा' कहते हैं। इसमें प्रथम बौद्ध संगीतिके अध्यक्ष भिक्षु महाकाश्यप भी कुछ दिन रहे थे।

प्राचीन महावीर-चरण

पर्वतसे उतरनेपर गरम जलके कुण्ड मिलते हैं। वहाँसे कुछ दूर चलकर जापानी मन्दिरके सामने सड़कके किनारे बायीं ओर भगवान् महावीरके प्राचीन चरण मिलते हैं। इनकी स्थापना फिरोजपुरवासी लाला डालचन्द्र तुलसीरामने वी. सं. २४५७ में करायी थी। चरणोंका माप १६ अंगुल है।

यहाँसे धर्मशाला एक मील है। मार्गमें राजा श्रेणिक द्वारा निर्मित कोट भी मिलता है। कहीं-कहीं इसमें बुर्ज भी हैं। इसी कोटके भीतर उस समय राजगृह नगर बसा हुआ था।

इस प्रकार यह स्थान जैनों का सदासे एक पवित्र तीर्थ रहा है। प्रत्येक पर्वतपर जो जैन मन्दिर आदि बने हुए हैं उनमें कई मूर्तियाँ तो ईसाकी प्रारम्भिक शताब्दियोंकी हैं। सातवीं शताब्दीमें चीनके इतिहास-प्रसिद्ध यात्री ह्वेन्त्सांगने वैभारगिरिपर अनेक निगंठों (जैन मुनियों) को तपस्या करते हुए देखा था।

सर्वमान्य तीर्थ

यह बौद्धोंका तीर्थधाम है। महात्मा बुद्ध यहाँ गृध्रकूट पर्वतपर कई बार पधारे और उनकी देशना हुई थी। ह्वेन्त्सांगके वर्णनमें जिस वेणुवन और करण्ड सरोवरका उल्लेख आता है, सम्भवतः वे गर्म जल कुण्डोंसे बने हुए आधुनिक कब्रिस्तान और तालाब हैं। गृध्रकूट पर्वतपर

जानेके लिए एक पगडण्डी है जिसका नाम बिम्बसार मार्ग है। यह दस कदम चौड़ा है। कहते हैं, जब बिम्बसार प्रथम बार गृध्रकूट पर्वतपर महात्मा बुद्धके दर्शन करनेके लिए गया था, तब उसने इसे बनवाया था। यहाँ कई प्राचीन स्तूपोंके अवशेष भी मिलते हैं। इस क्षेत्रपर बर्मा और जापानके दो बौद्ध मन्दिर बने हुए हैं जहाँ विदेशी बौद्ध दर्शनार्थ पहुँचते हैं।

यह क्षेत्र हिन्दुओंके लिए भी बड़ा पवित्र माना गया है। ब्रह्मकुण्ड (सरस्वती नदी) के पासवाला क्षेत्र मार्कण्डेय-क्षेत्र कहलाता है। ब्रह्मकुण्डके पास हंसतीर्थ है। यहाँ कई देवताओंकी मूर्तियाँ हैं। एक दूसरा पंच-नद तीर्थ है। इसमें पाँच गर्म जलके कुण्ड हैं। इसके अतिरिक्त कई कुण्ड हैं जिनके नाम ऋषियोंके नामोंपर रखे गये हैं। मार्कण्डेय कुण्डके दक्षिणमें कामाक्षी मन्दिर और ब्रह्मकुण्डके दक्षिणमें शिव-मन्दिर है। सप्तर्षि-धाराके उत्तर तटपर एक शिव मन्दिर है। ब्रह्मकुण्डके पश्चिममें दत्तात्रेय मण्डप है। इनके अतिरिक्त सन्ध्यादेवीका मन्दिर, सोमनाथ मन्दिर, धर्मेश्वर नाटकेश्वर, महादेव मन्दिर, जरादेवीका मन्दिर आदि कई मन्दिर हैं। वैतरणी नदीके दक्षिणी तटपर पितरोंको पिण्डदान भी दिया जाता है।

मुसलमान लोग भी इसको अपना तीर्थ मानते हैं। बिहारके प्रसिद्ध मुसलिम सन्त शेख मखदूम शरीफुद्दीन अहमदने यहाँ बारह वर्ष तक साधना की थी तथा ४० दिन निराहार रहकर तपस्या की थी। इस सन्तके नामपर मुसलमानोंने शृंगी-ऋषि कुण्डका नाम मखदूम कुण्ड रख लिया है। इस कुण्डके पास एक शिला पड़ी हुई है, जिसपर रक्तके दाग हैं।

ह्वेन्त्सांगने भी इस शिलाके सम्बन्धमें अपने यात्रा-विवरणमें लिखा है कि यहाँ एक समाधिस्थ साधुने अपने आपको घायल कर लिया था। इसके कुछ ऊपर एक गुफा है। कहते हैं, मुसलिम सन्त मखदूम साधनाके लिए इस गुफामें रहा करते थे।

यहाँ यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि हिन्दू और मुसलमानोंके तीर्थ पर्वतके नीचे हैं, ऊपर नहीं। इन पाँच पर्वतोंमें केवल पाँचवें पर्वतकी सप्तपर्णी गुफाको ही बौद्ध अपना मानते हैं, जिसपर जैनोंका भी अधिकार है। इस प्रकार ये पाँचों पर्वत केवल जैनोंके ही निर्विवाद तीर्थ हैं।

दर्शनीय स्थल

यहाँके दर्शनीय स्थलोंमें जरासन्ध और अजातशत्रु द्वारा बनाये गये किलेकी दीवालें, पिप्पल गृह, बिम्बसार पथ, रणभूमि, बिम्बसार जेल, खूनके धब्बोंवाला मन्दिर, देवदत्तकी समाधि-स्थल आदि प्रमुख स्थान हैं।

यहाँपर सबसे अधिक उल्लेखनीय गर्म जलके कुण्ड हैं। कहते हैं इनमें स्नान करनेसे त्वचा सम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। ये झरने (कुण्ड) सरस्वती नदीके दोनों किनारोंपर हैं। सात वैभार पर्वतकी तलहटीमें हैं और छह विपुलाचलके नीचे। वैभारगिरिके तलहटीके झरनोंके वर्तमान नाम गंगा-जमुना, अनन्त ऋषि, सप्त ऋषि, व्यास कुण्ड, मार्कण्डेय कुण्ड, ब्रह्म कुण्ड और काश्यप कुण्ड हैं। विपुलगिरिके नीचेवाले झरनोंके कुण्डोंके नाम ये हैं—सीता कुण्ड, सूर्य कुण्ड, गणेश कुण्ड, चन्द्र कुण्ड, रामकुण्ड और शृंगी ऋषि कुण्ड। सम्भवतः इन झरनोंका सम्बन्ध ऐसे स्थानोंसे है जहाँ गन्धक है। अतः इन झरनोंके पानीमें लोहा, गन्धक और रेडियम है। लोग यहाँ स्नान करके गठिया आदि रोगोंसे मुक्ति पा जाते हैं।

झरनोंमें सर्वाधिक लोकप्रिय सप्तधारा और ब्रह्मकुण्डके झरने हैं। मलमास (लौंद मास) में इन कुण्डोंपर एक मेला भी लगता है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर समाज में समझौता

श्वेताम्बर समाज और भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके मध्य हुए सन् १९२७ के एक समझौतेके अनुसार पाँचों पहाड़ियोंके मन्दिरोंका आपसमें बँटवारा हुआ। बँटवारेमें पाँचों पहाड़ोंपर बने हुए १९ मन्दिरोंमें-से ११ श्वेताम्बर समाजके अधिकारमें गये और ८ दिगम्बर समाजके अधिकारमें। इसी प्रकार राजगृही बस्तीमें बने हुए मन्दिरजीको, जिसपर दोनों समाजों-का समान अधिकार था, दिगम्बर समाजने अपना हक छोड़कर सद्भावनाकी दृष्टिसे श्वेताम्बर समाजको दे दिया। पहले, दूसरे और तीसरे पर्वतके रास्तोंकी मरम्मतका भार दिगम्बर समाज-पर तथा चौथे और पाँचवें पर्वतके रास्तोंकी मरम्मतका भार श्वेताम्बर समाजपर डाला गया।

मार्ग

राजगृही (वर्तमान राजगिर) बिहार प्रदेशके पटना जिलेके दक्षिण-पूर्वके कोनेमें बिहार शरीफसे २३ कि. मी. दूर बख्त्यारपुर—बिहार-राजगिर रेलवेका अन्तिम स्टेशन है। यहाँ आनेके लिए निम्न मार्ग हैं—

१. बख्त्यारपुरसे रेल द्वारा।
२ गयासे नवादा होते हुए रेल या मोटर द्वारा। इस मार्गमें 'गुणावा, नवादा, पावापुरी, कुण्डलपुर और नालन्दाकी यात्रा भी हो जाती है।
३. भागलपुर—क्यूल जंकशनसे होते हुए नवादा या बख्त्यारपुर उतरकर।
४. पटनासे बस या टैक्सी द्वारा।

पावापुरी

सिद्धक्षेत्र

पावापुरी सिद्धक्षेत्र है। यहाँपर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरने निर्वाण प्राप्त किया था। आचार्य यतिवृषभने 'तिलोयपण्णत्ति'में इस सम्बन्धमें लिखा है कि—

'कत्तियकिण्हे चोद्दसिपच्चूसे सादिणामणक्खत्त।
पावाए णयरीए एक्को वीरेसरो सिद्धो ॥४।१२०८॥

—भगवान् वीरेश्वर (महावीर) कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीके दिन प्रत्यूषकालमें स्वाति नक्षत्र-के रहते पावापुरसे अकेले ही सिद्ध हुए।

प्राकृत 'निर्वाण भक्ति' में प्रथम गाथामें निम्न पाठ आया है—

'पावाए णिव्वुदो महावीरो' अर्थात् पावामें महावीरका निर्वाण हुआ।

संस्कृत 'निर्वाणभक्ति'में भगवान् महावीरके निर्वाणके सम्बन्धमें विस्तृत सूचना उपलब्ध होती है जो इस भाँति है—

पद्मवनदीर्घिकाकुलविविधद्रुमखण्डमण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः ॥१६॥
कार्तिककृष्णस्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं सम्प्रापद्व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् ॥१७॥

परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य ।
देवतरुरक्तचन्दनकालागुरुसुरभिगोशीर्षैः ॥१८॥
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभिधूपवरमाल्यैः ।
अभ्यर्च्य गणधरानपि गता दिवं खं च वनभवने ॥१९॥

अर्थात् वह मुनिराज महावीर कमल वनसे भरे हुए और नाना वृक्षोंसे सुशोभित पावा नगरके उद्यानमें कायोत्सर्ग ध्यानमें आरूढ़ हो गये। उन्होंने कार्तिक कृष्णके अन्तमें स्वाति नक्षत्रमें सम्पूर्ण अवशिष्ट कर्मकलंकका नाश कर अक्षय, अजर और अमर सौख्य प्राप्त किया। देवताओंने जैसे ही जाना कि भगवान्‌का निर्वाण हो गया, वे अविलम्ब वहाँपर आये और उन्होंने पारिजात, रक्त चन्दन, कालागुरु तथा अन्य सुगन्धित पदार्थ और धूप, माला एकत्रित किये। तब अग्नि-कुमार देवोंके इन्द्रने अपने मुकुटसे अग्नि प्रज्वलित करके जिनेन्द्र प्रभुकी देहका संस्कार किया। तब देवोंने गणधरोंकी पूजा की और अपने-अपने स्थानपर चले गये।

इसी संस्कृत निर्वाणभक्तिमें इसी सम्बन्धमें एक श्लोक और भी दिया गया है—

'पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये ।
श्रीवर्धमानजिनदेव इति प्रतीतो निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ॥२४॥

पावापुर नगरके बाहर उन्नत भूमिखण्ड (टीले) पर कमलोंसे सुशोभित तालाबके बीचमें निष्पाप भगवान् वर्धमानने निर्वाण प्राप्त किया।

आचार्य जिनसेनने 'हरिवंश पुराण'में भगवान्‌के निर्वाणका जो वर्णन दिया है, उससे एक विशेष बातपर प्रकाश पड़ता है कि उस समय देवताओं और मानवोंने अन्धकारपूर्ण रात्रिमें जो दीपालोक किया था, उसीकी स्मृतिमें प्रतिवर्ष 'दीपावली' मनायी जाती है। आचार्यने 'हरिवंश' की रचना शक सं. ७०५ (ई. सन् ७८४) में की थी। इतनी प्राचीन रचनामें इस प्रकारका उल्लेख प्राप्त होना ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और उससे महावीर-निर्वाणके समय जो स्थिति थी, उसका चित्र हमारे समक्ष स्पष्ट हो उठता है। पुराणकारका मूल उल्लेख इस प्रकार है—

जिनेन्द्रवीरोऽपि विबोध्य संततं समन्ततो भव्यसमूहसंततिम् ।
प्रपद्य पावानगरीं गरीयसीं मनोहरोद्यानवने तदीयके ॥६६।१५॥
चतुर्थकालेऽर्धचतुर्थमासकैर्विहीनताविश्चतुरब्दशेषके ।
स कार्तिके स्वातिषु कृष्णभूतसुप्रभातसन्ध्यासमये स्वभावतः ॥१६॥
अघातिकर्माणि निरुद्धयोगको विधूय घातीन्धनवद्विबन्धनः ।
विबन्धनस्थानमवाप शंकरो निरन्तरायोरुसुखानुबन्धनम् ॥१७॥
स पञ्चकल्याणमहामहेश्वरः प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः ।
शरीरपूजाविधिना विधानतः सुरैः समभ्यर्च्यत सिद्धशासनः ॥१८॥
ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया ।
तदा स्म पावानगरी समन्ततः प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते ॥१९॥
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात् प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते ।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक् ॥२०॥

अर्थ इस प्रकार है—

भगवान् महावीर भी निरन्तर सब ओरके भव्य समूहको सम्बोधित कर पावानगरी पहुँचे और वहाँके 'मनोहरोद्यान' नामक वनमें विराजमान हो गये। जब चतुर्थकालमें तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहे, तब स्वाति नक्षत्रमें कार्तिक अमावस्याके दिन प्रातःकालमें स्वभावसे ही

योग निरोध कर घातियाकर्मरूपी ईंधनके समान अघातियाकर्मोंको भी नष्ट कर बन्धन रहित हो संसारके प्राणियोंको सुख उपजाते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुखसे सहित निर्बन्ध-मोक्ष-स्थानको प्राप्त हुए। गर्भादि पाँच कल्याणकोंके महान् अधिपति, सिद्धशासन भगवान् महावीरके निर्वाण-महोत्सवके समय चारों निकायके देवोंने विधिपूर्वक उनके शरीरकी पूजा की। उस समय सुर और असुरोंके द्वारा जलायी हुई देदीप्यमान दीपकोंकी पंक्तिसे पावानगरीका आकाश सब ओरसे जगमगा उठा। उस समयसे लेकर भगवान्के निर्वाण कल्याणकी भक्तिसे युक्त संसारके प्राणी इस भरतक्षेत्रमें प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिकाके द्वारा भगवान् महावीरकी पूजा करनेके लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् उन्हींकी स्मृतिमें दीपावलीका उत्सव मनाने लगे।

आचार्य वीरसेन विरचित 'जयधवला' टीकामें भगवान् महावीरके निर्वाणके प्रसंगमें निर्वाण-स्थानके साथ उनकी मुनि-अवस्थाकी काल-गणना भी दी है—

'वासा णूणत्तीसं पंच य मासे य वीस दिवसे य।
चउविह अणगारेहिं य बारह दिणेहि (गणेहि) विहरित्ता ॥३०॥
पच्छा पावाणयरे कत्तियमासस्स किण्ह चोद्दसिए।
सादीये रत्तीये सेसरयं छेत्तु णिव्वाओ ॥३१॥

—जयधवला, भाग १, पृ० ८१

अर्थात् २९ वर्ष ५ मास और २० दिन तक ऋषि, मुनि, यति और अनगार इन चार प्रकारके मुनियों और १२ गणों अर्थात् सभाओं के साथ विहार करके पश्चात् भगवान् महावीरने पावानगरमें कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीके दिन स्वाति नक्षत्रके रहते हुए रात्रिके समय शेष अघातिकर्मरूपी रजको छेदकर निर्वाण प्राप्त किया।

आचार्य गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण'में महावीर-निर्वाणके सन्दर्भको प्रायः अन्य आचार्योंके समान ही निबद्ध किया है, किन्तु इसमें अन्योंसे साधारण अन्तर है। अन्य आचार्योंके अनुसार भगवान् महावीर एकाकी मुक्त हुए थे किन्तु उत्तर पुराणकारके अनुसार भगवान्के साथ एक हजार मुनि मुक्त हुए थे। वह इस प्रकार है—

"इहान्त्यतीर्थनाथोऽपि विहृत्य विषयान् बहून् ॥७६।५०८॥
क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहरवनान्तरे।
बहूनां सरसां मध्ये महामणिशिलातले ॥७६।५०९॥
स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जरः।
कृष्णकार्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये ॥७६।५१०॥
स्वातियोगे तृतीयेद्धशुक्लध्यानपरायणः।
कृतत्रियोगसंरोधः समुच्छिन्नक्रियं श्रितः ॥७६।५११॥
हताघातिचतुष्कः सन्नशरीरो गुणात्मकः।
गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम् ॥७६।५१२॥

अर्थ—इन्द्रभूति गणधर राजा श्रेणिकको भविष्यके सम्बन्धमें बताते हुए कहते हैं कि—भगवान् महावीर भी बहुतसे देशोंमें विहार करेंगे। अन्तमें वे पावापुर नगरमें पहुँचेंगे। वहाँके मनोहर नामक वनके भीतर अनेक सरोवरोंके बीचमें मणिमयी शिलापर विराजमान होंगे। विहार छोड़कर निर्जराको बढ़ाते हुए वे दो दिन तक वहाँ विराजमान रहेंगे और फिर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन रात्रिके अन्तिम समय स्वाति नक्षत्रमें अतिशय देदीप्यमान तीसरे शुक्लध्यानमें तत्पर होंगे। तदनन्तर तीनों योगोंका निरोधकर समुच्छिन्न क्रिया प्रतिपाती नामक चतुर्थ

शुक्लध्यानको धारण कर चारों अघातिया कर्मोंका क्षय कर देंगे और शरीर रहित केवल गुणरूप होकर एक हजार मुनियोंके साथ सबके द्वारा वांछनीय मोक्षपदको प्राप्त करेंगे।

असग कवि द्वारा विरचित 'महावीर-चरित्र' में भगवान्के निर्वाण-समयका जो वर्णन दिया गया है, उसका आशय यह है—

"भगवान् विहार करके पावापुरके फूले हुए वृक्षोंकी शोभासे सम्पन्न उपवनमें पधारे। जिनका समवसरण विसर्जित हो गया है, ऐसे भगवान् योग-निरोध कर मुक्त हुए।"

प्रतिक्रमण-पाठमें पावाके साथ मध्यमा भी दिया गया है तथा हस्तिपाल राजाका भी नामोल्लेख किया गया है। मूलपाठ इस प्रकार है—

'ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लोके सिद्धायतनानि नमस्करोमि,
सिद्धनिषिद्धिका अष्टापदपर्वते, सम्मेदे ऊर्जयन्ते चम्पायां
पावायां मध्यमायां हस्तिवालिका मण्डपे (नमस्यामि)'

श्वेताम्बर आगम और महावीर-निर्वाण

श्वेताम्बर आगमोंमें भी महावीर-निर्वाणके सम्बन्धमें दिगम्बर परम्पराकी मान्यताका ही प्रायः समर्थन मिलता है। जो अन्तर है, वह अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। दिगम्बर परम्परानुसार भगवान्का निर्वाण कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम प्रहरमें हुआ और अमावस्याको उनके मुख्य गणधरको केवलज्ञान हुआ। श्वेताम्बर परम्परामें भगवान्का निर्वाण और गौतम गणधरको केवलज्ञान दोनों घटनाएँ अमावस्याको हुईं।

'कल्पसूत्र' में महावीरके निर्वाणका विस्तृत वर्णन मिलता है। उससे पावापुरके सम्बन्धमें भी विशेष जानकारी प्राप्त होती है। वह उद्धरण यहाँ दिया जा रहा है—

"तत्थ णं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए तस्स णं अंतरावासस्स जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं जा सा चरिमारयणि तं रयणि च णं समणे भगवं महावीरे कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्व दुक्ख पहीणे चंदे नामं से दोच्चे संवच्छरे पीतिवद्धणे पक्खे सुव्वयग्गी नामं से दिवसे उवसमि त्ति पवुच्चइ देवाणंदा नामं सा रयणी निरइ त्ति पवुच्चइ अच्चे लवे मुहुत्ते पाणू थोवे सिद्धे नागे करणे सव्वट्ठासिद्धे मुहुत्ते साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१२३॥

अर्थ—भगवान् अन्तिम वर्षावास करनेके लिए मध्यम पावा नगरीके राजा हस्तिपालकी रज्जुक सभामें रहे हुए थे। चातुर्मासका चतुर्थ मास और वर्षा ऋतुका सातवाँ पक्ष चल रहा था अर्थात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या आयी। अन्तिम रात्रिका समय था। उस रात्रिको श्रमण भगवान् महावीर कालधर्मको प्राप्त हुए। संसारको त्याग कर चले गये। जन्म-ग्रहणकी परम्पराका उच्छेद कर चले गये। उनके जन्म, जरा और मरणके सभी बन्धन नष्ट हो गये। भगवान् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गये, सब दुखोंका अन्त कर परिनिर्वाणको प्राप्त हुए।

महावीर जिस समय काल धर्मको प्राप्त हुए, उस समय चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर चल रहा था। प्रीतिवर्धन मास, नन्दिवर्धन पक्ष, अग्निवेश दिवस (जिसका दूसरा नाम 'उवसम' भी

---

१. श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान सिवाना (राज.) से प्रकाशित, पृ. १९९।

है), देवानन्दा नामक रात्रि (जिसे निरइ भी कहते हैं), अर्थ नामक लव, सिद्ध नामक स्तोक, नाग नामक करण, सर्वार्थसिद्धि नामक मुहूर्त तथा स्वाति नक्षत्रका योग था। ऐसे समय भगवान् कालधर्मको प्राप्त हुए, वे संसार छोड़कर चले गये। उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये।"

भगवान्के निर्वाण-गमनके समय अनेक देवी-देवताओंके कारण प्रकाश फैल रहा था। तथा उस समय अनेक राजा वहाँ उपस्थित थे और उन्होंने द्रव्योद्योत किया था। उस समयका वर्णन करते हुए कल्पसूत्रकार कहते हैं—

"जं रयणि च णं भगवं महावीरे कालगये जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी वहूहिं देवेहि य देवेहि य ओवयमाणेण य उप्पयमाणेहि य उज्जोविया यावि होत्था ॥१२४॥

"जं रयणि च णं समणे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणि च णं नव मल्लइ नव लिच्छई कासीकोसलगा[1] अट्ठारस वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठवइंसु, गते से भावुज्जोए दव्वुज्जोवं करिस्सामो ॥१२७॥

अर्थ—जिस रात्रिमें श्रमण भगवान् महावीर कालधर्मको प्राप्त हुए, यावत् उनके सम्पूर्ण दुख पूर्ण रूपसे नष्ट हो गये, उस रात्रिमें बहुत-से देव और देवियाँ नीचे-ऊपर आ-जा रही थीं, जिससे वह रात्रि खूब उद्योतमयी हो गयी थी ॥१२४॥

जिस रात्रिमें श्रमण भगवान् महावीर कालधर्मको प्राप्त हुए, यावत् उनके सम्पूर्ण दुख नष्ट हो गये, उस रात्रिमें काशी देशके नौ मल्ल राजा और कोशल देशके नौ लिच्छवि राजा कुल अठारह गणराजा अमावस्याके दिन आठ प्रहरका प्रोषधोपवास करके वहाँ रहे हुए थे। उन्होंने यह विचार किया कि भावोद्योत अर्थात् ज्ञानरूपी प्रकाश चला गया है अतः अब हम द्रव्योद्योत करेंगे अर्थात् दीपावली प्रज्वलित करेंगे" ॥१२७॥

इस महत्त्वपूर्ण विवरणके पश्चात् विस्तार संख्या ९४६ में इसी सूत्रमें यह भी कथन किया गया है कि "इस अवसर्पिणी कालका दुषम-सुषम नामक चतुर्थ आरा बहुत कुछ व्यतीत होनेपर तथा उस चतुर्थ आरेके तीन वर्ष और साढ़े आठ महीना शेष रहनेपर मध्यम पावा नगरीमें हस्तिपाल राजाकी रत्तुक सभा (शुल्कशाला) में एकाकी, षष्ठम तपके साथ स्वाति नक्षत्रका योग होते ही, प्रत्यूष कालके समय (चार घटिका रात्रि अवशेष रहनेपर) पद्मासनसे बैठे हुए भगवान् कल्याण फल-विपाकके पचपन अध्ययन, और पाप-फल-विपाकके दूसरे पचपन अध्ययन और अपृष्ठ अर्थात् किसीके द्वारा प्रश्न न किये जानेपर भी उनके समाधान करनेवाले छत्तीस अध्ययनोंको कहते-कहते कालधर्मको प्राप्त हुए।"

आचार्य हेमचन्द्र कृत 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित'के महावीर स्वामी चरित सर्ग १२ में भगवान् महावीरके अन्तिम कालका वर्णन किया गया है। उसमें लिखा है कि भगवान् विहार करते हुए अपापा नगरी पहुँचे (जगाम भगवान्नगरीमपापाम्। सर्ग १२ श्लोक ४४०)। वहाँ भगवान्की देशनाके लिए देवोंने समवसरणकी रचना की। भगवान्ने जान लिया कि अब मेरी आयु क्षीण होनेवाली है, अतः अन्तिम देशना देनेके लिए वे समवसरणमें गये। अपापापुरीके अधिपति हस्तिपालको जब ज्ञात हुआ कि भगवान् समवसरणमें पधारे हैं तो वह भी उपदेश सुनने वहाँ गया। वहाँ इन्द्रने प्रश्न किया। उसका उत्तर देते हुए भगवान्का उपदेश हुआ। जब उपदेश समाप्त हो गया, तब मण्डलेश पुण्यपालने अपने देखे हुए स्वप्नका फल पूछा। भगवान्ने उसका

---

१. इसकी टीका 'सन्देहविषौषधि' में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—काशीदेशस्य राजानो मल्लकीजातीया नवकोशलदेशस्य राजानो लेच्छकीजातीया।

फल बताया। फल सुनकर पुण्यपालने मुनि-दीक्षा ले ली। बादमें तप द्वारा कर्मोंका नाश करके मुक्ति प्राप्त की।

इसके बाद भगवान् समवसरणसे निकलकर हस्तिपाल राजाकी शुल्कशालामें पधारे। भगवान्‌ने यह जानकर कि आज रात्रिमें मेरा निर्वाण होगा, गौतमका मेरे प्रति अनेक भवोंसे स्नेह है और उसे आज रात्रिके अन्तमें केवलज्ञान होगा, मेरे वियोगसे वह दुखी होगा, भगवान्‌ने गौतम-से कहा "गौतम! दूसरे गाँवमें देवशर्मा ब्राह्मण है। उसको तू सम्बोध आ। तेरे कारण उसे ज्ञान प्राप्त होगा।" प्रभुके आदेशानुसार गौतम वहाँसे चले गये।

भगवान्‌का निर्वाण हो गया। इन्द्रने नन्दन आदि वनोंसे लाये हुए गोशीर्ष, चन्दन आदिसे चिता चुनी। क्षीरसागरसे लाये हुए जलसे भगवान्‌को स्नान कराया, दिव्य अंगराग सारे शरीर पर लगाया। विमानके आकारको शिविकामें भगवान्‌की मृत देह रखी गयी। देवता आकाशसे पुष्पवर्षा कर रहे थे। तमाम दिव्य बाजे बज रहे थे। शिविकाके आगे देवियाँ नृत्य करती चल रही थीं।

श्रावक और श्राविकाएँ भी शोकातुर थे और रासक-गीत गा रहे थे। साधु और साध्वियाँ भी शोकाकुल थे।

तदनन्तर इन्द्रने भगवान्‌का शरीर चितापर रखा। अग्निकुमारोंने चितामें आग लगायी। वायुकुमारोंने आगको हवा दी। देवताओंने चितामें धूप और घीका अर्पण किया। शरीरके जल जानेपर मेघकुमार देवोंने क्षीर समुद्रके जलकी वर्षा करके चिताको शान्त किया। भगवान्‌के ऊपर-की दो दाढ़ें सौधर्म और ऐशान इन्द्रोंने लीं और नीचेकी दोनों दाढ़ें चमरेन्द्र और बलीन्द्र ने लीं। अन्य दाँत और हड्डियाँ दूसरे इन्द्रों और देवोंने लीं। और मनुष्योंने चिता-भस्म ली। जिस स्थान-पर चिता जलायी, उस स्थानपर देवोंने रत्नमय स्तूप बना दिया। इस प्रकार देवताओंने वहाँ भगवान्‌का निर्वाण-महोत्सव मनाया।

आचार्य जिनप्रभसूरि कृत 'विविध तीर्थकल्प'में अपापापुरी कल्प १४ और अपापा बृहत्कल्प २१ नामक दो कल्प दिये हैं। संक्षिप्त कल्पमें महावीरसे सम्बन्धित दो घटनाएँ दी हैं—एक अपापा-पुरीके महासेन उद्यानमें महावीर द्वारा तीर्थ प्रवृत्ति और दूसरे अपापापुरी नरेश हस्तिपालकी शुल्कशालामें अन्तिम देशना। इस कल्पमें इस नगरीको मध्यमा अपापा बताया है।

दूसरे बृहत्कल्पमें भगवान् महावीरका विस्तृत वर्णन, पुण्यपालके प्रश्नोंके उत्तरस्वरूप दी गयी अन्तिम देशना आदिका विवरण है। इसमें यह भी उल्लेख है कि पहले इस नगरीका नाम मज्झिमा पावा या अपापापुरी था। इन्द्रने इसका नाम पावापुरी रख दिया। जहाँसे महावीर स्वामीका निर्वाण हुआ।

पश्चात्कालीन साहित्य में पावा

पुराणोत्तर कालके जैन साहित्यमें पावापुरीको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। श्री मदन-कीर्ति यतिने 'शासन चतुस्त्रिंशिक'में श्री वीर जिनकी एक सातिशय प्रतिभाका उल्लेख इस प्रकार किया है—

'तिर्यञ्चोऽपि नमस्ति यं निजगिरा गायन्ति भक्त्याशया
दृष्टे यस्य पदद्वये शुभदृशो गच्छन्ति नो दुर्गतिम्।
देवेन्द्रार्चितपादपङ्कजयुगः पावापुरे पापहा
श्रीमद्वीरजिनः स रक्षतु सदा दिग्वाससां शासनम् ॥२९॥

अर्थात् जिन्हें तिर्यंच भी भक्ति पूर्वक अपनी वाणी द्वारा नमस्कार करते हैं और जिनके दोनों चरणोंके दर्शन कर लेने पर भव्य जीव दुर्गतिको प्राप्त नहीं होते तथा पावापुरमें इन्द्र द्वारा जिनके दोनों चरण-कमल सम्पूजित हैं, पापोंको नष्ट करनेवाले वे श्री वीर जिनेन्द्र दिगम्बर शासनकी सदा रक्षा करें।

इसमें पावापुरके वीर भगवान्‌की प्रतिमाका यह अतिशय बताया है कि एक तो तिर्यंच भी उसे नमस्कार करते हैं और दूसरे यह कि उनके दर्शन कर लेने पर नीच गति नहीं मिलती। यह प्रतिमा अवश्य ही यतिजीके कालमें तेरहवीं शताब्दीमें रही होगी।

भट्टारक यशःकर्ति (१५वीं शताब्दी) ने 'जिणरत्ति कहा' के अन्तिम भागमें पावापुरका वर्णन करते हुए कहा है—

दह-तिउण वरिसि विहरिवि जिणेंदु,
पयडेवि धम्मु महियलि अणेंदु।
पावापुर वर मज्झिहि जिणेसु,
वेदिण सह उज्झिवि मुत्तिईसु॥
चउसेसह कम्मह करि विणासु,
संपत्तउ सिद्ध-णिवास-वासु।
देवालो अम्मावस अलेउ।
महो देउ वोहि देवाहिदेउ॥
चउदेव-णिकायहं अइमणुज्ज,
आइवि विरइय णिव्वाण-पुज्ज।

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान् महावोरने तीस वर्ष तक बिहार करके पृथ्वी पर अनिन्द्य धर्मको प्रकट किया। फिर पावापुरमें आत्म-ध्यान करके मुक्त हुए। उन्होंने अवशिष्ट चार अघाति कर्मोंका विनाश कर सिद्धालयमें निवास किया। तब अमावस्याको दोपावली की गयी और चतुर्निकाय देवोंने आकर निर्वाण-कल्याणककी पूजा की।

भट्टारक यशःकीर्ति काष्ठासंघ माथुरगच्छ और पुष्करगणके भट्टारक गुणकीर्तिके लघुभ्राता और पट्टधर थे। ग्वालियरके मन्दिरमें इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान हैं। ये ग्वालियरके शासक तोमरवंशी राजा डूंगरसिंह (राज्य काल सं. १४८१–१५२०) के समकालीन थे। इनके महाकवि रइधु जैसे शिष्य थे।

भट्टारक ज्ञानसागरने 'सर्वतीर्थवन्दना' की रचना की है। उसमें पावापुरसे सम्बन्धित पद्य इस प्रकार है—

'मगध देश विशाल नयर पावापुर जाणो।
जिनवर श्री महावीर तास निर्वाण बखाणो।
अभिनव एक तलाव तस मध्ये जिन मन्दिर।
रचना रचित विचित्र सेवक जास पुरन्दर॥
जिनवर श्री महावीर तिहाँ कर्म हणि मोक्षे गया।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति सिद्ध तणुं पद पाभया॥

भट्टारक ज्ञानसागर काष्ठा संघ नन्दीतट गच्छके भट्टारक श्रीभूषणके शिष्य थे। इनका समय अनुमानतः सन् १५७८ से १६२० तक है।

कवि मेघराज १६वीं शताब्दीने गुजराती भाषाकी 'तीर्थवन्दना' में कहा है—

'सिद्ध वीर जिनेन्द नगर कहु पावापुरीए।'

भट्टारक अभयनन्दिके शिष्य सुमतिसागर १६वीं शताब्दी, ने 'तीर्थजयमाला' में लिखा है—'सुपावापुरि वर वीर मुनीन्द्र'।

काष्ठासंघ नन्दीतट गच्छके भट्टारक रत्नभूषणके शिष्य जयसागर (१७वीं शताब्दी) ने 'तीर्थजयमाला' में लिखा है—'वड्ढमाण पावापुरि सेव।'

मराठीके कवि चिमणा पण्डित (सन् १६५१ से १६७०) ने 'तीर्थवन्दना' नामक रचना की है। उसमें महावीर भगवान्का वर्णन करते हुए लिखा है—

'महीपति सिद्धार्थ कुंडलपुरी' वीर जन्मले त्रिसलेच्या उदरी।
तीस वर्ष कुमार दीक्षा सिकारी। पावापुरी मुक्ति पद्मसरोवरी॥

इस प्रकार पावापुरीके सम्बन्धमें यतिवृषभ, पूज्यपाद, जटासिंहनन्दी, रविषेण, जिनसेन, गुणभद्र, मदनकीर्ति, निर्वाणकाण्ड, उदयकीर्ति, श्रुतसागर, गुणकीर्ति, जयसागर, ज्ञानसागर, मेघराज, सुमतिसागर, सोमसेन, चिमणा पण्डित आदि अनेक आचार्यों, भट्टारकों और कवियोंने लिखा है और उसे भगवान् महावीरकी निर्वाण-भूमि माना है।

भगवान्का निर्वाण-स्थान

जिस स्थानपर भगवान्का निर्वाण हुआ था, वहाँ अब एक विशाल सरोवर बना हुआ है। इस तालाबके सम्बन्धमें जनतामें एक विचित्र किंवदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है कि भगवान्के निर्वाणके समय यहाँ भारी जन-समूह एकत्रित हुआ था। प्रत्येक व्यक्तिने इस पवित्र भूमिकी एक-एक चुटकी मिट्टी उठाकर अपने भालमें श्रद्धापूर्वक लगायी थी। तभीसे यह तालाब बन गया है। आम जनतामें इस सरोवरको पहले नोखुर सरोवर कहा जाता था। जिसका अर्थ है नाखूनोंसे खोदा गया।

यह भी कहा जाता है कि यह सरोवर पहले चौरासी बीघेमें फैला हुआ था। किन्तु आजकल यह चौथाई मील लम्बा और इतना ही चौड़ा है। सरोवर अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। विविध रंगोंमें खिले हुए कमल-पुष्पोंके कारण इस सरोवरकी शोभा अद्भुत लगती है। पुष्पोंपर सौरभ और रसके लोभी भ्रमर गुंजार करते रहते हैं। तालाबमें मछलियाँ और सर्प किलोल करते रहते हैं। कौतुक-प्रेमी लोग मछलियोंको जब भोज्य पदार्थ जलमें डालते हैं, उस समय उन मछलियोंकी परस्पर छीना-झपटी और क्रीड़ा देखने लायक होती है।

जलमन्दिर

इस सरोवरके मध्यमें श्वेत संगमरमरसे निर्मित एक जैन मन्दिर है जिसे जलमन्दिर कहते हैं। इस जलमन्दिरमें जानेके लिए सड़कके किनारे लाल पाषाणका बना हुआ एक बड़ा प्रवेश-द्वार मिलता है। इस द्वारसे मन्दिर तक लाल पाषाणका ही ६०० फुट लम्बा पुल बना हुआ है। रात्रिमें जब बिजलीका प्रकाश होता है और उसका प्रतिबिम्ब जलमें पड़ता है तो वहाँका दृश्य बड़ा ही भव्य और सुहावना लगता है। जहाँ पुल समाप्त होता है, वहाँ संगमरमरका द्वार बना हुआ है। उसमें प्रवेश करनेपर संगमरमरका विशाल चबूतरा मिलता है। उसके मध्यमें संगमरमरका भव्य और कलापूर्ण जैन मन्दिर बना हुआ है। जिस टापूपर मन्दिर बना हुआ है वह १०४ वर्ग गज है। कहते हैं, इस मन्दिरका निर्माण किसी नन्दिवर्धन नामक राजाने कराया था और वेदीकी नींव सोनेकी ईंटोंसे भरी गयी थी। प्रारम्भमें यह मन्दिर संगमरमरका नहीं था, संगमरमर बादमें

लगाया गया है। मूल मन्दिर ईंटोंका बना हुआ है। कुछ वर्ष पूर्व इस मन्दिरका जीर्णोद्धार हुआ था। उस समय प्राचीन मन्दिर और उसमें लगी हुई बड़ी-बड़ी ईंटोंको हजारों व्यक्तियोंने देखा था। पुरातत्त्ववेत्ताओंके मतसे ये ईंटें दो-ढाई हजार वर्ष प्राचीन हैं। मुनि दर्शनविजयजी त्रिपुटी-ने भी 'जैन परम्परा नो इतिहास'[1] में इसी बातका उल्लेख इन शब्दोंमें किया है—"मन्दिर नो जीर्णोद्धार करतां पाया पांथी अढी हजार वर्ष नी मोटी इंटी निकली हती। संक्षेपमें यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि यह मन्दिर अपने मूल रूपमें बहुत प्राचीन है।

मन्दिरमें केवल गर्भगृह है और बाहरकी ओर उसके चारों ओर बरामदा है। मन्दिरमें तीन दीवार-वेदियाँ बनी हुई हैं। मध्यकी वेदीमें भगवान् महावीरके चरण विराजमान हैं। इसी प्रकार बायीं ओरकी वेदीमें भगवान्के मुख्य गणधर गौतम स्वामीके तथा दायीं ओरकी वेदीमें सुधर्मा स्वामीके चरण स्थापित हैं। मन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है। मन्दिर शिखरबद्ध है।

मन्दिरके बाहर चबूतरेके चारों कोनोंपर मन्दरियाँ (गुमटियाँ) बनी हुई हैं। पूर्वकी गुमटीमें दादाजीके चरण, दूसरी गुमटीमें १६ सतियोंके, तीसरी गुमटीमें ११ गणधरोंके और चौथी गुमटीमें दिव्यविजय जी (संवत् १७५३) के चरण विराजमान हैं।

समवसरण-मन्दिर

जलमन्दिरके सामने समवसरण मन्दिर बना हुआ है, जिसमें भगवान् महावीरके चरण विराजमान हैं। वृद्ध जनोंसे इन चरणोंके सम्बन्धमें एक अत्यन्त रोचक कहानी सुननेमें आयी। जहाँ श्वेताम्बरोंने अपना नया समवसरण मन्दिर बनाया है, वहाँ प्राचीन स्तूप और एक कुआँ है। पहले ये चरण वहाँपर विराजमान थे। ग्वाले अपने ढोर चराने वहाँ आते थे। एक दिन किसी शरारती ग्वालेने वे चरण उठाकर कुएँमें पटक दिये। किन्तु चरण पानीमें नहीं डूबे, बल्कि पानीपर तैरते रहे। इससे ग्वालोंको बड़ा कुतूहल हुआ। और जब दूसरे दिन ग्वाले फिर उसी स्थानपर आये तो उन्हें यह देखकर भारी आश्चर्य हुआ कि चरण अपने पूर्व स्थान पर ही विराजमान हैं। कुतूहलवश उन्होंने उन चरणोंको फिरसे उसी कुएँमें फेंक दिया और अगले दिन जब फिरसे आकर देखा तो वे चरण पुनः अपने स्थानपर मौजूद थे। उन्होंने उन चरणोंको कौतूहलवश कई बार कुएँमें फेंका मानो उनके लिए यह दैनिक कृत्य हो गया था। कुछ दिनों तक ऐसा ही चलता रहा। अन्तमें यह समाचार जैन समाजके कानोंमें पड़ा। विचारोपरान्त निर्णय हुआ कि कहीं इस कुतूहल-लीलामें चरणोंको हानि न पहुँचे, समाजने वहाँसे वे चरण उठवा लिये और जल-मन्दिरके सामने मन्दिरमें स्थापित कर दिये। तबसे वे वहींपर विराजमान हैं।

इसमें सन्देह नहीं है कि ये चरण अत्यन्त प्राचीन हैं और सम्भवतः उस स्थानपर स्थापित किये गये थे, जहाँ भगवान्का अन्तिम समवसरण लगा था। उसी प्राचीन स्थानपर श्वेताम्बर समाजने संगमरमरका भव्य समवसरण-मन्दिर बनवाया है।

दिगम्बर जैन कार्यालय-मन्दिर

इस क्षेत्रपर पहले ये ही दो मन्दिर थे और एक धर्मशाला। इनपर दोनों सम्प्रदायवालोंका समान अधिकार था। बादमें दिगम्बर समाजने पृथक् धर्मशालाओं और मन्दिरोंका निर्माण किया। आजकल जल-मन्दिर और समवसरण मन्दिरपर दर्शन-पूजनकी दृष्टिसे दिगम्बरों और श्वेताम्बरों-का समान अधिकार है।

---

१. जैन परम्परा नो इतिहास, भाग १, पृष्ठ ६२।

जल-मन्दिरके निकट ही 'पावापुरी सिद्धक्षेत्र दिगम्बर जैन कार्यालय' है। यहाँपर सात दिगम्बर जैन मन्दिरोंका समूह है। इसमें बड़ा मन्दिर सेठ मोतीचन्द खेमचन्दजी शोलापुरवालोंकी ओरसे निर्मित हुआ और उसकी प्रतिष्ठा वि. सं. १९५० में हुई। इसमें भगवान् महावीरकी मूलनायक प्रतिमा है जो श्वेत वर्णकी साढ़े तीन फुट अवगाहनाकी है।

इस मन्दिरके अतिरिक्त शेष ६ मन्दिरोंमें-से दो मन्दिरोंका निर्माण सेठ मोतीचन्द खेमचन्दजी शोलापुरने तथा चारका निर्माण (१) श्रीमती जगपत बीबी धर्मपत्नी स्व. लाला हरप्रसादजी आरा (२) बा. हरप्रसादजी (३) लाला जम्बूप्रसाद प्रद्युम्नकुमारजी सहारनपुर तथा (४) श्रीमती अनूपमाला देवी मातेश्वरी बा. निर्मलकुमार चन्द्रशेखर कुमारजी आरावालोंने कराया। बड़े मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमाके पीठपर निम्नलिखित लेख अंकित है—

"ॐ नमः सिद्धेभ्यः। श्री संवत् १९५० फाल्गुन सुदी ७ बुधवारे श्री मूलसंघ सरस्वती गच्छ तदाम्नाय कुन्दकुन्दाचार्य भट्टारक सकलकीर्ति उपदेशात् कनककीर्ति तदाम्नाय श्री भट्टारक राजेन्द्रभूषण देवास्तत्पट्टे शैलेन्द्रभूषणजी तत्पट्टे भट्टारक सत्येन्द्रभूषण प्रतिष्ठा कारापिता श्री रामचन्द्र शीकला भार्या तत्पुत्र गुलाबचन्द्र भार्या मैनाबाई तत्पुत्र मोतीचन्द्र भार्या माणिकचन्द्र तत्भ्रातलघु फूलचन्द्र पावापुरीजीमें पंच सहायतासे श्री वर्धमान स्वामी प्रतिष्ठा कारापितं।"

मुख्य वेदीमें २ पाषाण की तथा ८ धातु की प्रतिमाएँ हैं।

दूसरी वेदी भगवान् शान्तिनाथकी है। प्रतिमाका वर्ण श्याम, अवगाहना ढाई फुट, पद्मासन। मध्यमें हिरणका लांछन है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५० में की गयी। इस वेदीमें २ पाषाणकी तथा ५ धातुकी प्रतिमाएँ हैं। धातुकी एक प्रतिमा तीन चौबीसी की है।

बायीं ओर एक आलेमें प्राचीन चरण विराजमान हैं।

तीसरी वेदीमें मूलनायक भगवान् महावीरकी ७ फुट अवगाहनावाली खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इसका वर्ण मूँगे-जैसा है। यह प्रतिमा वीर संवत् २४६५ में प्रतिष्ठित हुई। प्रतिमाके पाद-पीठपर सिंह लांछन है।

इस गर्भगृहके बायीं ओर भगवान् पार्श्वनाथकी वेदी है। इसमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ पद्मासनमें विराजमान हैं। वर्ण मूँगेका है। प्रतिष्ठा संवत् वि. सं. १९५० है।

इनके अलावा ४ श्वेत पाषाण, १ कृष्ण वर्ण पार्श्वनाथ और १ धातु प्रतिमा विराजमान है।

इस गर्भगृहमें बायीं ओर एक दीवार-वेदीमें एक शिलाफलकमें चौबीस तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। मध्यमें भगवान् शान्तिनाथ विराजमान हैं। शान्तिनाथ भगवान्के सिरके ऊपर छत्र सुशोभित है। छत्रके दोनों ओर दो गज सूँड़ उठाये हुए अंकित हैं। उनके मध्यमें यक्ष अथवा देव हाथ जोड़े हुए बैठा है। चौबीस तीर्थंकरोंमें दो खड्गासन तथा शेष पद्मासनमें विराजमान हैं। शान्तिनाथके चरणतले उनके चिह्नस्वरूप दो हिरण बने हुए हैं। प्रतिमापर लेख नहीं है।

इसी दीवार-वेदीमें एक अन्य शिलाफलकमें पार्श्वनाथ पद्मासनमें विराजमान हैं। प्रतिमाके ऊपर सर्प-फण है। प्रतिमाके दोनों ओर चमरवाहक खड़े हुए हैं। प्रतिमाके फणके दोनों ओर आकाशचारी देव हाथोंमें पुष्पमाल लिये दिखाई देते हैं। उनके ऊपर एक ओर देव-दुन्दुभि तथा दूसरी ओर झांझ बने हुए हैं।

इसी गर्भगृहमें दायीं ओर दीवार-वेदीमें दो प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ये प्रतिमाएँ भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् शान्तिनाथकी हैं। पार्श्वनाथके सिरपर सर्प-फण और उसके ऊपर छत्र सुशोभित हैं। मूर्ति पद्मासन एवं ध्यानस्थ मुद्रामें है। उनके दोनों ओर चमरवाहक हैं। उनसे

ऊपर पुष्पमाल लिये हुए देवियाँ बनी हुई हैं। फलकके दोनों ओर ऊपरी भागोंमें क्रमशः दुन्दुभि और झाँझ अंकित हैं। प्रतिमाके पाद-पीठपर दो सिंह बने हुए हैं और उनके मध्यमें धर्मचक्र सुशोभित है।

दूसरी प्रतिमा भगवान् शान्तिनाथकी है जिसके ऊपरी भागमें चौबीस तीर्थंकरोंकी भी प्रतिमा उत्कीर्ण हैं। इसकी रचना बायीं ओरकी दीवार-वेदीमें विराजमान शान्तिनाथ-प्रतिमाके समान है।

ऐसा सुननेमें आया है कि पहले यहाँ आसपासमें बहुत-सी जैन प्रतिमाएँ पड़ी हुई थीं। सम्भवतः ये यहाँ बने हुए किसी प्राचीन जैन मन्दिर की थीं। बादमें इन चार प्रतिमाओंको उठाकर यहाँ विराजमान कर दिया गया। शेष प्रतिमाओंके विषयमें कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। इन प्रतिमाओंकी रचना-शैलीको देखकर इन्हें पूर्व गुप्त-कालकी माना जाता है।

मन्दिरके चौकमें एक दीवार-वेदीमें आचार्य शान्तिसागरजी महाराजकी एक पाषाण-मूर्ति की स्थापना हुई है।

चार मन्दिर ऊपर हैं। ऊपर जानेपर जीनेके बायीं ओर एक कमरेमें तीन वेदियाँ बनी हुई हैं। मध्यकी वेदीपर भगवान् महावीरकी श्वेत पाषाणकी दो फुट अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त दो और भी पाषाण-प्रतिमाएँ हैं और एक धातु-प्रतिमा भी है।

बायीं ओरकी वेदीमें भगवान् महावीरकी श्वेत पाषाण-प्रतिमा अवस्थित है। इसी प्रकार दायीं ओरकी वेदीमें भी महावीर स्वामीकी प्रतिमा है। दोनों पद्मासन हैं तथा दोनोंकी अवगाहना एक-एक फुटकी है।

ये सभी प्रतिमाएँ संवत् १९५० में प्रतिष्ठित हुई थीं।

इस मन्दिरसे आगे बढ़नेपर, मन्दिरके मुख्य द्वारके ऊपर तीन मन्दिर बने हुए हैं। प्रथम मन्दिरमें भगवान् महावीरकी श्वेत पाषाणकी दो फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त दो पाषाणकी तथा छह धातुकी प्रतिमाएँ हैं। मूलनायकका प्रतिष्ठा-काल वि. संवत् १९९१ है।

मध्यके मन्दिरमें पाँच वेदियाँ बनी हुई हैं—दो दीवारमें तथा तीन जमीनपर दीवारके सहारे। बायीं ओर दीवार-वेदीमें ३ पाषाणकी, ४ धातुकी और १ चाँदीकी मूर्ति हैं। इससे आगे दीवारके सहारे जमीनपर बनी प्रथम वेदीमें २४ चरण-चिह्न विराजमान हैं। मध्यकी वेदीपर मध्यमें भगवान् महावीरकी मूँगा वर्णकी पद्मासन और सवा फुट अवगाहनावाली प्रतिमा है। बायीं ओर चन्द्रप्रभकी श्वेत और दायीं ओर महावीर स्वामीकी मूँगा वर्णकी प्रतिमा है। इनका प्रतिष्ठा काल भी वि. सं. १९९१ है। तीसरी वेदीमें भगवान्के चरण-चिह्न हैं। दायीं ओरकी दीवार-वेदीमें ४ पाषाणकी तथा ५ धातुकी प्रतिमाएँ हैं।

तीसरे मन्दिरमें एक वेदी बनी हुई है। मूलनायक भगवान् महावीरकी डेढ़ फुट ऊँची श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त ५ श्वेत पाषाणकी और ३ धातुकी प्रतिमाएँ हैं।

धर्मशालाएँ

यहाँ दिगम्बर जैनोंकी बनवायी हुई दो धर्मशालाएँ हैं। दोनों ही दो-मंजिली हैं। पहली धर्मशाला, जिसमें दिगम्बर जैन कार्यालय है, उसमें ८२ कमरे हैं तथा दूसरी धर्मशाला, जो मन्दिरके पीछे है, उसमें ३३ कमरे हैं। इनमें नल, कुआँ, बिजली आदि सभी प्रकारकी सुविधाएँ हैं।

कार्यालयमें टेलिफोन भी लग गया है, जिसका नं. ४ पावापुरी है। धर्मशालाके बाहर पोस्ट ऑफिस है।

औषधालय

क्षेत्रपर अन्य कोई संस्था नहीं है। एक औषधालय है, जिसका नाम श्री महावीर दिगम्बर जैन औषधालय है। धर्मशालाके सदर फाटकके बाहर पूर्वकी ओर इस औषधालयका अपना एक हॉल है। यह औषधालय सुचारु रूपसे चल रहा है। इससे देहाती जनता तथा यात्रियोंको बड़ा लाभ मिलता है।

वार्षिक मेला

पावापुरीमें भगवान् महावीरके निर्वाणोत्सवके अवसरपर कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीसे कार्तिक शुक्ला एकम तक विशाल मेला लगता है। मेलेके समय निर्वाण लाडू चढ़ाने और भगवान् महावीरको अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिए हजारों जैन और अजैन बन्धु आते हैं। इधरकी अजैन जनतामें महावीरके प्रति बड़ी श्रद्धा है और वह परम्परागत रूपसे इसी पावापुरीको महावीरका निर्वाण-स्थान मानती आयी है।

इस समय बसोंका स्टैण्ड दिगम्बर धर्मशालाके सामने ही बन जाता है, जिससे बाहरसे आनेवाले यात्रियोंको बड़ी सुविधा हो जाती है।

चतुर्दशीके प्रातःकाल भगवान्का मस्तकाभिषेक और विशेष पूजन होता है। कार्तिक कृष्णा अमावस्याको प्रातः साढ़े तीन बजे कार्यालयसे गाजे-बाजेके साथ पालकीमें भगवान् महावीर-की भव्य मूर्तिको एक जलूसके साथ जलमन्दिर ले जाते हैं। वहाँपर पूजन होकर निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है। इसके पश्चात् वहाँसे वापस आकर कार्यालय-मन्दिरजीमें निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है।

मध्याह्नमें १२ बजेसे रथयात्राका जलूस निकलता है। यह जलूस जलमन्दिरकी परिक्रमा करता हुआ पश्चिमकी ओर बने हुए रथपिण्डपर जाता है, जहाँ भगवान्का पूजन, अभिषेक कर वापस धर्मशाला आता है।

कार्तिक सुदी २ को राजगृही क्षेत्रपर रथयात्रा निकलती है। अतः पावापुरीसे यात्री राजगृही चले जाते हैं।

क्षेत्रका प्रबन्ध

क्षेत्रका प्रबन्ध भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ-क्षेत्र कमेटी, बम्बईके अन्तर्गत बिहार प्रान्तीय दिगम्बर जैन तीर्थ-क्षेत्र कमेटी करती है। इसका मन्त्री-कार्यालय देवाश्रम, आरा (बिहार) में है।

पावामें जैन पुरातत्त्व

आजकल पावा और पुरी दो पृथक् गाँव हैं। वर्तमान पावापुरी-मन्दिर न पावामें है, न पुरीमें, बल्कि पोखरपुर मौजेमें है। यह गाँव पटना-राँची रोडके उस मोड़ पर है जहाँसे मन्दिरके लिए सड़क आती है। वस्तुतः प्राचीन कालमें पावा और पुरी नामक दो गाँव नहीं थे, बल्कि दोनों एक ही थे। एक समय ऐसा आया, जब नगरकी आबादीके बीचमें अन्तराल पड़ गया। तब एक

ओरकी आबादी पावामें और दूसरी ओर की आबादी पुरीमें मानी जाने लगी और दोनों पृथक् गाँव बन गये। शास्त्रोंके उल्लेखानुसार महावीर अपने अन्तिम समयमें पावा नगरके बाह्य भागमें मनोहर नामक उद्यानमें पधारे और वहाँके उन्नत भूमि भागमें योग निरोध करके ध्यानारूढ़ हो गये। वहींसे उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। इस उल्लेखसे यह तो स्पष्ट ही है कि महावीरका निर्वाण पावानगरके मध्यमें नहीं हुआ, अपितु पावानगरके बाह्य भागमें हुआ। भगवान्‌के निर्वाणके पश्चात् जब उस स्थान पर सरोवर अथवा पोखर बन गया (जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है) और उसके निकट वस्ती बस गयी तो उस बस्तीको पोखरके नाम पर पोखरपुर कहने लगे। जल मन्दिरसे पोखरपुर १ मील, पुरी १ मील और पावा २ मील दूर है।

यहाँ तथा आसपासमें पुरातन अवशेष और पुरातत्त्व सामग्री विपुल मात्रामें मिलती है। दिगम्बर जैन कार्यालय मन्दिरमें विराजमान चार प्रतिमाएँ इसी क्षेत्रकी हैं। गाँवका मन्दिर भी काफी प्राचीन है। इस मन्दिरका जीर्णोद्धार वि. संवत् १६९८ में हुआ था। उस समय यहाँ भगवान्‌के चरण विराजमान किये गये थे। इन चरणोंकी स्थापना महत्तियाण वंशके श्रावकोंने की थी। खरतरगच्छकी 'युग प्रधानाचार्य गुर्वावली' के अनुसार विहारशरीफ, नालन्दा और राजगृहीमें इस जातिके लोग बहुत संख्यामें रहते थे। और जैनधर्मका पालन करते थे। इस जातिके श्रावकोंने कई जैनाचार्योंके चतुर्मास यहाँ कराये, यात्रा-संघ निकाले। यह जाति भी सराकोंकी तरह जैनोंसे सम्पर्क टूट जानेसे हिन्दू बन गयी।

बस्तीके मन्दिरका अभी जीर्णोद्धार हुआ है। उस समय जब यहाँ खुदाई करायी गयी थी, प्राचीन मन्दिरका भाग निकला था। उससे लगा कि वर्तमान मन्दिर किसी प्राचीन मन्दिरके ऊपर बना हुआ है। अथवा किसी प्राचीन मन्दिरका जीर्णोद्धार होकर मन्दिरको वर्तमान रूप मिला है। कुछ वर्षों पूर्व तक बस्तीके मन्दिरके आसपास अनेक प्राचीन मूर्तियाँ मिलती थीं।

पावा गाँवमें जाने पर अब भी वहाँ अत्यन्त प्राचीन हिन्दू मन्दिर और जैन मन्दिरोंके भग्नावशेष मिलते हैं। इन अवशेषोंको देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि यही वह पावा है, जिसका नाम जैन शास्त्रोंमें अपापापुरी, मज्झिमा पावा अथवा पावापुर मिलता है।

पावाकी वास्तविक स्थिति

भगवान् महावीरकी निर्वाण भूमि अबतक विहार शरीफसे सात मील दक्षिण-पूर्वमें और गिरियकसे दो मील उत्तरमें मानी जाती थी। किन्तु जब कुछ पुरातत्त्व-वेत्ताओं और इतिहासकारों ने यह लिख दिया कि पावा, जहाँ महावीरका निर्वाण हुआ, नालन्दाकी निकटवाली पावा नहीं, अपितु कुशीनाराकी निकटवर्ती पावा है, तब विद्वानोंमें इस सम्बन्धमें अनुकूल-प्रतिकूल चर्चा चल पड़ी। पावा कहाँ थी, सही पावा कौन-सी थी, इसका निर्णय करनेके लिए हमें जैन और बौद्ध वाङ्मयके उन साक्ष्योंका अन्तःपरीक्षण करना आवश्यक हो गया, जिनमें पावाका उल्लेख मिलता है।

श्वेताम्बर साहित्यमें पावा

श्वेताम्बर सूत्रों और ग्रन्थों—कल्पसूत्र, आवश्यक निर्युक्ति, परिशिष्ट पर्व, और विविध तीर्थकल्पका अपापा बृहत्कल्प आदिमें पावाके स्थान पर मध्यमा पावा और अपापा इन दो नामों-का प्रयोग मिलता है। भगवान् महावीर इस नगरीमें दो बार आये। सम्भव है, वे यहाँ अनेक बार पधारे हों। किन्तु दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ इस नगरीमें घटित हुई थीं, इसलिए इस नगरमें भगवान्‌के दो बार आगमनकी चर्चा विशेष उल्लेखनीय है।

प्रथम बार भगवान् केवलज्ञानकी प्राप्तिके अगले ही दिन पधारे। ऋजुकूला नदीके तटपर अवस्थित जृम्भक ग्रामके बाहर साल वृक्षके नीचे वैशाख शुक्ला १० को भगवान्को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्रों और देवोंने भगवान्के ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया। किन्तु समवसरणमें केवल इन्द्र और देवता ही उपस्थित थे। अतः विरति रूप संयमका लाभ किसी प्राणीको नहीं हो सका। यह आश्चर्यजनक घटना जैनागमोंमें 'अछेरा' (आश्चर्यजनक या अस्वाभाविक) नामसे प्रसिद्ध है।

उन दिनों मध्यमा पावामें, जो जृम्भक गाँवसे लगभग बारह योजन (४८ कोस) दूर थी, सोमिलाचार्य ब्राह्मण बड़ा भारी यज्ञ रचा रहा था, उसमें बड़े-बड़े विद्वान् देश-देशान्तरोंसे आकर सम्मिलित हुए थे। भगवान्ने यह सोचा कि यज्ञमें आये हुए विद्वान् ब्राह्मण प्रतिबोध पायेंगे और धर्मके आधारस्तम्भ बनेंगे, अतः वहाँ चलना ठीक रहेगा। यह विचारकर भगवान्ने सन्ध्या समय बिहार कर दिया और रात भर चलकर मध्यमाके महासेन उद्यानमें पहुँचे। एकादशीको इसी उद्यानमें भगवान्का दूसरा समवसरण लगा। भगवान्का उपदेश एक पहर तक हुआ। उनके ज्ञान और लोकोत्तर उपदेशकी चर्चा सारी नगरीमें होने लगी। सोमिलके यज्ञमें आये हुए इन्द्रभूति आदि ११ विद्वानोंने भी यह चर्चा सुनी। वे ज्ञान-मदसे भरे हुए अपने शिष्यों और छात्रोंके साथ भगवान्के पास पहुँचे। उनका उद्देश्य भगवान्को विवादमें पराजित करके अपनी प्रतिष्ठामें चार चाँद लगाना था। किन्तु वहाँ जाकर उनका मद विगलित हो गया। उन्होंने भगवान्के चरणोंमें विनयपूर्वक नमस्कार किया और दीक्षा ले ली। इस प्रकार मध्यमाके समवसरणमें एक ही दिनमें ४४११ ब्राह्मणोंने भगवान्के चरणोंमें नतमस्तक होकर श्रमण धर्म अंगीकार कर लिया। भगवान्ने उन ग्यारह विद्वानोंको अपने मुख्य शिष्य बनाकर गणधर पदसे विभूषित किया। उस समय अनेक नर-नारियोंने भी भगवान्का उपदेश सुनकर मुनि-व्रत या श्रावकके व्रत लिये। भगवान्ने वैशाख शुक्ला ११ को मध्यमा पावाके महासेन उद्यानमें साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघकी स्थापना की।

इस नगरीमें दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना भगवान्के निर्वाण की है। भगवान् चम्पासे विहार करते हुए अपापा पधारे। इस वर्षका वर्षावास अपापामें व्यतीत करनेका निश्चय करके वे राजा हस्तिपालकी रज्जुग सभामें पहुँचे और वहीं वर्षा-चतुर्मासकी स्थापना की। इस चातुर्मासमें दर्शनों के लिए आये हुए राजा पुण्यपालने भगवान्से दीक्षा ली। कार्तिककी अमावस्याको प्रातःकाल राजा हस्तिपालके रज्जुग सभा-भवनमें (कहीं इसे राजा हस्तिपालकी शुल्कशाला भी लिखा है) भगवान् की अन्तिम उपदेश-सभा हुई। उस सभामें अनेक गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। उनमें लिच्छवियोंके नौ और मल्लोंके नौ गणराजा उल्लेखनीय थे।

भगवान्ने अपने जीवनकी समाप्ति निकट जानकर अन्तिम उपदेशकी अखण्ड धारा चालू रखी, जो अमावस्याकी पिछली रात तक चलती रही। अन्तमें प्रधान नामक अध्ययनका निरूपण करते हुए अमावस्याकी पिछली रातको वह सब कर्मोंसे मुक्त हो गये। भगवान्के निर्वाणपर उक्त गणराजोंने कहा—'संसारसे भाव-प्रकाश उठ गया, अब द्रव्य प्रकाश करेंगे।' यह निश्चय कर उन्होंने रत्नदीप जलाये। गौतम स्वामी जो उस समय भगवान्की आज्ञासे निकटवर्ती गाँवमें देवशर्मा ब्राह्मणको उपदेश देनेके लिए गये हुए थे, उस समय भगवान्की वन्दनाके लिए वापस लौट रहे थे। अकस्मात् उन्होंने आकाशमें देवताओंको यह कहते हुए सुना—'भगवान् कालगत हो गये।' तब उनके मुखसे निकला—'आज भारतवर्ष शोभाहीन हो गया।' उन्हें तत्क्षण केवल-ज्ञान हो गया।

पावापुरी, जिसे मध्यमा, मध्यमा पावा और अपापापुरी भी कहा जाता है, इन दो घटनाओंके कारण अत्यन्त प्रसिद्धिको प्राप्त हो गयी थी। श्वेताम्बर वाङ्मयके उपर्युक्त उल्लेखोंसे पावाकी वास्तविक स्थितिपर भी प्रकाश पड़ता है। चतुर्विध-संघ-स्थापनाके प्रकरणमें मध्यमा (पावा) को जृम्भक गाँवसे १२ योजन दूर माना है। साथ ही, निर्वाणकी घटनाके प्रकरणमें भगवान्के बिहारका क्रम इस प्रकार दिया है, "चम्पा नगरीमें चातुर्मास पूर्ण करके भगवान् विचरते हुए जंभिय गाँव पहुँचे। वहाँसे मिढिप होते हुए छम्माणि गये। यहींपर ग्वालेने भगवान्के कानोंमें काठके कीले ठोक दिये थे। छम्माणिसे भगवान् मध्यमा पधारे। मध्यमासे विचरते हुए जम्भियगाँव आये, जहाँ उन्हें केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञानके बाद वे पुनः मध्यमा आये, जहाँ गौतमादिको अपना गणधर बनाया, वहाँसे वे राजगृह गये। वहाँपर चातुर्मास करके उन्होंने राजगृहसे विदेहकी ओर विहार किया और ब्राह्मण-कुण्ड पहुँचे।

प्राचीन भारतके नक्शेको देखनेसे और भगवान् महावीरके उपर्युक्त बिहार-क्रमको दृष्टिमें रखनेपर यह पता चल सकता है कि भगवान् चम्पासे मध्यमा पावा होते हुए राजगृह गये और वहाँसे वैशाली गये, तब असली पावा कहाँ होनी चाहिए। स्पष्ट है कि यही मध्यमा पावा आजकी पावापुरी है और यही भगवान् महावीरकी निर्वाण स्थली है।

बौद्ध साहित्यमें पावा

बौद्ध साहित्यमें अनेक स्थलोंपर विभिन्न प्रसंगोंमें पावाका उल्लेख मिलता है। उन प्रसंगोंका यहाँ उल्लेख करना बहुत ही उपयोगी होगा और उनसे हमें उस पावाका निर्णय करनेमें सुविधा रहेगी, जो वस्तुतः महावीर भगवान्की निर्वाण भूमि है।

निर्वाण संवाद-१

'एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति सामगामे। तेन खो पन समयेन निगण्ठो नातपुत्तो पावायं अधुना कालङ्कतो होति। तस्स कालङ्किरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वेधिक जाता भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति—'न त्वं इमं धम्मविनयं आजानासि। अहं इमं धम्मविनयं आजानामि' किं त्वं इयं धम्मविनयं आजानिस्ससि। मिच्छापटिपन्नो त्वमसि, अहमस्मि सम्मापटिपन्नो।......ये पि निगण्ठस्स नातपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना ते पि निगण्ठेसु नातपुत्तियेसु निब्बिन्नरूपा विरत्तरूपा पटिवानरूपा यथा तं दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसम संवत्तनिके असम्मासम्बुद्धप्पवेदिते भिन्नथूपे अप्पटिसरणे।

अथ खो चुन्दो समणुद्देसो पावायं वस्सं वुत्थो येन सामगामो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चुन्दो समणुद्देसो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—'निगण्ठो भन्ते नातपुत्तो पावायं अधुनाकालङ्कतो। तस्स कालङ्किरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वेधिक जाता....पे०...भिन्नथूपे अप्पटिसरणे' ति। एवं वुत्ते आयस्मा आनन्दो चुन्दं समणुद्देसं एतदवोच—'अत्थि खो इदं, आवुसो चुन्द, कथापामतं भगवन्तं दस्सनाय। आयाम आवुसो चुन्द, येन भगवा तेनुपसङ्कमिस्साम। उपसङ्कमित्वा एतमत्थं भगवतो आरोचेस्साम' ति। 'एवं भन्ते' ति खो चुन्दो समणुद्देसो आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसि।

—मज्झिम निकाय, सामगाम सुत्तन्त

अर्थात् एक बार भगवान् (बुद्ध) शाक्य देशमें सामगाममें विहार कर रहे थे। निगण्ठ नातपुत्तकी कुछ समय पूर्व ही पावामें मृत्यु हुई थी। उनकी मृत्युके अनन्तर ही निगण्ठोंमें फूट हो गयी, दो पक्ष हो गये, वे कलह करते एक दूसरेको मुखरूपी शक्तिसे छेदते विहर रहे थे—"तू इस धर्मविनयको नहीं जानता, मैं इस धर्मविनयको जानता हूँ। तू भला इस धर्मविनयको क्या जानेगा ? तू मिथ्यारूढ़ है, मैं सत्यारूढ़ हूँ।"

निगण्ठ नातपुत्तके श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य भी नातपुत्रीय निगण्ठोंमें वैसे ही विरक्त चित्त हैं, जैसे कि वे नातपुत्तके दुराख्यात (ठीकसे न कहे गये), दुष्प्रवेदित (ठीकसे साक्षात्कार न किये गये), अनैर्याणिक (पार न लगानेवाले), अनुपशम संवर्तनिक (न शान्तिगामी), असम्यक् सम्बुद्ध प्रवेदित (किसी बुद्धसे न जाने गये), भिन्न रूप, आश्रय रहित धर्मविनयमें थे।

चुन्द समणुद्देस पावामें वर्षावास समाप्त कर सामगाममें आयुष्मान् आनन्दके पास आये और उन्हें निगण्ठ नातपुत्तकी मृत्यु तथा निगण्ठोंमें हो रहे विग्रहकी सूचना दी। आयुष्मान् आनन्द बोले—"आवुस चुन्द ! भगवान्के दर्शनके लिए यह बात भेंट रूप है। आओ, आवुस चुन्द ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ चलें। चलकर यह बात भगवान्को कहें।"

'अच्छा भन्ते !' चुन्द समणुद्देसने कहकर आयुष्मान् आनन्दका समर्थन किया।

निर्वाण संवाद–२

'एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरतो वेधञ्ञा नाम सक्या तेसं अम्बवने पासादे।.......(शेष सामगाम सुत्तन्तके समान) —दीघनिकाय, पासादिक सुत्त, ३।६

अर्थात् भगवान् बुद्ध शाक्य देशमें शाक्योंके वेधञ्ञा नामक आम्रवन-प्रासादमें बिहार कर रहे थे।.... ..

निर्वाण संवाद–३

'एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मल्लेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि येन पावा नाम मल्लानं नगरं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा पावायं विहरति चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स अम्बवने।........

तेन खो पन समयेन निगंठो नातपुत्तो पावायं अधुना कालङ्कतो होति। (शेष सामगाम सुत्तके समान)—दीघनिकाय, संगीति परियाय सुत्त ३।१०।२

अर्थात् एक समय पाँच सौ भिक्षुओंके महासंघके साथ भगवान् मल्ल देशमें चारिका करते, जहाँ पावा नामक मल्लोंका नगर है, वहाँ पहुँचे। वहाँ पावामें भगवान् चुन्द कर्म्मारपुत्रके आम्र-वनमें विहार करते थे। (मल्लोंका उन्नत व नवीन संस्थागार उन्हीं दिनों बना था। पावावासी भगवान् बुद्धसे संस्थागारमें पधारनेकी प्रार्थना करने आये। भगवान्ने मौन रहकर अपनी स्वीकृति दे दी। तब भगवान् अपने भिक्षु-संघ सहित संस्थागारमें पधारे और धर्मकथा कहकर पावा-वासियोंको सम्प्रहर्षित किया। जब पावावासी चले गये, तब भगवान् ने शान्त भिक्षु-संघको देख आयुष्मान् सारिपुत्तको आमन्त्रित किया और उनसे भिक्षुओंको धर्मकथा सुनानेके लिए कहा।) उस समय निगंठ नातपुत्त अभी-अभी पावामें कालको प्राप्त हुए थे।

निगंठ नातपुत्तकी मृत्युका कारण

'ननु अयं नातपुत्तो नालन्दावासिको। सो कस्मा पावायां कालकतो। ति। सो किर उपालिना गाहापतिना पटिवद्धसच्चेन दसहि गाथाहि भाषिते बुद्धगुणे सुत्वा उण्हं लोहितं छड्डेसि। अथ नं अफासुकं गहेत्वा पावां अगमंसु। सो तत्थ कालं अकासि।'

—मज्झिम निकाय-अट्ठकथा, सामगाम सुत्त वण्णना, खण्ड ४, पृ. ३४

अर्थात् वह नातपुत्त तो नालन्दावासी था, वह पावामें कैसे कालगत हुआ? सत्यलाभी उपालि गृहपतिके दस गाथाओंसे भाषित बुद्धके गुणोंको सुनकर उसने उष्ण रक्त उगल दिया। तब अस्वस्थ ही उसे पावा ले गये और वह वहीं कालगत हुआ।

पावा-समीक्षा

जैन शास्त्रों और बौद्ध ग्रन्थोंमें पावा सम्बन्धी उपर्युक्त उल्लेखोंको पढ़कर ऐसा लगता है कि महावीर और बुद्धके कालमें पावा नामक कई नगर थे। जैन शास्त्रोंमें पावाके लिए मज्झिमा पावा अथवा मध्यमा पावा नामका प्रायः उपयोग किया गया है। उससे प्रतीत होता है कि पावा नामक तीन नगर थे। भगवान् महावीरका निर्वाण मध्यवर्ती पावा नगरके बाह्य भागमें हुआ। बौद्ध ग्रन्थोंके उपर्युक्त उल्लेखोंका सूक्ष्म निरीक्षण करनेपर प्रतीत होता है कि उस कालमें पावा नामक नगर एकसे अधिक थे। एक पावा मल्लोंकी थी। वहाँ कर्मारपुत्र चुन्दने तथागत बुद्धको भोजनमें सूकर मद्दव खानेको दिया। सूकर मद्दव खाते ही बुद्धको खून गिरने लगा, जिससे उन्हें मरणान्तक वेदना हुई और कुशीनारामें पहुँचकर इसी रोगसे उनकी मृत्यु हो गयी। तथागतके निर्वाणके प्रसंगसे मल्लोंकी पावाको बड़ी प्रसिद्धि मिली। किन्तु इसके अतिरिक्त एक अन्य पावाका भी उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें इसी सन्दर्भमें मिलता है, जहाँ निगण्ठ नातपुत्त (महावीर) कालकवलित हुए। बुद्धके प्रसंगमें जहाँ पावाका उल्लेख आया है, वहाँ सर्वत्र 'मल्लोंकी पावा' इस रूपमें वर्णन किया गया है और जहाँ निगण्ठ नातपुत्तके प्रसंगमें पावाका नामोल्लेख हुआ है, वहाँ उसके साथ कोई विशेषण नहीं दिया गया, केवल पावा ही दिया है।

जैन-बौद्ध ग्रन्थोंके उल्लेखोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उस युगमें पावा नामके कई नगर थे। इस कारण महावीरका निर्वाण किस पावामें हुआ, इस विषयमें इतिहासकारों और विद्वानोंमें कुछ मतभेद हो गया है। एक पक्ष मल्लोंकी पावाको महावीरकी निर्वाण-भूमि स्वीकार करने लगा है, जबकि दूसरा पक्ष परम्परागत और पटना जिलेवाली वर्तमान पावापुरीको ही महावीरकी निर्वाण-भूमि मानता है। दोनों ही पक्षोंके पास कुछ युक्तियाँ हैं, आधार हैं। अतः दोनोंकी युक्तियोंपर विचार करके ही किसी निर्णयपर पहुँचा जा सकता है।

प्रथम पक्षका कहना है कि—

१. महावीर और बुद्धके कालमें पावा नामकी एक ही नगरी थी। वह मल्लोंकी पावा थी। वहींसे महावीरका निर्वाण हुआ, वहीं बुद्धको सूकर मद्दव खानेसे रोग हुआ।

२. मल्लोंकी पावाके ध्वंसावशेष सठियाँव-फाजिलनगरमें बिखरे पड़े हैं। पावाके खण्डहर ही अब सठियाँवडीह कहलाते हैं।

३. निर्वाणकाण्ड आदिके अनुसार पावामें बहुत-से सरोवर थे। सठियाँवमें चारों ओर विपुल संख्यामें अब भी सरोवर हैं, जबकि पावापुरीमें केवल एक ही सरोवर है।

४. वर्तमान पावापुरीका क्षेत्र मगध सम्राट् अजातशत्रुके आधिपत्यमें था। वह लिच्छवि

और मल्ल संघोंका शत्रु था। फिर महावीर-निर्वाणके समय नौ मल्ल और नौ लिच्छवि राजा पावापुरीमें किस प्रकार आ सकते थे।

५. पावापुरीमें कुछ भी पुरातत्त्व सामग्री नहीं है, जबकि सठियाँवमें चारों ओर प्राचीन नगरों, भवनों और स्तूपोंके अवशेष फैले हुए हैं। और राजगृहीके निकट हस्तिपाल नामक राजा कैसे हो सकता था।

६. १३वीं-१४वीं शताब्दीमें उत्तर बिहारसे जैन धर्म हटकर दक्षिण बिहारमें केन्द्रित हो गया था। उन्हीं दिनों पावापुरीको महावीरकी निर्वाण-भूमि मान लिया गया, जिस प्रकार कुण्डलपुर या लिच्छुआड़को महावीरकी जन्मभूमि मान लिया गया था।

एक दूसरा पक्ष है जो इस नवीन मान्यताके विरुद्ध है और जो परम्परागत रूपसे मान्य पावापुरीको ही महावीरकी निर्वाणस्थली मानता है। इस पक्षके तर्क इस प्रकार हैं—

१. मल्लोंको पावामें महावीरका निर्वाण हुआ, इस प्रकारका कोई उल्लेख किसी जैन या बौद्ध शास्त्रमें उपलब्ध नहीं होता। जबकि बुद्धके प्रसंगमें मल्लोंकी पावाका उल्लेख किया गया है, किन्तु निगण्ठनातपुत्रके मृत्यु प्रसंगमें सर्वत्र बौद्ध ग्रन्थोंमें केवल पावाका ही नामोल्लेख किया गया है। इसीसे सिद्ध है कि महावीरका निर्वाण मल्लोंकी पावामें नहीं, उससे भिन्न पावामें हुआ था।

२. जैन ग्रन्थोंमें मल्लोंकी पावामें नहीं बल्कि मध्यमा पावामें महावीरका निर्वाण माना है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय तीन नगर पावा नामके थे। महावीरका निर्वाण मध्यम पावामें हुआ। स्थल कोषोंसे भी सिद्ध है कि उस कालमें पावा नामक तीन नगर थे—१. मल्लोंकी पावा, २. नालन्दाकी निकटवर्ती पावा—वर्तमान पावापुरी और ३. भंगि जनपदकी राजधानी पावा। पावापुरी इन दोनोंके मध्यमें अवस्थित थी। अतः वही महावीरकी निर्वाण-भूमि है।

३. जिन विद्वानोंने पावापुरीको महावीरका निर्वाण-स्थान न मानकर सठियाँवको निर्वाण-स्थान माना है, उनके समक्ष केवल बौद्ध ग्रन्थ रहे हैं और जहाँ बुद्धको सूकरमद्दव खानेसे रोग हुआ, वह पावा रही, किन्तु जैन ग्रन्थ सम्भवतः उनके सामने नहीं थे। इसलिए बौद्ध ग्रन्थोंके आधारपर उन्होंने पावाके बारेमें निर्णय कर लिया। जैन ग्रन्थोंकी मध्यमा पावा शब्दपर सम्भवतः उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया।

४. निगण्ठ नातपुत्त (महावीर) के निर्वाणके प्रसंगमें बौद्ध ग्रन्थोंमें जो कुछ लिखा गया, वह सद्भावके साथ नहीं लिखा गया। वह मिथ्या तो है ही, शरारतपूर्ण भी है। जैसे उपालि द्वारा बुद्धकी प्रशंसामें दस गाथा कहनेपर निगण्ठ नातपुत्तके मुखसे उष्ण रक्तका वमन होना और उसीसे उनकी मृत्यु, निगण्ठनातपुत्तके कालकवलित होते ही निगण्ठों और श्वेत पटधारियोंमें कलह होना, सारिपुत्रकी मृत्यु एक वर्ष पूर्व होनेपर भी उनके द्वारा निगण्ठ नातपुत्तकी मृत्युका समाचार बुद्धको देना, चुन्द द्वारा निगण्ठ नातपुत्तकी मृत्यु और उनके अनुयायियोंमें कलहका समाचार सुनकर आनन्द द्वारा इस समाचारको तथागतके लिए भेंटस्वरूप कहना आदि। इसलिए महावीरके निर्वाणके सम्बन्धमें बौद्ध ग्रन्थोंकी कोई बात विश्वसनीय नहीं है।

५. मल्ल और लिच्छवि राजा पावापुरी अर्थात् शत्रु-प्रदेशमें आये, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। शोकके अवसरोंपर राजनैतिक शत्रु भी प्रायः एक स्थानपर पहुँचते हैं। मल्ल और लिच्छवियोंके समान अजातशत्रु भी भगवान् महावीरका भक्त था। भगवान् महावीरके निर्वाणोत्सवमें सम्मिलित हुए इन गणतन्त्री राजाओंके विरुद्ध अजातशत्रु यदि कोई द्वेषपूर्ण कार्य करता तो सम्पूर्ण लोकमत उसके विरुद्ध हो जाता। दूसरी बात यह थी कि अजातशत्रुको अपनी स्थिति

सुदृढ़ करने और कूटनैतिक गतिविधियोंमें व्यस्त रहनेके कारण आने तकका अवकाश नहीं मिल पाया, युद्ध-जैसे विद्वेषपूर्ण प्रतिशोधकी बात तो बहुत दूरकी थी। रही हस्तिपाल राजाकी बात—उस कालमें एक गाँवके स्वामी जमींदारको भी राजा कहा जाता था। हस्तिपाल ऐसा ही कोई छोटा करद राजा होगा।

६. सठियाँव, पड़रौना और पपउर सभी स्थानोंपर पुरातत्त्ववेत्ता श्री कनिंघम, वेगलर, कारलाइल आदि अनेक विद्वानोंने शोध-यात्रा की, किन्तु आजतक एक भी जैनमूर्ति, लेख, जैनस्तूप अथवा जैनमन्दिरके अवशेष आदि नहीं मिले, जबकि पावापुरीका जलमन्दिर और गाँवका मन्दिर काफी प्राचीन हैं, यहाँ अनेक प्राचीन जैनमूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं और कई मूर्तियाँ दिगम्बर जैन मन्दिरमें अबतक रखी हुई हैं। सठियाँवमें जो थोड़ी-सी पुरातत्त्व सामग्री मिली है, उसमें भी जैनोंसे सम्बन्धित कोई सामग्री नहीं है। पावापुरीको १३-१४वीं शताब्दीमें भूल या भ्रमसे महावीरकी निर्वाण-भूमि मान लिया गया है, इस मान्यताके पक्षमें कोई आधार या प्रमाण नहीं दिया गया।

७. उपर्युक्त कारणोंसे पावापुरी ही वस्तुतः भगवान् महावीरकी निर्वाण-भूमि है। सठियाँव मल्लोंको प्राचीन पावा भले ही हो, किन्तु महावीरका निर्वाण मल्लोंकी पावामें नहीं हुआ, इतना निश्चित है। सठियाँवके पक्षमें एक ही बातपर जोर दिया जा रहा है कि सठियाँव ही मल्लोंकी पावा है। हम भी इसे मानते हैं। किन्तु महावीरका निर्वाण मल्लोंकी पावासे नहीं, मध्यमा पावासे हुआ, इसे भुला दिया जाता है। एक नामके तो अनेक गाँव हो सकते हैं।

समीक्षा

दोनों पक्षोंके उपर्युक्त तर्कोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता है। दोनों ही ओरके तर्कोंमें बल है। किन्तु प्रथम पक्षको अभी यह सिद्ध करना शेष है कि महावीरका निर्वाण मल्लोंकी पावासे हुआ। यदि वह पक्ष इस बातको सिद्ध कर सका तो जैन शास्त्रोंमें उल्लिखित मध्यमा पावाके साथ मल्लोंकी पावाका समन्वय किस प्रकार किया जाये, यह भी सिद्ध करना होगा। अतः हमारी विनम्र सम्मति है कि जबतक सठियाँवके पक्षमें ठोस और सर्वसम्मत शास्त्रीय, ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक साक्ष्य प्राप्त न हो जायें, तबतक शताब्दियोंसे निर्वाण-क्षेत्रके रूपमें मान्य पावापुरीको ही भगवान् महावीरकी निर्वाण-भूमि मानना तर्कसंगत और बुद्धिमत्तापूर्ण होगा।

मार्ग

पावापुरी बिहार प्रान्तमें पटना जिलेके बिहारशरीफसे दक्षिणकी ओर १४ कि. मी. दूर जैनोंका एक महान् सिद्धक्षेत्र है। यह पटना-राँची सड़कसे एक मील है। पूर्व दिशासे आनेवाले यात्रियोंको ई. आर. के नवादा स्टेशनसे २२ कि. मी. और पश्चिम दिशासे आनेवालोंको बख्त्यारपुरसे १३ कि. मी. पड़ता है। स्टेशनपर टैक्सी आदि हर समय मिलते हैं। इसके आसपासमें गुणावा (नवादासे दो मील) २१ कि. मी., राजगृही १८ कि. मी. और कुण्डलपुर तीर्थ हैं।

सड़कके मोड़पर टमटम, ताँगे मिलते हैं। मोटर-स्टैण्डसे गुणावा, नवादा, चम्पापुर (भागलपुर), राजगिर, पटना, आरा, नालन्दा आदिके लिए भी बस और टैक्सियाँ मिलती हैं।

बख्त्यारपुर-राजगिर रेलवे लाइनपर पावापुर रोड नामका एक स्टेशन भी है जो बख्त्यारपुरसे १० कि. मी. दूर है। वहाँपर कोई सवारी नहीं मिलती। अतः पावापुरीके यात्रियोंको वहाँ नहीं उतरना चाहिए।

गुणावा

स्थिति

गुणावा बिहार प्रान्तमें नवादा जिलेके अन्तर्गत है। इसका पोस्ट आफिस नवादा है। गया-क्यूल रेलवे लाइनपर स्थित नवादासे यह ३ कि. मी. दूर है और यह नवादासे बिहार-बख्त्यारपुर रोडके किनारे है।

सिद्धक्षेत्र

यह स्थान भगवान् महावीरके मुख्य गणधर गौतम स्वामीका निर्वाण-स्थान माना जाता है। अतः जैन जनता इसे सिद्धक्षेत्र या निर्वाणक्षेत्र मानती है।

गौतम स्वामीकी वास्तविक निर्वाण-भूमि

गुणावा सिद्धक्षेत्र है, इसका समर्थन किसी भी प्राचीन शास्त्रसे नहीं होता। निर्वाण काण्ड (संस्कृत) और निर्वाण भक्ति (प्राकृत) में भी गुणावा नामक किसी सिद्धक्षेत्रका उल्लेख नहीं मिलता। किसी पुराण अथवा कथा-ग्रन्थमें भी गौतम स्वामीका निर्वाण गुणावामें होनेका समर्थन नहीं मिलता। आचार्य गुणभद्र कृत उत्तर पुराणमें[1] इस सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

> वीरनिर्वृतिसंप्राप्तदिन एवास्तघातिकः ॥
> भविष्याम्यहमप्युद्यत्केवलज्ञानलोचनः।
> भव्यानां धर्मदेशेन विहृत्य विषयांस्ततः ॥
> गत्वा विपुलशब्दादिगिरौ प्राप्स्यामि निर्वृतिम्।

—जिस दिन भगवान् महावीर स्वामीको निर्वाण प्राप्त होगा उसी दिन मैं भी अघातिया कर्मोंको नष्ट कर केवलज्ञानरूपी नेत्रको प्रकट करनेवाला होऊँगा और फिर मैं भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देता हुआ अनेक देशोंमें विहार करूँगा। तदनन्तर विपुलाचलपर जाकर निर्वाण प्राप्त करूँगा।

उत्तर पुराणके इस अवतरणसे सन्देहकी कोई गुंजायश नहीं रह जाती कि गौतम स्वामीका निर्वाण विपुलाचल पर्वतपर हुआ।

श्वेताम्बर परम्परामें भी गौतम स्वामीका निर्वाण गुणावामें स्वीकार नहीं किया गया, अपितु उनका निर्वाण राजगृहके गुणशील चैत्यमें हुआ माना जाता है। भगवान् महावीरके सभी ग्यारहों गणधर इसी गुणशील चैत्यसे ही निर्वाणको प्राप्त हुए थे।[2]

यह गुणशील चैत्य राजगृहके बाहर उत्तर-पूर्व दिशामें अवस्थित था। यथा—

'तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स वहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसी भाए गुणसिलए णामं चेइये होत्था।'[3]

इस प्रकार दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराओंमें इस विषयमें ऐकमत्य है कि गौतम स्वामीका निर्वाण राजगृहमें हुआ। किन्तु राजगृहमें किस स्थानसे उनका निर्वाण हुआ, इस

---

१. उत्तर पुराण, ७६।५१५-५१७। २. आवश्यक निर्युक्ति, ६५५। आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ. ३३१।
३. भगवती सूत्र १ श. १ उ.। निशीथचूर्णि। आवश्यकचूर्णि। अनुत्तरौपपातिक। उत्तराध्ययन। अभिधान-राजेन्द्र कोष, भाग ३, पृ. ९३१।

विषयमें थोड़ा अन्तर है। दिगम्बर परम्पराके अनुसार उनका निर्वाण विपुलाचलसे हुआ और श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार उनका निर्वाण गुणशील चैत्यमें हुआ। किन्तु इस मान्यता-भेदका भी विशेष कारण है। दिगम्बर परम्परामें जिस प्रकार विपुलाचलको महत्त्व प्राप्त है, श्वेताम्बर परम्परामें उसी प्रकार गुणशील चैत्यको विशेष महत्त्व दिया गया है। जैसे दिगम्बर परम्परामें विपुलाचलको अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओंका केन्द्र माना है, श्वेताम्बर परम्परामें उसी प्रकार गुणशील चैत्य नानाविध घटनाओंका संगमस्थल बन गया है।

किन्तु इन दोनों परम्पराओंकी मान्यताके विरुद्ध गुणावा कब, किस कालमें, क्यों और कैसे गौतम स्वामीके नामके साथ सम्बन्धित होकर सिद्धक्षेत्र बन गया, इसका अन्वेषण होनेकी आवश्यकता है। हमें लगता है, जिन दिनों कुण्डलपुरको भगवान् महावीरका जन्म-नगर मानकर उसे तीर्थक्षेत्र बना दिया गया, लगभग उन्हीं दिनों तीर्थ-स्थापनाके अति उत्साहमें गुणावाको गौतम स्वामीका निर्वाण-क्षेत्र मान लिया गया। सम्भवतः उस समय सही निर्णय करनेके समुचित साधनों-का अभाव था अथवा विज्ञ लोगोंने इस बातको विशेष महत्त्व नहीं दिया। किन्तु अब यह निर्णय करना ही होगा कि कौन तीर्थ अपने वास्तविक स्थानपर है और कौन-सा तीर्थ उसके वास्तविक स्थानको भूलकर केवल श्रद्धावश किसी दूसरे स्थानपर बना दिया गया है।

यदि हमारा अनुमान सही है तो मानना होगा कि एक तीर्थके रूपमें इस स्थानकी जो ख्याति विगत छह शताब्दियोंसे चली आ रही है उसके साथ इतने लम्बे कालसे भक्तजनोंका जो भावनात्मक सम्बन्ध जुड़ा हुआ है, उसे देखते हुए भविष्यमें भी इस स्थानको एक तीर्थके रूपमें मान्यता प्राप्त रहे, इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इन सब बातोंको देखते हुए प्रसंगवश यहाँ गौतम स्वामीका संक्षिप्त परिचय दे देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

गौतम स्वामीका यशस्वी जीवन

गौतम स्वामी वर्तमान जैन वाङ्मयके आद्य-प्रणेता थे। षट्खण्डागम, तिलोयपण्णत्ती आदि आर्ष ग्रन्थोंमें भगवान् महावीरको भावकी अपेक्षा समस्त वाङ्मयका अर्थकर्ता अथवा मूलतन्त्रकर्ता अथवा द्रव्यश्रुतका कर्ता बतलाया है और गौतम गणधरको उपतन्त्रकर्ता अथवा द्रव्यश्रुतका कर्ता कहा गया है। किन्तु आश्चर्य है कि ऐसे महान् व्यक्तिका जीवन वृत्तान्त नहीं मिलता। लगभग १६वीं शताब्दीमें मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र द्वारा विरचित 'गौतम चरित्र' नामक एक ग्रन्थमें उनके जीवनके सम्बन्धमें साधारण-सा प्रकाश डाला गया है। उसके द्वारा ही हमें गौतम स्वामीके सम्बन्धमें कुछ जानकारी मिलती है।

इस ग्रन्थके अनुसार मगध देशमें एक ब्राह्मण नगर था। इस नगरमें अनेक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। इस नगरमें सदा वेदोंकी ध्वनि गूँजा करती थी। इसी नगरमें सदाचार परायण, बहुश्रुत और सम्पन्न शांडिल्य नामक एक ब्राह्मण निवास करता था। उसके रूप और शीलसे सम्पन्न स्थण्डिला और केसरी नामक दो पत्नियाँ थीं। एक दिन रात्रिको सोते हुए अन्तिम प्रहरमें स्थण्डिला ब्राह्मणीने शुभ स्वप्न देखे। तभी पाँचवें स्वर्गसे एक देवका जीव आयु पूर्ण होने पर माता स्थण्डिला के गर्भमें आया। गर्भावस्थामें माताकी रुचि धर्मकी ओर विशेष बढ़ गयी थी।

नौ माह व्यतीत होने पर माताने एक सुदर्शन पुत्रको जन्म दिया। उस पुण्यशाली पुत्रके उत्पन्न होनेके समय सब दिशाएँ निर्मल हो गयीं, सुगन्धित वायु बहने लगी और आकाशमें देव लोग जयजयकार कर रहे थे। पुत्र-जन्मसे ब्राह्मण दम्पतिको अपार हर्ष हुआ। शाण्डिल्य ब्राह्मणने पुत्र-जन्मकी खुशीमें याचकोंको मनमाना धन दान किया। निमित्तज्ञानीने पुत्रके ग्रहलग्न देखकर

भविष्यवाणी की—"यह बालक बड़ा होने पर समस्त विद्याओंका स्वामी होगा। और सारे संसारमें इसका यश फैलेगा।"

बालक अत्यन्त रूपवान् था। उसके मुख पर अलौकिक तेज था। उसे जो देखता था, वह देखता ही रह जाता था। वह प्रियदर्शन था। माता पिताने उसका नाम इन्द्रभूति रखा।

बालक इन्द्रभूति अभी तीन वर्षका ही था, जब माता स्थण्डिलाने द्वितीय पुत्रको जन्म दिया। यह जीव भी पाँचवें स्वर्गसे आया था। वैसा ही पुण्यात्मा और प्रभावशाली। इसका नाम गार्ग्य रखा गया, जो बादमें अग्निभूतिके नामसे प्रसिद्ध हुए।

इसके कुछ समय पश्चात् द्वितीय ब्राह्मण-पत्नी केसरीके भी वैसा ही तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम भार्गव रखा गया। यह भी पाँचवें स्वर्गसे आया था। यह पुत्र बादमें वायुभूतिके नामसे विख्यात हुआ।

तीनों भाइयोंने सम्पूर्ण वेद और वेदांगोंका अध्ययन किया। और वे उसमें पारंगत हो गये। विद्वान् बननेके बाद उन्होंने अपने-अपने गुरुकुल खोल लिये और छात्रोंको विद्याध्यापन कराने लगे। इन्द्रभूतिके पास पाँच सौ शिष्य पढ़ते थे। किन्तु इतना विद्वान् होकर भी उनके चरित्रमें एक बड़ा दोष था। उन्हें अपनी विद्याका बड़ा अभिमान था। वे समझते थे कि उनके समान विद्वान् इस संसारमें अन्य कोई नहीं है।

भगवान् महावीर एक दिन छद्मस्थ अवस्थामें विहार करते हुए ऋजुकूला नदीके तट पर एक शालवृक्षके नीचे किसी शिला पर तेलाका नियम लेकर ध्यान लगाकर बैठ गये। उन्होंने वैशाख शुक्ला दशमीको चारों घातिया कर्मोंका विनाश कर दिया। फलतः उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। चारों प्रकारके देवों और इन्द्रोंने आकर भगवान्को नमस्कार किया। सौधर्म इन्द्रने कुबेरको तत्काल समवसरण निर्माण करने की आज्ञा दी। देवताओंने आनन-फाननमें समवसरणकी रचना कर दी। उसमें बारह कक्ष थे। देव, मनुष्य, तिर्यंच आदि यथानिश्चित कक्षोंमें आकर बैठ गये। भगवान् गन्धकुटीमें सिंहासन पर विराजमान हो गये किन्तु उनकी दिव्य ध्वनि नहीं खिरी।

यह देखकर सौधर्म इन्द्रने अपने अवधिज्ञानसे विचार किया कि यदि इन्द्रभूति गौतम आ जायें तो भगवान् की दिव्य ध्वनि खिरने लगेगी। यह विचार कर इन्द्र एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर इन्द्रभूति गौतमके गुरुकुलमें पहुँचा और छात्रोंसे बोला—मुझे एक श्लोकका अर्थ समझना है। यहाँ सबसे बड़ा विद्वान् कौन है जो मुझे इसका अर्थ समझा सके। मेरे गुरु इस समय धर्म-कार्यमें लगे हुए हैं। इसलिए वे इस समय मुझे कुछ बता नहीं रहे हैं।

छात्रोंने वृद्धको अपने गुरु गौतमके पास पहुँचा दिया। वृद्धने उनसे भी यही बात कही। गौतम अभिमानकी मुद्रामें बोले—ब्राह्मण देवता! तुम्हें जो पूछना हो पूछ सकते हो।

वृद्ध बोला—विप्रवर्य! यदि आप मेरे काव्यका अर्थ बता देंगे तो मैं आपका शिष्य बन जाऊँगा। यदि न बता सके तो आपको मेरे गुरुका शिष्यत्व स्वीकार करना होगा।

गौतम इस शर्तसे सहमत हो गये। तब वृद्धने श्लोक बोला—'त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं' इत्यादि श्लोक सुनकर इन्द्रभूति उसका अर्थ विचारने लगे, किन्तु अर्थ नहीं कर पाये—छह द्रव्य, नौ पदार्थ, छह लेश्या, पाँच अस्तिकाय कौनसे हैं। किन्तु अभिमान वश वृद्ध ब्राह्मणके समक्ष यह बात कह भी नहीं सके। उन्होंने बात छिपाते हुए कहा—"मैं तुम्हें क्या बताऊँ, चलो, तुम्हारे गुरुके समक्ष ही अर्थ बताऊँगा।'

इन्द्र यही तो चाहता था। वह इन्द्रभूतिको उनके शिष्य परिकरके सहित लेकर चल दिया। जब समवसरणके द्वारके भीतर घुसते ही सामने मानस्तम्भ देखा तो इन्द्रभूतिके मनका अभिमान

गलित हो गया और मनमें कोमलता जागी। समवसरण-विभूतिको देखकर उनके मनमें विचार आया—जिनकी ऐसी लोकोत्तर विभूति है, वे क्या किसीके द्वारा जीते जा सकते हैं। जब वे भगवान्‌के समक्ष पहुँचे तो अन्तरसे भक्तिकी हिलोर-सी उठी और वे हाथ जोड़कर भगवान्‌की स्तुति करने लगे। फिर उन्होंने भगवान्‌को नमस्कार किया और अपने दोनों भ्राताओं और शिष्यों सहित भगवान्‌के चरणोंमें जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। उस समय उनके परिणाम इतने निर्मल थे कि उन्हें तत्काल बुद्धि, विक्रिया, क्रिया, तप, बल, औषधि, रस और क्षेत्र ये आठ ऋद्धियाँ प्राप्त हो गयीं। बुद्धि, ऋद्धि प्राप्त होने पर अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, कोष्ठ मति, बीज बुद्धि, संभिन्न, संश्रोतृ और पदानुसारी ज्ञान भी स्वयं प्राप्त हो गये।

आचार्य यतिवृषभ इन्द्रभूतिके आने पर भगवान्‌की दिव्य ध्वनि खिरनेके कालका उल्लेख करते हुए 'तिलोयपण्णत्ती'[1] में बतलाते हैं—अवसर्पिणीके चतुर्थ कालके अन्तिम भागमें तेतीस वर्ष आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रहने पर श्रावण नामक प्रथम मासमें कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाके दिन अभिजित् नक्षत्रके उदित रहने पर धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई अर्थात् भगवान् महावीरकी प्रथम दिव्यध्वनि खिरी। उस समय रुद्र मुहूर्त था, सूर्योदयका शुभकाल था और अभिजित् नक्षत्रका प्रथम योग था। (युगका प्रारम्भ भी इसी दिन होता है)।

इसी प्रकार जयधवला[2] टीकामें आचार्य वीरसेनने बताया है कि—

'जो आर्य क्षेत्रमें उत्पन्न हुए हैं; मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार निर्मल ज्ञानोंसे सम्पन्न हैं; जिन्होंने दीप्त, उग्र और तप्त तपको तपा है; जो अणिमा आदि आठ प्रकारकी वैक्रियिक लब्धियोंसे सम्पन्न हैं; जिनका सर्वार्थसिद्धिमें निवास करनेवाले देवोंसे अनन्तगुणा बल है; जो एक मुहूर्तमें बारह अंगोंके अर्थ और द्वादशांग रूप ग्रन्थोंके स्मरण और पाठ करनेमें समर्थ हैं; जो अपने पाणिपात्रमें दी गयी खीरको अमृत रूपसे परिवर्तित करनेमें या उसे अक्षय बनानेमें समर्थ हैं; जिन्हें आहार और स्थानके विषयमें अक्षीण ऋद्धि प्राप्त हैं; जिन्होंने सर्वावधि ज्ञानसे अशेष पुद्‌गल द्रव्यका साक्षात्कार कर लिया है; तपके बलसे जिन्होंने उत्कृष्ट विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न कर लिया है; जो सात प्रकारके भयसे रहित हैं; जिन्होंने चार कषायोंका क्षय कर दिया है; जिन्होंने पाँच इन्द्रियोंको जीत लिया है; जिन्होंने मन, वचन और कायरूप दण्डोंको भग्न कर दिया है; जो छह कायिक जीवोंकी दया पालनेमें तत्पर हैं; जिन्होंने कुल, मद आदि आठ मदोंको नष्ट कर दिया है; जो क्षमादि दस धर्मोंमें निरन्तर उद्यत हैं; जो आठ प्रवचन मातृका गणोंका अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्तियोंका परिपालन करते हैं; जिन्होंने क्षुधा आदि बाईस परीषहोंके प्रसारको जीत लिया है; और जिनका सत्य ही अलंकार है ऐसे आर्य इन्द्रभूतिके लिए उन महावीर भट्टारकने अर्थका उपदेश दिया। उसके अनन्तर उन गौतम गोत्रमें उत्पन्न हुए इन्द्रभूतिने एक अन्तर्मुहूर्तमें द्वादशांगके अर्थका अवधारण करके उसी समय बारह अंग रूप ग्रन्थोंकी रचना की और गुणोंसे अपने समान श्री सुधर्माचार्यको उसका व्याख्यान किया। तदनन्तर कुछ कालके पश्चात् इन्द्रभूति भट्टारक केवलज्ञानको उत्पन्न करके और बारह वर्ष तक केवलि विहार रूपसे विहार करके मोक्षको प्राप्त हुए।

तिलोयपण्णत्ती (४-१४७६) में वर्णन है कि जिस दिन भगवान् महावीर सिद्ध हुए, उसी दिन गौतम गणधर केवलज्ञानको प्राप्त हुए। पुनः गौतमके सिद्ध होनेपर सुधर्मास्वामी केवली हुए। जिस दिन सुधर्मा स्वामी मुक्त हुए, उसी दिन जम्बूस्वामी केवली हुए।

---

१. तिलोयपण्णत्ती, अधिकार १, गाथा ६८-७०। २. गाथा १, पृ. ८३।

श्वेताम्बर[1] परम्परामें गौतम स्वामीका चरित्र इस प्रकार उपलब्ध होता है—

इन्द्रभूति गौतम मगधकी राजधानी राजगृहके निकट गोवंर (गोवर गाँव) ग्रामके रहनेवाले थे। वे गौतम गोत्रीय वसुभूति ब्राह्मणके पुत्र थे। इनकी माताका नाम पृथ्वी था। उनका नाम यद्यपि इन्द्रभूति था, पर अपने गोत्राभिधान 'गौतम' इस नामसे ही अधिक विश्रुत थे। पचास वर्षकी आयुमें आपने पाँच सौ छात्रोंके साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। तीस वर्ष तक छद्मस्थ रहे और बारह वर्ष पर्यन्त केवली रहे। बानबे वर्षकी आयुमें गुणशील चैत्यमें मासिक अनशन करके निर्वाण प्राप्त किया।

क्षेत्र-दर्शन

पावापुरीकी तरह यहाँ भी एक सुन्दर सरोवरमें भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिरमें एक वेदीमें गौतम स्वामीके चरण विराजमान हैं। तथा दूसरी वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण पाँच इंची प्रतिमा है। चरणचौकीपर सर्पलांछन है। ऊपरका सर्प-फण टूट गया है। मन्दिर तक जानेके लिए दो सौ फुट लम्बा एक पुल बना हुआ है। पुलके पास दक्षिणमें जो धर्मशाला बनी हुई है, वह श्वेताम्बर भाइयोंके अधिकारमें है।

दिगम्बर समाजका एक शिखरबन्द मन्दिर नवीन धर्मशालाके बीचमें बना हुआ है जो राव राजा सर सेठ सरूपचन्द हुकमचन्द इन्दौरवालोंकी ओरसे सं. १९८२ में निर्मित हुआ है। इस मन्दिरमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् कुन्थुनाथकी है, जो पद्मासन, श्वेतवर्ण है तथा लगभग सवा चार फुट अवगाहनाकी है। इसकी प्रतिष्ठा वीर सं. २४६४ में हुई थी। मूलनायकके आगे पाँच प्रतिमाएँ श्वेत पाषाणकी हैं, जिनमें दो पार्श्वनाथ प्रतिमाएँ क्रमशः संवत् १४४८ और संवत् १५४८ की हैं। इन प्रतिमाओंके आगे भगवान् महावीरकी श्वेत वर्ण पद्मासन एक फुट सवा इंच अवगाहनाकी विराजमान है। एक ओर वीर सं. २४५३ के प्रतिष्ठित चरण विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त धातुकी ४ प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिरमें गर्भगृहके अतिरिक्त सभामण्डप तथा बाहर काफी बड़ा दालान है। मन्दिरके सामने धर्मशालाके भीतर ही एक मानस्तम्भ श्री केशरीमल लल्लूमलजी गया द्वारा संवत् २४७४ में प्रतिष्ठित कराया गया है। मानस्तम्भकी वेदीमें चतुर्मुखी प्रतिमा विराजमान है। धर्मशालामें कुल पन्द्रह कमरे हैं। धर्मशालाके भीतर एक और बाहर एक इस प्रकार कुल दो कुएँ हैं।। धर्मशाला सड़कके बिलकुल किनारेपर है, जबकि जलमन्दिर धर्मशालाके पीछे उससे लगभग एक फर्लांग दूर है।

यहाँ वर्षमें कोई मेला नहीं भरता।

यहाँका प्रबन्ध भा. दि. जैन तीर्थ-क्षेत्र कमेटी की ओरसे बिहार प्रान्तीय दिगम्बर जैन तीर्थ-क्षेत्र कमेटी आरा करती है।

---

१. आवश्यक निर्युक्ति, गाथा ६४३ से ६५५, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, ३३८-३३९।

पाटलिपुत्र

सिद्धक्षेत्र

पाटलिपुत्रका इतिहास ढाई हजार वर्ष प्राचीन है। प्राचीन साहित्यमें इसके कई नाम मिलते हैं—जैसे कुसुमपुर, पुष्पपुर, पाटलिपुत्र। यह शताब्दियों तक राजनैतिक और सांस्कृतिक केन्द्र रहा।

जैन साहित्यमें पाटलिपुत्रका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। जैन शास्त्रोंमें इस नगरको सिद्धक्षेत्र माना गया है। इसी नगरमें तपस्या करके मुनिराज सुदर्शनने निर्वाण प्राप्त किया था। मुनि सुदर्शनका जीवन बड़ा घटना-प्रधान रहा, अतः जैन जगत्में सुदर्शन (पहले सेठ, बादमें मुनि) का चरित बहुत विख्यात है। उनका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

अंगदेशकी राजधानी चम्पाके नरेश दधिवाहन थे। उनके राज्यमें वृषभदत्त सेठ रहते थे। उनकी पत्नी अर्हद्दासी धर्मपरायण सतीसाध्वी थी। उनके एक पुत्र था। उसका रूप दर्शनीय था। इसलिए उसका नाम सुदर्शन रखा गया। जब सुदर्शन यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए तो उनके माता-पिताने उनका विवाह मनोरमा नामक एक सुलक्षणा कन्याके साथ कर दिया। पत्नी जितनी सुन्दर थी, उतनी गुणवती भी थी। अतः पति-पत्नी दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन सेठ वृषभदत्तके मनमें संसारकी दशाका चिन्तन करते हुए वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने समाधिगुप्त नामक मुनिराजके पास जाकर दीक्षा ले ली। अब सुदर्शन सेठ व्यापार सँभालने लगे। राज दरबारमें भी उनका बड़ा मान था। उन्होंने धन भी अर्जित किया और धर्म की ओरसे भी उदासीन नहीं रहे। वे प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको रात्रिमें श्मशानमें जाकर ध्यान लगाया करते थे।

एक दिन महाराज दधिवाहन अपनी महारानी अभयाको लेकर वन-विहारके लिए गये। उनके साथ सेठ सुदर्शन, मन्त्रीगण, परिजन, पुरजन भी थे। महारानी अभया बार-बार उस सुदर्शन रूपवाले सुदर्शन सेठको देख रही थी। गठा हुआ शरीर, भरा हुआ यौवन, चमकती हुई आँखें, मुसकराता हुआ चेहरा। इन सबने मिलकर अभयाके मनको चंचल कर दिया। जब वन-विहारसे लौटे तो अभया अपने कक्षमें जाकर पलंगपर पड़ गयी। वह काम-पीड़ित हो रही थी। उसकी विह्वल दशाको देखकर उसकी धायने रानीसे इसका कारण पूछा। रानी धायको अपनी अत्यन्त विश्वस्त और अन्तरंग समझकर बोली—"सुदर्शन सेठको देखकर मैं उसके ऊपर मोहित हो गयी हूँ। उसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। यदि तू मेरा जीवन चाहती है तो उसे मुझसे किसी उपायसे मिला दे।" धायने आश्वासन देकर महारानीसे सुदर्शनको मिलानेका वचन दिया।

उस दिन धायने रात्रिमें प्रयत्न करके सेठ सुदर्शनको, जब वह श्मशानमें ध्यान लगाये हुए खड़े थे—उठवाकर महारानीके कक्षमें पहुँचा दिया। सुदर्शनको देखकर रानी बड़ी प्रसन्न हुई और कामसे पीड़ित होकर वह सुदर्शनसे रति-दानकी प्रार्थना करने लगी। सुदर्शन तो ध्यानमग्न थे। उन्होंने यह उपसर्ग देखा तो प्रतिज्ञा कर ली कि यदि मैं इस उपसर्गसे बच सका तो मुनि-दीक्षा ले लूँगा।

रानी कामान्ध होकर नाना भाँतिकी कुचेष्टा करती रही। किन्तु सुदर्शन अपने ध्यानमें लीन रहे। रानीने अनुनय विनय की, प्रेम प्रकट किया, शारीरिक कुचेष्टाएँ कीं। जब दृढ़ शील-

व्रतीके शीलकी शिलासे रानीके सभी शस्त्र टकराकर बेकार हो गये तो वह खीज और क्रोधसे भर उठी। उसे अब अपनी प्रतिष्ठा बचानेकी चिन्ता हुई। उसने अपने कपड़े फाड़ डाले, अपने नाखूनोंसे शरीर क्षत-विक्षत कर लिया, बाल बिखेर लिये और कातर वाणीमें चिल्लाने लगी—"बचाओ, बचाओ, यह दुष्ट मेरा सर्वनाश करना चाहता है।"

रानीकी चीख-पुकार सुनकर राज-सेवक, प्रतीहार आदि दौड़े आये। अपराध साधारण नहीं था। राज्यकी महारानीके साथ बलात्कारका मामला था। बात राजा तक पहुँची। राजाने क्रोधमें आकर आज्ञा दे दी—"श्मशानमें ले जाकर इस दुष्टका सिर काट दो।" राजाज्ञानुसार वधिक लोग सुदर्शन सेठको पकड़कर श्मशानमें ले गये और उन्होंने एक साथ उनका मस्तक काटने के लिए तलवारें चलायीं। किन्तु कैसा आश्चर्य कि सुदर्शन सेठके गलेमें जहाँ तलवार लगी, वहाँ घाव न होकर फूलोंकी माला हो गयी। वधिकोंने इस दृश्यको बड़े आश्चर्यमें भरकर देखा। तबतक उन्हें आकाशमें देवोंकी जयजयकार सुनाई दी—"धन्य है सुदर्शनके शीलव्रतको।" देवोंने पुष्पवृष्टि की और सुदर्शनकी पूजा की।

इस अद्भुत चमत्कारको देखकर राजा दधिवाहन प्रजाजनोंसे घिरा हुआ वहाँ आया। वह आकर बार-बार क्षमा माँगने लगा और बोला—"सुदर्शन! मेरा आधा राज्य ले लो और आनन्दपूर्वक रहो।" किन्तु सुदर्शन बोले—"महाराज! आपने कुछ नहीं किया। यह तो मेरे कर्मोंका दोष है।"

संयोगसे तभी उधर विमलवाहन नामक मुनि आ गये। सुदर्शनने अपनी प्रतिज्ञानुसार उनसे मुनि-दीक्षा ले ली और तपस्या करने लगे। रानी अभयाने भयके मारे आत्म-हत्या कर ली। दुष्टा धाय वहाँसे भाग गयी और पाटलिपुत्रमें देवदत्ता नामक वेश्याके यहाँ रहने लगी। रानी मरकर व्यन्तरी बनी।

मुनि सुदर्शन विहार करते हुए एक दिन पाटलिपुत्र पहुँचे। धायने उन्हें देख लिया और देवदत्तासे बोली—"जिसकी वजहसे मैं बर्बाद हुई, वह यह साधु है।" देवदत्ताने साधुको देखा। वह बोली—"मैं देखती हूँ, यह कितना बड़ा ब्रह्मचारी है।" उसने अपनी दासीको भेजकर मुनि-राजको किसी बहानेसे अपने घरपर बुला लिया। उसने उन्हें तीन दिन तक अपने घरपर ही बन्द रखा और घोर उपसर्ग किये किन्तु धीर-वीर मुनि किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए। तब देवदत्ता भयभीत होकर मुनिको श्मशानमें छोड़ आयी। मुनिराजने उपसर्गके कारण आहारका त्याग कर दिया। श्मशानमें अभया व्यन्तरीने सात दिन तक मुनिके ऊपर भयानक उपसर्ग किये। मुनिराज सुदर्शन अत्यन्त धीरतापूर्वक इन उपसर्गोंको साम्यभावसे सहते हुए आत्म-साधनामें लीन रहे। उनके कर्म-जाल छिन्न-भिन्न होते गये और उपसर्गके सातवें दिन उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। देवताओंने आकर उनके केवलज्ञानकी पूजा की और गन्धकुटीकी रचना की। नर-नारी भगवान्‌के दर्शनोंके लिए आये। धाय, देवदत्ता और व्यन्तरी भी भगवान्‌की शरणमें पहुँचे। उनके उपदेशको सुनकर सबने श्रावकके व्रत धारण किये।

फिर कुछ दिनों तक विहार करके सुदर्शन केवलीने पाटलिपुत्रसे निर्वाण प्राप्त किया।

—हरिषेण कथाकोष—कथा ६०

कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

पाटलिपुत्रमें और भी कतिपय महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुईं, जिनका वर्णन पुराणों और कथा-ग्रन्थोंमें मिलता है। एक घटना इस प्रकार वर्णित है—

पाटलिपुत्र नरेश महापद्मनन्दके दो मंत्री थे—शकटाल और वररुचि। शकटाल जैन था, वररुचि जैन धर्म-द्वेषी। एक दिन शकटालने जैन मुनिका उपदेश सुनकर मुनिदीक्षा ले ली और तपस्या करने लगे। कुछ समय बाद विहार करते हुए वे पाटलिपुत्र पधारे और आहारके लिए नगरमें आये। राजमहलोंमें आहार करके जब वे वापस वनकी ओर जा रहे थे कि वररुचिने देख लिया। उसने नन्दराजसे शकटालके सम्बन्धमें झूठी शिकायत करके नन्दको शकटालके विरुद्ध कर दिया। क्रोधमें नन्दने सैनिकोंको आज्ञा दी कि शकटालका सिर काट दिया जाये। सैनिक शकटाल मुनिकी खोजमें वनमें गये। मुनिराजने जब सैनिकोंको खड्ग हाथमें लिये और अपनी ओर आते हुए देखा तो उन्होंने समझ लिया कि मुझे ही मारने आ रहे हैं। उन्होंने तत्काल चारों प्रकारका आहार त्याग करके सल्लेखना ले ली और आत्म-ध्यानमें लीन हो गये। सैनिकोंने आकर ध्यानस्थ मुनिका वध कर दिया। मरकर मुनि शकटाल स्वर्गमें देव हुए। बादमें जब नन्दको सही स्थितिका ज्ञान हुआ तो उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ।[1]

इस सम्बन्धमें 'भगवती आराधना' में भी निम्नलिखित उल्लेख उपलब्ध होता है—

सगडालएण वि तधा सत्थग्गहणेण साधिदो अत्थो।
वररुइपओगहेदुं रुट्ठे णंदे महापउमे ॥२०७६॥

अर्थात् वररुचिके कहनेपर जब महापद्मनन्द रुष्ट हो गया तो शकटालने सत्यको ग्रहण करके आत्म-हितका साधन किया।

यह वही नगरी है जहाँपर चाणक्यने नन्दवंशका उन्मूलन करके अपनी विचक्षण बुद्धि और चन्द्रगुप्त मौर्यकी वीरतासे भारतमें मौर्य वंशका राज्य स्थापित किया। अनन्तर चाणक्यने भी जैन मुनि दीक्षा धारण कर ली। कुछ समय बाद उनके गुरु मतिप्रधानने उन्हें आचार्य पद दे दिया। एक बार आचार्य चाणक्य अपने पाँच सौ शिष्योंके साथ बिहार करते हुए क्रौंचपुरमें गवाट (जहाँ गायें बँधती हैं) में ठहरे। नन्दराजके भूतपूर्व मन्त्री सुबन्धुने उन्हें पहचान लिया। उसने नन्दराजका बदला लेनेके लिए गवाटमें आग लगवा दी, जिसमें सभी मुनियों सहित आचार्य चाणक्यने उत्तमार्थ प्राप्त किया।

'भगवती आराधना' में इस सम्बन्धमें उल्लेख है—

गोट्ठे पाओवगदो सुबंधुणा गोव्वरे पलिविदम्मि।
डज्झन्तो चाणक्को पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५६॥

आचार्य हरिषेण कृत 'बृहत्कथाकोष' में लिखा है कि—

चाणक्याख्यो मुनिस्तत्र शिष्यपञ्चशतैः सह।
पादोपगमनं कृत्वा शुक्लध्यानमुपेयिवान् ॥१४३।८३॥
उपसर्गं सहित्वेमं सुबन्धुविहितं तदा।
समाधिमरणं प्राप्य चाणक्यः सिद्धिमीयिवान् ॥१४३।८४॥

---

१. हरिषेण कथाकोष — कथा १५७।

अर्थात् मुनि चाणक्यने शुक्ल ध्यान ध्याते हुए सिद्ध गति प्राप्त की।

ब्रह्मचारी नेमिदत्त कृत 'आराधना कथाकोष' में तो सभी पाँच सौ मुनियोंको मुक्ति प्राप्त हुई, ऐसा उल्लेख है—

तदा ते मुनयो धीरा: शुक्लध्यानेन संस्थिता:।
हत्वा कर्माणि नि:शेषं प्राप्ता: सिद्धि जगद्धिताम् ॥७३।४२॥

अर्थात् सभी मुनि शुक्लध्यानमें लीन होकर अशेष कर्मोंको नष्ट करके सिद्ध हो गये।

पाटलिपुत्रके सेठ जिनदासकी कथा भी बहुत प्रचलित है। उनके सम्बन्धमें एक घटना इस प्रकार है। एक समय सेठ जिनदास अनेक व्यापारियोंके साथ पोत लेकर व्यापारके लिए स्वर्णद्वीप गया। जब जहाज जा रहा था, तब कालिकासुरने आकर कहा—"अगर तुम लोग यह कह दो कि जैन धर्म असत्य है, तब तुम आगे जा सकोगे, अन्यथा नहीं।" अन्य व्यापारी यह सुनकर आतंकित हो गये किन्तु श्रेष्ठी जिनदास सम्यग्दृष्टि था। वह भयभीत नहीं हुआ। उसने व्यापारियों-को समझाया और आश्वस्त किया। सबने भगवान् जिनेन्द्रदेवको नमस्कार किया। इतनेमें उत्तर-कुरुकी ओरसे एक देवचक्र आया और उस असुरको उसने मार भगाया।

पाटलिपुत्रमें कभी पर्वतमें भूगर्भसे पुष्पदन्त भगवान्‌की प्रतिमा निकली थी। उस प्रतिमाकी बड़ी महिमा थी। १३वीं शताब्दीके विद्वान् यति मदनकीर्तिने इस प्रतिमाका उल्लेख 'शासन चतुस्त्रिंशिका'में बड़े आदरके साथ इस प्रकार किया है।

पाताले परमादरेण परया भक्त्यार्चितो व्यन्तरै-
र्यो देवैरधिकं स तोषमगमत्कस्यापि पुंस: पुरा।
भूभृन्मध्यतलादुपर्यनुगत: श्रीपुष्पदन्त: प्रभु:
श्रीमत्पुष्पपुरे विभाति नगरे दिग्वाससां शासनम् ॥१२॥

अर्थात् जो पहले व्यन्तर देवोंके द्वारा पातालमें—अधोलोकमें बड़ी भक्तिसे पूजे गये, बादको पर्वतके मध्यतलसे ऊपर आनेपर किसी पुण्यात्मा पुरुषको बड़ा आनन्द हुआ और जो पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) में विराजमान हैं, वे श्री पुष्पदन्त भगवान् दिगम्बर शासनकी महिमा बढ़ावें।

यतिजीके उल्लेखसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उक्त मूर्ति यतिजीके समयमें पाटलिपुत्रमें विद्य-मान थी। अब वह मूर्ति वहाँ है या नहीं, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

सागवाड़ा (सागपत्तन) के रहनेवाले और भट्टारक सकलचन्द्रके शिष्य भट्टारक रत्नचन्द्रने सं. १६८३ में खण्डेलवाल वंशी हेमराज पाटनीकी प्रेरणासे सुभौम चक्रि चरित्रकी रचना की थी। आपने यह ग्रन्थ पाटलिपुत्र नगरमें गंगा तटपर अवस्थित सुदर्शन जिनालयमें बैठकर बनाया था। उस समय यहाँ बादशाह सलीम (जहाँगीर) का शासन था। "जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह"[1] में यह बात इस प्रकार वर्णित है—

पत्तने पाटलीपुत्रे मगधान्त:प्रवर्तनी।
स्वर्धुनीतटगे पार्श्वे सुदर्शनालयमाश्रिते ॥१२॥
सलेमसाहिसद्राज्ये सर्वम्लेच्छाधिपाधिपे।
रक्षत्यत्र धराचक्रं निर्जिताखिलविद्विषि ॥१३॥

१. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति-संग्रह, भाग १, पृ. ६२।

संघ-भेद और पाटलिपुत्र

जैन धर्म भगवान् महावीरके कालमें या उससे पहले किस नामसे पुकारा जाता था, इसका उत्तर हमें जैन, वैदिक और बौद्ध साहित्यका गहरा अध्ययन करनेपर मिल जाता है। प्राय: उसके लिए दो शब्दोंका प्रयोग मिलता है—श्रमण और निर्ग्रन्थ। इन दोनों शब्दोंमें भी श्रमण शब्द प्राचीन है। वाल्मीकि रामायण और महाभारतमें श्रमण शब्दका अनेक स्थलोंपर प्रयोग हुआ है। बौद्ध साहित्यमें निग्गंठ (निर्ग्रन्थ) शब्द जैन और जैन धर्मके लिए प्रयुक्त हुआ है। बौद्ध साहित्यमें जैन धर्मके लिए श्रमण शब्दका प्रयोग न करनेका कारण स्पष्ट है। बौद्ध धर्म भी श्रमण कहलाता है। किन्तु वैदिक साहित्यमें श्रमण शब्दका प्रयोग केवल जैन और जैन धर्मके लिए ही हुआ है क्योंकि उस कालमें बौद्ध धर्म था ही नहीं। वैदिक दार्शनिक ग्रन्थोंमें जैन धर्मके लिए एक तीसरा ही शब्द प्रयुक्त किया गया है। वह है आर्हत। श्रीमद्भागवतमें जैन शब्दका प्रयोग हुआ है। किन्तु इस ग्रन्थका रचना-काल सम्भवतः भगवान् महावीरके बादका है। भगवान् महावीरके समयसे जैन और जैन धर्मका प्रयोग खुलकर होने लगा।

आशय यह है कि जैन धर्म चाहे जिस नामसे पुकारा जाता रहा हो, किन्तु उसके साथ भगवान् महावीर और उनके पश्चात् होनेवाले केवलियों तक कोई विशेषण (जैसे दिगम्बर और श्वेताम्बर) नहीं लगाया जाता था क्योंकि तबतक जैन धर्म एक और अखण्ड था और भगवान् ऋषभदेवसे लेकर एक रूपमें परम्परासे चला आ रहा था। किन्तु एक और अखण्ड जैन धर्मके दो खण्ड अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुके समयमें या अवसानपर हुए, इस बातको दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराएँ स्वीकार करती हैं।

दिगम्बर परम्पराकी मान्यता है कि एक समय अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु अपने संघ सहित उज्जयिनी पधारे। वहाँ एक दिन वे एक गृहस्थके घरपर आहार लेनेवाले थे, तभी पालनेमें पड़ा एक बच्चा बोल उठा—"भद्रबाहु ! वापस जाओ।" यह सुनते ही भद्रबाहु अन्तराय जानकर लौट आये। उन्होंने संघको इकट्ठा किया और बोले—"बारह वर्ष तक घोर दुर्भिक्ष पड़नेवाला है। अतः अपने-अपने संघोंके साथ सबको ऐसे देशमें चला जाना चाहिए, जहाँ सुभिक्ष हो।" बहुत-से साधुओंने वहाँसे विहार कर दिया। आचार्य भद्रबाहु भी अपने १२००० शिष्योंके साथ विहार कर गये। उस समय मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त राजकार्यसे उज्जयिनी आये हुए थे। वे भी आचार्य भद्रबाहुसे इतने प्रभावित हुए कि उनसे मुनि-दीक्षा ले ली। उनका नाम विशाख रखा गया। वे भी भद्रबाहुके साथ चले गये। संघ विहार करता हुआ श्रवणबेलगोलकी चन्द्रगिरि पहाड़ीपर पहुँचा। वहाँसे आचार्यके आदेशानुसार अधिकांश संघ अन्य स्थानोंपर चला गया। मुनि विशाख अपने गुरुकी सेवामें रहे। वहीं गुरुने उन्हें सम्पूर्ण संघका आचार्यपद प्रदान किया और स्वयं वहींपर एक गुफामें समाधिमरण ले लिया। विशाखाचार्य अन्त तक उनकी सेवा करते रहे।[1]

जब दुर्भिक्ष समाप्त हो गया तो संघके कुछ साधु दक्षिणमें ही रह गये और कुछ उत्तर भारतमें लौट आये। किन्तु वहाँ आकर उन्होंने देखा कि दुर्भिक्षके समय जो साधु इधर रह गये थे, वे जैन आचार-विचारमें शिथिल हो गये हैं। वे वस्त्र भी धारण करने लगे हैं। उन निर्ग्रन्थोंने इन सग्रन्थ साधुओंको समझाया कि तीर्थंकरोंके मार्गके विरुद्ध आप लोगोंने यह स्वेच्छाचारिता किस कारण अपनायी है। भगवान् महावीरने तो जैन साधुके लिए निर्ग्रन्थ, नग्न रहना अनिवार्य

---

१. श्रवणबेलगोलके शिलालेख। देवसेन कृत भावसंग्रह। भट्टारक रत्ननन्दि कृत भद्रबाहु-चरित। हरिषेण कृत बृहत्कथाकोष।

बताया है। इसपर उन साधुओंने दुर्भिक्ष कालकी अपनी कठिनाइयों और मजबूरियोंको बताया, जिनके कारण उन्हें यह उन्मार्ग प्रवृत्ति करनी पड़ी। पश्चात् निर्ग्रन्थ मुनियोंके उपदेश और परामर्शसे उनमें-से अनेक साधुओंने प्रायश्चित्त लेकर दिगम्बर वेष धारण कर लिया। उन्हें जैन संघमें सम्मिलित कर लिया गया। किन्तु उन सग्रन्थ वेषधारी साधुओंमें ऐसे साधु भी कम नहीं थे जो हृदयसे दिगम्बरत्वको ही तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित मार्ग स्वीकार करते थे। किन्तु वर्षों तक वे जिस सुविधापरक जीवनके अभ्यस्त बन चुके थे, उसे त्याग कर दिगम्बर बननेका कठिन साधनामय मार्ग अपनानेका उन्हें साहस या रुचि नहीं हुई। साधुओंका यह दल जैन संघमें सम्मिलित नहीं किया गया। इस दलके नेता स्थूलभद्र थे, जो नन्दराजके मन्त्री शकटालके पुत्र कहे जाते हैं।

श्वेताम्बर साहित्यका अनुशीलन करनेसे यह पता चलता है कि प्रारम्भमें ये साधु वस्त्र धारण नहीं करते थे। बायें हाथमें एक वस्त्र-खण्ड या चोलपट्ट रखते थे। मथुरा-कंकाली टीलेसे एक शिलापट्ट कुषाण कालका (१-२ शताब्दीका) मिला है जो कण्हका शिलापट्ट कहलाता है। इस शिलापट्टके सम्बन्धमें लखनऊ संग्रहालय (जहाँपर यह शिलापट्ट विद्यमान है) के तत्कालीन क्यूरेटर प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. वासुदेवशरण अग्रवालने लिखा है—पट्टके ऊपरी भागमें स्तूपके दो ओर चार तीर्थंकर हैं, जिनमें-से तीसरे पार्श्वनाथ (सर्पफणालंकृत) और चौथे सम्भवतः भगवान् महावीर हैं। पहले दो ऋषभनाथ और नेमिनाथ हो सकते हैं। पर तीर्थंकर मूर्तियोंपर न कोई चिह्न है, न वस्त्र। पट्टमें नीचे एक स्त्री और उसके सामने एक नग्न श्रमण खुदा हुआ है। वह एक हाथमें सम्मार्जनी और बायें हाथमें एक कपड़ा लिये हुए है। शेष शरीर नग्न है।

श्वेताम्बराचार्य हरिभद्रके 'सम्बोध प्रकरण'से प्रकट होता है कि विक्रमकी ७वीं-८वीं शताब्दी तक श्वेताम्बर साधु भी मात्र एक कटिवस्त्र ही रखते थे। दिगम्बर साहित्यमें[2] 'अर्धफालक' सम्प्रदायका उल्लेख मिलता है। ऐसा लगता है कि जैन संघसे पृथक् होनेपर स्थूलभद्रके नेतृत्ववाले मुनियोंके दलने एकदम 'श्वेताम्बर' सम्प्रदायकी घोषणा नहीं की। किसी धार्मिक सम्प्रदायसे अलग होकर नया पन्थ या सम्प्रदायकी स्थापना करनेमें कुछ समय लगता है तथा जनमानसको अपने अनुकूल बनानेमें भी कुछ समय लग जाता है। अन्यथा जनता उन विचारोंको पचा नहीं पाती। स्थूलभद्र-जैसे चतुर मुनि ऐसी भूल नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने निर्ग्रन्थ जैन सम्प्रदायसे पृथक् होकर पहले जनताके मनोभावोंका अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि दुर्भिक्षके आपत्कालमें दिगम्बरत्वका अल्पकालके लिए (केवल भिक्षाके समयके लिए) त्याग कर एक वस्त्र-खण्ड स्वीकार करनेवाले मुनियोंको जनताने सहन कर लिया था। किन्तु उस अपवाद मार्गको सदाके लिए उत्सर्ग मार्ग घोषित नहीं किया जा सकता और मेरे मुनियोंमें इतनी त्याग-वृत्ति, शक्ति और धर्म-निष्ठा भी नहीं है कि वे सुविधाओंको छोड़कर दिगम्बरत्वके कृच्छ्र मार्गको स्वीकार कर लें। इसलिए वे वस्त्र-स्वीकारको अपवाद मार्ग बताकर जनताको अपने अनुकूल बनानेका प्रयत्न करते रहे। किन्तु सदाके लिए जनताको भुलावेमें नहीं रखा जा सकता था। अतः अपने सुविधा पोषक दलको एक धर्मसम्मत रूप देनेका प्रयत्न करने लगे। उनके समक्ष एक आदर्शके रूपमें बौद्ध सम्प्रदाय था। बुद्ध प्रारम्भमें पार्श्वापत्य सम्प्रदायमें दीक्षित हुए थे। वे नग्न रहते थे। जब उन्हें शीत, दंश-मशक आदिकी बाधा सहन नहीं हुई तो उन्होंने वस्त्र धारण कर लिये। तब उन्हें जैन

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १०, किरण २, पृ. ८० का फुटनोट। २. भट्टारक रत्ननन्दि कृत भद्रबाहु-चरित तथा हरिषेण कथाकोष।

संघने स्वीकार नहीं किया तो वे विभिन्न वेष और सम्प्रदायोंमें भटकते रहे किन्तु उनकी महत्त्वाकांक्षाको कहीं ठोस आधार न मिल पाया। तब एक दिन वे चिन्तामें बैठे हुए इन परिस्थितियोंपर विचार कर रहे थे। उनके मनमें एक निश्चयका प्रकाश कौंधा—"गौतम! तुझे अपने आपको बुद्ध घोषित करके अपना स्वतन्त्र मत, स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित करना है। तू किसी परम्परागत धर्म और सम्प्रदायका अनुगमन करनेके लिए पैदा नहीं हुआ।" यह विचार आते ही दृढ़ संकल्पके साथ उठे और उन्होंने अपना स्वतन्त्र मत प्रचारित किया।

स्थूलभद्रके मनमें भी कुछ ऐसी ही भावना और बोध हुआ। वे जैन धर्मको त्याग तो नहीं सके किन्तु उन्होंने जैन धर्मके नामपर अपने आचार-विचारोंको प्रचारित करनेका संकल्प कर लिया। इसको वैधानिक रूप देनेके लिए उन्होंने 'पाटलिपुत्र' में अपने दलके साधुओंका सम्मेलन आयोजित किया। उसमें अपने दलको एक सम्प्रदायका रूप देनेका निश्चय किया गया और उसके लिए कुछ नियम भी स्थिर किये गये। सम्मेलनके इस कार्यको 'महावीर-वाणी'की 'प्रथम वाचना'[1] यह संज्ञा दी गयी।

इस सम्बन्धमें आचार्य हेमचन्द्र कृत परिशिष्ट पर्वमें यह उल्लेख मिलता है—

इतश्च तस्मिन् दुष्काले कराले कालरात्रिवत्।
निर्वाहार्थं साधुसंघस्तीरं नीरनिधेर्ययौ ॥९।५५॥
अगुण्यमानं तु तदा साधूनां विस्मृतं श्रुतम्।
अनभ्यसनतो नश्यत्यधीतं धीयतामपि ॥९।५६॥
सङ्घोऽथ पाटलीपुत्रे दुष्कालान्तेऽखिलोऽमिलत्।
यदङ्गाध्ययनोद्देशाद्यासीद्यस्य तदाददे ॥९।५७॥

अर्थात् उस भीषण दुष्कालके समय साधु-संघ समुद्र-तटपर चला गया। पारायण न करनेके कारण साधुओंको शास्त्रोंका ज्ञान नहीं रहा। क्योंकि अभ्यास न करनेसे बड़े-बड़े विद्वान् भी पढ़ा हुआ भूल जाते हैं। तब दुष्काल समाप्त होनेपर सारा संघ पाटलिपुत्रमें मिला, जिससे जिसको अंगोंका जो ज्ञान हो, उसका अध्ययन किया जा सके।

इसी प्रकरणमें आगे बताया है कि "ग्यारह अंगोंका संकलन तो कर लिया। उस समय भद्रबाहु नैपाल देशके मार्गमें कहीं थे। उन्हें बुलानेके लिए दो मुनियोंको भेजा गया। किन्तु भद्रबाहुने कह दिया कि इस समय वह महाप्राण ध्यानका साधन कर रहे हैं। अतः आनेमें असमर्थ हैं। तब संघने फिर दो मुनियोंको भेजा और आदेश दिया, 'अगर तुम नहीं आओगे तो तुम्हें संघसे निकाल दिया जायेगा।' तब भद्रबाहुने उनसे कहा कि 'संघ कुछ बुद्धिमान् साधुओंको मेरे पास भेज दे। मैं उन्हें दिनमें नित्य सात बार दृष्टिवाद अंगका ज्ञान दूँगा।' संघने पाँच सौ साधु भेजे। किन्तु कुछ दिन बाद सब साधु वापस चले आये। केवल स्थूलभद्र वहाँ रह गये। उन्होंने आठ वर्ष तक आठ पूर्वोंका अध्ययन किया और ध्यान साधना समाप्त होनेपर दो पूर्वोंका ज्ञान लिया। इस प्रकार कुल दस पूर्वोंका ज्ञान स्थूलभद्रको प्राप्त हुआ।"

इस कथाका कोई ऐतिहासिक आधार है, ऐसा प्रयत्न करनेपर भी ज्ञात नहीं हो सका। जबकि भद्रबाहु श्रुतकेवलीके दक्षिणमें जाने, सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वारा उनके पास दीक्षा लेने और श्रवणबेलगोलमें आचार्यके समाधिमरण लेनेके सम्बन्धमें अनेक शिलालेख मिलते हैं, ऐतिहासिक

---

१. 'पाटलिपुत्र-वाचना'का वर्णन तित्थोगाली पइन्नामें मिलता है।

प्रमाण भी मिलते हैं। तमिल देश और कर्नाटक देशमें इसके पश्चाद्वर्ती कालमें अनेक प्रकाण्ड विद्वान् मूर्धन्य आचार्य हुए, जैन धर्मका जनसाधारण और राजकुलोंमें व्यापक प्रचार हुआ। इन सबसे यह सहज विश्वास हो जाता है कि श्रुतकेवली भद्रबाहु दक्षिणमें गये। उनके साथके साधुओंको श्रुतकेवलीके सान्निध्य और ज्ञानका लाभ बराबर मिलता रहा।

इसके विपरीत परिशिष्ट पर्व तथा अन्य ग्रन्थोंकी इससे सम्बन्धित कथा इतिहास-विरुद्ध तो प्रतीत होती ही है, उसका सारा ढांचा भी कल्पना-प्रसूत लगता है। आगम-संकलनके लिए साधुओंका सम्मेलन हुआ किन्तु श्रुतकेवली उसमें नहीं गये।[1] जब श्रुतकेवलीने आनेमें असमर्थता प्रकट की तो उन्हें संघबाह्य करनेकी धमकी दी गयी।[2] क्या यह सम्भव नहीं हो सकता था कि साधु-सम्मेलनका आयोजन श्रुतकेवलीकी छत्रछायामें किया जाता। आखिर बादमें भी तो पाँच सौ साधुओंको उनके पास भेजा गया। किन्तु साधु-चर्याके विरुद्ध सुविधाओंके वे इतने अभ्यस्त बन गये थे कि श्रुतकेवलीके पास ठहर नहीं पाये। केवल स्थूलभद्र ही वहाँ टिके।

इस कहानीकी कल्पनाका केवल एक ही उद्देश्य हो सकता था कि स्थूलभद्रको द्वादशांगका वेत्ता करार दिया जा सके, जिससे जैन धर्मकी मूल परम्पराके प्रति उनके विद्रोहकी उपेक्षा की जा सके।

ये प्रयत्न अपने शिथिलाचार और उन्मार्ग प्रवृत्तिको धर्मसम्मत करार देनेके लिए किये गये। किन्तु उस पाटलिपुत्र-सम्मेलनमें श्वेताम्बर सम्प्रदायकी स्थापना घोषित नहीं की गयी। 'हम भी जैन हैं, हम भी महावीरके धर्मके अनुयायी हैं' बस इसके लिए ही दौड़धूप होती रही। सच तो यह है कि तपप्रधान धर्ममें सुविधाओं और आशाइशोंके अभिलाषी एक बार इनके अभ्यस्त होनेपर अधिक सुविधाओं और आशाइशोंका मार्ग तलाश करते हैं। प्रारम्भमें वस्त्रखण्ड या चोलपट्ट नग्नता ढँकनेके लिए रखा गया, वह भी भिक्षाके समय। शेष समय नग्न रहते थे। श्रावकके घरपर अनुद्दिष्ट आहारको त्याग कर उपाश्रयमें लाने और आहारके लिए पात्र रखनेकी छूट कर ली। कुत्ते भगानेके लिए एक दण्ड रखनेकी भी सुविधा मिल गयी। धीरे-धीरे सुविधाओंने पैर पसारना प्रारम्भ कर दिया। सर्दी मिटानेके लिए तीन वस्त्रोंका विधान हो गया, किन्तु शर्तके साथ कि शीत ऋतु समाप्त होनेपर वस्त्रोंका उपयोग नहीं किया जायेगा। इसी अनुपातमें पात्र भी बढ़े। धीरे-धीरे अचेलक शब्दका भी अर्थ बदला। उसका अर्थ किया गया—ईषत् चेल अर्थात् थोड़े कपड़े। फिर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, वस्त्रों और पात्रोंकी सीमा और अन्य सुविधाएँ बढ़ती गयीं। फिर नग्नताका प्रश्न ही नहीं रहा, बल्कि नग्नताको जिनकल्पका चिह्न बताकर और पंचम कालमें जिनकल्पकी व्युच्छित्ति बताकर नग्न दिगम्बर वेषको महावीरकी आज्ञाके विपरीत वेष करार दे दिया। जिन्होंने जैन संघसे अलग होनेपर यह अपेक्षा की थी कि 'हमें भी महावीरका अनुयायी मान लिया जाये, हम भी अचेलक हैं'। वे अनेक ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्रों, काष्ठपात्रों और अन्य जीवनोपयोगी सुविधाओंको जुटाकर कहने लगे कि 'हम ही जैन हैं, केवल मात्र हम ही महावीरके अनुयायी हैं।'

१. डॉ. हर्मन जैकोबीने इस वाचनाके बारेमें लिखा है कि—"पाटलिपुत्र नगरमें जैन संघने जो अंग संकलित किये थे, वे केवल श्वेताम्बर सम्प्रदायके ही थे, समस्त जैन संघके नहीं थे क्योंकि उस जैन संघमें भद्रबाहु सम्मिलित नहीं थे।" —Sacred Books of the East. Vol. 22, Introduction, p. 43

२. तित्थोगाली पइन्नय, गाथा ७३०-७३३।

इसके लिए उन्होंने प्राचीन अंगोंका नाम रखकर नवीन शास्त्रोंकी रचना की। देवमूर्तियों-को भी, जो नग्न हो बनती थीं, (क्योंकि सभी प्राचीन जैन मूर्तियाँ नग्न ही मिलती हैं) पहले वस्त्रके चिह्न (कंडोरा) से रूप परिवर्तन किया गया। इस तरह परिवर्तनकी यह प्रक्रिया विकसित होते-होते इस सीमा तक जा पहुँची कि निर्ग्रन्थ कही जानेवाली वीतराग मूर्तियोंके ऊपर राजसी वस्त्राभूषण—किरीट, कुण्डल, हार, केयूर आदिका परिग्रह एकत्रित हो गया।

इतिहास और श्वेताम्बर आगमोंके अनुसार भी 'श्वेताम्बर' इस शब्दका प्रयोग छठी शताब्दीके बादसे ही आरम्भ हुआ। इससे पहले इस शब्दका प्रयोग करनेमें कुछ हिचक प्रतीत होती रही, ऐसा लगता है। इस शब्दका जैन धर्मके साथ प्रयोग होते ही भगवान् ऋषभदेवके कालसे लेकर चली आ रही अखण्ड जैन परम्परा खण्डित हो गयी। जैन धर्म, जैन साहित्य, जैन चैत्य और जैन चैत्यालयको जानने-समझनेके लिए उनके साथ विशेषण लगाना अनिवार्य हो गया।

पाटलिपुत्र-वाचनाके पश्चात् श्वेताम्बरोंकी द्वितीय वाचना महावीर निर्वाण सं. ८४० में स्कन्दिलाचार्यकी अध्यक्षतामें मथुरामें हुई। कुछ श्वेताम्बर ग्रन्थोंसे[1] यह भी सूचना मिलती है कि माथुरी-वाचनाके समयमें ही वलभीमें भी नागार्जुन सूरिकी अध्यक्षतामें एक वाचना हुई थी। किन्तु इन तीनों वाचनाओंमें जो कुछ जिसे स्मरण था, वह मौखिक संकलन कर लिया गया, किन्तु उसे पुस्तकारूढ़ नहीं किया गया। फिर वीर नि. सं. ९८० में वलभीमें देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमणने बचे हुए सब साधुओंको वलभीमें बुलाया और उनके मुखसे विच्छिन्न होनेसे अवशिष्ट रहे कमती-बढ़ती, त्रुटित-अत्रुटित आगम पाठोंको अपनी बुद्धिके क्रमानुसार संकलित करके पुस्तकारूढ़ किया। इस तरह यद्यपि मूलमें सूत्र गणधरोंके द्वारा गूँथे गये थे, तथापि देवर्द्धिके द्वारा पुनः संकलित किये जानेसे देवर्द्धि गणि क्षमा-श्रमण ही सब आगमोंके कर्ता[3] हुए।

वस्तुतः वीर नि. सं. ९८० में श्वेताम्बर आगमों का निर्माण हुआ था और इसके कर्ता देवर्द्धि गणि थे। इस कार्यमें अन्य साधुओंसे भी सहायता ली गयी थी।

इस प्रकार पाटलिपुत्रमें आपत्ति कालमें अपवाद मार्गके रूपमें जिस वस्त्र और पात्रको कुछ साधुओंने स्वीकार किया था, वलभीके सम्मेलनमें उसे उत्सर्ग मार्ग घोषित कर दिया और श्वेताम्बर मत या सम्प्रदायका भवन खड़ा कर दिया। इन वाचनाओंके समय ही आपत्ति कालके समय ग्रहण किये गये वस्त्र-खण्ड सम्बन्धी शिथिलाचारको सार्वकालिक और जैन परम्परामान्य सिद्ध करनेके लिए बड़े भारी उलटफेर करने पड़े। मसलन जब वे वस्त्र सम्बन्धी सुविधाके अभ्यस्त हो गये तो यह भी मानना लाजिमी था कि वस्त्रकी सुविधा भोगते हुए भी मुक्ति होती है। जब सवस्त्र मुनिको मुक्ति हो सकती है तो बेचारी आर्यिकाने ही क्या कसूर किया है कि उसे मुक्तिसे वंचित रखा जाये। इसके लिए यह भी आवश्यक हो गया कि किसी तीर्थंकरको स्त्री बनाकर पेश किया जाये। बहुत सोच-विचारकर मल्लिनाथमें-से नाथ तोड़कर कुमारी जोड़ दिया गया। किन्तु यह काम समझदारीका नहीं हो पाया, जब स्वयं ही यह अनुभव हुआ तो सारे तीर्थंकरोंके ऊपर इन्द्र द्वारा दिया हुआ वस्त्र (देवदूष्य) डालकर उन्हें प्रकारान्तरसे सवस्त्र सिद्ध करनेकी कोशिश की गयी। एक प्रयत्न यह भी हुआ कि महावीरको भले ही देवदूष्य वस्त्र अलग होनेपर नग्न स्वीकार करना पड़ा हो, किन्तु कमसे कम पूर्वके तीर्थंकरोंको सवस्त्र साबित कर दिया जाये। इसके

---

१. जिनदास महत्तर कृत नन्दिचूर्णि। २. मलयगिरि कृत ज्योतिष्करण्ड टीका, भद्रेश्वर कृत कथावली।
३. समयसुन्दर गणि कृत 'समाचारी शतक।'

लिए 'केशी-गौतम संवाद'-जैसी अनर्गल कथाओंका सोच-समझकर सृजन किया गया। फिर इनका ध्यान भगवानोंकी ओर गया। जब साधुओंको लज्जा, भय, शीत, दंश-मशक आदिसे त्राण मिल गया, वस्त्र और पात्रोंकी सीमा भी समाप्त हो गयी, सुई-धागा रखने, वस्त्र धोने आदि की आज्ञा मिल गयी तो इन्होंने वीतराग भगवानोंके लिए भोजन करनेकी छूट दे दी, त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरों-के योग-क्षेमके लिए उन्हें त्याग (दिगम्बरत्व) की उपाधिसे मुक्ति देकर भोग (वस्त्रालंकार) के लिए स्वर्ण-रत्न मण्डित कर दिया।

श्वेताम्बर परम्पराके आगम ग्रन्थोंकी शैली, तीन वाचनाएँ और दिगम्बरत्वका त्याग कर एक वस्त्रखण्डसे प्रारम्भ किये गये शिथिलाचारकी परिणति साधुके लिए असीम सुविधाओंकी प्राप्तिमें होना ये सब घटनाएँ बौद्ध परम्परासे जितनी मिलती हैं, वे आकस्मिक संयोग नहीं कही जा सकतीं।

यहाँ हमें सुविधाके लिए बौद्ध धर्मकी संगीतियोंपर एक दृष्टि डाल लेना रुचिकर होगा। बुद्धके निर्वाणके बाद उनके शिष्योंने उसी वर्ष राजगृहमें (सप्तपर्णी गुफामें) एकत्र हो 'धर्म' और 'विनय' का संगायन किया। इसीको प्रथम संगीति कहा जाता है। प्रथम संगीतिके सौ वर्ष बाद वैशालीमें फिर भिक्षु संघने एकत्रित होकर संगायन किया। इसको द्वितीय संगीति कहा जाता है। कितने ही भिक्षु इस संगीतिसे सहमत नहीं हुए और उन्होंने अपने संघका कौशाम्बीमें प्रथम सम्मेलन किया। संघके स्थविरोंका अनुगमन करनेवाला होनेसे पहला समुदाय आर्यस्थविर या स्थविरवादके नामसे प्रसिद्ध हुआ और दूसरा महासांघिक। इनमें भी भेद-प्रभेद हो गये। आर्य-स्थविरवादसे ११ और महासांघिकसे ७ निकाय फूटे। फिर बुद्ध-निर्वाणसे सवा दो सौ वर्ष बाद सम्राट् अशोकके शासन कालमें आर्यस्थविरोंके संघ-स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्सने पाटलिपुत्रके अशोकाराममें १००० भिक्षुओंका सम्मेलन करके धर्म और विनयका संगायन किया। यही तृतीय संगीतिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी समय आर्यस्थविरोंसे निकले सर्वास्तिवाद आदि ग्यारह निकायोंने नालन्दामें अपनी पृथक् संगीति की। ईसाकी प्रथम शताब्दीमें लंकामें सूत्र, विनय और अभिधर्म ये तीनों पिटक लेखबद्ध किये गये। ये ही आजकल पाली त्रिपिटक कहलाते हैं। धीरे-धीरे समयके अनुसार सुविधाओंकी लालसा बढ़ने लगी और सुविधाएँ बुद्धके नामपर, उनके उपदेश और सिद्धान्तोंके नामपर ही जुटायी जा सकती थीं, तभी जनताका समर्थन मिल सकता था। पहले बौद्ध धर्म महायान और हीनयान इन दो सम्प्रदायोंमें विभक्त हुआ था। फिर वज्रयान निकला, जिसे सहजयान भी कहा जाता है।

बुद्धने प्रारम्भमें अपने भिक्षुओंके लिए मार्गमें फेंके गये चिथड़े धारण करनेकी आज्ञा दी थी। सब पांसुकूलिक (चिथड़ेधारी) ही रहते थे। अट्ठकथामें लिखा है कि बुद्धके बुद्धत्व-प्राप्तिके बीस वर्ष तक किसीने गृहपति चीवर धारण नहीं किया। किन्तु जीवक कौमार भृत्यकी प्रार्थनापर ही बुद्धने गृहपति चीवर और कम्बलकी आज्ञा दी थी। फिर तो चीवरोंकी बाढ़ आ गयी। संग्रह-वृत्ति बढ़ने लगी। विहारोंमें चीवरोंके भण्डार बन गये। फिर तो वेषके अतिरिक्त और कोई अन्तर भिक्षु और गृहस्थोंमें नहीं रह गया।

लगता है, बौद्ध धर्मकी इन घटनाओंका प्रभाव श्वेताम्बर सम्प्रदायपर भी पड़ा। प्रारम्भमें दोनोंका कार्यक्षेत्र भी प्रायः समान ही रहा—पाटलिपुत्र, मथुरा, उज्जयिनी। फिर दोनोंकी स्थितियाँ भी प्रायः मिलती-जुलती थीं। बुद्ध भी पहले नग्न दिगम्बर मुनि थे। किन्तु दिगम्बरत्वके कष्टोंसे ऊबकर ही उन्होंने वस्त्र धारण किये थे। स्थूलभद्र और उनके संगी साथी साधु भी पहले भगवान् महावीरकी दिगम्बर परम्पराके ही साधु थे। परिस्थितिवश उन्हें वस्त्र धारण करने पड़े।

बारह वर्ष तक वस्त्र पहनने और अपने निवास-स्थानपर लाकर भोजन करनेकी सुविधाका भोग करते हुए वे उन सुविधाओंके अभ्यस्त बन गये थे। इसलिए दक्षिणसे जब मुनिसंघ लौटा और उसने इन साधुओंको समझाया तो उनको वे सुविधाएँ त्यागना कष्टकर प्रतीत हुआ और आपत्कालके पश्चात् भी उन साधुओंओंके अभोग्य सुख-सुविधाओंका भोग करते हुए जनतासे साधुत्वकी स्वीकृति पाना भी आवश्यक था। अतः (श्वेताम्बरोंकी मान्यतानुसार) श्रुतकेवली भद्रबाहुके जीवित रहनेपर भी साधु सम्मेलन करना और उसमें उन्हें न बुलाना तथा महावीरकी द्वादशांगवाणीका संकलन करनेका अभिनय करना अपने सुखशील साधु-वर्गके साधुत्वको जनतासे मनवानेका प्रयत्न-भर था। इन साधुओंने बौद्ध-सम्मेलनोंके समान ही अपने सम्मेलन बुलाकर वाचनाएँ कीं। त्रिपिटकोंकी शैलीके अनुकरणपर ही आगमोंकी रचना की। फिर छठी शताब्दीमें, जब सर्वप्रथम 'आवश्यक चूर्णि' में श्वेताम्बर मतका स्पष्ट उल्लेख हुआ, तबसे तो श्वेताम्बर आचार्योंने जैनोंकी मूल निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) परम्पराका विरोध करना और अपने सुविधाशील मतको सीधे महावीर और उनसे पूर्वके तीर्थंकरोंके साथ जोड़नेका प्रयत्न करना मानो अपना आवश्यक कर्तव्य बना लिया।

क्षेत्रकी वर्तमान स्थिति

सुदर्शन मुनिकी टेकरी—पटना शहरमें गुलजारबाग स्टेशनके निकट ही दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशाला है। मन्दिर छोटा है किन्तु सुन्दर है और धर्मशालाके बीचोंबीच बना हुआ है। इसमें भगवान् नेमिनाथकी तीन फुटकी कृष्ण वर्ण पद्मासन प्रतिमा है जो सं. १९४०में प्रतिष्ठित हुई है। मूलनायकके अतिरिक्त छह धातु-प्रतिमाएँ हैं। इनमें एक चौबीसी है और एक खड्गासन प्रतिमा सुदर्शन स्वामीकी है। इन प्रतिमाओंमें एक सं. १६२९ तथा दूसरी सं. १७०० की है। बीचमें सुदर्शन मुनिके चरण विराजमान हैं। मन्दिर शिखरबद्ध है। धर्मशालामें कुल १४ कमरे हैं, १० नीचे ४ ऊपर। इसका प्रबन्ध पहले छपराके दिगम्बर जैन बन्धु करते थे। बादमें पटनाके श्री कन्हैयालालजीके सुपुर्द यहाँकी व्यवस्था कर दी गयी। सन् १९२० में इसका प्रबन्ध भा. दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बईके सुपुर्द कर दिया गया। तबसे मन्दिर और धर्मशाला दोनोंका ही विकास हुआ है।

इस समय पटनामें कुल मिलाकर ५ मन्दिर और १ चैत्यालय है।

इस मन्दिरके निकट ही सड़कके दूसरी ओर तथा रेलवे लाइनके दक्षिणकी ओर बेरके पेड़ोंके बीचमें (सड़कसे लगभग १ फर्लांग दूर) सुदर्शन मुनिकी टेकरी है, जिसमें उनके चरण विराजमान हैं। जो श्याम पाषाणके ८ अंगुल प्रमाण हैं। टेकरीके चारों ओर चार तालाब हैं। उद्यानके दूसरे सिरेपर तालाबके किनारे ऊपर छतपर स्थूलभद्र मुनिके श्वेत चरण एक कमरेमें विराजमान हैं। इनके दोनों ओर सं. १८४८ का प्रतिष्ठा-लेख अंकित है। दोनों टेकरियोंके बीचमें कमलदह तालाब है। इसमें कमल खिले रहते हैं, अतः तालाबका नाम कमलदह कहलाता है।

पाटलिपुत्रका ऐतिहासिक महत्त्व

मगधनरेश बिम्बसार श्रेणिकके पुत्र अजातशत्रुने वैशालीके वज्जियोंके आक्रमणसे बचावके लिए गंगा और सोनके संगमपर ई. पूर्व ४८० में अपने मन्त्री सुनीथ और वर्षकारको[1] भेजकर

---

१. महावग्ग, भाग ६, अध्याय २८।

किला बनवाया। जिस प्रकार श्रेणिककी मृत्यु होनेपर पितृशोकके कारण अजातशत्रुने अपनी राजधानी राजगृहसे हटाकर चम्पाको बना लिया था, इसी प्रकार अजातशत्रुका देहान्त होनेपर उसके पुत्र[1] उदयन (उदयाश्व) ने पाटलिपुत्र नगरका निर्माण करके उसे अपनी राजधानी बनाया।

ई. सन् ७५० में गंगा और सोनकी भीषण बाढ़के फलस्वरूप प्राचीन पाटलिपुत्रका अधिकांश भाग नष्ट हो गया। बहुत थोड़ा भाग ही बच पाया था।

नन्द और मौर्य वंशके प्रतापी सम्राटोंने इसे अपनी राजधानी बनाकर भारतपर शासन किया। यूनानी राजदूत मैगस्थनीज मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त (ई. पू. ३२१ से २९७) के दरबारमें आया था। उसके अनुसार उस समय इस नगरका विस्तार दस मील लम्बा तथा दो मील चौड़ा था। शहरके चारों ओर चहारदीवारी थी जिसके ऊपर ५७० रक्षाकक्ष और चौसठ दरवाजे थे। अर्थात् शहरका कुल घेरा साढ़े तेईस मील था। जब चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग (ई. ६३७) यहाँ आया, उस समय प्राचीन नगर खण्डहर बन चुका था और इसके निकट नया नगर बन गया था। जब फाह्यान आया, तब पाटलिपुत्र दक्षिणकी ओर गंगासे सात मील दूर था।

गुप्त वंशने भी पाटलिपुत्रको ही अपनी राजधानी रखा। गुप्त वंशके अन्तिम सम्राट् कुमारगुप्त द्वितीयको हराकर उसका सेनापति विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) राजा बन गया। उसने सन् ९३० में पाटलिपुत्रसे हटाकर कन्नौजको अपनी राजधानी बनाया। इसके पश्चात् पाटलिपुत्रका महत्त्व और वैभव कम होता गया। ह्वेन्त्सांगके समयमें तो यह साधारण गाँव रह गया था।

अशोकके सम्बन्धमें कहा जाता है कि उसने एक अगम कुआँ बनवाया जिसमें मारकर अपने भाइयोंको डाल दिया था। वह कमलडोह या कमलदहके पास लगभग दो फर्लांगपर अब भी विद्यमान है। अपने शासनके सत्रहवें वर्ष अशोकने यहाँ बौद्ध संगीति करायी थी। सिखोंके दसवें गुरु गोविन्द सिंहका जन्म-स्थान यहींपर है। पटना सिटीमें जन्म-स्थानपर दर्शनीय विशाल गुरुद्वारा बना हुआ है।

इस प्रकार पाटलिपुत्र राजनैतिक और धार्मिक सभी दृष्टियोंसे महान् केन्द्र रहा है।

पटना संग्रहालय

पटनामें कई संग्रहालय हैं—(१) स्टेट म्यूजियम, (२) जालान संग्रहालय, तथा (३) कानोडिया संग्रहालय। इनमें प्रथम सरकारी है तथा अन्य दो व्यक्तिगत हैं। तीनों संग्रहालयोंका विवरण इस प्रकार है—

(१) स्टेट म्यूजियम

स्टेट म्यूजियम पटनाकी गणना भारतके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संग्रहालयोंमें की जाती है। यहाँ अत्यन्त दुर्लभ कलाकृतियाँ संग्रहीत हैं। इन कलाकृतियोंमें भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं मौर्ययुगकी पाषाण मूर्तियाँ तथा चौसासे प्राप्त धातु मूर्तियाँ। पुरातत्त्ववेत्ताओंके मतानुसार ये मूर्तियाँ भारतमें उपलब्ध मूर्तियोंमें प्राचीनतम हैं। यद्यपि इस संग्रहालयमें मूर्तियोंका विशाल संग्रह किया गया है, किन्तु उनमें जैन मूर्तियाँ संख्यामें अत्यल्प हैं। दूसरी ओर जैन मूर्तियाँ ही भारतमें ज्ञात मूर्तियोंमें सर्वाधिक प्राचीन हैं। बौद्ध और हिन्दू मूर्तियाँ पश्चात्कालकी हैं तथा वे जैन मूर्तियोंके अनुकरण

---

१. सम्पन्न फालसुत्तके अनुसार पुत्र। विष्णु पुराण ४।२४ के अनुसार पौत्र। जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी बंगाल १९१३, पृ. २५० के अनुसार वह दर्शकका पुत्र और अजातशत्रुका पौत्र था।

पर ही बनायी गयीं। पटनाके लोहानीपुरी मुहल्लेमें मौर्ययुगकी खण्डित जैन मूर्तिकी प्राप्तिसे मूर्तिकलाका इतिहास ही बदल गया। यह एक संयोग ही कहना होगा कि हड़प्पामें जो जिन मूर्तिका कबन्ध मिला था, बिलकुल वैसा ही कबन्ध लोहानीपुरमें मिला। इसकी ओपदार पालिशसे यह सुनिश्चित किया गया कि यह मूर्ति ईसापूर्व ३२०-१८५ की है। अन्यथा दोनों मूर्तियोंमें देखनेमें कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।

इस संग्रहालयमें पाषाणकी निम्नलिखित जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं—

१. मूर्तिका सिर	मौर्य कालीन	लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त
२. सिर रहित धड़, घुटनों और बाँहोंसे खण्डित	,,	,,
३ सिंहमस्तक	,,	मसाढ़ (शाहाबाद)से प्राप्त
४. चमर ग्राहिणी यक्षी	,,	दीदारगंज (पटना सिटी) से प्राप्त

५. तीर्थंकर मूर्ति पद्मासन ईसाकी दूसरी शताब्दी
६. चतुर्भुजी देवी, गोदमें बालक है
७. तीर्थंकर प्रतिमा-पद्मासन
८. नवग्रह
९. तीर्थंकर प्रतिमा-खड्गासन
१०. तीर्थंकर प्रतिमा पद्मासन
११. चौबीस तीर्थंकरोंकी मूर्ति
१२. तीर्थंकर प्रतिमा-पद्मासन
१३. तीर्थंकर प्रतिमा-खड्गासन
१४. चौबीस तीर्थंकर मूर्ति
१५. धर्मचक्र
१६. सिंह स्तम्भ
१७. अभय मुद्रामें यक्ष-मूर्ति शीर्षपर तीर्थंकर प्रतिमा
१८. दरवाजा ८वीं शताब्दी उदयगिरिसे प्राप्त

इनके अतिरिक्त धातुकी २१ जैन प्रतिमाएँ यहाँ सुरक्षित हैं।

(२) जालान-संग्रहालय

पटना सिटीमें गंगाके तट पर स्व० सेठ राधाकृष्णजी जालान द्वारा स्थापित व्यक्तिगत कला-संग्रह है। स्वर्गीय जालान परिष्कृत रुचि सम्पन्न और कलामर्मज्ञ व्यक्ति थे। ऐतिहासिक और कलात्मक वस्तुओंके संग्रह करनेका उन्हें बेहद शौक था। उन्होंने शेरशाह सूरिका किला खरीदकर उसमें अपने रहनेके लिए कोठी बनवायी और उसमें नैपाल, तिब्बत, चीन, जापान, पैरिस, स्विटजरलैण्ड आदिसे काँच, चीनी, हाथी दाँत, स्फटिक, चाँदी, सोने आदिकी कलात्मक वस्तुएँ, पाषाण एवं धातुकी प्रतिमाएँ, हस्तलिखित ग्रन्थ, राजाओं और बादशाहोंके पलंग, सोफासैट, तलवारें, हाथीदाँतकी पालकी आदि अनेक वस्तुओंका संग्रह किया। वास्तवमें उन्होंने इस कला-संग्रहालयको अत्यन्त समृद्ध बनाया है।

इस संग्रहालयमें कुछ जैन कला वस्तुएँ भी हैं। उनमें ७३ पाषाणकी और ४ धातुकी मूर्तियाँ हैं तथा सचित्र हस्तलिखित शास्त्र हैं। मूर्तियोंका विवरण इस प्रकार है—

१. भगवान् चन्द्रप्रभकी पद्मासन पाषाण प्रतिमा। आकार दस इंच। संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित।

२. पंच बालयतिकी धातु प्रतिमा। मध्यमें स्वस्तिक है तथा एक पद्मासन प्रतिमा है। नीचेके भागमें दो खड्गासन तथा ऊपरके भागमें दो पद्मासन प्रतिमा हैं। खड्गासन मूर्तियोंके इधर-उधर चमरवाहक हैं। ऊपरकी ओर दो हाथी, छत्र, शिखर, दो सिंह, यक्ष-यक्षी हैं। यह संवत् १५२० में प्रतिष्ठित हुई है।

३. आसनसहित सात अंगुलकी धातु प्रतिमा पद्मासनमें। ऊपर छत्र नीचे यक्ष-यक्षी।

४. आसन सहित छह अंगुलकी धातुकी पार्श्वनाथ प्रतिमा। नीचे दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। मुख घिसा हुआ है। इसके परिकरमें दो चमरवाहक, ऊपर दो दुन्दुभि वादक, दो गज और तीन छत्र हैं।

५. पंच बालयतिकी धातु प्रतिमा। मध्यमें एक तीर्थंकर प्रतिमा पद्मासनमें। ऊपरके भागमें दो पद्मासन और नीचेके भागमें दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।

६. एक पाषाण-फलकमें सामनेके भागमें १९ मूर्तियाँ हैं। दायीं ओर की चौड़ाईमें ८ प्रतिमाएँ हैं। फलक खण्डित है।

७. एक पाषाण फलकमें ६४ पद्मासन प्रतिमाएँ चार पंक्तियोंमें विराजमान हैं।

हस्तलिखित ग्रन्थोंमें जिननामचरितम्, कल्पसूत्र, कालकाचार्य कथानक ग्रन्थ हैं। ये कुल ७ ग्रन्थ हैं और सभी १५वीं शताब्दीके लिखे हुए हैं। अधिकांशतः ये ग्रन्थ स्वर्णाक्षरोंमें लिखित हैं। सभी ग्रन्थ सचित्र हैं। चित्र प्राचीन पद्धतिके हैं। लेखनको शैली अत्यन्त कलापूर्ण है।

(३) कानोडिया संग्रहालय

यह संग्रहालय श्रीगोपीकृष्ण कानोडियाका व्यक्तिगत है। यह फ्रेजर रोड स्थित उदय भवनमें अवस्थित है। श्रीकानोडिया सम्पन्न व्यक्ति हैं, उन्हें कला सामग्रीके संग्रह करनेका शौक है। अपनी रुचिके अनुसार उन्होंने संग्रह भी किया है, किन्तु वे भीरु स्वभावके व्यक्ति हैं। अतः अपना संग्रह किसीको दिखानेमें उन्हें भय लगता है।

उनकी कृपासे हमें पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी एक प्राचीन कलापूर्ण प्रतिमाको देखनेका अवसर मिला। यह प्रतिमा एक टिन शैडमें रखी हुई है। यह भूरे पाषाणकी प्रतिमा कायोत्सर्गासनमें साढ़े पाँच फुट ऊँची है। इसके सिर पर सप्त फणावलि सुशोभित है। चरणोंके दोनों पार्श्वोंमें एक-एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति विराजमान है। उनसे ऊपर दोनों ओर चमरेन्द्र चमर लिये हुए खड़े हैं। एक ओरका चमरेन्द्र तो बिलकुल नहीं रहा तथा दूसरा भी छातीके ऊपरी भागसे खण्डित है। बायीं मूर्तिके ऊपर पाषाण फलकका भाग बिलकुल भग्न हो गया है।

इस भव्य मूर्तिका निर्माण-काल ईसाकी तृतीय शताब्दी है।

●

भंगि जनपद

सम्मेदशिखर

भद्रिकापुरी और कुलुहा पहाड़

बिहार बंगाल और उड़ीसा के जैनतीर्थ
भंगि जनपद
(सम्मेदशिखर, भद्रिकापुरी, कोल्हुआपहाड़)

संकेत

राज्य की सीमा
जिले की सीमा
नदियाँ
रेलमार्ग
राष्ट्रीय मार्ग
अन्य मार्ग
कच्चा मार्ग
जैन तीर्थ स्थान
जिले की राजधानी
अन्य नगर

भंगी जनपद

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बंबई

१. भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

२. इस मानचित्र में दिये गये नामों का अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रों से लिया गया है।

श्री सम्मेदशिखर

महान् सिद्धक्षेत्र

श्री सम्मेदशिखर सम्पूर्ण तीर्थक्षेत्रोंमें सर्वप्रमुख तीर्थक्षेत्र है। इसीलिए इसे तीर्थराज कहा जाता है। इसकी भाव सहित वन्दना-यात्रा करनेसे कोटि-कोटि जन्मोंसे संचित कर्मोंका नाश हो जाता है। निर्वाण क्षेत्र-पूजामें कविवर द्यानतरायजीने सत्य ही लिखा है—"एक बार बन्दै जो कोई। ताहि नरक-पशुगति नहिं होई॥" एक बार वन्दना करनेका फल नरक और पशुगतिसे ही छुटकारा नहीं है, अपितु परम्परासे संसारसे भी छुटकारा है। किन्तु यह वन्दना द्रव्य-वन्दना या क्षेत्र-वन्दना नहीं, भाव-वन्दना होनी चाहिए।

ऐसी अनुश्रुति है कि श्री सम्मेदशिखर और अयोध्या ये दो तीर्थ अनादि-निधन शाश्वत हैं। अयोध्यामें सभी तीर्थंकरोंका जन्म होता है और सम्मेदशिखरमें सभी तीर्थंकरोंका निर्वाण होता है। किन्तु हुण्डावसर्पिणीके काल-दोषसे इस शाश्वत नियममें व्यतिक्रम हो गया। अतः अयोध्यामें केवल पाँच तीर्थंकरोंका ही जन्म हुआ और सम्मेदशिखरसे केवल बीस तीर्थंकरोंने निर्वाण-लाभ किया। किन्तु इनके अतिरिक्त भी असंख्य मुनियोंने यहींपर तपश्चरण करके मुक्ति प्राप्त की। सम्मेदशिखरको भाव-वन्दनासे तात्पर्य यह है कि इस क्षेत्रसे जो तीर्थंकर और अन्य मुनिवर मुक्तिको प्राप्त हुए हैं, उनके गुणोंको सच्चाईके साथ अपने हृदयमें उतारें और तदनुसार अपनी आत्माके गुणोंका विकास करें। ऐसा करनेसे मुक्तिका मार्ग प्रशस्त होगा, इसमें सन्देह नहीं।

ढाई द्वीपमें कुल १७० सम्मेदशिखर होते हैं। उनमें जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रका सम्मेदशिखर वही है जो पारसनाथ हिलके नामसे विख्यात है। प्राकृत निर्वाणकाण्डमें सम्मेदशिखरसे बीस तीर्थंकरोंकी निर्वाण-प्राप्तिका उल्लेख करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है, जो इस प्रकार है—

"वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुर-वंदिदा धुद-किलेसा।
सम्मेदे गिरि-सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं॥२॥

संस्कृत निर्वाणभक्तिमें इसी बातका वर्णन इस प्रकार है—

"शेषास्तु ते जिनवरा जितमोहमल्ला, ज्ञानार्कभूरिकिरणैरवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारितसौख्यनिष्ठं, सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः॥२५॥

प्रसिद्ध आर्ष ग्रन्थ 'तिलोयपण्णत्ति' (४।११८६-१२०६) में तो आचार्य यतिवृषभने बीस तीर्थंकरों द्वारा सम्मेदशिखर पर्वतसे मुक्ति प्राप्त करनेका वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। उसमें उन्होंने प्रत्येक तीर्थंकरकी निर्वाण-प्राप्तिकी तिथि, नक्षत्र और उनके साथ मुक्त होनेवाले मुनियोंकी संख्या भी दी है। यह विवरण अत्यन्त उपयोगी और ज्ञातव्य है। अतः यहाँ दिया जा रहा है—

चेत्तस्स सुद्धपंचमिपुव्वण्हे भरणिणामरिक्खम्मि।
सम्मेदे अजियजिणे मुत्तिं पत्तो सहस्ससमं॥

—अजितनाथ जिनेन्द्र चैत्र शुक्ला पंचमीके दिन पूर्वाह्ण कालमें भरणी नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ मुक्तिको प्राप्त हुए।

चेत्तस्स सुक्कछट्ठीअवरण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे ।
संपत्तो अपवग्गं संभवसामी सहस्सजुदो ।।

—सम्भवनाथ स्वामी चैत्र शुक्ला षष्ठीके दिन अपराह्न समयमें जन्म-नक्षत्रके रहते सम्मेद शिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ अपवर्ग (मोक्ष) को प्राप्त हुए ।

वइसाहसुक्कसत्तमिपुव्वण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे ।
दससयमहेसिसहिदो णंदणदेवो गदो मोक्खं ।।

—अभिनन्दननाथ वैशाख शुक्ला सप्तमीको पूर्वाह्न समयमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार महर्षियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए ।

चेत्तस्स सुक्कदसमीपुव्वण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे ।
दससयरिसिसंजुत्तो सुमइस्सामी स मोक्खगदो ।।

—सुमतिनाथ स्वामी चैत्र शुक्ला दशमीके दिन पूर्वाह्न कालमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार ऋषियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए ।

फग्गुणकिण्ह चउत्थी अवरण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे ।
चउवीसाधिय तियसयसहिदो पउमप्पहो देवो ।।

—पद्मप्रभ देव फाल्गुन कृष्ण चतुर्थीके दिन अपराह्नमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते सम्मेद-शिखरसे तीन सौ चौबीस मुनियोंके साथ मुक्तिको प्राप्त हुए ।

फग्गुणबहुलच्छट्ठीपुव्वण्हे पव्वदम्मि सम्मेदे ।
अणुराहाए पणसयजुत्तो मुत्तो सुपासजिणो ।।

—सुपार्श्व जिनेन्द्र फाल्गुन कृष्णा षष्ठीको पूर्वाह्न समयमें अनुराधा नक्षत्रके रहते सम्मेद पर्वतसे पाँच सौ मुनियोंके साथ मुक्त हुए ।

सिदसत्तमि पुव्वण्हे भद्दपदे मुणिसस्स संजुत्तो ।
जेट्ठासुं सम्मेदे चंद्रप्पह जिणवरो सिद्धो ।।

—चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको पूर्वाह्न कालमें ज्येष्ठा नक्षत्रके रहते एक हजार मुनियों सहित सम्मेदशिखरसे मुक्त हुए ।

अस्सजुद सुक्कअट्ठमिअवरण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे ।
मुणिवरसहस्ससहिदो सिद्धिगदो पुप्फदंतजिणो ।।

—पुष्पदन्त भगवान् आश्विन शुक्ला अष्टमीके दिन अपराह्न कालमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ सिद्धिको प्राप्त हुए ।

कत्तियसुक्के पंचमिपुव्वण्हे जम्मभम्मि सम्मेदे ।
णिव्वाणं संपत्तो सीयलदेवो सहस्सजुदो ।।

—शीतलनाथ कार्तिक शुक्ला पंचमीके पूर्वाह्न समयमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते सम्मेद-शिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ निर्वाणको प्राप्त हुए ।

सावणिय पुण्णिमाए पुव्वण्हे मुणिसहस्ससंजुत्तो ।
सम्मेदे सेयंसो सिद्धिं पत्तो धणिट्ठासु ।।

—भगवान् श्रेयान्स श्रावणकी पूर्णिमाको पूर्वाह्नमें धनिष्ठा नक्षत्रमें सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ सिद्ध हुए ।

सुक्कट्ठमीपदोसे आसाढे जम्मभम्मि सम्मेदे।
छस्सयमुणिसंजुत्तो मुत्ति पत्तो विमलसामी॥

—विमलनाथ स्वामी आषाढ़ शुक्ला अष्टमीके दिन प्रदोष कालमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते छह सौ मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे मुक्तिको प्राप्त हुए।

चेत्तस्स किण्ह पच्छिम दिणप्पदोसम्मि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदम्मि अणन्तो गत्तसहस्सेहिं संपत्तो॥

—अनन्तनाथ भगवान् चैत्रमासके कृष्ण पक्षकी अमावस्याको प्रदोष कालमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते सम्मेद शिखरसे सात हजार मुनियोंके साथ मुक्तिको प्राप्त हुए।

जेट्ठस्स किण्हचोद्दसिपच्चूसे जम्मभम्मि सम्मेदे।
सिद्धो धम्मजिणिंदो रूवाहियअडसएहिं जुदो॥

—धर्मनाथ जिनेन्द्र ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशीके दिन प्रत्यूष कालमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते आठ सौ एक मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे मुक्त हुए।

जेट्ठस्स किण्ह चोद्दसिपदोससमयम्मि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदे संतिजिणो णवसयमुणिसंजुदो सिद्धो॥

—शान्तिनाथ तीर्थंकर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशीके दिन प्रदोष कालमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते नौ सौ मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे सिद्ध हुए।

वइसाहसुक्कपाडिवपदोससमये हि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदे कुंथुजिणो सहस्ससहिदो गदो सिद्धि॥

—कुन्थुजिन वैशाख शुक्ला प्रतिपदाके दिन प्रदोष समयमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते एक हजार मुनियों सहित सम्मेदशिखरसे सिद्ध हुए।

चेत्तस्स बहुलचरिमे दिणम्मि णियजम्मभम्मि पच्चूसे।
सम्मेदे अरदेओ सहस्ससहिदो गदो मोक्खं॥

—अरनाथ भगवान् चैत्र कृष्णा अमावस्याके दिन प्रत्यूष कालमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते एक हजार मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे मोक्षको प्राप्त हुए।

पंचमिपदोससमए फग्गुणबहुलम्मि भरणिणक्खत्ते।
सम्मेदे मल्लिजिणो पंचसयसमं गदो मोक्खं॥

—मल्लिनाथ तीर्थंकर फाल्गुन कृष्णा पंचमीको प्रदोष समयमें भरणी नक्षत्रके रहते सम्मेद-शिखरसे पाँच सौ मुनियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए।

फग्गुणकिण्हे बारसि पदोससमयम्मि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदे सिद्धिगदो सुव्वददेओ सहस्ससंजुत्तो॥

—मुनिसुव्रतनाथ फाल्गुन कृष्णा बारसके दिन प्रदोष समयमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते एक हजार मुनियों सहित सम्मेदशिखरसे सिद्धिको प्राप्त हुए।

वइसाहकिण्ह चोद्दसिपच्चूसे जम्मभम्मि सम्मेदे।
णिस्सेयस संपण्णो समं सहस्सेण णमिसामी॥

—नमिनाथ स्वामी वैशाख कृष्णा चतुर्दशीके दिन प्रत्यूष कालमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ निःश्रेयस पदको प्राप्त हुए।

सिद सत्तमीपदोसे सावणमासम्मि जम्मणक्खत्ते ।
सम्मेदे पासजिणो छत्तीसजुदो गदो मोक्खं ॥

—पार्श्वनाथ जिनेन्द्र श्रावण मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको प्रदोष कालमें अपने जन्म-नक्षत्रके रहते छत्तीस मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे मुक्त हुए।

इसी प्रकार आचार्य गुणभद्रने 'उत्तर पुराण'में, आचार्य रविषेणने 'पद्म पुराण'में, आचार्य जिनसेनने 'हरिवंश पुराण'में तथा अन्य अनेक शास्त्रोंमें सम्मेदशिखरको बीस तीर्थंकरों और असंख्य मुनियोंकी निर्वाण-भूमि बताया है। 'मंगलाष्टक'में भी चार तीर्थंकरोंकी निर्वाण-भूमियोंका उल्लेख करके शेष बीस तीर्थंकरोंकी निर्वाण-भूमिके रूपमें सम्मेद शैलको मंगलकारी माना है। जटासिंहनन्दीने 'वरांगचरित्र'में लिखा है—

"शेषा जिनेन्द्रास्तपसः प्रभावाद् विधूय कर्माणि पुरातनानि ।
धीराः परां निर्वृतिमभ्युपेताः सम्मेदशैलोपवनान्तरेषु ॥२७।९२॥

संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थोंके अतिरिक्त अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओंके कवियोंने भी सम्मेदशिखरको तीर्थक्षेत्र माना है और उसे बीस तीर्थंकरों एवं अनेक मुनियोंकी सिद्ध भूमि माना है।

मराठी भाषाके सुप्रसिद्ध कवि गुणकीर्ति (अनुमानतः १५वीं शताब्दीका अन्तिम चरण) अपने गद्य ग्रन्थ 'धर्मामृत' (परिच्छेद १६७)में लिखते हैं—

"संमेद महागिरि पर्वति बीस तीर्थंकर अहूठ कोडि मुनिस्वरु सिद्धि पावले त्या सिद्ध क्षेत्रासि नमस्कारु माझा।"

अपभ्रंश भाषाके कवि उदयकीर्ति (१२-१३वीं शताब्दी) ने 'तीर्थ वन्दना' नामक अपनी लघु रचनामें सम्मेदशिखरके सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख किया है—

'सम्मेद महागिरि सिद्ध जे वि । हउँ वंदउँ बीस जिणंद ते वि।'

गुजराती भाषाके कवि मेघराज (समय १६वीं शताब्दी) ने विभिन्न तीर्थोंकी वन्दनाके प्रसंगमें सम्मेदशिखरको वन्दनामें निम्नलिखित पद्य बनाया है—

चलि जिनवर जे बीस सिद्ध हवा स्वामी संमेद गिरीए।
सुरनर करे तिहा जात्र पूज रचे बड़भाव धरीए ॥

भट्टारक अभयनन्दि (सूरत) के शिष्य सुमतिसागर (समय १६वीं शताब्दीके मध्यमें) ने 'तीर्थजयमाला'में लिखा है –

"सुसंमेदाचल पूजो संत। सुबीस जिनेश्वर मुक्ति वसंत ॥"

नन्दीतटगच्छ, काष्ठासंघके भट्टारक श्रीभूषणके शिष्य ज्ञानसागर (समय १५७८-१६२०) ने गुजरातीमें 'सर्वतीर्थ-वन्दना' लिखी है। इसमें कुल १०१ छप्पय हैं। इनमें तीन छप्पयमें सम्मेद गिरिकी वन्दना और प्रशंसा अत्यन्त भावपूर्ण शब्दोंमें की है। यहाँ उनमें-से एक पद्यका रसास्वाद कराया जा रहा है—

---

१. उत्तर पुराण ४८।५१-५३, ४९।५५-५६, ५०।६५-६६, ५१।८४-८५, ५२।६६-६७, ५३।५२-५३, ५४।२६९-२७२, ५५।५२-५९, ५६।५६-५८, ५७।६०-६२, ५९।५४-५६, ६०।४४-४५, ६१।५१-५२, ६३।४९६-९७, ६४।५१-५२, ६५।४५-४६, ६६।६१-६२, ६७।५५-५६, ६९।६७-६८, ७३।१५६-५८। २. पद्मपुराण ५।२४६, २०।६१, २१।४३-४५। ३. हरिवंश पुराण, सर्ग ६०, श्लोक संख्या १८३ से २०४ तक, १६।७५।

सम्मेदाचल शृंग बीस जिनवर शिव पाया।
संख्या रहित मुनीश मोक्ष तिस थान सिधाया।
यात्रा जेह करंत तास पातक सबि जाये।
मनवांछित फल पूर सद्य सुखसंपति थाये ॥
सारद अथवा सुरगुरु जो तस गुण वर्णन करे।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति जन्म जन्म पातक हरे ॥१॥

बीस तीर्थंकरोंके अतिरिक्त अनेक मुनिजन यहाँ तपस्या करके और कर्मोंका नाश करके मुक्ति पधारे हैं। ऐसे कुछ मुनियोंका वर्णन पुराण और कथा-ग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है।

'उत्तरपुराण' (४८।१२९-१३७) में सगर चक्रवर्तीका प्रेरक जीवन-चरित्र दिया गया है। जब मणिकेतु देवने अपने पूर्वभवकी मित्रताको ध्यानमें रखकर सगर चक्रवर्तीको आत्म-कल्याणकी प्रेरणा देनेके लिए उसके साठ हजार पुत्रोंके अकाल मरणका शोक-समाचार सुनाया तो चक्रवर्तीको सुनते ही संसारसे वैराग्य हो गया और भगीरथको राज्य देकर उसने मुनि-दीक्षा ले ली। उधर देवने उन साठ हजार पुत्रोंको उनके पिता द्वारा मुनि-दीक्षा लेनेका समाचार जा सुनाया। उस समाचारको सुनकर उन सबने भी मुनि व्रत धारण कर लिया और तपस्या करने लगे। अन्तमें सम्मेदशिखरसे उन्होंने मुक्ति प्राप्त की।

"सर्वे ते सुचिरं कृत्वा सत्तपो विधिवद् बुधाः।
शुक्लध्यानेन संमेदे संप्रापन् परमं पदम् ॥"

सम्मेदशिखरपर मन्दिरोंके निर्माणकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भट्टारक ज्ञानकीर्तिने 'यशोधर चरित'की रचना की है। यह ग्रन्थ उन्होंने संवत् १६५९ में लिखा था। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें राजा मानसिंहके मन्त्री नानूका नामोल्लेख करते हुए सम्मेदशिखरपर बीस मन्दिरोंके निर्माणका उल्लेख है। ग्रन्थकारने पहले अपना परिचय दिया है। उसके बाद मन्दिरोंके निर्माणका उल्लेख किया है। प्रशस्तिका उक्त अंश यहाँ दिया जा रहा है।

राजाधिराजोऽत्र तदा विभाति श्रीमानसिंहो जितवैरिवर्गः।
अनेकराजेन्द्रविनम्यपादः स्वदानसंतर्पितविश्वलोकः ॥६२॥
तस्यैव राज्ञोऽस्ति महानमात्यो नानूसुदामा विदितो धरित्र्याम्।
संमेदशृंगे च जिनेन्द्रगेहमष्टापदे वादिमचक्रधारी ॥६४॥
योऽकारयद् यत्र च तीर्थनाथाः सिद्धिगता विंशतिमानयुक्ताः।

अर्थात् यहाँ (चम्पानगरीके निकटवर्ती अकबरपुर गाँवमें) महाराज मानसिंह हैं, जिन्होंने वैरियोंका दमन किया है और बड़े-बड़े राजाओंसे अपने चरणोंमें मस्तक झुकवाया है। उनके महामन्त्रीका नाम नानू है। उन्होंने सम्मेदशिखरके ऊपर वहाँसे सिद्धगतिको प्राप्त करनेवाले बीस तीर्थंकरोंके मन्दिरोंका निर्माण कराया, जैसे प्रथम चक्रवर्ती भरतने अष्टापदके ऊपर मन्दिरोंका निर्माण कराया था और उनकी कई बार यात्राएँ की थीं।

इसी ग्रन्थमें अन्यत्र महामन्त्री नानूका परिचय इस प्रकार दिया है—

तस्य क्षितीश्वरपतेरधिकारि श्रीजैनवेश्मकृत (दुर्लभ) पुण्यधारी।
यात्रादिधर्मशुभकर्मपथानुचारी जैनो बभूव वनिजां वर इभ्यमुख्यः ॥१७॥
खण्डेलवालान्वय एव गोत्रे गोधाभिधे रूपसुचन्द्रपुत्रः।
दाता गुणज्ञो जिनपूजनेन्द्रो सिवारिधौतारिकदम्बपङ्कः ॥१८॥

रायात्कुबेरं मदनं स्वरूपेणार्कं प्रतापेन विधुं सुसौम्यात् ।
ऐश्वर्यतो वासवमर्थयापि तिरस्करोतीह जिनेन्द्रभक्तः ॥१९॥
नानू सुनामा जगतीप्रसिद्धो यो मौलिबद्धावनिनाथतुल्यः ।
स्ववंशवाताध्वविकाससूरोऽस्य प्रार्थनातो क्रियते मयैतत् ॥२०॥

—उस राजा मानसिंहके एक अधिकारी गोधा गोत्रीय रूपचन्द खण्डेलवाल थे। वह महान् पुण्यात्मा, यात्रा आदि शुभकर्म करनेवाला और अत्यन्त धनाढ्य व्यापारी था। वह महान् दाता, गुणज्ञ, जिनपूजनमें रत रहनेवाला था। वह धनमें कुबेरको, स्वरूपमें कामदेवको, प्रतापमें सूर्यको, सौम्यतामें चन्द्रमाको, ऐश्वर्यमें इन्द्रको तिरस्कृत करता था। उसका पुत्र नानू था। वह राजाके समान था और अपने वंशका शिरोमणि था। उसकी प्रार्थनापर मैं यह चरित बना रहा हूँ।

महामात्य नानूने सम्मेदशिखरके ऊपर बीस तीर्थंकरोंके जो मन्दिर (टोंकें) बनाये, उनसे पहले वहाँ क्या मन्दिर नहीं थे और थे तो वे किसने बनवाये थे? इस सम्बन्धमें अनुसन्धानकी आवश्यकता है।

तीर्थंकर भगवान् जिस स्थानसे मुक्त हुए, उस स्थानपर सौधर्मेन्द्रने चिह्न स्वरूप स्वस्तिक बना दिया, दिगम्बर परम्परामें इस प्रकारकी मान्यता प्रचलित है। इस मान्यताके आधारपर यह कहा जा सकता है कि भक्त श्रावकोंने उन स्थानोंपर तीर्थंकरोंके चरण स्थापित किये। महामात्य नानूने जिन मन्दिरोंका निर्माण किया था, वे पुराने जीर्ण मन्दिरोंके स्थानपर ही बनाये गये थे। (यहाँ मन्दिरोंका अर्थ टोंकें हैं।)

मन्त्रिवर नानू द्वारा बनायी गयी वे ही टोंकें अबतक वहाँ विद्यमान हैं।

मन्त्रिवर नानूके पहले यहाँ मन्दिर और मूर्तियाँ थीं, इस प्रकारके उल्लेख हमें कई ग्रन्थोंमें मिलते हैं। तेरहवीं शताब्दीके विद्वान् यति मदनकीर्ति, जो पं. आशाधरजीके प्रायः समकालीन थे, ने 'शासन चतुस्त्रिंशिका' में लिखा है—

सोपानेषु सकष्टमिष्टसुकृतादारुह्य यान् वन्दते
सौधर्माधिपति प्रतिष्ठितवपुष्का[1] ये जिना विंशतिः।
मुख्याः स्वप्रमितिप्रभाभिरतुला संमेदपृथ्वीरुहि
भव्योऽन्यस्तु न पश्यति ध्रुवमिदं दिग्वाससां शासनम् ॥११॥

अर्थात् सौधर्म इन्द्रने बीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ जहाँ प्रतिष्ठित की हैं, तथा जो प्रतिमाएँ अपने आकारकी प्रभासे तुलनारहित हैं, उस सम्मेद रूपी वृक्षपर भव्य जन कष्ट उठाकर भी सीढ़ियों द्वारा चढ़कर पुण्योदयसे उन प्रतिमाओंकी वन्दना करते हैं। भव्यके अतिरिक्त उनके दर्शन अन्य कोई नहीं कर सकता। यह दिगम्बर-धर्म शाश्वत है अर्थात् यहाँ सदासे रहा है।

यतिजीने सम्मेदशिखरके सम्बन्धमें जो वर्णन किया है, उसमें तीन बातोंका उल्लेख किया गया है—(१) इस क्षेत्रपर सौधर्म इन्द्रने बीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमा स्थापित की थी। (२) उन प्रतिमाओंका प्रभामण्डल प्रतिमाओंके आकारका था, इसलिए उनकी ओर देखनेके लिए श्रद्धाकी आँखें ही समर्थ होती थीं। जिनके हृदयमें श्रद्धा नहीं होती थी, वे इन प्रभा-पुंज स्वरूप प्रतिमाओंको देख नहीं सकते थे। (३) यतिजीके काल तक अर्थात् तेरहवीं शताब्दी तक इस तीर्थराजपर दिगम्बर समाजका ही आधिपत्य था।

---

१. गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः ॥१।७० । कायो देहः क्लीबपुंसोः स्त्रियां मूर्तिस्तनुः ।—अमरकोष
"मूर्तिः पुनः प्रतिमायां कायकाठिन्ययोरपि ॥"—हैम ।

इस वर्णनसे यह फलितार्थ निकलता है कि पहले सम्मेदशिखरके ऊपर बीस मन्दिर बने हुए थे और उनमें सौधर्मेन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित बीस तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ विराजमान थीं। ये मन्दिर कितने बड़े थे और इनका क्या हुआ, यह तो पता नहीं चलता। लेकिन ऐसा लगता है कि ये मन्दिर नहीं, बल्कि टोंकोंके रूपमें थे और पहले इन्हींमें मूर्ति विराजमान होंगी। पश्चात् असुरक्षा आदि कारणोंसे इन मूर्तियोंके स्थानपर चरण विराजमान कर दिये होंगे और जीर्ण होनेपर महामात्य नानूने इनके स्थानपर ही बीस टोंकें या मन्दरियाँ बनवा दी होंगी।

यतिवर्य मदनकीर्तिके कालमें सम्मेदशिखरपर एक अमृतवापिका भी थी, जिसमें भक्त लोग अष्ट द्रव्यों (जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल) से बीस तीर्थंकरोंके लिए अर्घ्य चढ़ाते थे।

यस्याः पायसि नामविंशतिमिदा पूजाष्टधा क्षिप्यते
मन्त्रोच्चारण-बन्धुरेण युगपन्निर्ग्रन्थरूपात्मनाम्।
श्रीमत्तीर्थकृतां यथायथमियं संसंपनीपद्यते
संमेदामृतवापिकेयमवताद्दिग्वाससां शासनम्॥

—शासन-चतुस्त्रिंशिका–१४

अर्थात् जिसके पवित्र जलमें निर्ग्रन्थ रूपके धारक श्री तीर्थंकरोंके क्रमिक नामोंके साथ सुन्दर मन्त्रोच्चारण-पूर्वक अष्टद्रव्यका अर्घ्य चढ़ाया जाता है और यथायोग्य रीतिसे उनकी पूजा की जाती है, वह सम्मेदगिरिकी अमृतवापिका दिगम्बर शासनकी सदा रक्षा करे।

यह अमृतवापिका ही वर्तमानमें जल-मन्दिर कहलाता है।

प्राचीन कालमें सम्मेदगिरिकी यात्राके विवरण

भक्तजन अत्यन्त प्राचीन कालसे ही सिद्धक्षेत्र सम्मेदगिरिकी पुण्य-प्रदायिनी यात्राके लिए जाते रहे हैं। इन यात्राओंके विवरण पुराण ग्रन्थों, कथाकोषों और विविध भाषाओंमें निबद्ध यात्रा-विवरण-काव्यों तथा ग्रन्थ-प्रशस्तियोंमें मिलते हैं।

सम्मेदशिखरकी यात्राके सन्दर्भमें संघ सहित मुनि अरविन्दका चरित्र 'उत्तर पुराण' में मिलता है। पोदनपुर नगरके राजा अरविन्द थे। उनके नगरमें वेदोंका विशिष्ट विद्वान् विश्वभूति ब्राह्मण रहता था। उसके दो पुत्र थे—कमठ और मरुभूति। मरुभूति महाराज अरविन्दका मन्त्री था। वह अत्यन्त सदाचारी, विवेकी और नीतिपरायण भद्र व्यक्ति था। इसके विपरीत कमठ दुराचारी और दुष्ट प्रकृतिका था। एक बार मरुभूतिकी स्त्री वसुन्धरीके कारण उत्तेजित होकर कमठने मरुभूतिकी हत्या कर दी। मरुभूति मरकर मलय देशमें कुब्जक नामक सल्लकीके भयानक वनमें हाथी हुआ। राजा अरविन्द ने किसी समय विरक्त होकर राजपाट छोड़ दिया और दिगम्बर मुनि-दीक्षा धारण कर ली। एक बार वे संघके साथ सम्मेदशिखरकी वन्दनाके लिए जा रहे थे। चलते-चलते वे उसी वनमें पहुँचे। सामायिकका समय हो जानेसे वे प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हो गये। इतनेमें घूमता-फिरता वह मदोन्मत्त हाथी उधर ही आ निकला और मुनिराजको देखते ही वह उन्हें मारने दौड़ा। किन्तु मुनिराजके पास आते ही वह शान्त हो गया। उसकी दृष्टि मुनिराजकी छातीके वत्स लांछन पर पड़ी। यह टकटकी लगाकर उस चिह्नको देखता रहा। उसे देखकर उसके मनमें अनजाने ही मुनिके प्रति प्रेम उमड़ने लगा। सामायिक समाप्त होनेपर मुनिराजने आँखें खोलीं। वे अवधिज्ञानी थे। उन्होंने अपने अवधिज्ञानसे जानकर हाथीको उपदेश दिया और कहा—"गजराज! पूर्वजन्ममें तू मेरा अमात्य मरुभूति था। आज तू

इस निकृष्ट तिर्यंच योनिमें पड़ा हुआ है। तू कषाय छोड़कर आत्म-कल्याण कर।" मुनिराजका उपदेश गजराजके हृदयमें पैठ गया। उसने अणुव्रतोंका नियम ले लिया। जीवन सात्त्विक बन गया। यही हाथीका जीव आगे जाकर कठोर साधनासे तेईसवाँ तीर्थंकर बना। अस्तु!

मुनिराज अरविन्द संघ सहित आगे बढ़ गये और सम्मेदशिखर पहुँचकर उन्होंने भक्तिभाव सहित उसकी वन्दना की। उन्होंने मोहका क्षय कर घातिया कर्मोंका नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा वहींसे मोक्ष[2] प्राप्त किया।

कवि महाचन्द्रने अपभ्रंश भाषाके 'संतिणाह चरिउ (रचना काल सं. १५८७) में सारंग साहूका परिचय देते हुए उनकी सम्मेदशिखर यात्राका वर्णन किया है—

"भोयउ सुउ वीयउ गुणगण जूयउ णाणचंदु पभणिज्जइ।
तहु भामिणि गुण गण रामिणि सउराजही कहिज्जइ ॥२॥
तहु तिण्णि अंगसू तिण्णि रयण णं तिण्णि लोय ते सुद्ध वयण।
पढ़मउ सम्मेय वि जत्त करणु सारंग वि णामे सुद्ध करणु ॥३॥

इसका आशय यह है कि भोजराजके पुत्र ज्ञानचन्दकी पत्नीका नाम 'सउराजही' था जो अनेक गुणोंसे विभूषित थी। उसके तीन पुत्र हुए। पहला पुत्र सारंग साहू था, जिसने सम्मेदशिखरकी यात्रा की थी। उसकी पत्नीका नाम 'तिलोकाही' था।

भट्टारक रत्नचन्द्र मूलसंघ सरस्वती गच्छके भट्टारक थे। ये हुंबड़ जाति के थे। इन्होंने 'सुभौमचक्रि-चरित्र' की रचना सं. १६८३ में सागपत्तन (सागवाड़ा, वाग्वर देश) के हेमचन्द्र पाटनीकी प्रेरणासे पाटलिपुत्रमें गंगाके किनारे सुदर्शन चैत्यालयमें की थी। पाटनीजी भट्टारक रत्नचन्द्रजीके साथ शिखरजीकी यात्राके लिए गये थे। इनके साथ आचार्य जयकीर्ति तथा श्रावकोंका संघ भी था। इस सम्बन्धमें उन्होंने ग्रन्थकी प्रशस्तिमें उल्लेख भी किया है जो इस भाँति है—

संमेदाचलयात्रायै रत्नचन्द्रास्समागताः।
जगन्महन्नात्मजाचार्यं जयकीर्तिभिरन्विताः ॥१६॥
श्रीमत्कगलकीर्त्याह्वैः सूरिभिश्च सुवर्णिभिः।
कल्याण-कचराख्यान-कान्हजी-भोगिदासकैः ॥१७॥

कारंजाके सेनगणके भट्टारक सोमसेनके पट्टशिष्य भट्टारक जिनसेन द्वारा सम्मेदाचलकी यात्राका उल्लेख मिलता है। जिनसेनका समय शक सं. १५७७ से १६०७ (सन् १६५५ से १६८५) तक है। इनके सम्बन्धमें सेनगण मन्दिर नागपुरमें स्थित एक गुटकेमें चार पद्य मिलते हैं। उनमें अन्तिम पद्य इस प्रकार है—

"संघ प्रतिष्ठा पाँच धर्म उपदेस सुकारी।
श्रीगिरनारि समेदशिखर तीरथ कियो भारी।
संघपति सोयरासाह निबासा माधव संगवी।
गनवा संगवी रागटेकमा कान्हा संगवी ॥
जिनसेन नाम गुरुरायने संघतिलक एते दिय।
माणिक्यस्वामी यात्रा सफल धर्म काम बहु बहु किय ॥

---

१. उत्तर पुराण, ७३।६-२४। २. पासनाह चरिउ। ३. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ. ३३।

इससे ज्ञात होता है कि भट्टारक जिनसेनने गिरनार, सम्मेदशिखर, रामटेक तथा माणिक्य-स्वामीकी यात्राएँ संघ सहित की थीं और उन्होंने संघ ले जानेवाले सोयरा शाह, निम्बाशाह, माधव संघवी, गनवा संघवी और कान्हा संघवीका संघपतिके रूपमें तिलक किया था। कान्हा संघवीका यह सम्मान-समारोह रामटेकमें किया गया था।

सम्मेदशिखर माहात्म्यकी रचनाएँ

अनेक कवियोंने विभिन्न भाषाओंमें सम्मेदशिखरके माहात्म्य और पूजाओंकी रचनाएँ की हैं, उनसे एक महान् सिद्धक्षेत्र और तीर्थराजके रूपमें सम्मेदशिखरके गौरवपर प्रकाश पड़ता है और इस तीर्थक्षेत्रका नाम लेते ही श्रद्धासे स्वतः ही मस्तक उसके लिए झुक जाता है।

गंगादास कारंजाके मूलसंघ बलात्कारगणके भट्टारक धर्मचन्द्रके शिष्य थे। आपने मराठीमें पार्श्वनाथ भवान्तर, गुजरातीमें आदित्यवार व्रतकथा, त्रेपन क्रिया विनती व जटामुकुट, संस्कृतमें क्षेत्रपाल पूजा एवं मेरुपूजाकी रचना की है। आपका काल सत्रहवीं शताब्दी है। आपने संस्कृतमें सम्मेदाचल पूजा भी बनायी, जो सरल और रोचक है।

कवि देवदत्त दीक्षित कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा भदौरिया राजाओंके राज्यमें स्थित अटेर नगरके निवासी थे। इन्होंने शौरीपुरके भट्टारक जिनेन्द्र भूषणकी आज्ञासे 'सम्मेदशिखर माहात्म्य' और 'स्वर्णाचल माहात्म्य' की रचना की थी। दीक्षितजी सम्भवतः १९वीं शताब्दीके विद्वान् थे। उन्होंने 'सम्मेदाचल माहात्म्य'के प्रारम्भमें लिखा है—

गुरुं गणेशं वाणीं च ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च।
सम्मेदशैलमाहात्म्यं प्रकटीक्रियते मया ॥२॥

इस माहात्म्यमें इक्कीस अध्याय हैं। यह सुबोध संस्कृतमें लिखा गया है।

सम्मेदशिखरकी यात्रा

मार्ग

तीर्थराज सम्मेदशिखरजी, जिसका दूसरा नाम 'पारसनाथ-हिल' है, बिहार प्रदेशके हजारीबाग जिलेमें स्थित है। यहाँ पहुँचनेके लिए रेलवेके कई मार्ग हैं—(१) गया, दिल्ली अथवा कलकत्ताकी ओरसे आनेवालोंके लिए पारसनाथ स्टेशन उतरना चाहिए। (२) कलकत्ताकी ओरसे आनेवाले गिरीडीह स्टेशन भी उतर सकते हैं। गिरीडीह ईस्टर्न रेलवेके मधुपुर स्टेशनसे जाना पड़ता है किन्तु कलकत्तासे मधुपुर लाइनपर चलनेवाली ट्रेनोंमें गिरीडीहके लिए दो-एक बोगी प्रायः लगी रहती है। (३) पटनासे राँची जानेवाली ट्रेनोंसे पारसनाथ उतर सकते हैं। ये सभी ईस्टर्न रेलवेकी मेन लाइन हैं।

ईसरी

पारसनाथ स्टेशनके सामने ही लगभग एक फर्लांग दूरीपर ईसरीमें दो दिगम्बर जैन धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। एक तेरापन्थी और दूसरी बीसपन्थी। दोनों निकट-निकट हैं। तेरापन्थी धर्मशालामें कुल ५६ कमरे हैं। एक पक्का कुआँ है। बीचमें विशाल चौक है। धर्मशालाके मुख्य

फाटकके भीतर दायीं ओर एक शिखरबन्द मन्दिर है। सभामण्डपके भीतर एक गर्भगृह है। वेदी एक दरकी है। मूलनायक प्रतिमा भगवान् चन्द्रप्रभुकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन है। आसन सहित प्रतिमाकी अवगाहना लगभग एक गज है। मूलनायकके अतिरिक्त दो पाषाणकी तथा आठ धातुकी प्रतिमाएँ हैं। मुख्य वेदीकी परिक्रमाके पीछे एक और वेदी है जिसमें भगवान् महावीरकी रक्ताभ वर्ण पद्मासन प्रतिमाके अतिरिक्त ३ श्वेत पाषाणकी प्रतिमाएँ हैं। बीसपन्थी कोठीमें विशाल कम्पाउण्डमें धर्मशाला और मन्दिर है। मन्दिरमें सभामण्डप और गर्भगृह है। उसमें श्याम पाषाणकी पार्श्वनाथकी मूलनायक प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त तीन पाषाणकी और धातुकी तीन प्रतिमाएँ वेदीमें विराजमान हैं। इस मन्दिरकी बायीं ओर एक मन्दिर और है जिसमें जयसेन मुनिराजकी आदमकद मूर्ति है। इस मन्दिरके बराबर एक छतरीके नीचे चरण विराजमान हैं।

दोनों कोठियोंके बीचकी गलीमें उदासीनाश्रमका प्रवेशद्वार बना हुआ है। इस संस्थाका नाम श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन शान्ति निकेतन उदासीनाश्रम है। इसकी स्थापना पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी (गणेश मुनि) ने की थी। इसमें विरक्त त्यागी, ब्रह्मचारी और साध्वियाँ धर्म-साधनकी भावनासे रहते हैं। इनके निवासकी पृथक्-पृथक् व्यवस्था है। संस्थाके भवनमें प्रवेश करनेपर दायीं ओर त्यागी-निवास और स्वाध्यायशाला बनी हुई है। एक सरस्वती भवन भी है जिसमें २००० ग्रन्थ हैं। इससे सम्बन्धित सेठ बैजनाथजी सरावगी द्वारा निर्मित धर्मध्यानाश्रम है। रा. ब. सेठ हरकचन्दजी तथा सेठ तुलारामजीकी कोठियाँ हैं जो अतिथियोंके काम आती हैं। इस आश्रममें २५-३० त्यागियों एवं ३०-४० ब्रह्मचारिणियोंके लिए निवास आदिकी व्यवस्था है।

प्रवेशद्वारके बायीं ओर त्यागियोंकी भोजनशाला है। संस्थाके प्रांगणके मध्यमें लगभग पचीस फुट ऊँचा पूज्य वर्णीजीका समाधि-स्तूप बना हुआ है, जिसके ऊपर वर्णीजीका जीवन-परिचय और उनके उपदेश आदि अंकित हैं। स्तूपकी रचना-शैली अत्यन्त मनोज्ञ है। स्तूपसे आगे बढ़नेपर पार्श्वनाथ जिनालयका भव्य भवन बना हुआ है। मन्दिरमें सभामण्डप और गर्भगृह है। गर्भगृहमें केवल एक वेदी बनी हुई है। उसमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा है। वेदीपर मूर्तियोंकी कुल संख्या १३ है, जिसमें ३ पाषाणकी तथा १० धातु की प्रतिमाएँ हैं।

इस मन्दिरके बगलसे मुमुक्षु महिलाश्रमको मार्ग जाता है। आश्रममें प्रवेश करते ही दायीं ओर दो-मंजिला भवन बना हुआ है, उसमें कुल ३० कमरे बने हुए हैं। ऊपरके खण्डमें पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन इण्टर कालेजका प्राइमरी सेक्शन लगता है। नीचेके भागमें ब्रह्मचारिणियों तथा वहाँके कार्यकर्ताओंकी निवास-व्यवस्था है। महिलाश्रमके जिनालयमें एक विशाल हॉल बना हुआ है। उसीमें एक ऊँची वेदीमें कृष्ण वर्ण साढ़े चार फुट अवगाहनावाली भगवान् पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूलनायकके अतिरिक्त ७ पाषाण प्रतिमाएँ वेदीमें विराजमान हैं।

मधुवन

ईसरीसे लगभग बाईस कि. मी. पर मधुवन है। मधुवनके लिए यहाँसे तेरापन्थी कोठीकी बस तथा टैक्सी मिलती है। यहाँसे गिरीडीह रोडपर सोलह कि. मी. चलकर मधुवनके लिए सड़क मुड़ती है और छह कि. मी. चलकर मधुवन आ जाता है। मधुवन पर्वतके उत्तरी भागकी ओर है।

गिरीडीहसे मधुवन पचीस कि. मी. है। गिरीडीह-ईसरी रोडपर बसें बराबर मिलती हैं।

मधुवनमें तेरापन्थी और बीसपन्थी दो कोठियाँ अर्थात् धर्मशालाएँ हैं। तेरापन्थी कोठी मधुवन और ईसरीका प्रबन्ध बंगाल-बिहार-उड़ीसा दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके अधीन है। इसका प्रधान कार्यालय कलकत्तामें है। इसी प्रकार बीसपन्थी कोठी मधुवन और ईसरीकी व्यवस्था एक ट्रस्ट (१० ट्रस्टियों) के अधीन है।

श्री सम्मेदशिखर पर्वतकी तलहटीमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंकी धर्मशालाएँ और मन्दिर हैं। सबसे पहले दिगम्बर जैन तेरापन्थी कोठी मिलती है। फिर श्वेताम्बर कोठी, जो मझली कोठी कहलाती है और सबसे अन्तमें दिगम्बर जैन बीसपन्थी कोठी है। यह उपरैली कोठी कहलाती है।

बीसपन्थी कोठी

इन तीनों कोठियोंमें बीसपन्थी कोठी सबसे प्राचीन है। इसकी स्थापना सम्मेदशिखरकी यात्रार्थ आनेवाले जैन बन्धुओं की सुविधाके लिए लगभग चार सौ वर्ष पूर्व की गयी थी, ऐसा कहा जाता है।

यह कोठी ग्वालियर गादीके भट्टारकजीके अधीन थी। इस शाखाके भट्टारक महेन्द्रभूषणने शिखरजीपर एक कोठी और एक मन्दिरकी स्थापना की और मन्दिरमें पार्श्वनाथ स्वामीकी प्रतिमा विराजमान करायी। उन्होंने एक धर्मशाला भी बनवायी। समाजके दो दानी सज्जनोंने दो मन्दिर भी बनवाये। महेन्द्रभूषणके पश्चात् शतेन्द्रभूषण, राजेन्द्रभूषण, शिलेन्द्रभूषण और शतेन्द्रभूषण भट्टारक क्रमसे कोठीके अधिकारी हुए। ये भट्टारक अपने कारकुनोंके द्वारा यहाँकी व्यवस्था कराते थे। कोठी और मन्दिरकी अव्यवस्था देखकर भट्टारक राजेन्द्रभूषणने दिनांक १५-४-१८७४ को एक इकरारनामा लिखकर आरा के १३ सज्जनोंको ट्रस्टी मुकर्रर कर यहाँका प्रबन्ध सौंप दिया। कालके प्रभावसे इनमें-से १२ ट्रस्टियोंका स्वर्गवास हो गया और जो एक ट्रस्टी बच गये थे, वे कोर्ट द्वारा इन्सौल्वेण्ट करार दे दिये गये। मन्दिरमें भारी अव्यवस्था हो गयी। तब २१ मई १९०३ को भट्टारक शतेन्द्रभूषणने दूसरा इकरारनामा रजिस्टर्ड कराया। उसके द्वारा आराके ही १५ सज्जनोंको ट्रस्टी बनाया।

इन इकरारनामोंसे ज्ञात होता है कि उस समय ग्वालियर गादीके अधीन ग्वालियर, हुंडमूरीपुर, भटसूर, सोनागिर, पटना, सम्मेदशिखर, आरा, गिरीडीह आदि कई स्थानोंपर मन्दिर और धर्मशालाएँ एवं उनकी गादियाँ थीं। उस समय उपरैली कोठीके अधीन सम्मेदशिखरके इन मन्दिर, धर्मशालाओंके अतिरिक्त गिरीडीहका मन्दिर और धर्मशाला भी थी तथा कुकों और वेन्द नामक दो गाँव थे। कोठीमें हाथी, घोड़े आदि रहते थे।

कोठीकी जायदाद, हिसाब-किताब और इकरारनामेकी वैधताको लेकर बम्बईके कुछ भाइयों (भा. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीकी ओरसे) आराके इन ट्रस्टियोंपर मुकदमा दायर कर दिया। उसमें राँची कोर्टसे दिनांक ११-१-१९०४ को कोठीपर रिसीवर बैठानेका हुक्म हो गया। फलतः रिसीवर बैठ गया। तब नागपुरमें बैठकर आरा और बम्बईवालोंमें समझौता हुआ और वह सुलहनामा कोर्टमें पेश किया। फलतः दिनांक ९-५-१९०६ से उसका प्रबन्ध (मुकदमा नं. १, सन् १९०३) के चुन्नीलाल जवेरी वगैरह मुद्दई बनाम भट्टारक श्री शतेन्द्रभूषण वगैरह मुद्दालय

बइजलास ज्यूडिशियल कमिश्नर राँचीकी डिग्रीके अनुसार) ट्रस्ट कमेटीके सुपुर्द हुआ और ट्रस्ट कमेटी बादमें भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके अन्तगत कार्य करने लगी।[1]

बीसपन्थी कोठीके बहुत दिनों पश्चात् (लगभग २५० वर्ष बाद) श्वेताम्बर कोठीका निर्माण हुआ। उसके लगभग १०० वर्ष बाद तेरापन्थी कोठी बनी।

तेरापन्थी कोठी

इस कोठीमें पाँच अहाते और पाँच धर्मशालाएँ हैं। धर्मशालाओंमें कुल २०५ कमरे हैं। इस कोठीमें कई विशाल द्वार बने हुए हैं। धर्मशालाके दूसरे चौकमें लाला सोहनलालजी कलकत्तावालों (मै. मुन्नालाल द्वारकादास) की ओरसे एक विशाल और अति भव्य चन्द्रप्रभु जिनालयका निर्माण हुआ है। इसका गर्भगृह चार स्तम्भोंपर खुला हुआ अत्यन्त कलापूर्ण बनाया गया है। उसके बीचमें संगमरमरकी उन्नत वेदीमें चन्द्रप्रभु भगवान्की पद्मासन श्वेत वर्ण लगभग पाँच फुट अवगाहनाकी भव्य प्रतिमा विराजमान है। गर्भगृहके आगे सभामण्डप है। मन्दिरके चारों ओर कम्पाउण्ड है। तीन ओरसे मार्ग है। तीनों ओरके द्वार साँचीके द्वारोंके अनुरूप बनाये गये हैं। मन्दिरके चारों ओर मनोरम पुष्पवाटिका है।

इस जिनालयसे चलकर और सुल्तानसिंह प्रवेशद्वारसे निकलकर कटक मन्दिर मिलता है। इसमें चार वेदियाँ हैं। मण्डपमें सब कहीं स्तोत्र और सुभाषित श्लोक लिखे हुए हैं।

तीसरे चौकमें ५१ फुट ऊँचा श्वेत मानस्तम्भ बना हुआ है जो चबूतरोंकी तीन उन्नत कटनियोंपर अवस्थित है। ऊपर छतरीमें १७ इंची चार प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इसी प्रकार नीचे चारों दिशाओंमें चार लघु वेदिकाओंमें चन्द्रप्रभुकी श्वेत वर्ण मनोज्ञ मूर्तियाँ विराजमान है। मानस्तम्भका निर्माण लाडनूं निवासी सेठ सुखदेवजी गंगवालके पुत्रोंने कराया है। मानस्तम्भके चारों ओर रेलिंग है। रात्रिमें विद्युत् प्रकाशसे इसकी शोभा द्विगुणित हो जाती है।

इसी चौकमें दायीं ओर मुख्य मन्दिर है, जिसमें तेरह वेदियाँ हैं। ये सभी स्वतन्त्र जिनालय हैं और इनके ऊपर शिखर हैं। ये जिनालय क्रमशः निम्न प्रकार हैं—

१. श्री शान्तिनाथ जिनालय—तीन दरकी वेदीमें सवा फुटी पीतलकी शान्तिनाथ भगवान्की मूलनायक प्रतिमाके अतिरिक्त एक पाषाणकी तथा ४ धातुकी प्रतिमाएँ हैं। पीतलके एक-एक फुट ऊँचे दो मानस्तम्भ हैं जिनमें प्रतिमाएँ विराजमान हैं। वेदीका निर्माण श्रीमन्त सेठ शिखरचन्दजी सिवनीवालोंकी ओरसे वि. सं. १९६६ में हुआ।

२. श्री समवसरण मन्दिर—तीन उन्नत कटनियोंपर गन्धकुटी है। उसमें भगवान् पार्श्वनाथकी दस इंच अवगाहनावाली चार प्रतिमाएँ चारों दिशाओंमें हैं। इसके निर्माता बा. गिरधारीलाल चण्डीप्रसाद कलकत्ता हैं। इस मन्दिरका निर्माण संवत् १९९० में हुआ है।

३ श्री नेमिनाथ चैत्यालय—मूलनायक भगवान् नेमिनाथकी कृष्ण वर्ण पद्मासन तीन फुटी पाषाण प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त दो श्वेत पाषाणकी खड्गासन, दो पद्मासन तथा एक सिद्ध प्रतिमा है। इसका निर्माण पं. बलदेवदास शिवदेव फतहपुर (सीकरी) ने सं. १९९० में कराया।

---

१. जैन मित्र, वर्ष ५, अंक २, कार्तिक संवत् १९६० में प्रकाशित इकरारनामा। तथा जैन मित्र, वर्ष ५, अंक ७, चैत्र संवत् १९६०।

४. श्री पुष्पदन्त जिनालय—भगवान् पुष्पदन्तकी सं. १८७८ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण पद्मासन सवा तीन फुट अवगाहनावाली मूलनायक प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त नौ पीतलकी पद्मासन, एक खड्गासन, एक सिद्ध भगवान्‌की प्रतिमा और संगमरमरके फलकपर चौबीस चरण हैं। यह मन्दिर मुख्य मन्दिरके रूपमें माना जाता है। मन्दिरके किवाड़ चाँदीके हैं।

५. श्री अजितनाथ जिनालय—मुख्य मन्दिरके बायीं ओर यह मन्दिर है। इसमें अजितनाथ भगवान्‌की श्वेतवर्ण, पद्मासन दो फुटी प्रतिमा मूलनायक है। इसके अतिरिक्त छह पद्मासन, एक खड्गासन, दो पद्मावती देवीके ऊपर पार्श्वनाथकी तथा दो सिद्ध भगवान्‌की प्रतिमाएँ हैं।

६. श्रीपार्श्वनाथ मन्दिर—तीन महरावोंका गर्भगृह है। इसके स्तम्भ कलापूर्ण हैं। यहाँ लगातार तीन वेदियाँ हैं। बीचकी वेदीमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण पद्मासन लगभग छह फुट अवगाहना वाली अति मनोज्ञ प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा सं. १९९० में सेठ मोहनलाल किशनलाल सुजानगढ़वालोंकी ओर से की गयी है। बायीं ओर की वेदिकामें १४ और दायीं ओर की वेदिकामें ११ मूर्तियाँ विराजमान हैं। बायीं वेदीमें श्रेयान्सनाथकी तथा दायीं वेदीमें चन्द्रप्रभुकी मुख्य प्रतिमाएँ हैं। दोनों वेदियोंका निर्माण क्रमशः श्रीमती चम्पीदेवी धर्मपत्नी लाला आशाराम सहारनपुर और सेठ गनपतराय जगन्नाथ जीरावालोंने कराया है।

७. इस मन्दिरसे चलकर प्रवेश मण्डप है। फिर अठकोण मण्डपमें चार चबूतरोंपर बावन जिनालय और बीचमें पंचमेरुकी रचना की गयी है। यह रचना अत्यन्त आकर्षक और अद्भुत है। चारों दिशाओंमें १३-१३ चैत्यालय हैं जिनमें ८ रतिकर, अंजनगिरि और ४ दधिमुख हैं। पाँच मेरु मन्दिरोंमें प्रतिमाओंकी कुल संख्या ८० है।

८. श्रीशान्तिनाथ जिनालय—मुख्य मन्दिरकी दायीं ओर यह मन्दिर है। मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी प्रतिमा पद्मासन श्वेतवर्ण तीन फुट अवगाहनाकी है। इसके अतिरिक्त पाषाण और धातुकी १३ प्रतिमाएँ तथा २ पीतलके मानस्तम्भ हैं। मन्दिरका निर्माण श्रीमती जड़ावबाई धर्मपत्नी सेठ मदनचन्द कलकत्ताने सं. १९९० में कराया है।

९. श्रीनेमिनाथ जिनालय—भगवान् नेमिनाथकी कृष्ण वर्ण पद्मासन तीन फुटी प्रतिमाके अतिरिक्त दो पाषाणोंमें चौबीसी, ६ पाषाण प्रतिमाएँ और एक पीतलकी सिद्ध प्रतिमा है। जिनालयका निर्माण सेठ दयालबक्स गौरीलाल कलकत्ताने सं. १९९० में कराया है।

१०. इससे आगे एक विशाल सरस्वती भवन है।

११. श्री चन्द्रप्रभु जिनालय—समवसरण है जिसमें भगवान् चन्द्रप्रभुकी एक फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है। इसका निर्माण सेठ कुन्दनमल चन्दनमल सुजानगढ़ने सं. १९९० में कराया।

१२. भगवान् महावीरकी साढ़े सात फुटकी खड्गासन कृष्ण वर्ण प्रतिमा एक पाषाणपीठपर विराजमान है। वि. सं. १९९० में इसकी प्रतिष्ठा हुई। दीवालके सहारे तीन दिशाओंमें २४ तीर्थंकरोंकी खड्गासन समान अवगाहनावाली प्रतिमाएँ हैं। उनके आगे पीतलकी पद्मासन प्रतिमाएँ तथा ५ श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इस वेदीपर पाषाणकी ३२ और धातुकी ४० प्रतिमाएँ हैं।

१३. सहस्रकूट चैत्यालय—यह संगमरमरका लगभग चार फुट ऊँचा बना हुआ है। चैत्यालय दर्शनीय है। इतना मनोज्ञ सहस्रकूट चैत्यालय कदाचित् ही मिलेगा। इसका निर्माण सुजानगढ़के सेठ रूपचन्दके पुत्रोंने सं. १९९० में कराया है।

ये सभी मन्दिर तीन दिशाओंमें बने हुए हैं। मन्दिरमें विशाल प्रांगण है। मन्दिरके प्रवेश-द्वारमें क्षेत्र-कार्यालय है।

इन मन्दिरोंमें मूर्तियोंकी कुल संख्या ३४९ है, जिनमें २५२ पाषाणकी, ९२ धातुकी, ३ चाँदीकी, १ सोनेकी और १ सहस्रकूट चैत्यालय है। तेरहपन्थी कोठीकी ओरसे प्राइमरी स्कूल और औषधालय भी चल रहा है। यहाँ वार्षिक मेला कोई नहीं होता। माह सुदी ५ और फागुन सुदी पूर्णिमाको रथयात्रा होती है किन्तु यात्रियोंके अनुरोधपर समय-समयपर रथयात्रा निकलती रहती है। रथमें भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान होती है। इस कोठीमें ३००० यात्रियोंके लायक बर्तन रहते हैं।

बीसपन्थी कोठी

इस कोठीमें ३ अहाते और धर्मशालाओंमें कुल १६६ कमरे हैं। इसके मुख्य मन्दिरमें आठ शिखरबन्द जिनालय हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) एक गर्भगृहमें दो वेदियाँ हैं। पहली वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी मुख्य प्रतिमाके अतिरिक्त ८ पाषाण प्रतिमाएँ हैं। दूसरी वेदीमें भगवान् अजितनाथकी मुख्य प्रतिमाके अतिरिक्त ६ धातु पाषाणकी प्रतिमाएँ हैं।

(२) पार्श्वनाथ जिनालय—इसका निर्माण सेठ हरिभाई देवकरण शोलापुरने सं. १९३४ में कराया है। इसमें पार्श्वनाथ प्रतिमाके अतिरिक्त पीतलकी एक चौबीसी है।

(३) पुष्पदन्त जिनालय—इसमें मूलनायकके अतिरिक्त दो खड्गासन, तीन पद्मासन प्रतिमाएँ और अष्ट मंगल द्रव्य हैं।

(४) पार्श्वनाथ जिनालय—इसमें कृष्ण वर्णकी पार्श्वनाथ प्रतिमाके अतिरिक्त दो पाषाणकी, पीतलकी ४८ प्रतिमाएँ तथा पीतलके दो नन्दीश्वर जिनालय हैं।

(५) इसमें पाँच पाषाण प्रतिमाएँ हैं। १ मेरु और १ चरणयुगल है।

(६) विशाल सरस्वती भवन है।

(७) चाँदीकी वेदीमें ऊपरकी कटनीमें पीतलकी तीन, नीचे पीतलकी ४ प्रतिमाएँ और १ चौबीसी विराजमान है।

(८) आदिनाथकी कृष्ण वर्ण प्रतिमा तथा दो श्वेत वर्ण पाषाण प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

धर्मशालाके पीछेकी ओर उपवनमें दो जिनालय हैं, मुनियोंका समाधिस्थान बनाया जा रहा है। पाँच मुनियोंकी छतरी बनवाकर उनमें चरण विराजमान कर दिये गये हैं।

कोठीके सामने बाहुबली टेकड़ीपर एक विशाल मन्दिरका निर्माण हुआ है। यहाँ चौबीस मन्दरियाँ बनी हैं, जिनमें चौबीस तीर्थंकर विराजमान हैं। प्रांगणके बीचमें बाहुबली स्वामीकी श्वेत खड्गासन पचीस फुट अवगाहनावाली प्रतिमा विराजमान है। बाहुबली जिनालयके दायें और बायें गौतम स्वामी और पार्श्वनाथ भगवान्के जिनालय हैं तथा सामने उन्नत मानस्तम्भ है जो इक्कावन फुट ऊँचा है।

बाहुबली टेकरीसे आगे समवसरणकी नवीन भव्य रचना हो रही है। एक ७०×७२ फुटके हॉलमें मध्यमें गन्धकुटी, १२ कोठों आदिकी रचना हो चुकी है। अनुमानतः इस रचनापर २० लाख रुपये व्यय होनेकी सम्भावना है। इसके आगे सड़कके दूसरी ओर मुनियोंका समाधिस्थान बनाया गया है।

पर्वत-यात्राके मार्ग

सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए ऊपर जानेके दो मार्ग हैं—एक तो नीमिया घाट होकर और दूसरा मधुवनकी ओरसे। नीमिया घाट पर्वतके दक्षिणकी ओर है। यहाँ एक डाक बँगला, जैन

धर्मशाला बनी हुई है। इधरसे जानेपर पर्वतकी वन्दना उलटी पड़ती है और सबसे पहले पार्श्वनाथ टोंक पड़ती है।

नीमियाघाटकी ओरसे सम्मेदशिखरकी यात्रा करनेमें ६ मीलकी चढ़ाई पड़ती है। ऊपर टोंकोंकी वन्दना ६ मील और वापसी ६ मील। चढ़ाईमें १ मील तो मोटरसे जाने योग्य मार्ग है, शेष ५ मील पैदल यात्रा करनी होती है।

नीमियाघाटकी दिगम्बर जैन धर्मशाला और मन्दिर बीसपन्थी कोठीके अन्तर्गत है। मन्दिरकी व्यवस्था स्व. सखीचन्दजीके सुपुत्र श्री महावीर प्रसादजी करते हैं। पालगंजका दिगम्बर जैन मन्दिर भी बीसपन्थी कोठीके अन्तर्गत है। इसका जीर्णोद्धार लगभग १०० वर्ष पहले क्षुल्लक धर्मचन्द्रजीने कराया था। पहले सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए यात्री पालगंज होकर आते थे और पालगंजके राजासे सुफल बुलवाकर उसे भेंट देते थे। जब पालगंजके राजाका अभिषेक होता था, उस समय दिगम्बर जैन प्रतिमा वहाँ विराजमान करके उसका अभिषेक होता था। इस गन्धोदकको छिड़ककर राजाकी शुद्धि की जाती थी।

मधुवनकी ओरसे भी कुल मिलाकर १८ मीलकी यात्रा पड़ती है। किन्तु अधिकांश यात्री मधुवनकी ओरसे ही यात्रा करते हैं। इधरसे यात्रा करनेमें कई सुविधाएँ हैं। सबसे बड़ी सुविधा तो यह है कि इधर अन्य अनेक यात्रियोंका साथ मिल जाता है और इतनी लम्बी यात्रा अन्य साथियोंके कारण सुगम बन जाती है, इसके विपरीत नीमिया घाटकी ओरसे यात्रा करनेमें यात्रीको प्रायः अकेले ही चढ़ना-उतरना पड़ता है। इससे यात्रा दुरूह मालूम पड़ने लगती है।

१८ मीलकी यह लम्बी यात्रा किशोर, युवक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी कहीं सीढ़ियोंके द्वारा, कहीं कंकरीली-पथरीली राहसे तीर्थंकरोंका जय-घोष करते, स्तुति-विनती पढ़ते आनन्दपूर्वक कर लेते हैं। साँस फूल जाती है किन्तु मनमें क्षण-भरको भी खिन्नताके भाव नहीं आते। बल्कि अपनी धार्मिक श्रद्धा, उल्लास, उत्साह और प्रकृतिकी अनिन्द्य सुषमामें विभोर होकर यात्री यात्रा पूरी करके जब वापस अपने डेरेपर लौटता है तो उसे अनुभव होता है कि भगवान्‌की भक्तिमें अद्‌भुत शक्ति है, वरना इतनी लम्बी यात्रा कैसे सम्भव थी।

यात्रा सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ

यात्राके लिए रात्रिके दो बजे उठकर शौच और स्नानसे निवृत्त होकर तीन बजे चल देना चाहिए। स्नानके लिए दोनों कोठियोंमें गर्म पानीकी व्यवस्था रहती है। यदि शौच न जा सकें तो मार्गमें गन्धर्व नालेपर आकर शौच, स्नानसे निवृत्त हो लेना चाहिए। यात्राके लिए सर्दीका मौसम ही उपयुक्त रहता है। ग्रीष्म ऋतुमें गर्मीके कारण यात्रा करना कठिन होता है और बरसातमें सब जगह हरियाली, जीवोंकी उत्पत्ति और फिसलन हो जाती है। यात्राके समय धोती, बनियान और दुपट्टा ये वस्त्र धारण करना चाहिए। अधिक वस्त्र धारण करनेसे यात्रामें कष्ट होता है। कुछ दूर चलनेपर शरीरमें गर्मी आ जाती है और लौटते समय धूप असह्य मालूम पड़ने लगती है। इसलिए अधिक वस्त्र पहननेसे बड़ी असुविधा प्रतीत होने लगती है। छोटे बच्चोंके लिए भील (मजदूर) साथमें ले लेना चाहिए जो धर्मशालामें मिल जाते हैं। वृद्ध और अशक्त पुरुष और महिलाएँ डोली कर सकती हैं। अन्य लोगोंको लाठी ले लेनी चाहिए। उससे पर्वत चढ़ने-उतरनेमें बड़ी सहायता मिलती है। धर्मशालाओंमें इन सब चीजोंकी व्यवस्था रहती है। लालटेन लेनेसे चढ़ते समय बड़ी सुविधा रहती है।

इस तीर्थराजकी वन्दनाके लिए जाते समय न केवल शरीर और वस्त्र आदिकी बाह्य शुद्धि ही आवश्यक है, अपितु मन और वाणीकी पवित्रता भी आवश्यक है।

धर्मशालासे चलकर लगभग एक फर्लांगसे ही पर्वतकी चढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है। यहाँसे करीब तीन कि. मी. पर गन्धर्व नाला पड़ता है। यहींपर बीसपन्थी कोठीकी तरफसे एक धर्मशाला बनी है। लौटते समय यात्रियोंके लिए यहाँ जलपानका प्रबन्ध है। इसके बाद ऊपर पर्वतपर कहींपर भी मल-मूत्रादि नहीं करते। अतः जिन्हें मल-मूत्रादिकी बाधा हो, उन्हें यहीं निवृत्त हो लेना चाहिए। नालेसे कुछ दूर आगे जानेपर एक रास्ता सीधा नालेकी ओर और दूसरा पार्श्वनाथ टोंककी ओर जाता है। यहाँ सूचना-पट्ट लगा हुआ है। बायीं ओर जानेपर इसके आगे डेढ़ मीलपर सीता नाला मिलता है। यहाँ अपनी पूजन-सामग्री धो लेनी चाहिए और अभिषेकके लिए जल ले लेना चाहिए।

यहाँसे दो मीलकी कठिन चढ़ाई है। इसमें एक मील तक पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं जो दिगम्बर समाजकी ओरसे बनायी गयी हैं।

श्री सम्मेदशिखरका अद्भुत माहात्म्य

मधुवनसे जब सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए रवाना होते हैं, तब मनमें एक अद्भुत उल्लास, उमंग और तीर्थंकरोंके प्रति निश्छल भक्तिकी पुण्य भावना होती है। वहाँका सारा वातावरण ही भक्तिमय होता है। यात्रीके मनमें व्यक्त अथवा अव्यक्त रूपमें द्यानतरायजी की यह पंक्ति सदा अंकित रहती है—"एक बार वन्दै जो कोई। ताहि नरक-पशु गति नहिं होई॥" शास्त्रोंमें तो शिखरजीकी भावयुक्त वन्दना करनेका फल यह बताया है कि वह व्यक्ति फिर संसारमें अधिकसे अधिक ४९ भव धारण करनेके बाद मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह अतिशयोक्ति नहीं, किन्तु सत्य है। इसमें तर्क और सन्देहको कोई स्थान नहीं है। इसीलिए तो इसे तीर्थराजकी संज्ञा दी गयी है। भाव-भक्तिपूर्वक इसकी यात्रा और वन्दना करनेसे कोटि-कोटि जन्मोंके संचित कर्मोंका नाश हो जाता है।

बीस तीर्थंकरोंको इसी पर्वतपर अन्तिम योग-निरोध करके निर्वाण प्राप्त हुआ है। इनके अतिरिक्त यहाँसे असंख्य मुनियोंको मोक्ष प्राप्त हुआ है। यहाँसे मुक्ति प्राप्त करनेवाले मुनियोंकी निश्चित संख्या शास्त्रोंमें दी हुई है। कुल कूटों[1] की संख्या २० है जो बीस तीर्थंकरोंके निर्वाण-स्थान हैं।

---

१. इन कूटोंसे मोक्ष जानेवाले मुनियोंकी संख्या इस प्रकार है—(१) भ. कुन्थुनाथका ज्ञानधरकूट–९६ कोड़ाकोड़ी ९६३२९६७४२, (२) भ. नमिनाथका मित्रधरकूट–९०० कोड़ाकोड़ी १००४५०७९४२, (३) भ. अरनाथका नाटककूट–९९९९९९०००, (४) मल्लिनाथका सम्बलकूट–९६००००००, (५) भ. श्रेयान्सनाथका संकुलकूट–९६ कोड़ाकोड़ी ९६९६०९५४२, (६) भ. पुष्पदन्तका सुप्रभकूट–१ कोड़ाकोड़ी ९९०७४८०, (७) भ. पद्मप्रभका मोहनकूट–९९८७४२७९०, (८) भ. मुनिसुव्रतनाथका निर्जरकूट–९९ कोड़ाकोड़ी ९७०९००९९९, (९) भ. चन्द्रप्रभका ललितकूट–७८४७२८०८४०००, (१०) भ. शीतलनाथका विद्युत्वरकूट–१८ कोड़ाकोड़ी ४२३२४२९०५, (११) भ. अनन्तनाथका स्वयम्भूकूट–९६ कोड़ाकोड़ी ७०७०७०७००, (१२) भ. संभवनाथका धवलकूट–९ कोड़ाकोड़ी ७२४२५००, (१३) भ. अभिन्दननाथका आनन्दकूट–७२ कोड़ाकोड़ी ७०७०४२७००, (१४) भ. धर्मनाथका सुदत्तवरकूट–२९ कोड़ाकोड़ी १९०९९७९५, (१५) भ. सुमतिनाथका अविचलकूट–१ कोड़ाकोड़ी ८४७२८१७००, (१६) भ. शान्तिनाथका कुन्दप्रभकूट–९ कोड़ाकोड़ी ९०९९९, (१७) भ. सुपार्श्वनाका प्रभासकूट–४९ कोड़ाकोड़ी ८४७२०७७४२, (१८) भ. विमलनाथका सुवीरकूट–७० कोड़ाकोड़ी ६००६७४२, (१९) भ. अजितनाथका सिद्धवरकूट–१८०४४००००००, (२०) भ. पार्श्वनाथका स्वर्णभद्रकूट–८२८४४५७४२।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस क्षेत्रसे असंख्य मुनिजन अनादिकालसे समय-समयपर मुक्त हुए हैं। इसलिए यह क्षेत्र अत्यन्त पवित्र है, उसका कण-कण पवित्र है। यही कारण है कि इस तीर्थपर सिंह, व्याघ्र, हिरण आदि अनेकों जाति विरोधी और हिंसक प्राणी विचरते देखे गये हैं किन्तु कभी किसीने एक दूसरेपर आक्रमण किया हो या किसी यात्रीके साथ कभी कोई दुर्घटना घटी हो ऐसा कभी सुना नहीं गया। ऐसे अवसर कई बार आये हैं, जब रात्रिमें यात्राके लिए जानेवाले भाइयोंसे कोई यात्री पिछड़ गया और अकेला पड़ गया और राहमें उसे शेर मिल गया। किन्तु न यात्रीके मनमें भय और न शेरके मनमें क्रूरता। शेर एक ओर चला गया और यात्री अपनी राहपर आगे बढ़ गया। यह सब इस तीर्थराजका प्रभाव है। यहाँके वातावरणमें पवित्रता और शुचिताकी भावना सदैव बनी हुई रहती है।

तीर्थ-दर्शन

पहाड़पर ऊपर चढ़नेपर सर्वप्रथम गौतम स्वामीकी टोंक मिलती है। वहाँ एक कमरा भी बना हुआ है जो यात्रियोंके विश्रामके काम आता है। टोंकसे बायें हाथकी ओर मुड़कर पूर्व दिशाकी पन्द्रह टोंकोंकी वन्दना करनी चाहिए। ये टोंकें ही कूट कहलाती हैं। इन टोंकोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) कुन्थुनाथका ज्ञानधर कूट। (२) नमिनाथका मित्रधर कूट। (३) अरहनाथका नाटक कूट। (४) मल्लिनाथका सम्बल कूट। (५) श्रेयान्सनाथका संकुल कूट। (६) पुष्पदन्तका सुप्रभ कूट। (७) पद्मप्रभुका मोहन कूट। (८) मुनिसुव्रतनाथका निर्जर कूट। (९) चन्द्रप्रभुका ललित कूट। (१०) आदिनाथ.......... ....। (११) शीतलनाथका विद्युत् कूट। (१२) अनन्तनाथका स्वयम्भू कूट। (१३) सम्भवनाथका धवलदत्त कूट। (१४) वासुपूज्यका........ ...। यहाँपर पाँच चरण भी बने हुए हैं। (१५) अभिनन्दननाथका आनन्द कूट।

इन टोंकोंमें भगवान् चन्द्रप्रभुकी टोंक बहुत ऊँची है। ये सभी टोंकें पूर्व दिशामें हैं। इनमें तीर्थंकरोंके चरण विराजमान हैं। इन टोंकोंपर जानेके लिए मार्ग बने हुए हैं। तीर्थंकर-चरणोंपर जो लेख खुदे हुए हैं, उनके अनुसार ये सब सं. १८२५ में प्रतिष्ठित किये गये हैं।

(१) गौतम स्वामीकी टोंक—इसमें सफेद मार्बलके बत्तीस चरण विराजमान हैं। वेदीके बाहर श्याम पाषाणके चरण बने हुए हैं।

(२) कुन्थुनाथकी टोंक—इसमें काले पाषाणके पाँच इंच लम्बे चरण बने हुए हैं। इसके ऊपर निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण करा दिया गया है—

"संवत् १८२५ वर्षे माघ सुदी ३ गुरौ विराती गोत्रीय साह खुशालचन्द्रेन श्री कुन्थुनाथ पादुका कारापिता प्रतीप श्री तपागच्छ"

यहाँ एक कमरा (धर्मशाला) बना हुआ है।

श्री चन्द्रानन टोंक—इसमें श्वेत पाषाणके तीन अंगुलके चरण विराजमान हैं।

यहाँसे नेमिनाथ टोंकको जाते हुए एक चबूतरेपर सुधर्मा स्वामीके चरण बना दिये गये हैं।

श्री ऋषभानन टोंक—यहाँ काले पाषाणके चार अंगुल लम्बे चरण विराजमान हैं।

ये दोनों टोंक और सुधर्मा स्वामीके चरण अत्यन्त आधुनिक हैं और श्वेताम्बरोंने इन्हें स्थापित किया है।

(३) नेमिनाथ टोंक—इसमें काले पाषाणके बारह अंगुल लम्बे चरण विराजमान हैं। इनपर जो लेख उत्कीर्ण है, उसके अनुसार संवत् १८२५ में ये चरण विराजमान किये गये और संवत् १९३१ में इनका जीर्णोद्धार किया गया।

—इससे कुछ दूरपर एक चबूतरेपर पार्श्वनाथ भगवान्के गणधर वीरभद्रके चरण विराजमान हैं जो चौदह अंगुल के हैं।

(४) अरनाथ टोंक—इसमें कृष्ण पाषाणके दस अंगुल लम्बे चरण विराजमान हैं। संवत् १८२५ का लेख है जैसा कि ऊपर दिया गया है।

(५) मल्लिनाथ टोंक—इसमें काले पाषाणके दस अंगुल लम्बे चरण विराजमान हैं। संवत् १८२५ का लेख दिया हुआ है।

(६) श्रेयान्सनाथ टोंक—इसमें काले पाषाणके साढ़े सात इंचके चरण विराजमान हैं। संवत् १८२५ का लेख है।

(७) सुविधिनाथ टोंक—इसमें श्वेत वर्णके साढ़े सात इंचके चरण विराजमान हैं। संवत् १८२५ का लेख है।

(८) पद्मप्रभ टोंक—इसमें कृष्ण वर्णके साढ़े सात इंचके चरण विराजमान हैं। संवत् १८२५ का लेख है।

(९) मुनिसुव्रतनाथ टोंक—इसमें कृष्ण वर्णके साढ़े सात इंच लम्बे चरण विराजमान हैं। संवत् १८२५ का लेख है।

(१०) चन्द्रप्रभ टोंक—नौवीं टोंकसे यह टोंक काफी दूर पड़ती है तथा यह सबसे ऊँचाईपर स्थित है। इसमें कृष्ण पाषाणके साढ़े सात इंच लम्बे चरण विराजमान हैं। संवत् १८२५ का लेख अंकित है।

(११) आदिनाथ टोंक—चन्द्रप्रभ टोंकके लिए जिस मार्गसे गये थे, उसीसे लौटकर रास्तेमें जलमन्दिरको जानेका मार्ग मिलता है। उस मार्गसे जाकर आदिनाथ टोंक आती है। इसमें साढ़े सात इंच लम्बे श्वेत वर्णके चरण विराजमान हैं तथा संवत् १९४१ का लेख अंकित है।

(१२) शीतलनाथ टोंक—इसमें कृष्ण वर्णके साढ़े सात इंची चरण विराजमान हैं। संवत् १८२५ का लेख उत्कीर्ण है।

(१३) यह भी शीतलनाथ टोंक है। शेष विवरण पहलेकी भाँति है।

(१४) सम्भवनाथ टोंक—श्वेत चरण हैं, साढ़े सात इंच लम्बे हैं। उनपर संवत् १८२५ का लेख उत्कीर्ण है।

(१५) वासुपूज्य टोंक—इसमें पाँच श्वेत चरण हैं। लम्बाई सात इंच है तथा संवत् १९२६ का लेख है।

(१६) अभिनन्दननाथ टोंक—इसमें कृष्ण पाषाणके साढ़े सात इंच चरण विराजमान कर दिये गये हैं। संवत् १८२५ का लेख उत्कीर्ण है।

ये टोंकें वस्तुत: पन्द्रह ही हैं। शीतलनाथ स्वामीकी दो टोंकें बना दी गयी हैं।

भगवान् अभिनन्दन नाथकी टोंकसे उतरकर जल-मन्दिरमें जाते हैं। यहाँ एक विशाल मन्दिर बना हुआ है। उसके चारों ओर जल भरा हुआ है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी पद्मासन लगभग साढ़े तीन फुट अवगाहनावाली कृष्ण पाषाणकी प्रतिमा विराजमान है। इसके अगल-बगलमें ढाई फुट श्वेत पाषाणकी चार प्रतिमाएँ हैं। पाँचों प्रतिमाओंके सिंहासन पीठपर एक-से शिलालेख हैं, जिनका आशय यह है कि सेठ शुगलचन्द्र जगत्सेठने सन् १७६५ में ये प्रतिष्ठित करायीं। पहले

इस मन्दिरमें दिगम्बर वीतराग प्रतिमाएँ विराजमान थीं, जिनकी संख्या ९ थी और दोनों-दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदाय यहाँ दर्शन-पूजन करते थे। किन्तु धीरे-धीरे श्वेताम्बरोंने इस मन्दिरपर अपना अधिकार कर लिया और उन प्रतिमाओंको हटा दिया। यहाँ श्वेताम्बरोंकी दो धर्मशालाएँ भी बनी हुई हैं।

यहाँसे गौतम स्वामीकी टोंकपर पहुँचते हैं। इस स्थानसे चारों ओर रास्ते जाते हैं। बायीं ओर कुन्थुनाथ टोंकको, दायीं ओर पार्श्वनाथ मन्दिरको, सामने जल-मन्दिर और पीछे मधुबन-को। अतः यहाँ पश्चिम दिशाकी ओर जाकर नौ टोंकोंकी वन्दना करनी चाहिए। इन नौ टोंकों या कूटोंमें—१. धर्मनाथकी सुदत्तवर कूट, २. सुमतिनाथकी अविचल कूट, ३. शान्तिनाथकी शान्तिप्रभ कूट, ४. महावीरकी कूट, ५. सुपार्श्वनाथकी प्रभासकूट, ६. विमलनाथकी सुवीर कूट, ७. अजितनाथकी सिद्धवर कूट, ८. नमिनाथकी मित्रधर कूट, ९. पार्श्वनाथकी सुवर्णभद्र कूट है।

१. धर्मनाथ टोंक—इसमें कृष्ण पाषाणके साढ़े सात इंच लम्बे चरण विराजमान हैं। संवत् १८२५ का लेख चरणोंपर उत्कीर्ण है।

२. सुमतिनाथ टोंक—विवरण यथोक्त।

इनके निकट वारिषेणकी टोंक, पार्श्वनाथके गणधर यशोविजयके चरण एक चबूतरेपर बने हुए हैं। तथा वर्धमान टोंक बनी हुई है। यह सब नवीन निर्माण है।

३. शान्तिनाथ टोंक—विवरण यथोक्त।

४. महावीर स्वामी टोंक—इसमें श्वेत चरण विराजमान हैं। शेष विवरण वैसा ही जैसा अन्य टोंकोंका।

५. सुपार्श्वनाथ टोंक—चरणोंका वर्ण कृष्ण है। लम्बाई साढ़े सात इंच है तथा संवत् १८२५ का लेख अंकित है।

६. विमलनाथ टोंक—विवरण पूर्वोक्त।

७. अजितनाथ टोंक—श्वेत चरण, लम्बाई साढ़े सात इंच और सं. १८२५ का लेख।

८. नमिनाथ टोंक—इसमें ३ श्वेतचरण-युगल हैं, जिनकी अवगाहना ६ अंगुल है।

९. पार्श्वनाथ टोंक—यह अन्तिम और प्रमुख टोंक है। टोंकके स्थानपर अब एक सुन्दर जिनालय बन गया है जिसमें मण्डप और गर्भगृह हैं। गर्भगृहमें एक वेदीपर पार्श्वनाथ भगवान्के कृष्ण वर्णके चरण विराजमान हैं। चरण नौ अंगुलके हैं। इन चरणोंपर निम्नलिखित लेख अंकित कर दिया गया है—

"संवत् १९४९ मिति माघ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ बुधवारे श्री पार्श्वनाथ जिनस्य चरणन्यासः श्री संघा (यहाँ एक पंक्ति घिस दी गयी है) महेण श्री बृहत् खरतरगच्छीय जंगम-युगप्रधान भट्टारक श्रीजिनचन्द्र सूरिभिः प्रतिष्ठितः श्रीरस्तु।"

इन टोंकोंमें भगवान् पार्श्वनाथकी यह टोंक सबसे ऊँची है। इस टोंकपर खड़े होकर चारों ओरका मनोहर दृश्य देखते ही बनता है। मनमें एक अनिर्वचनीय प्रफुल्लता भर उठती है। यहाँसे उत्तरकी ओर अजय नदी दीख पड़ती है तो दक्षिणकी ओर दामोदर नदी। ऐसी आह्लादपूर्ण प्राकृतिक दृश्यावलीमें मन ध्यान, सामायिक और पूजा-स्तोत्रमें स्वतः निमग्न हो जाता है। यहाँ आकर सब यात्री पूजन करते हैं।

ये सभी टोंकें ऊँचाईमें आठ फुट और चौड़ाईमें भी इससे अधिक नहीं। इन टोंकोंके निर्माण-का प्रारम्भ काल जानना कठिन है, उसी प्रकार चरणोंकी स्थापना इस क्षेत्रपर सबसे पहले किसने

की, यह बताना भी कठिन है। वास्तवमें जहाँसे तीर्थंकर मोक्ष पधारे, उस स्थानको इन्द्रने चिह्नित कर दिया। उन्हीं स्थानोंपर टोंक और चरण बना दिये गये। यह भी कहा जाता है कि सम्राट् श्रेणिकने जीर्ण टोंकोंके स्थानपर भव्य टोंकोंका निर्माण कराया था। बादमें समय-समयपर भक्तोंने इन टोंकोंका जीर्णोद्धार कराया अथवा उनके स्थानपर नवीन टोंक बनवा दी गयी। यही बात चरणोंके सम्बन्धमें है। वर्तमान चरणोंपर जो लेख खुदे हुए हैं, उनका तात्पर्य इतना ही है कि अमुक व्यक्तिने प्राचीन चरणोंका जीर्णोद्धार किया अथवा प्राचीन चरणोंके स्थानपर नवीन चरण स्थापित कराये।

हमारी मान्यता है कि प्राचीन चरणोंके स्थानपर नवीन चरण स्थापित करके अथवा चरणोंपर लेख उत्कीर्ण कराके दाताओंने कुछ पुण्यका कार्य नहीं किया। उन्होंने उनकी प्राचीनताको मिटाकर इतिहास और पुरातत्त्वके साथ न्याय नहीं किया है। आज इन पुण्यलुब्ध दानी सज्जनोंके अतिशय उत्साहके कारण इस अनाद्यनिधन तीर्थराजपर प्राचीनताका कोई चिह्न तक नहीं बच पाया है। यहाँ सारे चरणों और टोंकोंका आधुनिकीकरण कर दिया गया है। दूसरी ओर राजगृहीमें अबतक प्राचीन चरण और मूर्तियाँ मिलती हैं जो लगभग दो डेढ़ हजार वर्षतक प्राचीन हैं।

शिखरजीपर शिकार वर्जित

जैन समाजकी अहिंसक भावनाके कारण सरकारकी ओरसे इस पर्वतपर किसी प्रकारका शिकार करना वर्जित कर दिया गया है और उसकी सूचना एक शिलापट्टपर लगा दी गयी है। जैन लोग इस तीर्थकी पवित्रताको अक्षुण्ण रखनेका पूर्ण प्रयत्न करते रहे हैं।

सन् १८५९ से १८६२ तक इस पहाड़पर ब्रिटिश सेनाओंके लिए एक सैनीटोरियम बनानेके लिए सरकारकी ओरसे जाँच होती रही थी। किन्तु सैनिकोंके रहनेसे यहाँ मांस पकाया जायेगा, इस आशंकासे जैन समाजने जबरदस्त विरोध किया और वह विचार छोड़ दिया गया।

शिखरजीका पहाड़ कई पीढ़ियोंसे पालगंजके जमींदारके अधिकारमें चला आ रहा था। उक्त घरानेके सभी लोग दिगम्बर जैन धर्मके अनुयायी थे। यहाँ तक कि दर्शन-पूजाके लिए उन्होंने अपने यहाँ दिगम्बर जैन मन्दिर भी बनवाया था जो अभी भी पालगंजमें विद्यमान है। उसकी प्रतिष्ठा श्री १०५ धर्मदासजी द्वारा वि. सं. १९३९ में हुई थी। वे शिखरजीकी रक्षा भी धर्मपूर्वक किया करते थे। लेकिन दुर्भाग्यवश कर्मचारियोंकी अयोग्यतासे जमींदार कर्जदार हो गये। उस अवसरपर दिगम्बर समाजकी ओरसे उन्हें बतौर कर्जा हजारों रुपये दिये गये। फिर भी उनकी स्टेट इनकमवर्ड हो गयी। उस समय इस इलाकेके डिप्टी कमिश्नर मि. केणी थे। उन्होंने शिखरजी पहाड़की मनोरमता और स्काटलैण्डकी पहाड़ियों-जैसी प्राकृतिक सुषमा देखकर ही उस समय अँगरेजोंके लिए एक सैनीटोरियम बनानेका विचार किया था। बादमें विरोध होनेपर वह विचार स्थगित कर दिया गया था।

यात्रासे वापसी

भगवान् पार्श्वनाथकी टोंकसे वापस लौटते समय विशेष कठिनाई नहीं होती। क्योंकि उतराई है और मार्ग ठीक है। बीच-बीचमें जंगलमें पगडण्डियाँ भी जाती हैं। यदि उनपर चला जाय तो लगभग डेढ़ मीलकी यात्रा बच जाती है। किन्तु पगडण्डियोंपर चलना बहुत कठिन है। रास्ता भूलनेका भी डर है। यदि भील (मजदूर) साथ हो तो फिर कोई डर नहीं। इस समय लाठीसे बड़ी सहायता मिलती है।

टोंकसे कुछ नीचे उतरकर महकमा जंगलातकी कोठी है। यहाँसे मधुवन ठीक पाँच मील है।

पहाड़का सारा वन महकमा जंगलातके अधीन है। इस सुरक्षित वनका क्षेत्रफल १६८५.९७ एकड़ है।

इस स्थानसे कुछ आगे चलकर दो मार्ग मिलते हैं—एक मार्ग मधुवनको और दूसरा नीमिया घाटको। तीन मील उतरनेपर आने और जानेके मार्ग मिलते हैं। इससे आगे केवल एक ही मार्ग है। इस यात्रामें प्रायः मध्याह्न हो जाता है। भूख और प्यासकी भी बाधा होने लगती है। अतः गन्धर्व नालेके पास तेरहपन्थी और बीसपन्थी कोठीमें नाश्तेकी कुछ व्यवस्था है। वहाँ जलपान करके वापस धर्मशाला लौटना चाहिए।

जो यात्री शिखरजीकी यात्राको जाते हैं, उनमें-से अधिकांश लोग कमसे कम तीन वन्दना करते हैं। पर जिनके विशेष शारीरिक शक्ति नहीं है अथवा अन्य मजबूरी है, वे केवल एक ही वन्दनामें सन्तोष कर लेते हैं। कुछ लोग इस पर्वतकी परिक्रमा भी देते हैं। इसमें प्रायः तीस मील-की यात्रा पड़ती है।

यहाँकी वन्दना करनेवालोंको पालगंज और गिरीडीहके मन्दिरोंके दर्शन भी करने चाहिए। पालगंज यहाँसे लगभग १० मील है। वहाँ किलेमें प्राचीन मन्दिर है। उसमें भूगर्भसे निकली हुई भगवान् महावीरकी अत्यन्त प्राचीन मूर्ति है। इसी प्रकार गिरीडीहमें दो मन्दिर हैं, एक तो बीसपन्थी कोठी मधुवनकी ओरसे बनवाया हुआ है और दूसरा तेरापन्थी पंचायती मन्दिरसे लगी हुई धर्मशाला भी है।

भद्रिकापुरी और कुलुहापहाड़

कल्याणक क्षेत्र

भद्रिकापुरी अथवा भद्दलपुरमें दसवें तीर्थंकर शीतलनाथके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए थे। अतः वह कल्याणक क्षेत्र है। भगवान् माता सुनन्दाके गर्भमें चैत्र कृष्णा अष्टमी-को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें अवतरित हुए।[1]

श्री 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें भगवान् शीतलनाथके जन्म और उनके माता-पिताके सम्बन्ध-में निम्नलिखित सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं—

माघस्स वारसीए पुव्वासाढासु किण्हपक्खम्मि।
सीयलसामी दिढरह णंदाहि भद्दिले जादो ॥४।५३५॥

अर्थात् शीतलनाथ स्वामी भद्दलपुर (भद्रिकापुरी) में पिता दृढ़रथ और माता नन्दासे माघ कृष्णा द्वादशीके दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

ये इक्ष्वाकुवंशी थे। जब ये यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए तो इनका विवाह हो गया और पिताने दीक्षाधारण करनेसे पूर्व इनका राज्याभिषेक कर दिया। वे प्रजाका न्याय-नीतिपूर्वक पालन करने लगे। इस प्रकार राज्य करते हुए जब काफी समय व्यतीत हो गया, तब एक दिन वे वन-विहारके लिए गये। वहाँ उन्होंने देखा कि सब जगह पाला छा रहा है। किन्तु कुछ समय पश्चात् देखा कि पाला समाप्त हो गया है। इससे उनके मनमें यह भावना जागृत हुई कि, "प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण

---

१. उत्तर पुराण ५६।२६-२७।

परिवर्तनशील है। संसार विनश्वर है। अबतक इस संसारमें मेरा सारा आयोजन और प्रयोजन इस विनश्वरके लिए ही था। किन्तु मैंने अपने अविनश्वर आत्म-तत्त्वके लिए कभी कुछ नहीं किया। अब मैं संसारका प्रयोजन छोड़कर आत्माका प्रयोजन सिद्ध करूँगा।"

इस प्रकारके चिन्तनसे उनके मनमें संसार, शरीर और भोगोंसे विराग हो गया। वे अपने पुत्रका राजतिलक करके शुक्रप्रभा नामक पालकीमें बैठकर चल दिये। देवों, इन्द्रों और मनुष्योंका अपार-समूह साथमें था। वे सब भगवान्का दीक्षा कल्याणक महोत्सव मनाने आये थे। तिलोयपण्णत्तिमें लिखा है—

माघस्स किण्हवारसि अवरण्हे मूलभम्मि पव्वज्जा।
गहिया य सहेदुवणे सीयलदेवेण तदियउववासे ॥ ४।६५२

—शीतलनाथ स्वामीने माघ कृष्णा द्वादशीके दिन अपराह्ण समयमें मूल नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ प्रव्रज्या (दीक्षा) ग्रहण की।

भगवान् यथासमय पारणाके लिए अरिष्टनगर गये। वहाँके राजा पुनर्वसुने नवधा भक्तिपूर्वक भगवान्का प्रतिग्रह किया और खीरसे पारणा कराया। भगवान् छद्मस्थ दशामें तीन वर्ष रहे। इस अवधिमें वे विभिन्न स्थानोंमें विहार करते रहे। विहार करते हुए वे पुनः सहेतुक वनमें पधारे और दो दिनका उपवास करके वे बेलके वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर बैठ गये। वहाँ उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इस सम्बन्धमें 'तिलोयपण्णत्ति' का उद्धरण देना उपयोगी रहेगा—

पुस्सस्स किण्ह चोद्दसि पुव्वासाढे दिणस्स पच्छिमए।
सीयलजिणस्स जादं अणंतणाणं सहेदुगम्मि वणे ॥ ४।६८७

अर्थात् शीतलनाथ तीर्थंकरको पौष कृष्णा चतुर्दशीको दिनके पश्चिम भागमें पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रके रहते सहेतुक वन में अनन्त ज्ञान उत्पन्न हुआ।

सहेतुक वन भद्दलपुर या भद्रिकापुरीके ही बाह्य भागमें स्थित उद्यान अथवा वन था। इसलिए भगवान्के चारों कल्याणक—गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान भद्दलपुरमें ही मनाये गये। ऐसी धारणा प्रचलित है कि भद्दलपुर बिहार प्रान्तके हजारीबाग जिलेमें है और इसका नाम आजकल भोंदलगाँव है। इसका सहेतुक वन वर्तमान कुलुहा पहाड़ है।

भद्दलपुरकी खोज

भद्दलपुर कहाँ था, इसके सम्बन्धमें इतिहासकारोंमें काफी मतभेद है। कुछ लोग विदिशा (मध्य प्रदेश) के निकट उदयगिरिको शीतलनाथ भगवान्की जन्म-भूमि मानते हैं। इस मान्यताके क्या स्रोत अथवा आधार है, यह स्पष्ट नहीं हो पाया। दूसरा मत भोंदलगाँव (बिहार) के पक्षमें है।

जैन पुराणों और कथाग्रन्थोंमें भद्रिकनगरका वर्णन कई स्थानोंपर आया है। वसुदेव और देवकीके तीन युगलोंमें उत्पन्न हुए देवदत्त, देवपालित, मुनिदत्त, मुनिपालित, शत्रुघ्न और जितशत्रु नामक छह पुत्रोंका पालन भद्रिकनगरके श्रेष्ठी सुप्रतिष्ठ और उसकी पत्नी अयलाने किया था और ये छहों पुत्र गिरनारसे मुक्त हुए।

किन्तु भद्रिकनगर कहाँ अवस्थित था, इस सम्बन्धमें किसी पुराण या कथाग्रन्थमें कोई संकेत नहीं दिया गया। उत्तरपुराणकारने अवश्य लिखा है कि भद्रपुर मलयदेशमें स्थित था। मलयदेश दक्षिणापथमें था। लेकिन दक्षिणापथमें किसी भी तीर्थंकरका जन्म नहीं हुआ है। अतः

१. दक्षिणापथदेशस्थे मलये विषयान्तिके ॥ हरिषेण कथाकोष—कथा ५६, श्लोक ११।

लगता है, उत्तरपुराणकार भद्रपुरके सम्बन्धमें निर्भ्रान्त नहीं थे। किन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि किसी आचार्यने भद्रिकनगरके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञातव्य नहीं दिया। सम्भवतः इसका कारण यह रहा हो कि जैन पुराणों और कथाग्रन्थोंके निर्माण-काल तक भद्रिकनगरके सम्बन्धमें लोगोंको जानकारी नहीं रही थी।

इस शताब्दीमें सर विलियम हण्टर, डॉ. स्टेन आदि इतिहासकारोंने कुलुहा पर्वत तथा उसके आसपास निरीक्षण और शोध करके यह सिद्ध किया कि कुलुहा पर्वत जैन तीर्थ है तथा उसका निकटवर्ती भोंदलगाँव (भद्दिलग्राम) ही शीतलनाथ तीर्थंकरकी जन्मभूमि है।

इस सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेपर ज्ञात हुआ कि भद्दियपुरसे मिलते-जुलते नामके कई ग्राम उधर हैं। डोभीसे लगभग आठ कि. मी. दूर भदियागाँव है। चौपारनके पास भद्दिय और भदेजा नामक गाँव हैं। हटवरियाके पास भोंदलगाँव है। भोंदलगाँवके अतिरिक्त हमें अन्य किसी ग्राममें प्राचीनताके चिह्न नहीं मिले। भोंदलगाँव और उसके आसपासमें प्रचुर परिणाममें जैन सामग्री बिखरी हुई पड़ी है। अनेक मूर्तियोंको तो लोग उठा ले गये। यहाँके और निकटवर्ती प्रदेशका सूक्ष्म निरीक्षण करनेके पश्चात् यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि भोंदलगाँव ही शीतलनाथकी जन्मभूमि है और कुलुहा पहाड़ ही उनका दीक्षा वन है।

कुलुहा पहाड़

यह पहाड़ बिहार प्रान्तके हजारीबाग जिलेमें चतरा तहसीलमें है। यहाँ पहुँचनेके लिए ग्राण्ड ट्रंक रोडपर डोभीसे या चतरासे सड़क है। चतराके लिए हजारीबागसे ग्राण्ड ट्रंक रोडपर स्थित चौपारनसे सड़कें हैं। इनके अतिरिक्त गयासे शेरघाटी, हण्टरगंज और हटवरिया होकर भी मार्ग हैं। किन्तु गयासे हण्टरगंज, घँघरी होकर मार्ग सीधा है। गयासे डोभी बत्तीस कि. मी., डोभीसे हण्टरगंज १५ कि. मी., हण्टरगंजसे घँघरी ८ कि मी. है। यहाँ तक सड़क पक्की है। घँघरीसे दन्तार गाँव कच्ची सड़कसे ८ कि. मी. है। दन्तार गाँवमें जैन धर्मशाला बनी हुई जिसमें बारह कमरे हैं, चैत्यालय है, पक्का कुआँ है। घँघरीसे यहाँ तकके लिए रिक्शे मिलते हैं। पक्की सड़कपर बसें मिलती हैं।

यह सघन वृक्षों और हरियालीसे आच्छादित, समुद्री सतहसे १५९५ फुट ऊँचा पहाड़ है। पहाड़पर जानेके दो मार्ग हैं—पश्चिमकी ओरसे हटवरिया होकर अथवा पूर्वकी ओरसे दन्तार गाँवसे घाटीमें होकर। इसी पर्वतपर भगवान् शीतलनाथके दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक मनाये गये थे। इसके निकट ही (लगभग पांच-छह मील) भोंदलगाँव है। इसकी पहचान भद्रिलपुरसे की गयी है। इस गाँव (नगर) में शीतलनाथ भगवान्के गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे। सन् १८९९ में प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता श्री नन्दलाल डेने यहाँका निरीक्षण करके इस पर्वतपर स्थित मन्दिरों और मूर्तियोंको बौद्ध लिखा था। किन्तु दो वर्ष बाद मार्च १९०१ में डॉ. एम. ए. स्टनने 'Indian Antiquary' में एक लेख देकर यह सिद्ध किया था कि यहाँके सारे मन्दिर और मूर्तियाँ वास्तवमें जैन हैं और यह पर्वत जैन तीर्थंकर शीतलनाथकी पवित्र जन्मभूमि है। तभीसे यह स्थान कुछ विशेष प्रसिद्धिमें आया है। बादमें विशेष अनुसन्धान करनेपर ज्ञात हुआ कि न केवल उस पर्वत-पर ही जैन मूर्तियाँ और मन्दिर हैं, अपितु आसपास जैसे सतगवाँ, कुन्दकिला, बलरामपुर, बोरम, दारिका, छर्रा, डलमा, कतरासगढ़, पवनपुर, पाकबीर, तेलकुपीमें भी अनेक प्राचीन जैन मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। अब श्री नन्दलाल डे के इस विचारको भी कोई स्थान नहीं रह गया है कि कुलुहा पहाड़ ही मंकुल पर्वत है, जहाँ बुद्धने अपना छठा चातुर्मास किया था। वास्तवमें

कुलुहा पहाड़से बुद्धका कभी कोई सम्बन्ध रहा हो, ऐसा कोई उल्लेख बौद्ध साहित्यमें उपलब्ध नहीं होता। न यहाँ बुद्धसे सम्बन्धित कोई मूर्ति, मन्दिर या स्तूप ही उपलब्ध हुए हैं।

क्षेत्र-दर्शन

दन्तार गाँवसे १ मील चलनेपर पहाड़की चढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है। यह चढ़ाई लगभग २ मील पड़ती है। सीढ़ियाँ तो नहीं बनी हैं किन्तु पगडण्डी अवश्य बनी हुई है। भक्त हिन्दू स्त्रियों ने पगडण्डीके दोनों ओरकी शिलाओंपर पुत्रप्राप्तिके लिए सिन्दूर पोत दिया है। यद्यपि उन्होंने यह कार्य भक्ति-भावनासे किया होगा, किन्तु इसका लाभ यहाँ आनेवाले सभी यात्रियोंको मिलता है। सिन्दूर से चिह्नित शिलाएँ मार्ग-दर्शिकाका काम करती हैं, इनके कारण यात्री मार्गसे भटक नहीं सकता।

पहाड़पर चढ़नेपर कुछ दूर चलकर एक शिलाके नीचे एक देवीकी खण्डित मूर्ति रखी हुई है। इस मूर्तिका मुँह और बाँह खण्डित है। मस्तकके ऊपर खण्डित चक्र बना हुआ है तथा अधो-भागमें एक ओर वृषभ बना हुआ है। देवीकी भुजाएँ खण्डित होनेके कारण यह तो पता नहीं चलता कि देवी हाथोंमें क्या धारण किये हुए है। किन्तु चक्र और वृषभके कारण इस निर्णयपर पहुँचनेमें कोई बाधा प्रतीत नहीं होती कि यह मूर्ति प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवकी यक्षिणी चक्रेश्वरी देवीकी है। चक्रेश्वरी देवीकी पहचान चक्रसे की जाती है तथा वृषभ आद्य तीर्थंकरका परिचायक चिह्न है।

४०० फुट ऊपर चढ़नेपर पहाड़ी ईंटोंका एक ध्वस्त प्राकार और दक्षिण द्वार मिलता है। यह प्राकार ५३ एकड़में फैला हुआ है। द्वार भी बिलकुल ध्वस्त पड़ा हुआ है। द्वारपर द्वारपाल बना हुआ है। एक गोमुखाकार पाषाण शिलाको ही द्वारपालकी संज्ञा दे दी गयी है। इस प्राकारमें बुर्जियों और कंगूरोंके चिह्न भी मिलते हैं। इस प्राकारको चारों ओर घूमकर देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक दुर्ग होगा। किन्हीं अज्ञात सदियोंमें इस तीर्थ की ख्याति चारों ओर थी। आततायियों और धर्मद्वेषी व्यक्तियोंसे इस तीर्थके मन्दिरों और मूर्तियोंकी सुरक्षाके लिए देवगढ़के समान यहाँपर भी दुर्गकी रचना की गयी होगी। सम्भवतः यह दुर्ग लम्बे काल तक अपने उद्देश्यमें सफल भी रहा हो। किन्तु कालके क्रूर प्रहारोंने न इस दुर्गको छोड़ा, न मन्दिरोंपर दया की। सभी नष्ट हो गये। केवल कुछ मूर्तियाँ अबतक सुरक्षित हैं।

कुछ आगे चलनेपर बायीं ओर एक विशाल पद्म सरोवर बना हुआ है। यह ३०० गज लम्बा, ६० गज चौड़ा और ३० फुट गहरा है। इस सरोवरके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि इस सरोवरमें आद्य शंकराचार्यके कालमें अनेक जैन स्मारकों और मूर्तियोंको डुबो दिया गया था। यह भी कहा जाता है कि इस सरोवरमें अनेक खण्डित और अखण्डित जैन मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। ये सब बातें कहाँ तक सत्य हैं, यह नहीं कहा जा सकता।

दायीं ओर कुछ ऊँचाईपर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है। मन्दिर छोटा ही है और शिखरबन्द है। इसमें केवल गर्भगृह है जो पौने नौ फुट लम्बा और पौने आठ फुट चौड़ा है। वेदीके स्थानपर दीवालमें ही भगवान् पार्श्वनाथकी सलेटी वर्णकी बाईस इंची पद्मासन प्रतिमा प्लास्टरसे जड़ी हुई है। मूर्तिके ऊपर सर्प-फण है। मूर्ति काफी प्राचीन है और काफी घिस चुकी है। मूर्तिपर लेख और श्रीवत्स नहीं है। मूर्तिकी रचना-शैलीसे यह ईसाकी दूसरी-तीसरी शताब्दीकी प्रतीत होती है। यह सामनेवाले पद्म सरोवरमें मिली थी। ऐसा लगता है, सुरक्षाकी दृष्टिसे ही प्लास्टर द्वारा इसे दीवालमें जड़ दिया गया है। इस मन्दिरके निर्माणका काल वि. सं.

१६८२ बताया जाता है। मन्दिरके चारों ओर चबूतरा है तथा मन्दिरके सामने खुला मैदान और एक बड़ा चबूतरा है। सम्भवतः किसी प्राचीन जैन मन्दिरके अवशेषोंको एकत्रित करके यह चबूतरा बना दिया गया है।

इस मन्दिरके निकट लगभग ८० गज उत्तर-पूर्वमें ऊँचाईपर एक चौरस चट्टान है। इस चट्टानके ऊपर चारों दिशाओंमें आठ छेद हैं तथा मध्यमें एक छेद है। ऐसा लगता है, ये छेद मण्डपके खम्भोंके लिए बनाये गये होंगे। मध्यमें हवनकुण्ड-जैसा गड्ढा है। इन छेदों और गड्ढों-को देखकर सर्वसाधारणमें इसका नाम 'मढ़वा मढ़ई' प्रचलित हो गया है। कहा जाता है कि प्राचीन कालमें यहाँ विवाह-मण्डप बनाया जाता था और विवाह सम्पन्न होते थे। गड्ढेके पास नागरी लिपिमें तीन पंक्तियोंका एक शिलालेख है जो काफी घिस गया है। उसमें संवत् १३३— स्पष्ट पढ़नेमें आता है। इस कथित मण्डप-भूमिके निकट किसी प्रकोष्ठके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। इसके सामने एक चबूतरा बना हुआ है।

किन्तु सूक्ष्म अवलोकन करनेपर 'मढ़वा मढ़ई' की मान्यता काल्पनिक जान पड़ती है। इससे मिली हुई भूमिसे दुर्ग-प्राचीर जाती है। यह स्थान पर्याप्त ऊँचाईपर है। उपर्युक्त प्रकोष्ठ दुर्गका पर्यवेक्षण प्रकोष्ठ रहा होगा, जहाँ बैठकर प्रहरी सैनिक शत्रुकी गतिविधि का निरीक्षण करते होंगे।

कुछ विद्वानोंकी धारणा इससे भिन्न है। उनकी मान्यता है कि जब पार्श्वनाथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई थी, उस समय मन्दिरके सामनेकी भूमि समतल की गयी थी तथा धार्मिक विधि-विधान सम्पन्न करनेके लिए प्रस्तुत शिलाके ऊपर भूमिको समतल किया गया था। प्रकोष्ठ सामग्री रखनेके लिए बनाया गया था तथा विधान मण्डप इस शिलातलपर बनाया गया था। ये छेद उसी मण्डप-के निमित्त बनाये गये थे। उक्त गड्ढा वस्तुतः हवनकुण्डके काम आया था अथवा इसी उद्देश्यसे बनाया गया था। चबूतरा त्यागीजनों अथवा सम्मान्य दर्शकोंके बैठनेके लिए था।

उक्त मान्यता तथ्योंके अधिक निकट और तर्कसंगत प्रतीत होती है। यदि इस मान्यताको स्वीकार कर लिया जाये तो पार्श्वनाथ जैन मन्दिरका निर्माण-काल १७वीं शताब्दीके स्थानपर १३-१४वीं शताब्दी स्वीकार करना होगा। अथवा यह भी सम्भव हो सकता है कि इस शिला-भूमिके ऊपर कोई जैन मन्दिर रहा हो। उसकी प्रतिष्ठाके समय यहाँ मण्डप बना हो। ऐसी दशामें चबूतरा और प्रकोष्ठ उसी मन्दिरके अवशेष हो सकते हैं।

यहाँ जैन मन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई; इस धारणाका समर्थन कोलेश्वरी देवीके मन्दिरके निकट बनी हुई पाण्डुक शिलासे भी होता है।

इस शिलाकी रचनाको देखकर जैन बन्धु इसे कोटिशिला कहते हैं। कुछ बन्धु इस भूमिको समवसरण भूमि कहते हैं। इन मान्यताओंका आधार क्या है, यह अस्पष्ट है। कोटिशिला तो शास्त्रानुसार कलिंग देशमें थी। जहाँ तक दूसरी मान्यताका सम्बन्ध है, सम्भवतः यह कल्पना यहाँ की समतल भूमिको देखकर की गयी है। जैन वाङ्मयके अनुसार तीर्थंकरोंका समवसरण पृथ्वीतलपर नहीं, बल्कि आकाशमें देवों द्वारा निर्मित होता है। इसलिए समवसरण रचनाके लिए पृथ्वीका समतल होना कतई आवश्यक नहीं है। यही कारण है कि राजगृही आदिके पर्वत—जहाँ तीर्थंकर प्रभुका समवसरण अनेक बार लगा, समतल नहीं हैं।

प्रस्तुत शिलासे नीचे उतरकर फिर कुछ चढ़ाई आती है। कुछ दूर चलनेपर खुली हुई

गुफाकी खड़ी दीवालमें, जो पहाड़को काटकर बनायी गयी है, तीर्थंकरोंकी १० पद्मासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मूर्तियोंका आकार १० इंच है। प्रत्येक मूर्तिके नीचे उस तीर्थंकरका लांछन भी बना हुआ है। प्रत्येक मूर्तिके दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हुए हैं। यहाँ का पाषाण हलका पीला है। लांछनोंके अनुसार क्रमशः (बायेंसे दायेंको) (१) ऋषभदेव, (२) महावीर, (३) अजितनाथ, (४) सम्भवनाथ, (५) अभिनन्दननाथ, (६) सुमतिनाथ, (७) पद्मप्रभ, (८) सुपार्श्वनाथ, (९) चन्द्रप्रभ और (१०) पुष्पदन्त तीर्थंकरोंकी ये प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमाओंके ऊपर नागरी लिपिमें लेख भी उत्कीर्ण हैं जो काफी अस्पष्ट हैं।

इस पार्वत्य दीवालके शिरोभागपर विशाल आकारकी बेडौल शिलाएँ रखी हुई हैं। इस दीवालकी प्रतिमाओंके आगे पाँच फुट ऊँची शिला है। दोनोंके मध्य ढाई फुट चौड़ा मार्ग है जो एकदम चिकना और ढालू है। इसके ऊपर पैर कठिनाईसे जमते हैं।

भ्रमवश हिन्दू लोग इन मूर्तियोंको दशावतार अथवा पाँच दातमुक्त पाँच पाण्डवोंकी मूर्तियाँ कहते हैं। किन्तु आसन और चिह्नोंके कारण ये जैन तीर्थंकरोंकी प्रतिमा प्रमाणित होती हैं।

इस दीवालसे आगे एक मोड़ आता है, जिसके बगलकी दीवालपर ५ पद्मासन और ५ खड्गासन जैन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इन सभी मूर्तियोंके दोनों ओर चमरवाहक खड़े हुए हैं तथा मूर्तियोंके नीचे तीर्थंकर-चिह्न हैं। पद्मासन मूर्तियाँ एक फुटकी तथा खड्गासन मूर्तियाँ सवा दो फुट अवगाहनाकी हैं। चमरवाहकोंकी ऊँचाई पाँच इंच है। चिह्नोंके अनुसार पद्मासन प्रतिमाएँ क्रमशः (१) शीतलनाथ, (२) श्रेयान्सनाथ, (३) वासुपूज्य, (४) विमलनाथ, (५) अनन्तनाथकी हैं। इसी प्रकार खड्गासन प्रतिमाएँ क्रमशः (१) वासुपूज्य, (२) मल्लिनाथ, (३) नेमिनाथ, (४) पार्श्वनाथ और (५) महावीर इन पंचबालयति तीर्थंकरोंकी हैं। इन मूर्तियोंके ऊपर ६ फुटी शिला छज्जेकी तरह छायी हुई है। इन्हें भी हिन्दू भूलसे पाँच पाण्डवोंकी मूर्तियाँ कहते हैं।

इस गुहा मन्दिरसे निकलकर पगडण्डीसे इस पहाड़ीपर कुछ चढ़कर सामने ही पैंतीस-चालीस फुट ऊँची एक विशाल गोलाकार शिला दिखाई देती है। स्थानीय लोग इसे आकाशलोचन अथवा आकाश अवलोकन कहते हैं। यह एकदम सपाट चिकनी है। चढ़नेके लिए शिलामें एक ओर बने हुए दो-तीन इंची कुछ गड्ढोंको छोड़कर अन्य कोई साधन नहीं है। इन गड्ढोंके सहारे चढ़ना खतरेसे खाली नहीं है। शिलाके शीर्ष भागपर चरण-चिह्न बने हुए हैं जो आठ इंच लम्बे और ३ इंच चौड़े हैं। इन प्राचीन चरण-चिह्नोंसे विश्वास होता है कि यहाँसे किन्हीं मुनिराजको निर्वाण प्राप्त हुआ था। उन्हींकी स्मृतिमें इन चरण-चिह्नोंकी स्थापना की गयी। किन मुनिराजोंने तपश्चरण कर यह मुक्ति प्राप्त की है, जैन शास्त्रोंसे यह ज्ञात नहीं हो सका। सम्भवतः इसका कारण यह हो कि कुलुहा यह नाम प्राचीन नहीं है, पहले इसका नाम कुछ और होगा। जैन शास्त्रोंमें कोल्लाग, कोल्लगिरि आदि नाम मिलते हैं जो इससे मिलते-जुलते हैं। अस्तु, इसका नाम प्राचीन कालमें कुछ भी रहा हो, किन्तु इस पर्वतपर बने हुए जैन मन्दिरों, मूर्तियों, प्राकृतिक गुफाओं एवं विजन एकान्त शान्ति, पर्वत और अरण्य इन सबको देखकर यह विश्वास होता है कि प्राचीन कालमें इस पर्वतपर आकर मुनिजन तपस्या किया करते होंगे।

यहाँसे उतरकर सीधा कोलेश्वरी देवीके मन्दिरको मार्ग गया है। इसी मार्गपर कुछ दूर नीचेकी ओर चलनेपर एक गुफाके सामने गोलाकार शिलापर पाण्डुक शिला बनी हुई है।

उसके मध्यमें सिंहासन तथा चारों ओर नालियाँ बनी हुई हैं। एक कोनेपर पाषाण-पात्र बना हुआ है जो सम्भवतः गन्धोदक एकत्रित करनेके लिए होगा।

इससे कुछ आगे बढ़नेपर सरोवरके तटपर कोलेश्वरी देवीका मन्दिर मिलता है। मन्दिरमें गर्भगृह और मण्डप है। मन्दिरके ऊपर छोटा-सा शिखर है। मन्दिर छोटा ही है। इसमें कोलेश्वरी देवीको मूर्ति विराजमान है। मूर्ति सवा दो फुट ऊँची है और चतुर्भुजी है। वह महिषपर खड़ी हुई है। उसके एक हाथमें खड्ग, दूसरेमें ढाल, तीसरेमें त्रिशूल और चौथेमें मछली है। इस मन्दिरकी रचनाको ध्यानपूर्वक देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह मन्दिर मूलतः जैन मन्दिर था। इस मन्दिरमें चन्द्रप्रभ भगवान्‌की मूर्ति रही होगी। उस तीर्थंकर मूर्तिके साथ उनके सेवक-सेविका श्याम यक्ष और ज्वालामालिनी यक्षिणीकी मूर्ति होगी। तीर्थंकर-मूर्ति और यक्ष-मूर्ति कहाँ गयीं, यह ज्ञात नहीं हो सका। सम्भवतः दोनों मूर्तियाँ खण्डित करके तालाबमें फेंक दी गयीं और केवल यक्षिणीकी मूर्तिको यहाँ रखा गया, जिसका नाम पर्वतकी अधिष्ठात्री देवीके रूपमें कोलेश्वरी देवी नाम दे दिया गया। यह भी सम्भव है कि मन्दिरकी तीर्थंकर मूर्तियोंको हटाकर कोलेश्वरी देवीकी मूर्ति कहींसे लाकर यहाँ विराजमान कर दी गयी। डॉ. एम. ए. स्टेनने स्पष्ट लिखा है, "यह एक दिगम्बर जैन तीर्थस्थान है तथा कोलेश्वरी देवीकी नवीन मूर्तिके अतिरिक्त पर्वतपर प्राप्त प्रत्येक पाषाण-रचना तथा पर्वतमें निर्मित प्रतिमाएँ दिगम्बर जैन तीर्थंकरोंकी हैं।" वस्तुतः इस पर्वत पर जैन धर्मसे सम्बन्धित मन्दिरों और मूर्तियोंके अतिरिक्त अन्य किसी धर्मका कोई मन्दिर या मूर्ति नहीं थी। कोलेश्वरी देवीकी स्थापना और मान्यता अधिक प्राचीन नहीं है। जिस कालमें जैन लोग अपने इस तीर्थके प्रति उदासीन हो गये, उसी कालमें जैन मन्दिरमें तीर्थंकर मूर्तियोंके स्थानपर कोलेश्वरी देवी आविर्भूत हुई।

इस मन्दिरमें दर्शन करनेके लिए हिन्दू लोग आते रहते हैं। वसन्त पंचमी और आश्विन चैत्रके नवरात्रोंमें यहाँ हिन्दू यात्रियोंकी विशेष भीड़ होती है। पहले यहाँ देवीके सामने ८-१० हजार बकरोंकी बलि दी जाती थी। जैन समाज गयाने कई वर्ष तक इन मेलोंके अवसरपर कैम्प लगाकर जीव-हिंसाके विरुद्ध प्रचार किया, सामूहिक और व्यक्तिगत रूपसे लोगोंको समझाया। इससे लोगोंके मनमें जीव-हिंसाके प्रति घृणा उत्पन्न हुई, उन्हें बलि-प्रथाकी निस्सारताका अनुभव हुआ फलतः जीव-हिंसा बिलकुल बन्द हो गयी। अब तो कोई-कोई व्यक्ति देवीके सामने मनौती मनाते हुए बलि देनेका संकल्प (भावना) करता है, और पर्वतकी तलहटीमें बहनेवाली नदीके किनारे अथवा जंगलमें एकान्तमें यह कार्य करता है। ऐसी घटनाएँ भी अब नाममात्रको ही रह गयी हैं।

कोलेश्वरी देवीके मन्दिरसे कुछ आगे जाकर ऊपर चढ़कर शिलाओंके कारण बनी हुई ४ × ३ फुटकी एक छोटी-सी प्राकृतिक गुफामें पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी श्याम वर्ण पद्मासन मूर्ति रखी हुई है। मूर्तिकी अवगाहना—आसनको छोड़कर २ फुट है। मूर्तिके सिरपर नौ फणावली सुशोभित है। इनमें एक फण टूटा हुआ है। चरण-चौकीपर सर्पका लांछन अंकित है। मूर्ति अनुमानतः १२वीं शताब्दीकी है। गुफाके सामने पाषाणशिला रखी है। दोनोंके मध्य एक सँकरा मार्ग है। यह मूर्ति यहाँके किसी प्राचीन जैन मन्दिरकी है। पण्डोंने इसे यहाँ लाकर रख दिया है। हिन्दू लोग इसपर सिन्दूरका लेप करते हैं, जिससे यह विरूप हो गयी है तथा इसे 'द्वारपाल' के नामसे प्रसिद्ध कर रखा है। पाषाणशिलाके पीछे एक छोटी-सी प्राकृतिक गुफा बनी हुई है।

यहाँसे सरोवरके किनारे होते हुए उसी मार्गसे वापस लौटते हैं जिस मार्गसे आये थे।

जैन पुरातत्त्व

यहाँ पार्श्वनाथ मन्दिर, गुहा मन्दिर, पाण्डुक शिला और कोलेश्वरी देवीके मन्दिरमें शिलालेख हैं। पहले पहाड़पर अनेक खण्डित-अखण्डित जैन मूर्तियाँ इधर-उधर पड़ी हुई थीं। कई पुरातत्त्ववेत्ताओंने उन्हें स्वयं देखा था। इन पुरातत्त्ववेत्ताओंको सरोवरमें सहस्रकूट चैत्यालयका एक खण्डित भाग तथा एक आठ इंची मूर्ति मिली थी। सहस्रकूट चैत्यालयके उस खण्डित भागमें ढाई-ढाई इंचकी ५० जैन प्रतिमाएँ उकेरी हुई थीं। उक्त चैत्यालयका भग्न भाग कोलेश्वरी देवीके मन्दिरके पास पड़ा हुआ था। सरोवरके निकट एक वृक्षके नीचे डेढ़ फुटकी दो जैन मूर्तियाँ थीं। ये दोनों ही खण्डित थीं। एक मूर्तिके पादपीठपर संवत् १४४३ अंकित था। ये मूर्तियाँ कहाँ गयीं, यह ज्ञात नहीं हो सका। पहाड़ पर स्थित वर्तमान जैन मन्दिरका नाम सर्वे सैटिलमेण्टके नक्शेमें पार्श्वनाथ मन्दिर दिया है तथा मन्दिरके बाहर जो चबूतरा है, उसे पार्श्वनाथ चबूतरा माना है।



बंग जनपद

कलकत्ता

कलकत्ता

कलकत्ताका इतिहास

कलकत्ता भारतका सबसे बड़ा शहर है। इसकी गणना संसारके विशालतम शहरोंमें की जाती है। जहाँ आज यह शहर आबाद है, वहाँ आजसे लगभग ३०० वर्ष पहले भयानक जंगल था, जहाँ जहरीले साँप, 'रायल बंगाल टाइगर' और दुर्दान्त डाकू रहते थे। पहले यहाँ जंगलों और दलदली जमीनमें थोड़ी-थोड़ी दूरपर कुछ गाँव बसे हुए थे। सम्राट् अकबरके कालमें यह सप्तग्राम जिलेके अन्तर्गत था। सप्तग्राम अर्थात् आधुनिक हुगली ही उस समय व्यापारका मुख्य केन्द्र था। यह शहर सरस्वती नदीके किनारे बसा हुआ था। पुर्तगाली, स्पेनी, डच, फ्रांसीसी और अँगरेज व्यापारी यहीं अपना माल बेचते और यहाँसे माल खरीदते थे। किन्तु यह शहर समुद्रसे दूर था। सरस्वती नदी भी सूख जाती थी। इसलिए बड़ी नावें और जहाज यहाँ आसानीसे नहीं पहुँच पाती थीं। अतः उन्हें यह जरूरत अनुभव हो रही थी कि कोई ऐसा स्थान व्यापारिक केन्द्र बने, जो समुद्रके निकट हो। इस प्रकार सप्तग्रामसे व्यापारका बाजार हटकर सूतानटी, गोविन्दपुर और कालिका क्षेत्रमें आ गया। विदेशी व्यापारियोंके साथ व्यवसाय करनेवाले मुख्यतः बैसाख और सेठ थे। वे भी सप्तग्रामसे हटकर सूतानटी और गोविन्दपुरमें आकर बस गये। सूतानटी इन सबमें सम्पन्न था। यहाँ मुख्यतः कपड़े और सूतका व्यापार होता था। सूतानटीका अर्थ ही सूतका बण्डल है। बैसाख और सेठोंने यहीं अपनी आढ़तें खोल लीं। यह सूतानटी आजकल कलकत्तेका बड़ा बाजार और बाग बाजार है, गोविन्दपुर आजका डलहौजी स्क्वायर, हेस्टिंग्स और फोर्ट विलियम है तथा कालिका क्षेत्र आजका कालीघाट, भवानीपुर है। इन तीनों बड़े-बड़े ग्रामोंको मिलाकर जाव चारनाक नामक अँगरेजने आधुनिक कलकत्ता शहरकी नींव रखी। सम्भवतः उसने कभी यह कल्पना भी न की होगी कि जंगलों और दलदलोंसे घिरा हुआ यह क्षेत्र कभी संसारके आधुनिक बड़े शहरोंमें गिना जायेगा। इसके साथ यह भी सत्य है कि संसारका कोई अन्य शहर इतने अल्प कालमें इतना अधिक विकसित नहीं हुआ। जंगलों और दलदलोंसे विकसित होकर यह तीन शताब्दियोंके अल्पकालमें आधुनिक सुविधा-सम्पन्न नगर बना, इसलिए इसके पीछे कोई विशेष सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नहीं है।

इसके बादका इतिहास अँगरेजोंकी मक्कारी और कूटनीतिकी काली स्याहीसे लिखा गया। सन् १७५७ में मीरजाफरकी गद्दारीके कारण प्लासीके मैदानमें नवाब सिराजुद्दौलाकी सेना पराजित हो गयी। मीरजाफरके लड़के मीरनने नवाबको कत्ल कर दिया। अँगरेजोंने मीरजाफरको बिहार-बंगाल-उड़ीसाका नवाब बना दिया और सन्धि करके उससे अनेक प्रकारकी व्यापारिक सहूलियतें प्राप्त कर लीं। इसके साथ ही हर्जानेके रूपमें खूब धन वसूल किया। सन् १७५७ में ही ईस्ट इण्डिया कम्पनीने क्लाइवको बंगाल स्थित अँगरेजी राज्यका प्रथम गवर्नर नियुक्त किया। सन् १७६७ में अँगरेजोंने दिल्लीके मुगल सम्राट्से बिहार-बंगाल-उड़ीसाकी मालगुजारी वसूल करनेका अधिकार प्राप्त कर लिया। तब अँगरेजोंने जनताको बुरी तरह लूटना प्रारम्भ कर दिया।

फलतः सन् १७७० में बंगालमें इतना भयानक अकाल पड़ा कि यहाँकी एक तिहाई जनता भूखसे मर गयी। जनता मरती रही, अँगरेज ऐश करते रहे। धीरे-धीरे भारतमें अँगरेजोंका प्रभुत्व बढ़ता गया और उसके साथ ही कलकत्तेका वैभव भी। अँगरेजोंके लिए व्यापारिक दृष्टिसे इसका बड़ा महत्त्व था, यह उनका माल खपानेके लिए एक प्रमुख बाजार बन गया था।

सन् १८३५ में शिक्षाका माध्यम अँगरेजी भाषा बना दी गयी। सन् १८५४ में कलकत्तेके पास रिसड़ामें भारतकी पहली जूट मिल खुली। सन् १८५० में कलकत्तेसे रानीगंज तक भारतकी प्रथम रेलवे लाइन निकली। सन् १८५१ मे तार लाइनें डाली गयीं। सन् १८५९ में जमींदोज नाले (सीवर) बने। सन् १८८० में यहाँपर घोड़ोंसे खींची जानेवाली प्रथम ट्राम गाड़ी चली। सर्वप्रथम यह विपिन विहारो गांगुली स्ट्रीटपर चली, अगले वर्ष यह हेअर स्ट्रीट तक बढ़ा दी गयी। सन् १८८१ में यहाँ टेलीफोन चालू हुआ। इस प्रकार कलकत्ता दिनोंदिन विकसित होता हुआ देशका सबसे बड़ा शहर बन गया। अब तो यह ९ मीलकी लम्बाई और १४ मीलकी चौड़ाईमें बसा हुआ है। इस शहरका क्षेत्रफल ३७ वर्ग मील और इसकी जनसंख्या ७० लाखसे ऊपर है। यहाँ देशके सभी प्रदेशों और संसारके सभी देशोंके लोग रहते हैं। इस शहरके अधिकांश लोगोंकी भाषा हिन्दी है, बँगला नहीं।

यहाँपर राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, चित्तरंजनदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और सुभाषचन्द्र बोस-जैसी महान् विभूतियोंने जन्म लिया।

इस कलकत्ता शहरकी आयु केवल ३०० वर्षकी है। इतने समयमें इस शहरने कितने ही राजनैतिक परिवर्तन देखे हैं। मुगलोंकी सत्ता समाप्त हुई, नवाबी सल्तनत खत्म हुई, मराठोंका प्रभाव जाता रहा, अँगरजो शासनकी पाताल तक गहरी नींव उखड़ गयी और अब वह स्वतन्त्र है, जैसे कि सारा देश स्वतन्त्र है।

इस शहरका नाम कलकत्ता कैसे पड़ा, यह विवादास्पद है। किन्तु इसका बहुसम्मत समाधान यह है कि हिन्दू पुराणोंमें ५१ शक्तिपीठ बताये गये हैं। उनमें एक कालिका क्षेत्र भी है जो यहाँकी कालीदेवीके कारण है। कालिका क्षेत्र ही बोलचालमें अपभ्रंश होते-होते कालिका खेत > कालीखेत > कलकत्ता हो गया।

दर्शनीय स्थान

कलकत्तामें निम्नलिखित दर्शनीय स्थान हैं—

महाजाति सदन (नेताजी सुभाषचन्द्र बोसका स्मारक), मल्लिक कोठी (दुर्लभ मूर्तियों आदिका संग्रह), रवीन्द्र भारती (रवीन्द्रनाथ ठाकुरका स्मारक), वेकुण्ठनाथ मन्दिर, बेलगछियाका पारसनाथ मन्दिर (दिगम्बर जैन मन्दिर), बद्रीदास मुकीमका जैन मन्दिर (श्वेताम्बर जैन मन्दिर), बोस इन्स्टीच्यूट (जगदीशचन्द्र बोस द्वारा स्थापित वैज्ञानिक संस्थान जहाँ यन्त्रों द्वारा पेड़-पौधोंमें जीव होनेको प्रमाणित किया जाता है), विनय बादल दिनेश बाग (जहाँ बंगाल सरकारका प्रमुख कार्यालय राइटर्स बिल्डिंग है), राजभवन (बंगाल गवर्नरका निवास-स्थान), राज्य विधान सभा, शहीद मीनार (एक सौ पैंसठ फुट ऊँची), म्यूजियम (जादूघर या अजायबघर), बिड़ला प्लेनेटोरियम (नक्षत्रगृह), विक्टोरिया मेमोरियल, चिड़ियाघर, नेशनल लाइब्रेरी, काली मन्दिर, नेताजी भवन, हवड़ाका पुल, वोटैनीकल गार्डन, बेलूर मठ (स्वामी रामकृष्ण परमहंसका स्मारक), जहाजकोठी आदि।

कलकत्ताके दिगम्बर जैन मन्दिर

यहाँ प्रमुख दिगम्बर जैन मन्दिर चार हैं—(१) श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, (२) नया मन्दिर, (३) पुरानी बाड़ीका दिगम्बर जैन मन्दिर, (४) बेलगछियाका पारसनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर।

बड़ा मन्दिर—यह सर हरीराम गोयनका स्ट्रीट और दिगम्बर जैन टैम्पिल स्ट्रीटके कोनेपर दाहिनी ओर है। यह चावलपट्टीमें है। यह मन्दिर सन् १८२६ में श्री हुलासीलाल अग्रवालने बनवाकर समाजके सुपुर्द कर दिया तथा श्री हरसहायको उसकी व्यवस्थाका भार सौंप दिया। श्री हुलासीलालके कोई सन्तान नहीं थी। इसी मन्दिरसे प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमाको ऐतिहासिक रथयात्रा निकलती है, जो कई प्रमुख मार्गोंसे होती हुई बेलगछिया उपवनको जाती है। इसे देखनेके लिए लाखों जैन और जैनेतर स्त्री-पुरुष आते हैं। उस दिन अधिकतर बाजार बन्द रहते हैं। आजकल इस मन्दिरमें जीर्णोद्धार कार्य चल रहा है।

नया मन्दिर—यह मन्दिर दिगम्बर जैन भवनके निकट ही है। इसका निर्माण १९०४-५ ई. में हुआ था। नीचेके भागमें सभाभवन है। ऊपरके भागमें दो वेदियाँ हैं। मुख्य वेदी उत्तराभिमुखी है। दूसरी वेदी गन्धकुटीकी शैलीकी है और उसमें चारों दिशाओंकी ओर मुख किये जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

पुरानी बाड़ीका मन्दिर—यह ३५ नं. वृजदुलाल स्ट्रीटमें अवस्थित है। पहले यहाँ श्री हुलासीलाल रहा करते थे। उन्होंने इसमें एक चैत्यालय बनवा रखा था। उनके स्वर्गवासके पश्चात् इसे मन्दिरका रूप दे दिया गया। यह मन्दिर भी दर्शनीय है।

बेलगछियाका पारसनाथ मन्दिर—यह दिगम्बर जैन भवनसे लगभग ४ मील है। इसे श्री हरसहायके वंशज श्री छन्नूलाल जौहरीने सन् १८९७ में खरीदा था और सन् १९१९ में समाजके नाम कर दिया। तबसे काफी धन लगाकर इसे अत्यन्त दर्शनीय बना दिया है। मन्दिरके चारों ओर ऊँची चहारदीवारी है। फाटकमें घुसते ही विस्तृत भूखण्डमें उद्यान है और मध्यमें पक्का सरोवर है। उसके पश्चात् मन्दिर है। मन्दिर दो मंजिल है। नीचेके भागमें सभाभवन है। ऊपर एक वेदी है। दीवारोंपर पौराणिक भित्तिचित्र बने हुए हैं। यह कलकत्ताके दर्शनीय स्थानोंमें-से है।

इन मन्दिरोंके अतिरिक्त पाँच चैत्यालय हैं—(१) स्व. घनश्यामदास सरावगी (५१ बड़तल्ला स्ट्रीटमें पहले तल्लेपर है)। (२) ढाका पट्टी नं. २१ हंस पुकुर फर्स्ट लेनमें श्री राखालदास जैनका बनवाया हुआ तीसरे तल्लेपर है। (३) राजेन्द्रकुमार कुँवरजीका चैत्यालय रवीन्द्र सरणीपर है। (४) जैन निलय, ९ अलीपुर पार्क प्लेसमें साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा निर्मित चैत्यालय। (५) जैनकुंजमें हाइड रोड खिदिरपुरपर स्थित यह चैत्यालय सेठ बैजनाथजी सरावगीने बनवाया था।

इण्डियन म्यूजियम

इण्डियन म्यूजियम जवाहरलाल नेहरू रोडपर स्थित है। इसमें ऐतिहासिक महत्त्वकी दुर्लभ चीजें तथा उत्खननमें प्राप्त सामग्री संग्रहीत है। यहाँ प्रस्तर युग, लौहयुग आदि विभिन्न कालोंके हथियार, वेषभूषा, पक्षियों और जानवरोंकी दुर्लभ नस्लोंके ढाँचे (अस्थिपंजर), मिस्र देशसे लायी हुई हजारों वर्ष पूर्वको ममी आदि विचित्र और पुरातन वस्तुओंका अच्छा संग्रह है।

इसमें पाषाण और धातुकी कुछ प्राचीन जैन मूर्तियाँ भी सुरक्षित हैं। उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

यहाँ पाषाणकी केवल चार जैन तीर्थंकर मूर्तियाँ देखनेमें आयीं।

(१) एक सवा तीन फुटके शिलाफलकमें चौबीस तीर्थंकरोंकी कायोत्सर्गासनमें प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। मध्यमें चन्द्रप्रभ तीर्थंकर पद्मासनमें विराजमान हैं। यह प्रतिमा ९वीं शताब्दीकी है।

(२) पार्श्वनाथकी कुछ हलके-भूरे-लाल पाषाणकी यह प्रतिमा तीन फुट ग्यारह इंचकी है। यह पद्मासनमें विराजमान है। यह प्रतिमा गुप्तयुगमें ५वीं शताब्दीकी स्वीकार की गयी है। ध्यानस्थ पार्श्वनाथके ऊपर संवर देव द्वारा किये गये उपसर्गका दृश्य अंकित है।

(३) एक तीर्थंकर प्रतिमा, जिसकी चरण-चौकी पर कोई लांछन और लेख नहीं है। अतः यह निश्चित नहीं हो सका है कि यह किस तीर्थंकरकी प्रतिमा है। इसकी अवगाहना साढ़े चार फुट है तथा पद्मासनमें स्थित है। इसका काल ९-१०वीं शताब्दी प्रतीत होता है।

(४) एक पाषाण फलकमें भगवान् महावीरकी माता त्रिशला लेटी हुई हैं और तीर्थंकरके गर्भावतरणके सूचक १६ स्वप्न देखती हुई सुख निद्राका आनन्द ले रही हैं। फलकमें सोलह स्वप्न अंकित हैं। यह मूर्ति गुप्त शैलीमें ईसाकी पाँचवीं शताब्दीकी अनुमानित की जाती है। यह मूर्ति महास्थान (बँगला देश) से उपलब्ध हुई थी। कुछ लोग भ्रमवश इसे मायादेवीके स्वप्नदर्शनकी मूर्ति मानते हैं। किन्तु वस्तुतः है यह त्रिशलाका स्वप्न-दर्शन।

इसी प्रकार धातुकी ५ जैन प्रतिमाएँ देखनेमें आयीं। इनमें दो पद्मासन हैं और शेष तीन खड्गासन हैं। पाँचों ही प्रतिमाएँ जैन तीर्थंकरोंकी हैं और प्रायः १०वीं शताब्दीकी हैं। इनमें १ प्रतिमा मध्य प्रदेशसे, ३ उड़ीसासे तथा १ प्रतिमा बंगालसे उपलब्ध हुई है।



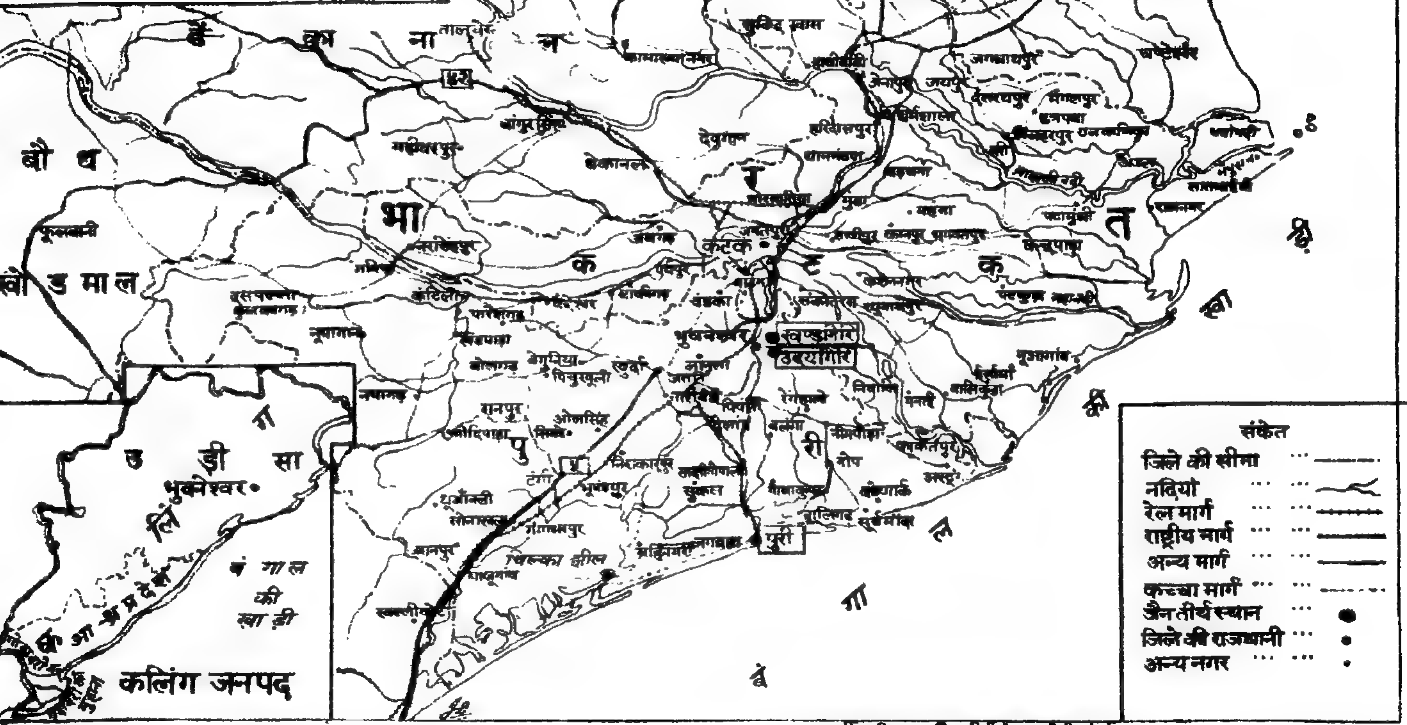
कलिंग जनपद

कटक

भुवनेश्वर

खण्डगिरि-उदयगिरि

पुरी



© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

१. भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित।

२. समुद्र में भारत का जलप्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गये बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

३. इस मानचित्र में दिये गये नामों का अक्षर विन्यास विभिन्न स्रोतों से लिया गया है।

कटक

कटक उत्कल प्रदेशकी प्राचीन राजधानी है। कटकके तीन ओर नदियाँ हैं—महानदी, कुआँखाई और काठजोड़ी। यह हावड़ा जंकशनसे पुरीको जानेवाली रेलवे लाइनपर ४०१ कि. मी. दूर है। स्टेशनसे लगभग ५ कि. मी. दूर चौधरी बाजारमें जैन भवन है। यहाँ ठहरनेकी अच्छी सुविधा है। इसीके पृष्ठ भागमें प्राचीन चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर है। यह बड़ा मन्दिर कहलाता है तथा इस मन्दिरसे लगभग १०० गज दूर इसी बाजारमें दिगम्बर जैन चैत्यालय है।

चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर

इसमें दो गर्भगृह हैं। दोनोंमें एक-एक वेदी है। बायीं ओरकी वेदीमें कुल ६ पाषाण प्रतिमाएँ हैं तथा मुख्य वेदीमें १६ पाषाणकी एवं ९ धातुकी प्रतिमाएँ हैं।

बायीं ओरकी वेदी—इस वेदीमें स्थित सभी प्रतिमाएँ प्राचीन हैं। कहते हैं, ये प्रतिमाएँ खण्डगिरिसे यहाँ लायी गयी थीं। इन प्रतिमाओंका प्रतिष्ठाकाल अनुमानतः १०वीं शताब्दी है। सभी प्रतिमाएँ सलेटी या श्याम वर्णकी हैं। सभी एक ही कालकी प्रतीत होती हैं।

(बायेंसे दायेंको) (१) एक सवा दो फुटी शिलाफलकमें खड्गासन पार्श्वनाथ प्रतिमा है। अधोभागमें एक स्त्री लेटी हुई है। उसके दोनों ओर हाथ जोड़े हुए दो भक्त खड़े हैं। सम्भवतः यह तीर्थंकर माताकी मूर्ति है। पार्श्वनाथ मूर्तिके दोनों ओर मध्य भागमें चमरवाहक इन्द्र चमर लिये हुए खड़े हैं। इनके दोनों ओर ३ उपाध्याय या आचार्य उपदेश मुद्रामें विराजमान हैं। भगवान्के सिरपर पाँच फणावलियाँ हैं। इनके ऊपर तीन छत्र सुशोभित हैं। सर्प-कुण्डली पीठको घेरे हुए है। कुण्डली और फणावली अत्यन्त भव्य जान पड़ती हैं। मूर्तिके शिरोभागपर दोनों ओर हाथोंमें पारिजात पुष्पमालाएँ लिये हुए आकाशचारी गन्धर्व युगल दीख पड़ते हैं।

(२) एक पाषाणफलकमें पद्मप्रभु भगवान्की सवा तीन फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। चरण-चौकीपर मूर्तिलेख है। दोनों ओर चमरेन्द्र हैं। भगवान्के सिरपर छत्र है। ऊपर दोनों कोनोंपर पुष्प विकीर्ण करते हुए आकाशगामी गन्धर्व दीख पड़ते हैं।

(३) सवा दो फुट अवगाहनावाले शिलाफलकमें पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी खड्गासन मूर्ति है। यह मूर्ति वैसी ही है जैसी कि मूर्ति नं. १ है। अन्तर केवल अधोभागमें है। इसमें पादपीठके नीचे बायीं ओर भक्त स्त्री-पुरुष बद्धांजलि बैठे हुए हैं तथा एक नागपुरुष दण्ड लिये हुए खड़ा है। दायीं ओर एक नागपुरुष हाथ जोड़े हुए खड़ा है।

(४) एक शिलाफलकमें सवा दो फुट अवगाहनावाली श्याम वर्ण पार्श्वनाथकी खड्गासन मूर्ति है। पादपीठपर सर्पलांछन है। मूर्तिके दोनों बाजुओंमें चमरेन्द्र खड़े हैं। उनके ऊपर बायीं ओर चार उपाध्याय मूर्तियाँ हैं तथा दायीं ओर तीन उपाध्याय मूर्तियाँ और एक कीचक है। भगवान्के सिरपर सप्त फणावलियाँ सुशोभित हैं। फलकके शिरोभागपर दोनों कोनोंमें केवल हाथ दिखाई पड़ते हैं। बायीं ओरके हाथोंमें दुन्दुभि है तथा दायीं ओरके हाथोंमें झाँझ है।

(५) एक सोलह इंची पाषाणफलकमें दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। बायीं ओरकी मूर्ति भगवान् आदिनाथकी तथा दायीं ओरकी मूर्ति भगवान् महावीरकी है। दोनोंके जटाजूट दर्शनीय हैं।

(६) एक शिलाफलकमें डेढ़ फुट अवगाहनावाले पार्श्वनाथ तीर्थंकर ध्यानमुद्रामें खड़े हैं। दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। उनके ऊपर दो-दो पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं जो सम्भवतः वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ और महावीर तीर्थंकरोंकी हैं। अतः निश्चय ही यह फलक पंच-बालयति तीर्थंकरोंका है। पार्श्वनाथ भगवान्के सिरके दोनों ओर पुष्पमाल लिये गन्धर्व हैं। कोनोंपर हाथोंमें दुन्दुभि और झांझ दीख पड़ते हैं।

मुख्य वेदी—इसका गर्भगृह पहलेकी अपेक्षा बड़ा है। इस वेदीपर १३ पाषाण प्रतिमाएँ और १ धातु प्रतिमा प्राचीन है। मूलनायक भगवान् चन्द्रप्रभकी आठ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। यह श्याम वर्णकी है। इस वेदीकी उल्लेखनीय प्रतिमाओंमें दो पाषाण चैत्य हैं, जिनपर चारों दिशाओंमें चार प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। एक शिलाफलकमें ऊपरकी पंक्तिमें मध्यमें आदिनाथकी पद्मासन मूर्ति है। उसके दोनों ओर चार-चार खड्गासन मूर्तियां हैं। इनके नीचे आठ पंक्तियोंमें खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियां बनी हुई हैं। प्रत्येक पंक्तिमें १९-१९ मूर्तियां हैं। यह सहस्रकूट जिनचैत्य कहलाता है।

एक अन्य पाषाणफलकमें आदिनाथ और महावीर अर्थात् आद्य और अन्तिम तीर्थंकरकी मूर्ति है। शान्तिनाथ भगवान्की एक मूर्ति डेढ़ फुट अवगाहनावाली है। इसके पादपीठपर हरिण-का चिह्न है तथा इसका भामण्डल दर्शनीय है।

पीतलकी एक मूर्ति सत्तरह इंचकी है। यह ऋषभदेवकी खड्गासन मूर्ति है। इसका जटा-जूट अत्यन्त भव्य है।

मन्दिर प्राचीन है। दोनों गर्भगृहोंके ऊपर विशाल शिखर बने हुए हैं। ये द्रविड़ कलाके उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। दोनों शिखर पृथक् शैलीके हैं। इनको देखकर कलाकारकी दक्षता और अद्भुत कल्पनाके दर्शन होते हैं।

भानपुर

यह एक छोटा-सा गांव है। यह कटकसे भुवनेश्वर जानेवाली सड़कपर कटकसे ८ कि. मी. दूर है। यहां भूगर्भसे प्राप्त पाँच धातु प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। नकुलभट्ट खण्डायत नामक जिस व्यक्तिको ये प्रतिमाएँ कुआँखाई नदीमें मिट्टी खोदते हुए मिली थीं, उन्होंने इस सम्बन्धमें जो कुछ बताया, इस प्रकार है—"मेरी आर्थिक स्थिति पहले अत्यन्त खराब थी। दाल-भातका खर्च कठिनाईसे निकलता था। आजसे पाँच वर्ष पहले बाँध भरनेके लिए मैंने मिट्टीका ठेका लिया था। एक दिन मैं कुआँखाई नदीमें मिट्टी खोद रहा था, तभी मुझे खुदाईके समय ये मूर्तियाँ मिलीं। मिट्टीमें-से निकलकर भगवान्ने मुझे दर्शन दिये हैं, इस बातसे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मैं हर्षमें अपनी गरीबीका दुख भी भूल गया। मैंने लाकर भगवान्की मूर्तियोंको एक पेड़के नीचे विराजमान कर दिया। कामके समयके अतिरिक्त मेरा सारा समय भगवान्की सेवा-अर्चामें ही जाता था। भगवान् जब स्वयं ही मेरे घर पधारे थे, तो मुझे फिर कमी किस बातकी रहती। भगवान्की कृपा हुई तो जमीन-जायदाद भी खरीद ली, चावलका मिल खोल लिया है। अब सब तरहसे मौज है। मिलके पास ही यह छोटा-सा मन्दिर बनवा दिया है और भगवान्को लाकर यहाँ विराजमान कर दिया है।"

मन्दिर छोटा-सा ही है। उसके ऊपर शिखर भी है। कुल पाँच मूर्तियाँ हैं। ये काठके सिंहासनपर रखी हुई हैं। मूर्तियाँ रजत वर्णकी हैं। ये दानेदार धातुकी हैं। भूगर्भमें दबी रहनेके कारण ही शायद ये दानेदार हो गयी हैं। ऐसी कई मूर्तियाँ भुवनेश्वर संग्रहालयमें भी सुरक्षित हैं। सम्भव है, ये अष्ट धातुकी हों।

मध्यकी मूर्ति चौबीसी है। मध्यमें गोलाकार में १२, ऊपर ८ और चारों कोनोंपर ४ इस प्रकार २४ मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त नीचेके भागमें पार्श्वनाथकी और शीर्ष भागपर महावीरकी मूर्ति बनी हुई है। यह मूर्ति दस इंचकी है। इसके नीचेके भागपर लेख है। संवत् १०९० पढ़ा जा सका है अर्थात् यह मूर्ति ईसवी सन्‌की ग्यारहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धकी है। यह मूर्ति पद्मासन है।

इस मूर्तिके दोनों ओर दो-दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इनमें एकदम बायीं ओरकी मूर्ति भगवान् पार्श्वनाथकी है तथा शेष तीनों ऋषभदेव भगवान्‌की हैं। इनकी ऊँचाई क्रमशः छह इंच, नौ इंच, ग्यारह इंच और छह इंच है। मूर्तियोंकी पहचान उनके पादपीठपर बने हुए सर्प और वृषभसे होती है जो क्रमशः पार्श्वनाथ और ऋषभदेव तीर्थंकरोंके चिह्न हैं। ग्यारह इंचवाली ऋषभदेवकी मूर्तिके पादपीठपर चारों ओर नवग्रह बने हुए हैं। पादपीठ तीन कटनीदार बना हुआ है और गोलाकार है।

भानपुरसे दो मील आगे सड़कसे लगभग एक फर्लांग कच्चे मार्ग द्वारा प्रतापपुर गाँव है। वहाँ भी नदीसे जैन मूर्तियाँ निकली थीं। गाँववालोंने उन्हें नदीके किनारे एक पीपलके वृक्षके नीचे रख दिया। किन्तु उनमें-से एक मूर्ति चोरी चली गयी। उसका पता नहीं लग सका। तब उन मूर्तियोंको एक निकटवर्ती मठमें रख दिया जो अब भी वहींपर रखी हुई हैं।

कटक शहरके बाह्य भागमें गंगा मन्दिरमें भी एक जैन मूर्ति रखी हुई है।

इधर अन्य भी कई स्थानोंपर जैन मूर्तियाँ भूगर्भसे उपलब्ध हुई हैं अथवा वैष्णव मन्दिरोंमें रखी हुई हैं।

भुवनेश्वर

भुवनेश्वर उत्कल प्रदेशकी वर्तमान राजधानी है। वैसे यह नगर मन्दिरोंके लिए प्रसिद्ध रहा है। कहते हैं, भारतके अन्य किसी नगरमें इतनी संख्यामें मन्दिर नहीं हैं। इन मन्दिरोंमें मुक्तेश्वर, राजारानी और लिंगराज मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। मुक्तेश्वर मन्दिर अपने स्थापत्य में अलंकरण और साज सज्जाके लिए विख्यात है—विशेषतः इसके तोरणोंपर बनी हुई स्त्री मूर्तियोंकी मादक मुद्राएँ, पशु-पक्षियोंके सूक्ष्म अंकन दर्शनीय हैं। राजारानी मन्दिर अपने सौन्दर्य-के लिए विख्यात है और इसमें उत्कलकी सुन्दरतम कलाके दर्शन होते हैं। तीसरा लिंगराज मन्दिर यहाँका सबसे बड़ा और प्रसिद्ध मन्दिर है। इसका शिखर ४४ मीटर ऊँचा है। एक किंवदन्ती इसके सम्बन्धमें प्रचलित है कि इस मन्दिरका निर्माण वाराणसीके महत्त्वकी प्रतिस्पर्द्धामें ग्यारहवीं शताब्दीमें किया गया। इस मन्दिरमें जगमोहन, नटमन्दिर और भोगमण्डप हैं। शिव-परिवारके सभी सदस्योंकी मूर्तियाँ यहाँपर हैं।

इस नगरमें राज्य सरकारका सुन्दर संग्रहालय है। इसमें कुछ पाषाण और धातुकी जैन प्रतिमाएँ भी हैं। पाषाणकी ये सभी मूर्तियाँ आठवींसे दसवीं शताब्दी तककी हैं। इन मूर्तियोंका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

१. ऋषभदेव तीर्थंकर—पद्मासन, सलेटी वर्ण, अवगाहना दो फुट पाँच इंच। काल—आठवीं शताब्दी। पोड़ासिंगड़ी (केओंझर) से प्राप्त।

२. पार्श्वनाथ तीर्थंकर—पद्मासन, अवगाहना पाँच फुट, भूरा वर्ण, पीठके पीछे सर्पकी कुण्डली और सिरपर सप्त फणावली है। मुख खण्डित है। काल—दसवीं शताब्दी। उदयगिरिसे प्राप्त।

३. ऋषभदेव तीर्थंकर—यह मूर्ति एक पाषाणफलकमें बनी हुई है। इसकी अवगाहना दो फुट चार इंच है। यह श्याम वर्ण है। इसका काल आठवीं शताब्दी अनुमानित किया जाता है। यह पोड़ासिंगड़ीसे मिली थी।

४. शान्तिनाथ तीर्थंकर—पद्मासन, अवगाहना चार फुट, श्याम वर्ण। पादपीठपर हरिण लांछन बना हुआ है। उसके दोनों ओर गरुड़ यक्ष और महामानसी यक्षिणी हाथ जोड़े हुए खड़े हैं। भगवान्‌के दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हुए हैं। सिरके ऊपर दोनों ओर आकाशविहारी देवियाँ पुष्पमाल लिये हुए हैं। इसका काल नौवीं-दसवीं शताब्दी अनुमानित किया गया है। यह चरम्पा (भद्रक) से प्राप्त हुई थी।

५. ऋषभदेव तीर्थंकर—एक शिलाफलकमें चार फुट दस इंच अवगाहनावाली ध्यान मुद्रामें कायोत्सर्ग आसनमें अवस्थित है। चरणोंके दोनों ओर सौधर्म और ऐशान इन्द्र चमर लिये हुए खड़े हैं। उनके ऊपर दोनों ओर चार-चार तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। यह मूर्ति नौवीं-दसवीं शताब्दीकी है और चरम्पासे उपलब्ध हुई थी।

६. अजितनाथ तीर्थंकर—पद्मासन, अवगाहना तीन फुट पाँच इंच। मुख बिलकुल घिस गया है। दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। और ऊपर कोनोंमें पुष्पमालधारिणी देवियाँ प्रदर्शित हैं। समय नौवीं-दसवीं शताब्दी।

७. महावीर तीर्थंकर—चार फुट दस इंच ऊँची यह खड्गासन मूर्ति है। इसका मुख और दोनों चमरेन्द्र बिलकुल अस्पष्ट हैं। काल आठवीं शताब्दी है। इसका प्राप्ति-स्थान चरम्पा है।

८. महावीर तीर्थंकर—पद्मासनमें अवस्थित भूरे वर्णकी यह प्रतिमा तीन फुट पाँच इंच ऊँची है। इसका काल दसवीं शताब्दी है।

९. तीर्थंकर प्रतिमा—अवगाहना दो फुट।

१०. तीर्थंकर प्रतिमा—अवगाहना पौने दो फुट।

११. गोमुख यक्ष—आठ इंच ऊँचा। काल—सातवीं शताब्दी। भुवनेश्वरसे प्राप्त हुई थी।

१२. नवग्रह—भुवनेश्वरसे यह फलक प्राप्त हुआ है। इसका निर्माण-काल बारहवीं शताब्दी माना जाता है।

१३. महावीर तीर्थंकर—पद्मासनमें अवस्थित। सिररहित है।

खण्डगिरि-उदयगिरि

कलिंग देश

खण्डगिरि-उदयगिरिकी संसार प्रसिद्ध गुफाएँ कलिंग (वर्तमान उत्कल प्रदेश) में अवस्थित हैं। कलिंग देश बहुत प्राचीन है। भगवान् ऋषभदेवने कर्मभूमिके प्रारम्भमें इस देशको ५२ जन-पदोंमें विभाजित किया था। उनमें कलिंग भी एक जनपद था। सम्भवतः उन्होंने कुछ जनपदोंके नाम अपने पुत्रोंके नामोंपर रखे थे। उनके पुत्रोंमें सिन्धु, सौवीर, अंग, वंग आदिके समान कलिंग नामका भी एक पुत्र था।

एक जनपदको तीर्थंकर ऋषभदेवने कलिंग नाम दिया। इससे कलिंगका इतिहास ऋषभदेवके काल तक जा पहुँचता है। उस समय इसकी भौगोलिक सीमाएँ क्या थीं, यह बताना तो कठिन है क्योंकि प्राचीन साहित्यमें इसके कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु इतिहास-कालके प्रारम्भसे सम्भव है, उससे भी पहलेसे, इसमें छह देश सम्मिलित थे—ओड्र, कलिंग, कंगोद, उत्कल, दक्षिण कोशल एवं गंगराड़ी। कालक्रमसे दक्षिण कोशलका कुछ भाग इससे पृथक् हो गया। तब शेष क्षेत्रका नाम त्रिकलिंग हो गया और इसमें ओड्र, उत्कल और कलिंग प्रदेश ही रह गये।

प्राचीन कालमें अपनी सुरक्षित भौगोलिक स्थिति और उपजाऊ भूमिके कारण कलिंगवासी अत्यन्त समृद्ध और सुखी थे। इसके पृष्ठ भागमें अभेद्य पर्वतीय वन प्रदेश था। उत्तरमें गंगा-ब्रह्मपुत्रकी उपजाऊ घाटियाँ थीं। दक्षिणमें गोदावरी-कृष्णाका दोआब था। पूर्वमें हिन्द महासागरसे सुरक्षित बंगालकी खाड़ी थी। विन्ध्य पर्वतमालाओं और समुद्रके बीचमें यह प्रदेश एक प्रकारसे उत्तरापथ और दक्षिणापथका प्रवेश-द्वार और सजग प्रहरी रहा है। अपनी इस महत्त्वपूर्ण भौगोलिक स्थितिके कारण इस प्रदेशने उत्तर और दक्षिणकी सांस्कृतिक थातीके आदान-प्रदानमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्रकृतिने सुन्दर जलवायु, आवश्यक वर्षा, अनेक नदियों आदिके रूपमें इसे अपना कोष खुले हाथों लुटाया है।

प्रकृतिने ही प्राचीन कलिंगको तीन भागोंमें विभाजित कर दिया। पहला भाग मैदानी है। यह दामोदर नदीके पश्चिमी किनारेसे शुरू होता है। इस भागमें मयूरभंज, केओंझर और अंगुलके पर्वतीय भूभाग तथा रूपनरायन, हल्दी, सुवर्णरेखा, वैतरणी, ब्राह्मणी (प्राची) आदि नदियाँ सम्मिलित हैं। दूसरा भाग महानदीके दायें तटसे प्रारम्भ होता है। इसमें महानदी और गोदावरीके बीचकी पर्वत श्रेणियाँ सम्मिलित हैं जो समुद्र तट तक चली गयी हैं। इस भागमें ऋषिकुल्या नदी बहती है और इस प्रदेशको दो समान भागोंमें विभाजित करती है। महेन्द्रगिरिके दक्षिणमें लांगुलिया नदीके किनारे किनारे मैदानी भाग है। यही इसका तीसरा भाग है। इसीके तटपर कलिंगकी प्राचीन राजधानी—कलिंग नगर बसा हुआ था। इस प्रदेशमें कोई प्रमुख नदी नहीं है, इसलिए यह भाग विशेष उपजाऊ नहीं है।

इस प्रदेशमें उड़िया भाषा बोली जाती है। इसका निकास[1] मागधी अपभ्रंशसे हुआ है। इसकी विशेषता यह है कि जो लिखा जाता है, वैसा ही उच्चारण होता है। ईसाकी तीसरी शताब्दी तक इस प्रदेशके ऊपर प्राकृत भाषाका प्रभाव रहा और तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक इसके ऊपर संस्कृतका प्रभाव रहा। इसके पश्चात् उड़िया भाषाका निखार और विकास प्रारम्भ हुआ।

ओड्र, उत्कल और कलिंग ये नाम वस्तुतः वहाँकी निवासी जातियोंके नामपर पड़े थे। द्रविड़ भाषाओंमें ओड्डिसु और ओक्कलका अर्थ कृषक होता है। कनड़ी भाषामें किसानको ओक्कलगर कहा जाता है तथा तेलगु भाषामें ओड्डिसुका अर्थ श्रमिक होता है। इन्हीं दोनों शब्दोंके संस्कृत रूप ओड्र और उत्कल बन गये। इसी प्रकार चिल्का झीलके दक्षिणी तटपर कलिंग अथवा कलिंगी नामक एक कृषक जाति रहती है। उसीके नामपर सम्भवतः कलिंग प्रदेश बन गया।

---

१. Early history of Orissa, by Dr. Amar Chand Jain, p. 16.

पौराणिक युगमें कलिंग

ओड्र—कलिंग और दक्षिण कोशलका मध्यवर्ती पार्वत्य-प्रदेश ओड्र कहलाता था। केओंझर और मयूरभंजकी दक्षिणी सीमासे लेकर महानदीके बायें तटका समूचा प्रदेश इसमें सम्मिलित था।[1] मत्स्य पुराणमें ओड्र और उत्कलवासियोंको विन्ध्य पर्वत शृंखलाका निवासी बताया है।[2]

उत्कल—यह वह प्रदेश था जहाँ उत्कल और मेकल जातियाँ रहती थीं। सम्भवतः यह वह क्षेत्र था, जहाँ कपिशा (वर्तमान कसाई) नदी मिदनापुर जिलेमें बहती है। इस क्षेत्रमें बालासोरसे लोहार डागा (राँचीके निकट) तकका भाग और मध्य प्रदेशका सरगुजा था। वैतरणी उसकी दक्षिणी सीमा थी।

महाभारत और रामायणमें उत्कल और मेकलका साथ-साथ वर्णन मिलता है। मेकल प्रदेश सम्भवतः कोशल देशमें था।

कलिंग

'महाभारत' में वैतरणो नदीको कलिंगकी उत्तर-पूर्वी सीमा बताया है।

कलिंगकी प्राचीन राजधानी

जैन 'उपांग सूत्र' पन्नवणामें कंचनपुरको और महाभारतमें राजपुरको कलिंगका महानगर बताया है। 'कथासरित्सागर' में शुभवतीको कलिंगनगर कहा है। खारबेलके हाथी गुम्फा अभिलेखमें कलिंगनगरका उल्लेख कलिंगकी राजधानीके रूपमें किया गया है। गंगवंशके अधिकांश नरेशोंने—जैसे हस्तिवर्मा, इन्द्रवर्मा, देवेन्द्रवर्मा—अपने आपको 'सकल कलिंगाधिराज' बताया है और विजयी राजाओंकी ओरसे कलिंगनगरमें अनुदान स्वीकृत किये गये। इस नगरकी पहचान वर्तमान मुखलिंगमूसे की जाती है जो गंजाम जिलेमें परलाकीमेढीसे २० मील है। कुछ विद्वान् इसे ही गंगवंशी राजाओंकी राजधानी मानते हैं। किन्तु गंगवंशके जयवर्म देव, इन्द्रवर्मन आदि कई राजाओंके ऐसे भी ताम्रपत्र मिले हैं जिनमें स्वाटकको उनका विजयी निवास (राजधानी) बताया है। इस नगरकी पहचान गंजाम जिलेके चिकाटी ग्रामसे की जाती है। गंगवंशके कुछ दानपत्रोंसे ज्ञात होता है कि कुछ गंगवंशी नरेशोंने—जो अपने आपको कलिंगाधिपति घोषित करते थे; श्रीपुर, देवपुर, पिष्टपुर, सिंहपुर आदि नगरोंमें अपने राजमहलोंसे अनुदानोंकी स्वीकृति दी। इन नगरोंके अतिरिक्त तोशल, कोंगोडा, वरदाखण्ड, अर्त्तनी, खिडिंगहार, कटकभुक्ति आदि कई विषयों (प्रदेशों) के नाम भी प्राचीन शिलालेखोंमें पाये जाते हैं। ये विषय कलिंग देशमें थे।

जैन साहित्यमें कलिंग

जैन साहित्यमें कलिंगका उल्लेख भगवान् ऋषभदेवके कालसे ही प्राप्त होता है। भगवान् ऋषभदेवने देशको जिन ५२ जनपदोंमें बिभक्त किया था, उनमें एक जनपद कलिंग नामक भी था। उसे दक्षिण[3] दिशामें बताया गया है। ऋषभदेवने अपने एक पुत्रको यहाँका राज्य दिया था।

---

१. Orissa in the making, by B. C. Majumdar, p. 16. २. History of Orissa, Banerji. ३. हरिवंश पुराण, १२।७०।

भगवान् ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और भगवान् महावीरका विहार जिन देशोंमें हुआ था, उनमें कलिंग भी था। भगवान् पार्श्वनाथका विहार तो अंग, वंग, कलिंग, मगध और मध्यदेशोंमें विशेष रूपसे हुआ था। अतः इन देशोंमें उनका प्रभाव बहुत अधिक था और उनके अनुयायियोंकी संख्या लाखोंमें थी।

हरिषेण कथाकोष[1]में मुनि गजकुमारके जीवनकी अन्तिम घटनाका कलिंग देशसे सम्बन्धित होनेका उल्लेख है। कथा इस प्रकार है—

राजा श्रेणिककी रानी धनश्रीके पुत्रका नाम गजकुमार था। एक बार मुनि सुमतिका उपदेश सुनकर कुमारने मुनि-दीक्षा ले ली। कुछ समय पश्चात्, गुरुकी आज्ञा लेकर मुनि गजकुमार विहार करते हुए कलिंग देशके दन्तिपुर नामक नगरके पश्चिममें स्थित गज पर्वतपर पहुँचे और वहाँ तप करने लगे। एक दिन आतापन योगमें लीन मुनिको देखकर उस नगरके राजकुमार गुणपालने बुद्धदास मन्त्रीसे पूछा कि यह "योगी ऐसी तेज धूपमें क्यों खड़े हैं?" मन्त्री बोला—"महाराज! इनको चण्डवायुने जकड़ लिया है। यदि आग जलाकर शिला गरम की जाये और योगी उसपर बैठें तो यह रोग शान्त हो सकता है।" राजकुमारने मन्त्रीको वैसा ही करनेकी आज्ञा दे दी। जब मुनि नगरमें चर्याके लिए गये हुए थे, तब मन्त्रीकी आज्ञासे अग्नि द्वारा वह शिला गरम कर दी गयी, जिसके ऊपर मुनिराज ध्यान लगाया करते थे। आहारके पश्चात् मुनि आकर उस तप्त शिलापर ध्यान लगाकर बैठ गये। उनका शरीर जलने लगा। किन्तु मुनिराज तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे आत्मविहार करते रहे। इधर उनका शरीर जलकर प्राणान्त हुआ, और उधर उनके कर्मोंका अन्त हो गया। वे अन्तकृत् केवली हुए और निर्वाण प्राप्त किया।

कलिंग देशमें स्थित कोटिशिलासे यशोधर राजाके पाँच सौ पुत्रों और एक करोड़ मुनियोंके निर्वाण होनेका उल्लेख भी हुआ है।[2]

कलिंगमें जैन धर्मका प्रभाव

अंग, बंग, मगधके समान कलिंगमें भी प्रागैतिहासिक कालसे जैन धर्मका बहुत प्रभाव रहा है। वहाँका लोक-जीवन जैन धर्मके आचार और विचारोंसे अनुप्राणित रहा है। इस बातकी पुष्टि वैदिक साहित्यसे भी होती है। मनुस्मृतिमें उपर्युक्त सभी देशोंको आत्म संस्कृतिका केन्द्र माना है और वैदिक यज्ञ यागादिमें विश्वास रखनेवालोंको इन देशोंमें जाने तकका निषेध किया है। इतना ही नहीं यदि कोई चला जाये तो उसके लिए नाना प्रकारके प्रायश्चित्त विधान बताये हैं। व्रात्य-संस्कृति श्रमण-संस्कृतिका पूर्वरूप और पूर्व नाम है।

यह माननेके लिए प्रबल ऐतिहासिक आधार हैं कि अति प्राचीन कालसे कलिंगका जैन धर्मके साथ सम्बन्ध रहा है। प्रसिद्ध विद्वान् श्री नगेन्द्रनाथ वसुने लिखा है—"भगवान् पार्श्वनाथने अंग-बंग और कलिंगमें जैन धर्मका प्रचार किया था। धर्म-प्रचारके लिए वे ताम्रलिप्त बन्दरगाहसे कलिंगमें गये। मार्गमें वे कोपकटकमें धन्य नामक एक गृहस्थके घर ठहरे थे। इस घटनाको स्मरणीय रखनेके लिए कोपकटकको धन्यकटक कहा जाने लगा। उस समय मयूरभंजमें कुसुम्ब नामक क्षत्रियका राज्य था और वह राजवंश भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा प्रचारित धर्मसे प्रभावित था।"[3]

---

१. हरिषेण कथाकोष, कथा १३९। २. निर्वाणकाण्ड, गाथा १८। ३. जैन क्षेत्र समास, चौबीस तीर्थंकरोंकी जीवनी आदिकी डॉ. नगेन्द्रनाथ वसु द्वारा की गयी समालोचनाका अंश।

भगवान् पार्श्वनाथके पश्चात् कलिंगमें जैन धर्मके व्यापक प्रचारके सिलसिलेमें महाराज करकण्डुका नाम आता है। करकण्डु कलिंगके सम्राट् थे। दन्तिपुर उनकी राजधानी थी। उनका राज्य समस्त अंग, बंग, कलिंग, चेर, चोल, पाण्ड्य, आन्ध्र आदि प्रदेशोंमें फैला हुआ था। वे जैन धर्मके कट्टर अनुयायी थे। चेर, चोल और पाण्ड्य राजाओंको उन्होंने अपने चरणों में झुकाया था। किन्तु जब महाराज करकण्डुको ज्ञात हुआ कि उन राजाओंके मुकुटोंमें जिनेन्द्र भगवान्का चित्र लगा है तो सम्राट्ने उन्हें अपने गलेसे लगा लिया और इस अविनयकी क्षमा भी माँगी। मार्गमें उन्होंने तेरपुरमें दो लयण (गुफा-मन्दिर) भी बनवाये।

'उत्तराध्ययन सूत्र' (अध्याय १८, गाथा ४५-४६) के अनुसार जब द्विमुख पंचालके, नेमि विदेहके और नग्नजित् गान्धारके शासक थे, उस समय कलिंग देशपर करकण्डुका शासन था। ये चारों ही नरेश जैन थे और वृद्धावस्था आनेपर इन चारोंने ही अपने पुत्रोंको राज्य देकर जैन मुनि-दीक्षा ले ली थी।

बौद्धजातकोंमें करकण्डुको प्रत्येकबुद्ध माना है।

सम्राट् करकण्डु भगवान् पार्श्वनाथ और महावीरके मध्यवर्ती कालमें हुए थे। किन्तु कुछ विद्वान् उन्हें पार्श्वनाथका शिष्य[1] मानते हैं।

करकण्डुके पश्चात् कलिंगके कोने-कोनेको जैन धर्मकी ज्योतिसे प्रकाशमान करनेवाले भगवान् महावीर थे। भगवान् महावीर कलिंगमें पधारे थे, कुमारी पर्वतपर उनका समवसरण लगा था तथा वहाँ भगवान्का उपदेश हुआ था। 'आवश्यक सूत्र' में वर्णन है कि भगवान् महावीरने तोषलमें अपने धर्मका प्रचार किया था और वे तोषलसे मोषल गये थे—

"ततो भगवं तोषलिं गओ।....तत्थ सुमागहो नाम रट्ठओ पियमित्तो भगवओ सो मोएइ ततो सामी मौसलीं गओ।"

आवश्यक सूत्रकी हरिभद्रीय वृत्तिमें सूचित किया गया है कि महावीरके पिता सिद्धार्थ तोषलके तत्कालीन राजाके बन्धु थे और कलिंगके राजाने अपने राज्यमें धर्म-प्रचारके लिए भगवान् महावीरसे प्रार्थना की थी।

'हरिवंश पुराण' में राजा जितशत्रुका वर्णन मिलता है। जितशत्रुको महाराज सिद्धार्थकी छोटी बहन यशोदया विवाही गयी थी। जितशत्रुके पूर्वपुरुषोंमें हरिवंशका प्रतापी राजा जरत्कुमार था। कलिंग राजाकी पुत्रीका विवाह जरत्कुमारके साथ हुआ और कलिंगका राज्य जरत्कुमारको प्राप्त हो गया। जरत्कुमारका पुत्र वसुध्वज, उसका पुत्र सुवसु, उसका पुत्र भीमवर्मा हुआ। उसके वंशमें अनेक राजा हुए। उसी वंशमें कपिष्ट नामका राजा हुआ। उसके अजातशत्रु, उसके शत्रुसेन, उसके जितारि और जितारिके जितशत्रु नामक पुत्र हुआ। जब भगवान् महावीरका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, तब यह कुण्डपुर आया था। महाराज सिद्धार्थने इन्द्रके तुल्य पराक्रमको धारण करनेवाले इस परम मित्रका अच्छा सत्कार किया था। जब भगवान्की अवस्था विवाहके योग्य हुई, तब यह अपनी पुत्री यशोदाको लेकर पुनः आया। वह अपनी पुत्रीका विवाह सम्बन्ध महावीरके साथ करना चाहता था। किन्तु ऐसा न हो सका, महावीर घर-द्वार छोड़कर तप करने चले गये। तब जितशत्रु भी दीक्षा लेकर तप करने लगा। अन्तमें मुनि जितशत्रुको केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

१. Indian Culture, Vol. iv, 319 pp.

'उत्तराध्ययन' सूत्रसे प्रतीत होता है कि भगवान् महावीरके समयमें कलिंग जैन धर्मका केन्द्र था और कलिंगका पिहुंड नामक बन्दरगाह प्रसिद्ध जैनतीर्थ था। हाथी गुम्फा शिलालेखमें जिस 'पिथुंड' की चर्चा आयी है, सम्भवतः वह 'पिथुंड' और 'पिहुंड' दोनों एक ही हैं।

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कलिंगमें जैन धर्म बहुत प्राचीन समयसे विद्यमान था। पार्श्वनाथके कालमें जैन धर्मका विशेष प्रचार हुआ और महावीर कालमें तो यह वहाँके जन-जनका धर्म हो गया।

भगवान् महावीरके पश्चात् उनके गणधर सुधर्माचार्य अपने पाँच सौ शिष्योंके साथ इस प्रान्तमें पधारे। उस समय उण्ड्र प्रान्तके धर्मपुर नगरका राजा यम न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करता था। उसको एक रानी धनवतीसे गर्दभ नामक पुत्र और कोणिका नामक पुत्री उत्पन्न हुई। अन्य रानियोंसे उसके पाँच सौ पुत्र थे। वे अत्यन्त धार्मिक थे और संसारसे उदासीन रहते थे। एक बार सुधर्माचार्य पाँच सौ शिष्यों सहित नगरके बाहर उद्यानमें पधारे। नगरके सब लोग आचार्य महाराजके दर्शनोंके लिए गये। उन्हें जाते देखकर राजा भी गया, किन्तु अपने पाण्डित्यके अभिमानमें वह मुनियोंकी निन्दा करता हुआ गया। मुनि-निन्दाका परिणाम यह हुआ कि तीव्र अशुभ कर्मके उदयसे उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी। राजाको अपनी मूर्खतापर बड़ा दुःख हुआ और वह अपने पापोंका प्रायश्चित्त करने लगा। उसने मुनिराजका उपदेश सुना और प्रभावित होकर अपने पाँच सौ पुत्रोंके साथ मुनि-दीक्षा ले ली। दीक्षाके बाद निरन्तर स्वाध्याय करते रहनेके फल-स्वरूप सभी मुनियोंने विद्वत्ता प्राप्त कर ली। किन्तु यम मुनिको णमोकार मन्त्रका उच्चारण तक करना नहीं आता था। उन्होंने घोर तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया। फलतः उन्हें अल्पकालमें ही सातों ऋद्धियाँ मिल गयीं। एक बार वे धर्मपुर नगरके पास कुमारी पर्वतपर पाँच सौ मुनियोंके साथ पधारे। वहाँ सल्लेखना द्वारा उनका समाधि मरण हो गया और वे स्वर्गोंमें महर्द्धिक देव हुए।

इस घटनासे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् महावीरके कालमें तथा उनके पश्चाद्वर्ती कालमें भी कलिंगमें जैन धर्मका व्यापक प्रभाव था।

ईसा पूर्व चौथी शताब्दीमें नन्दवंशके प्रतापी नरेश महापद्मनन्दने कलिंगपर आक्रमण किया। इस युद्धमें कलिंगको पराजित होना पड़ा, इस विजयके प्रतीक रूपमें नन्दराज 'कलिंग-जिन' प्रतिमाको अपने साथ अपनी राजधानी पाटलिपुत्र ले गया। यह प्रतिमा कलिंगमें राष्ट्रीय प्रतिमाके रूपमें मान्य थी। हाथीगुम्फा लेखसे भी इसका समर्थन होता है।

कलिंगने शीघ्र ही पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। किन्तु कलिंगवासी अपने आराध्य 'कलिंग-जिन' को नहीं भूल सके। 'कलिंग-जिन' की प्रतिमाके साथ उनका एक भावनात्मक सम्बन्ध था। यह उनके राष्ट्रीय गौरव और जातीय स्वाभिमानका प्रश्न था। यह एक प्रतिमामात्र नहीं थी, उसके साथ उनकी राष्ट्रीय चेतना और धार्मिक श्रद्धाका प्रश्न जुड़ा हुआ था। वे इस अपमानको भूल नहीं सके। यह उनके सारे राष्ट्रका अपमान था।

अभी कलिंगको स्वतन्त्रताकी साँस लेनेका अवकाश ही मिल पाया था कि उसके ऊपर भयानक वेगसे पुनः विपत्ति आ पड़ी। यह विपत्ति विश्व इतिहासकी भयानक घटनाओंमें-से एक थी। ईसवी पूर्व तीसरी शताब्दीमें मौर्य सम्राट् अशोकने विशाल वाहिनीके साथ कलिंगके ऊपर आक्रमण कर दिया। कलिंगवासी स्वभावसे ही स्वातन्त्र्य-प्रिय और वीर योद्धा रहे हैं। इस संकट कालमें वे अपने सारे मतभेद भूलकर संगठित हो गये। उनके समक्ष केवल एक ही लक्ष्य था—मातृभूमिकी आजादी।

अशोकके पिता बिन्दुसारने कलिंगको नहीं छेड़ा था, किन्तु तीन ओरसे उसे घेर लिया था। केवल समुद्रकी ओरसे ही कलिंग सुरक्षित था। बिन्दुसार जब चाहता, समुद्र-मार्गसे घेरकर कलिंगको आक्रान्त कर सकता था। अशोकके लिए आक्रमण करना इसलिए आवश्यक हो गया था क्योंकि कलिंग आन्ध्रसे मिलकर मगध साम्राज्यके लिए सिरदर्द पैदा कर सकता था। आन्ध्रको अशोकने बलात् अपने साम्राज्यमें मिला लिया था, यह दूसरी बात है कि आन्ध्रकी आत्माने अधीनता स्वीकार नहीं की थी।

अशोकके आक्रमण कालमें कलिंगकी कुल जनसंख्या अनुमानतः ७५ लाख थी। उसके पास लड़ाकू हाथी और समुद्री जहाजोंका बहुत विशाल बेड़ा था। कलिंगके निवासी प्रकृतिसे स्वाभिमानी और युद्धप्रिय थे। एक विशाल साम्राज्यकी विशाल सेनाकी उन्होंने तनिक भी परवाह नहीं की। देशकी कुल आबादीका ६ से ८ प्रतिशत तक कलिंगके युद्धमें झोंक दिया।[1] वे गंगाके किनारेसे गोदावरी तक चप्पा-चप्पा भूमिके लिए लड़े। प्रत्येक गाँव और घर किला बन गया था। कलिंगवासी जहाँ भी लड़ रहा था, वहाँसे वह पीछे नहीं हटा। अशोकको अपनी सेनापर अभिमान था। उसका सेना-बल भी कलिंगके सेना-बलसे कई गुना था। उसने कलिंगपर यह आक्रमण अपने राज्याभिषेकके आठवें वर्षमें किया था। उसे इतने समयमें कोई देश, कोई राज्य, कोई जाति इतनी दुर्दमनीय, अडिग और अद्‌भुत पराक्रमवाली नहीं मिली, जितनी इस बार मिली थी। अशोक भयानक हो उठा। उसने सेनामें आज्ञा प्रचारित कर दी, 'क्रूरतापूर्वक कलिंगको दबा दो।' आदेश मिलते ही मगधके सैनिक पशु बन गये। जो मनुष्य सामने आया, जीता नहीं बचा; जो गाँव राहमें पड़ा, राखका ढेर हो गया। स्त्रियोंमें त्राहि-त्राहि मच गयी।

दो वर्ष तक यह युद्ध चला। नरसंहार, बलात्कार और आगजनी यही हुआ दो वर्ष तक। किसी कलिंगवासीने आत्म-समर्पण नहीं किया। अशोकने अपने शिलालेख नं. १३ में स्वीकार किया है कि कलिंगके युद्धमें एक लाख व्यक्ति मारे गये, डेढ़ लाख बन्दी बनाये गये और बादमें इससे कई गुने मरे।

इतिहासकारोंने कुछ निष्कर्ष निकाले हैं, जिनसे इस युद्धकी भयानकता पर नया प्रकाश पड़ता है। अशोकने अपने शिलाभिलेखमें जो कुछ लिखा है, वह सत्य है। किन्तु यह संख्या कलिंगके सैनिकोंकी है। सम्राट् अशोकने अपने पक्षके हताहतोंकी संख्याका उल्लेख करना शायद उचित नहीं समझा। उस संख्याको भी मिला लिया जाये तो कुल संख्या बहुत बड़ी हो जायेगी। फिर जो सैनिक जख्मी हो गये और बादमें मर गये, उनकी संख्या भी वर्तमान संख्यासे कई गुनी अधिक रही होगी।

इतिहासकारोंने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि कलिंगके जिस राजाने अशोकके साथ युद्ध किया था, निश्चय ही वह एक जैन राजा था। अशोकने अपने १३वें अनुशासनमें यह भी स्वीकार किया है कि कलिंग-युद्धमें श्रमण और ब्राह्मण उभय सम्प्रदायके लोगोंने दुःख उठाये थे। अशोकने जिनको श्रमण कहा है, वस्तुतः वे जैन थे।

कलिंगवासियोंको अपने देशकी स्वतन्त्रताके अपहरणसे जितना दुःख हुआ, उससे अधिक उनके हृदयमें इस बातकी पीड़ा थी कि उनके आराध्य देवता 'कलिंग जिन'की प्रतिमा उन्हें इतने समय बाद भी वापस नहीं मिली।

---

1. The nation in arms, p. 148, by Gttz Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol. III, p., 410, by K. P. Jayaswal. Asoka, by Dr. Mookerji, p. 162.

कलिंगवासियोंकी भावनाकी तुष्टि की उनके प्रिय सम्राट् खारबेलने। नन्दराजा महापद्मनन्दके पौने तीन सौ वर्ष पश्चात् खारबेलने अपने शासनके १२वें वर्षमें उत्तरापथ (जिसकी राजधानी तक्षशिला थी) के राजाओंको त्रस्त किया। फिर मागधोंको भयभीत करते हुए अपने हाथियोंको सुगांगेय (पाटलिपुत्रका राजमहल) तक पहुँचाया। मागध राजा बहसतिमित्र (बृहस्पतिमित्र)को पैरोंमें गिरवाया। जब खारबेल लौटा तो वह राजा नन्द द्वारा लायी हुई 'कलिंग जिनमूर्ति'को भी अपने साथ कलिंग लेता आया। कलिंगवासियोंने अपने आराध्य देवताके पुनः कलिंगमें पधारनेपर जो राष्ट्रीय स्तरपर स्वागत किया और राष्ट्रीय उत्सव मनाया, वह जैनधर्मके प्रति कलिंगवासियोंकी अगाध श्रद्धाका प्रतीक था।

खारबेलने अपने राज्यमें, विशेषतः कुमारी पर्वतपर जहाँ भगवान् महावीरने धर्मोपदेश किया था, जिन-मन्दिर बनवाये और अर्हत् निषधिकाका जीर्णोद्धार किया। राज्य-प्राप्तिके तेरहवें वर्षमें उन्होंने श्रावकके व्रत लिये और अपना शेष जीवन धर्माराधनमें व्यतीत किया। हाथीगुम्फा शिलालेखसे यह भी प्रकट होता है कि खारबेल ही नहीं, उनके परिवारके सभी लोग जैनधर्मावलम्बी थे।

खारबेलकी मृत्युके सम्बन्धमें इतिहास अथवा हाथीगुम्फा लेखसे हमें कोई सूचना नहीं मिलती। किन्तु उनके जीवनके अन्तिम वर्षोंकी उनकी धर्मसाधनाको देखते हुए लगता है कि उन्होंने खण्डगिरि-उदयगिरिकी गुफाओंमें ही सल्लेखना द्वारा समाधिमरण ले लिया।

खारबेलकी मृत्युके पश्चात् कलिंगमें जैनधर्मकी स्थिति क्या रही, 'कलिंग-जिन' प्रतिमाका क्या हुआ तथा उनका उत्तराधिकारी कौन हुआ, इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर प्रायः इतिहास मौन है।

डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल आदि कुछ इतिहासकारोंका मत है कि शकोंके आक्रमणके पहले उज्जयिनीमें जिस राजा गर्दभिल्लके चौदह वर्षके राज्यका जैन अनुश्रुति और पुराणोंमें उल्लेख है, वह खारबेलका कोई वंशज था। हिन्दू पुराणोंके अनुसार सात गर्दभिल्ल राजाओंने ७२ वर्ष तक राज्य किया था।

सारांशतः भगवान् पार्श्वनाथसे अर्थात् ईसा पूर्व आठवीं शताब्दीसे खारबेलके समय तक अर्थात् ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक (सात सौ वर्षों तक) कलिंगमें जैन धर्मका प्रभाव अक्षुण्ण रहा। हाथी गुम्फाके शिलालेखानुसार खारबेल और उनके परिवारने अपने राज्यके तेरहवें वर्षमें कुमारी पर्वतपर जैन साधुओंके ध्यानादिके लिए गुफाओंका निर्माण कराया और वहाँ सभी दिशाओंके विद्वानों और तपस्वी साधुओंका सम्मेलन किया।

खारबेलके शासनके बहुत पहलेसे ही जैनधर्म कलिंगका राष्ट्र धर्म था। राज-परिवारकी श्रद्धा और पीठबलने इस धर्मको कलिंगके जन-जनका धर्म बना दिया।

"मामला पांजि" ग्रन्थके अनुसार दिल्लीके भोजक पातिशा (बादशाह) के सेनापति रक्तबाहुने आक्रमण करके उड़ीसापर अधिकार कर लिया। उसके बाद उसके वंशके अठारह राजाओंने उड़ीसापर शासन किया। उक्त ग्रन्थ इन राजाओंको मुगल बतलाता है। इन मुगलोंने सन् २२८ से सन् ४७४ ई. तक कुल २४६ वर्ष राज्य किया।

इन राजाओंके राज्य-कालकी हजारों मुद्राएँ इस प्रान्तके विभिन्न स्थानोंसे भू-उत्खननमें निकली हैं। इन मुद्राओंको देखकर कुछ विद्वानोंने उपर्युक्त राजाओंको कुषाण माना था। किन्तु वस्तुतः कुषाण कभी काशीसे आगे नहीं बढ़ पाये। अतः कलिंगमें उनका शासन कैसे सम्भव हो सकता था। अब डॉ. नवीन कुमार साहु तथा अन्य कई इतिहासकारोंने यह स्थापना की है कि

ये राजा वस्तुतः मुरुण्ड वंशके थे। ये मुरुण्ड वंशी राजा जैन धर्मके अनुयायी थे। अतः इनके शासन-कालमें भी कलिंगमें जैन धर्मका प्रभाव बना रहा। ग्रीक इतिहासकार टोल्मीके अनुसार द्वितीय शताब्दीमें मुरुण्ड राज्यका विस्तार तिरहुतसे गंगा नदीके मुहाने तक रहा है। इन मुरुण्ड राजाओंका वर्णन 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'बृहत्कल्पतरु', 'अभिधान राजेन्द्र कोष' भाग दो आदि जैन ग्रन्थोंमें भी उपलब्ध होता है।

मुरुण्डोंके पश्चात् गुप्त सम्राटोंका यहाँ शासन रहा। उनके कालमें जैन धर्मको कोई क्षति नहीं पहुँची। गुप्तोत्तर कालमें कलिंगमें गंगवंश, कंगोदर शैलोद्भव वंश, तोषलका भौमवंश, खिजली मण्डलका भंज वंश और कोशलोत्कलका सोमवंश इन राजवंशोंका शासन रहा। ये राजवंश प्रायः शाक्त, शैव या वैष्णव धर्मोंके अनुयायी थे। इस कालमें भी खण्डगिरि-उदयगिरि जैन धर्मके केन्द्र थे। इसी कालमें खण्डगिरिकी नवमुनि गुफा, बारभुजी गुफा और ललाटेन्दु केशरी गुफाका निर्माण हुआ। उड़ीसाके अनेक स्थानोंपर—जैसे आनन्दपुर (दुझर) चोद्वार (कटक), घुमुसर (गंजाम), नवरंगपुर (कोरापुट) और पुरीकी प्राचीन उपत्यकामें उत्खननके फलस्वरूप जैन धर्म सम्बन्धी बहुमूल्य पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री प्राप्त हुई है, वह सब मध्ययुगकी ही है। इससे ऐसा प्रमाणित होता है कि मध्ययुगमें जैन धर्मका प्रभाव उड़ीसामें अप्रतिहत था। इसी कालमें प्रसिद्ध सोमवंशी राजा उद्योतकेशरी, जिन्हें ललाटेन्दु केशरी भी कहते हैं, ने शिवभक्त होते हुए भी जैन साधुओंके लिए ललाटेन्दु केशरी गुफाका निर्माण कराया। इसीके शासन-कालमें मुनि कुलचन्द्रके प्रख्यात शिष्य आचार्य शुभचन्द्र तीर्थयात्राके लिए खण्डगिरि आये और उन्होंने यहाँ जैन धर्म का प्रभाव बढ़ानेका प्रयत्न किया।

करकण्डु नरेश

करकण्डु नरेशकी जीवन-कथा अत्यन्त रोचक है। चम्पानरेश दधिवाहन अपनी रानी पद्मावतीके दोहद पूर्ति करने एक दिन हाथीपर वन-विहारके लिए गये। नगरसे बाहर निकलते ही शीतल वायुके अनुभवसे हाथी मस्त हो उठा। वह राजदम्पतिको लेकर भागा। राजा तो किसी प्रकार एक वृक्षकी शाखा पकड़कर बच गया, किन्तु रानी पद्मावती भयाच्छन्न होकर हाथीकी पीठसे चिपकी बैठी रही। हाथी अनेक वनों और नगरोंको पार करता हुआ कलिंग देशमें एक तालाबके पास पहुँचा। वह बुरी तरह थक चुका था। वह ज्यों ही तालाबमें घुसने लगा, रानी किसी प्रकार हाथीसे उतर आयी और रोती बिलखती चल दी। एक मालीने उसे इस दशामें देखा तो उसे दया आ गयी और वह उसे अपनी बहन बनाकर अपने घर ले गया। किन्तु कुछ दिनों पश्चात् मालीकी स्त्रीने उसे घरसे निकाल दिया। वह दुखी मनसे श्मशानकी ओर चल दी। तभी उसे प्रसव वेदना हुई और श्मशानमें ही उसने पुत्र-प्रसव किया। वहाँ एक शापग्रस्त विद्याधर आया। उसने रानीसे प्रार्थना की और वह पुत्र लालन-पालनके लिए ले लिया।

वह बालक विद्याधरके घरपर दिनोंदिन बढ़ने लगा। जन्मसे उसके हाथमें खाज थी, इसलिए उसका नाम करकण्डु रखा गया। थोड़े ही समयमें वह समस्त विद्याओंमें निष्णात हो गया। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब दन्तिपुर नरेशका देहान्त हो गया। दन्तिपुर उस समय कलिंगकी राजधानी थी। नरेशके कोई सन्तान नहीं थी। तब मन्त्रियोंने निश्चय किया कि राजहस्तीको जलसे भरा हुआ कलश दे दिया जाय। वह जिसका अभिषेक कर दे उसीको यहाँका राजा बना दिया जाय। ऐसा ही किया गया। करकण्डुके भाग्यने जोर मारा और वह राजा बना दिया गया। राजा बनते ही उसने राज्य-विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया।

चम्पानरेश दधिवाहनको करकण्डुका बढ़ता हुआ प्रभाव सहन नहीं हुआ। उसने दूत भेजकर करकण्डुको अधीनता स्वीकार करनेका सन्देश भेजा। तेजस्वी करकण्डुने अधीनता स्वीकार नहीं की और वह युद्धके लिए तैयार हो गया। जब चम्पाके मैदानमें दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं और युद्ध प्रारम्भ होने ही वाला था, तभी पद्मावती दोनोंके बीच आ खड़ी हुई। उसने पिता-पुत्रको एक दूसरेसे परिचित कराया। युद्ध रुक गया। पिता और पुत्र मिले। दधिवाहन अपनी बिछुड़ी हुई पत्नी और पुत्रको बड़े प्रेमपूर्वक महलोंमें ले गया। फिर उसने अपने पुत्रको चम्पाका भी राज्य-भार सौंप दिया।

अंग देशका राज्य मिलनेपर करकण्डुके राज्यकी सीमाएँ काफी विस्तृत हो गयीं। इसके बाद उसने दक्षिणके राजाओंकी ओर ध्यान दिया। वह सेना लेकर दिग्विजयके लिए निकला। उसने द्रविड़ देशके चेर, चोल और पाण्ड्य राजाओंपर आक्रमण कर दिया। तीनों राजाओंने आकर करकण्डुके चरणोंमें मस्तक झुकाया। किन्तु जैसे ही उसकी दृष्टि उन राजाओंके मुकुटोंमें लगी हुई जिनेन्द्र देवकी मूर्तिकी ओर गयी, उसने अपना पैर खींच लिया। पूछनेपर उसे ज्ञात हुआ कि ये तीनों राजा जैन धर्मानुयायी हैं, वह इनसे गले मिला और क्षमा-याचना की।

वहाँसे वह तेरापुर नगर पहुँचा। वहाँके राजा शिवने आकर उससे भेंट की और बताया कि पास ही एक पहाड़ीपर एक गुफा है। उस पहाड़ीके ऊपर एक वामी है। एक हाथी प्रतिदिन कमल-पुष्पसे उसकी पूजा करता है। इस आश्चर्यजनक घटनाको सुनकर करकण्डु सब लोगोंके साथ उस पहाड़ी पर गया। वहाँ गुफामें पार्श्वनाथ भगवान्‌की प्रतिमाके दर्शन किये और ऊपर जाकर उस वामी को देखा। उनके समक्ष ही हाथी कमल पुष्प लेकर आया और उस वामीपर चढ़ा दिया। करकण्डुने सोचा—यहाँ कोई देव-मूर्ति होनी चाहिए। तब उसने वामीको खुदवाया। फलतः वहाँ पार्श्वनाथ भगवान्‌की मूर्ति निकली। उस मूर्तिको लेकर वे उस गुफामें आये। करकण्डुको उस प्राचीन रत्न प्रतिमामें एक गाँठ दिखाई दी, जिससे मूर्तिकी शोभामें अन्तर आ रहा था। एक वृद्ध शिल्पकारसे उस गाँठका रहस्य ज्ञात हुआ कि जब यह गुफा बनायी गयी थी, उस समय यहाँ एक जलवाहिनी निकल पड़ी थी। उसे रोकनेको यह गाँठ लगायी गयी है। राजाको बड़ा कुतूहल हुआ और मना करनेपर भी उसने वह गाँठ तुड़वा दी। गाँठके टूटते ही वहाँ जल-प्रवाह भयंकर वेगसे निकल पड़ा। सारी गुफा जलसे भर गयी। राजाको अपने कृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

एक विद्याधरसे राजाको इस गुफाका इतिहास मिला। तदनुसार रथनूपुर नगरमें नील और महानील नामक दो भाई राज्य करते थे। शत्रुसे परास्त होकर वे वहाँसे भाग निकले और आकर तेरापुरमें बस गये। यहाँ उन्होंने अपना राज्य स्थापित कर लिया। एक मुनिके उपदेशसे उन्होंने जैन धर्म धारण कर लिया और गुहा-मन्दिर बनवाया। उसी समय दो विद्याधर लंकाकी यात्राको जा रहे थे। मार्गमें मलय देशके पूर्वी पर्वतपर उन्होंने रावणके किसी वंशज द्वारा बनवाये हुए जिन मन्दिरमें एक सुन्दर जिनमूर्ति देखी। अपने यहाँ वैसी ही मूर्ति बनवानेके विचारसे वे उस मूर्तिको उठा ले गये। तेरापुर पहुँचने पर वे उस मूर्तिको पहाड़ीपर रखकर जैन मन्दिरके दर्शनोंके लिए चले गये। वापस आकर उस मूर्तिको उठाना चाहा, किन्तु वह नहीं उठी। तबसे वह मूर्ति यहींपर विराजमान है। इसके पश्चात् करकण्डुने वहाँ दो गुफाएँ और बनवायीं, जो अब भी मौजूद हैं।

कलिंग चक्रवर्ती ऐल खारबेल

चेदि राजवंश

हाथी गुम्फाके लेखमें प्रारम्भिक मंगलाचरणके बाद खारबेलके लिए निम्नलिखित विशेषणों-का प्रयोग किया गया है—'ऐरेण महाराजेन महामेघवाहनेन चेत राजवंशवधनेन......कलिगाधि-पतिना सिरिखारवेलेन' अर्थात् ऐर महाराज महामेघवाहन चेत (चेदि) राजवंश वर्धन कलिंगके अधिपति श्री खारबेल। इसमें बताया है कि खारबेल नरेश चेदिवंश के थे।

यह राजवंश चेदि अथवा चेति क्षत्रियों का था। चेदिवंश ऐर अथवा ऐल था। विद्वानोंका मत है कि यह राजवंश चन्द्रवंशियों का था। महाभारत भीष्म पर्व १७, २७, ५४, ४, ६४ में कलिंग नरेश पुरुरवाका वर्णन मिलता है जो ऐल वंश का था। जैन शास्त्रोंमें ऐल वंशकी स्थापनाका रोचक विवरण मिलता है। उसके अनुसार मुनि सुव्रतनाथके पुत्र सुव्रतके दीक्षा लेनेपर उनका पुत्र दक्ष हरिवंशका स्वामी हुआ। राजा दक्षकी रानी इलासे ऐलेय पुत्र हुआ और एक अत्यन्त सुन्दर पुत्री हुई जिसका नाम मनोहरी रखा गया। जब वह यौवनवती हुई तो उसके अनिन्द्य सौन्दर्यको देखकर उसका पिता दक्ष ही उसपर आसक्त हो गया। उसने अपनी पुत्रीसे ही विवाह कर लिया। इस कुकृत्यसे रानी इला अत्यन्त रुष्ट होकर अपने पुत्र ऐलेयको लेकर चली गयी। उसने अंग देशमें जंगलोंकी साफ कराकर इलावर्धन नामक नगर बसाया और ऐलेयको उसका राजा बनाया। ऐलेय बड़ा प्रतापी था। उसने ताम्रलिप्ति नगर बसाया। दिग्विजय करते हुए उसने नर्मदाके तटपर माहिष्मती नगरी बसायी। इसके बाद उसके वंशमें अनेक राजा हुए। इसी वंशमें अभिचन्द्र हुआ। उसने विन्ध्याचलके ऊपर चेदि राष्ट्रकी स्थापना की। अभिचन्द्रकी उग्रवंशमें उत्पन्न रानी वसुमतीसे वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वसु अत्यन्त सत्यभाषी पुरुष था। केवल एक बार नारद-पर्वतके विवादमें मध्यस्थ बनकर झूठ बोला। फलतः वह नरकमें गया।

पूर्व पुरुष ऐलेयके कारण ही यह वंश ऐल वंश कहलाने लगा। चेदि राष्ट्रकी स्थापनाका श्रेय अभिचन्द्र को है।

खारबेलने इसीलिए अपने आपको चेतिराजवंशवर्धन और ऐल कहा है। हाथी गुम्फा शिलालेखकी सत्रहवीं पंक्तिमें तो उसने स्पष्ट शब्दोंमें अपने आपको 'राजसि वसुकुलविनिःसृतो' अर्थात् राजर्षि वसुके कुलमें उत्पन्न लिखा है।

बौद्ध ग्रन्थोंमें 'चेति जनपदकी गणना सोलह महाजनपदोंमें की गयी है। महाभारतकार चेदि राज वंशावलीमें नृप दमघोष, शिशुपाल, सुनीथ और उसके दो पुत्रों—धृष्टकेतु और सरभ (जो महाभारत युद्धके समयतक शासन कर रहे थे) का वर्णन करते हैं। चेदि या चेति लोग दो भागोंमें बँट गये। एक भागके लोग तो नैपालके पहाड़ोंमें बस गये और दूसरे भागके लोग बुन्देल-खण्डमें रहने लगे। जैन, बौद्ध साहित्य और महाभारतमें चेदि राष्ट्रकी राजधानीका नाम शुक्तिमती लिखा है। जैन हरिवंश पुराणके अनुसार चेदि राष्ट्रके संस्थापक अभिचन्द्र नरेशने ही शुक्तिमती नदीके तटपर शुक्तिमती नगरी बसायी और उसे ही अपनी राजधानी बनायी थी। पार्जीटरने शुक्तिमती नदीकी पहचान केन नदीसे की है और शुक्तिमतीकी राजधानी बाँदाके समीप मानी है। इसी चेदि वंशका कोई राजकुमार कलिंग चला गया था। और वह वहीं बस गया था।

---

१. हरिवंश पुराण, १७वाँ सर्ग, श्लोक १ से ३९।

खारवेलका समय-निर्धारण

भारतीय इतिहासमें खारवेलका काल विवादास्पद बना हुआ है। उनके सम्बन्धमें जो कुछ जानकारी प्राप्त होती है, वह केवल हाथी गुम्फाके शिलालेखसे ही होती है। इस शिलालेखमें उन्हें 'कलिंग अधिपति' बताया है। किन्तु उनकी रानी द्वारा निर्मित स्वर्गपुरी या मंचपुरी गुफा-लेखमें चक्रवर्ती कहा गया है। इन लेखोंमें न तो खारबेलके पूर्वजोंका ही कहीं उल्लेख मिलता है और न उनके कालपर ही कुछ प्रकाश पड़ता है।

खारवेलके समय सम्बन्धी विवादमें स्पष्टतः दो पक्ष हैं—एक पक्ष तो वह है जो मानता है कि हाथी गुम्फाका लेख खारबेल शासनके तेरहवें वर्षमें खुदा था। उस वर्षको मौर्य-कालसे १६५वर्ष पश्चात् हुआ माना जाता है। इस मौर्य-कालसे प्रयोजन अशोककी कलिंग-विजयसे है। अशोकने कलिंगपर ई. पू. २५५ में विजय प्राप्त की। इसके १६५ वर्ष बाद खारबेलने यह शिलालेख खुदवाया। इस प्रकार खारबेल २५५ – १६५ = ९० + १३ = १०३ ई. पू. में राजगद्दीपर बैठा।[1]

दूसरा पक्ष मौर्यकालको नहीं मानता। हाथीगुम्फा लेखके सूक्ष्म निरीक्षण और गहन अध्ययनके पश्चात् अब यह सुनिश्चित हो चुका है कि मौर्यकालकी धारणा गलत पाठके कारण थी। लेखकी सोलहवीं पंक्तिमें जिसे 'मुरियकाल' पढ़ा गया था, वस्तुतः वह 'मुखिय कला' पाठ है। इससे मान्यताका सारा आधार ही बदल गया।

कुछ विद्वानोंने निष्कर्ष निकाला था कि खारबेल ई. पू. दूसरी शताब्दीमें हुआ था।[2] किन्तु अब कुछ विद्वानोंने, जिनमें डॉ. ऐच-सी. राय चौधरी, डॉ. डी. सी. सरकार और डॉ. बी. ऐम. बरुआ प्रमुख हैं, खारबेलको ई. पू. पहली शतीके शेषार्धमें स्वीकार किया है।

हाथीगुम्फा लेखमें उन राजाओंका भी नामोल्लेख मिलता है, जिन्हें खारबेलने हराया था। उनमें सातवाहन, बृहस्पति मित्र और यवनराज दिमित (डेमेट्रियस) ये नाम मुख्य हैं। इतिहासकारोंने इन समकालीन राजाओंकी काल-गणना करते हुए खारबेलका काल ई. पू. प्रथम शताब्दीका उत्तरार्ध ही निर्धारित किया है और उसके जन्म आदिका काल-निर्धारण इस प्रकार किया है—

जन्म— ई. पू. ४९।
युवराजपद— ई. पू. ३३।
राज्याभिषेक—ई. पू. २५।

खारबेलकी वंश-परम्परा

खारबेलके पूर्वज और उत्तराधिकारी कौन थे, उनका क्या नाम था, इन सब बातोंपर इतिहाससे विशेष जानकारी नहीं मिलती और न हाथीगुम्फा लेखमें इस सम्बन्धमें कुछ विवरण मिलता है। किन्तु उक्त अभिलेखमें इस सम्बन्धमें कुछ सूत्र ढूँढ़े जा सकते हैं। उक्त अभिलेखकी द्वितीय और तृतीय पंक्तियोंमें एक वाक्य इस प्रकार आया है—'ततिये कलिंगराजवसे पुरिसयुगे।'

डॉ. बी. एम. बरुआने इसका यह आशय निकाला है[3]—कलिंगके राजवंशकी तीसरी पीढ़ीमें जिसकी हर पीढ़ीमें दो राजाओंका संयुक्त शासन होता था।

---

१. पं. भगवानलाल इन्द्रजी, डॉ. ऐस. कोनो। २. के. पी. जायसवाल, आर. डी. बनर्जी। ३. Old Brahmi Inscriptions, by Dr. B. M. Barua, p. 41.

डॉ. बरुआने पुरुष युगका जो अर्थ किया है, लगभग उसी आशयमें इस शब्दका प्रयोग हेमचन्द्राचार्यने परिशिष्ट पर्व सर्ग ८ श्लोक ३२६ में इस प्रकार किया है—'गामी पुरुषयुगाणि नव यावत्तवान्वयः ॥'

यदि डॉ. बरुआका यह अर्थ स्वीकार कर लिया जाय तो यह मानना होगा कि महामेघ-वाहन ऐल वंशमें द्विराज्यका सिद्धान्त लागू था। इस विधिमें पिता-पुत्र दोनों मिलकर संयुक्त शासन करते थे। इस प्रकारके द्विराज्यका विधान अथर्ववेद और कौटिल्य अर्थशास्त्रमें भी मिलता है। इस संयुक्त शासन प्रणालीके अनुसार यह मानना होगा कि जब खारबेल ९ वर्ष तक युवराज पदपर आसीन रहे, उस समय खारबेलके पिता खारबेलके बाबाके साथ मिलकर राज्य-शासन कर रहे थे। अर्थात् खारबेलकी १६ से २४ वर्ष तक की आयुका यह काल था। २४ वर्षकी आयु पूरी होनेपर उसके पितामहका देहान्त हो गया और वह अपने पिताके साथ राज्य-शासन करने लगा। उसके शासनके ग्यारहवें वर्षमें उसके पिताका देहान्त हो गया। तब उसने अपने पिताकी स्मृतिमें वास्तविक श्रद्धांजलि अर्पित की। उस समय उसका पुत्र वक्रदेव अपने पिता खारबेलके साथ मिलकर शासन करने लगा।

डॉ. बरुआकी इस मान्यताका समर्थन मंचपुरी गुफाके लेखसे होता है। यह लेख खारबेल-शासनके १३वें वर्षमें उत्कीर्ण किया गया था। उसमें ऐर, महाराज, महामेघवाहन और कलिंगाधिपति शब्दोंका प्रयोग वक्रदेवके साथ किया गया है। हिन्दू पुराणोंके अनुसार आन्ध्र-सातवाहन नरेशोंके समकालीन राजाओंमें वे राजा भी थे जो कोशल और दक्षिण कोशलमें शासन करते थे, जिनकी संख्या नौ थी; जो बहुत शक्तिशाली और बुद्धिमान् थे और मेघ कहलाते थे।[3] भविष्य पुराणमें तो स्पष्ट कथन है कि महामेघवाहन वंशके सात राजा और सात आन्ध्रराजा समकालीन थे।

तृतीय पुरुष युगका आशय उक्त व्याख्याके प्रकाशमें यह होगा कि महामेघवाहन वंशमें खारबेल छठवाँ शासक था और वक्रदेव सातवाँ। इनके अतिरिक्त दो शासक इसके बाद हुए, जिनका शासन काल लगभग तीससे चालीस वर्ष तक रहा। इसके पश्चात् इस वंशका शासन समाप्त हो गया।

खारबेलका बचपन

हाथीगुम्फा अभिलेखकी प्रथम-द्वितीय पंक्तिमें खारबेलके बल, सौन्दर्य, वर्ण और आकृतिके सम्बन्धमें कुछ संकेत मिलता है। मूल पाठ इस प्रकार है—'पसथ-सुभ-लखनेन चतुरंत-लुठ (ण) गुण-उपितेन........(पं) दरस-वसानि सीरि (कडार)-सरीर-वताकीडिता कुमार कीडिका'। डॉ. बरुआने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—खारबेलके शारीरिक लक्षण अत्यन्त प्रशस्त और शुभ थे। सामुद्रिक शास्त्रमें एक यशस्वी राजाके योग्य जो शुभ लक्षण बताये गये हैं, वे सब उसके शरीरमें थे। वह चारों ओर समुद्रसे वेष्टित पृथ्वीकी रक्षा करनेमें समर्थ था। उसने कुमारोंके योग्य क्रीड़ामें पन्द्रह वर्ष बिताये।

इससे ज्ञात होता है कि खारबेल अपने बचपनमें कितना सुन्दर और रूपलावण्य युक्त था। उसके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि युवावस्थामें उसके रूप और बल-विक्रमको देखकर

१. अथर्ववेद ५।२०।९। २. कौटिल्य अर्थशास्त्र ८।२।१२८। ३. Dynasties in the Kaliage, by Pargiter, 51.

कामिनियाँ उसपर मोहित हो जाती थीं। किन्तु वह चरित्रवान् और सदाचारी था। अतः वह कभी वासनाकी दृष्टिसे स्त्रियोंकी ओर नहीं देखता था। उसके बलका रहस्य उसके सदाचारमें निहित था। उसने अपनी आयुके पन्द्रह वर्ष राजकुमारोचित क्रीड़ाओंमें व्यतीत किये। वह अध्ययन-में कुशाग्रबुद्धि था। पन्द्रह वर्षकी अवस्था तक उसने अनेक विद्याओंमें निपुणता प्राप्त कर ली थी और अनेक विषयोंसे सम्बन्धित शास्त्रोंका अध्ययन कर लिया था।

युवराज-पद

अभिलेखके अनुसार खारबेल सोलह वर्षकी अवस्थामें युवराज पदपर अभिषिक्त हुआ और इस पदपर वह चौबीस वर्षकी अवस्था तक रहा। इस कालमें उसने लिपि विद्या, गणित, नीति-शास्त्र तथा अन्य व्यवहारोपयोगी विषयोंमें दक्षता प्राप्त कर ली। अपने जीवन-कालकी सफलताकी आधारशिला उसने इसी कालमें रख ली। राजकाजमें वह अपने पिताका हाथ बँटाता था। साम-दाम-दण्ड-भेद सम्बन्धी राजनैतिक गुरुमन्त्रोंमें वह अत्यन्त चतुर था। अपने अधीन सामन्तों और कर्मचारियोंके प्रति उसका व्यवहार अत्यन्त कोमल, उदार और सहानुभूतिपूर्ण होता था। इससे राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनोंमें ही वह समान रूपसे प्रिय हो गया था।

खारबेलकी दिग्विजय

चौबीस वर्षकी अवस्थामें खारबेलका राज्याभिषेक हुआ। खारबेल एक महत्त्वाकांक्षी वीर युवक था। उसकी आकांक्षा समस्त भारतको विजित करके एकसूत्रमें आबद्ध करनेकी थी। उस समय देश अनेक मुख हो रहा था। मौर्य साम्राज्यके निर्बल पड़ते ही चारों ओर स्वतन्त्र राज्य बन गये थे। अन्तिम मौर्य सम्राट् बृहद्रथको मारकर उसका प्रधान सेनापति पुष्यमित्र शुंग मगध-का शासक बन बैठा था। उसने उत्तर भारतमें एक मजबूत साम्राज्यकी स्थापना कर ली थी। उसका राज्य शाकल (स्यालकोट) से लेकर बंगालकी खाड़ी तक, दक्षिणकी ओर नर्मदा नदी तक और दक्षिण-पूर्वमें आधुनिक बघेलखण्ड तक फैला हुआ था। उसने दो बार अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किये। इसी समय दक्षिणमें (महाराष्ट्र-कर्णाटकमें) आन्ध्रजातीय सातवाहनोंने एक नये राज्य-की स्थापना की। सातवाहन, जिसे शालिवाहन भी कहते हैं, राज्यके संस्थापकका नाम सिमुक था। उसकी तीसरी पीढ़ीमें सातकर्णि हुआ। यह भी बड़ा प्रतापी राजा था। इसने भी दो बार अश्वमेध और एक बार राजसूय यज्ञ किया था। इस कालका तीसरा राजा था यवन नरेश दिमित (डेमेट्रियस)। बाख्त्रीका यह यवन राजा बड़ा पराक्रमी था। उसने शाकल जीतकर मध्यदेशको जीत लिया। फिर साकेत और मध्यमिका नगरी (चित्तौड़से छह मिल) को घेरकर वह मगध तक आ पहुँचा।

मौर्य साम्राज्यकी अवनतिके समय ही कलिंगमें भी एक स्वतन्त्र राजवंश उठ खड़ा हुआ। उस राजवंशमें तीसरी पीढ़ीमें खारबेल हुआ।

ये चारों ही राजा बड़ी शक्तिशाली सेनाके स्वामी और प्रतापी नरेश थे। किन्तु खारबेल सर्वोपरि थे और उन्होंने इन तीनों राजाओंको पराजित करके उनका मान-मर्दन किया था। खारबेलकी इस दिग्विजयपर हाथीगुम्फा अभिलेखसे कुछ प्रकाश पड़ता है। इस अभिलेखके अनुसार उसने अपने राज्यके प्रथम वर्षमें तूफानमें टूटे हुए कोट द्वार, महल तथा मकानोंकी मरम्मत करायी। छावनी और तालाबके चारों ओर रक्षिका दीवाल खिंचवायी। यह कार्य सैनिक दृष्टिसे आवश्यक था। दूसरेपर आक्रमण करनेसे पहले अपनी सुरक्षाके उपाय करना बुद्धिमानी कहलाती है। इस कार्यमें उसने पैंतीस लाख रुपये खर्च किये।

दूसरे वर्षमें उसने सातवाहन सातकर्णिके विरुद्ध दुर्जय सेना लेकर अभियान किया और प्रतापी सातवाहनका अभिमान चूर-चूर कर दिया। यहाँसे वह कृष्णा नदीके तटपर बसे हुए मूषिक राज्य (कुछ विद्वानोंके मतसे अशिक नगर) की छातीपर चढ़ बैठा। फलतः शक्तिशाली मूषिकोंको भी उसकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

वह तीसरे वर्ष अपनी राजधानीमें ही रहा। चौथे वर्ष उसने विन्ध्याचलमें विद्याधरोंके नगरोंपर अधिकार किया और रथिक एवं भोजक लोगोंको अपने अधीन किया। आठवें वर्षमें उसने मगधपर आक्रमण किया। इस अभियानमें वह गोरथगिरि (गयाके पास बराबर हिल्स) तक जा पहुँचा। यह मगधकी राजधानी राजगृहकी पश्चिमी सैनिक चौकी या दुर्ग थी। गोरथ-गिरि तक पहुँचनेका परिणाम यह हुआ कि मगधनरेश वह सतिमित्र (बृहस्पति मित्र) पर भयानक दबाव पड़ा। दूसरा प्रभाव यह हुआ कि यवननरेश दिमित जो प्रबल वेगसे राजगृहकी ओर अपनी विजयिनी सेनाके साथ बढ़ता चला आ रहा था, खारबेलका नाम सुनते ही भयसे काँपने लगा। उसकी सेनाका मनोबल इतना गिर गया कि वह आतंकसे विजड़ित हो गयी। फलस्वरूप दिमित अपनी निराश सेनाको लेकर मार्गसे ही मथुरा लौट गया। किन्तु खारबेलने उस विदेशीका पीछा किया और भारतकी सीमासे बाहर निकालकर ही दम लिया।

दसवें वर्ष वह उत्तर भारतकी विजयके लिए निकला। ग्यारहवें वर्ष वह दक्षिणकी ओर गया और उसने पिथुण्ड (पितुन्द्र) नगरको नष्ट करके गधोंसे हल चलवा दिया। इसी वर्ष ११३ वर्षोंसे चले आ रहे त्रामिल अथवा द्रामिलके राज्यसंघको नष्ट कर दिया जो उसके राज्यके लिए खतरा साबित हो सकता था। उसके राज्य-शासनका बारहवाँ वर्ष युद्धोंकी दृष्टिसे अन्तिम वर्ष था। इस वर्ष उसने अनेक महत्त्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं। उत्तरापथके नरेशोंके दिल भयसे काँपने लगे। मगधवासियोंमें आतंक छा गया। उसने अपने हाथियोंको गंगाका पानी पिलाया। मगधपर खारबेलका यह आक्रमण इतने भयानक वेगसे हुआ था कि वहसतिमित्रको खारबेलके चरणोंमें नतमस्तक होना पड़ा था। यह आक्रमण एक तरहसे अशोकके कलिंग-आक्रमणके प्रतिशोध रूपमें था। उसने अंग और मगधकी मूल्यवान् भेंटें लेकर राजधानीको प्रयाण किया था। इस भेंटमें कलिंगके राजचिह्न और 'कलिंग-जिन' की प्राचीन मूर्ति भी थी जिसे नन्द राजा मगध ले गया था। खारबेलने उस अतिशयसम्पन्न मूर्तिको कलिंग वापस लाकर बड़े उत्सव समारोहके साथ विराजमान किया था। उस घटनाकी स्मृतिमें उसने विजय-स्तम्भ भी बनवाया था।

इसी वर्ष खारबेलके प्रतापका लोहा मानकर दक्षिणके पाण्ड्य नरेशने उसका सत्कार किया और हाथी, घोड़े, रत्न, जवाहरात आदि बहुमूल्य भेंटें अर्पित कीं।

इन द्वादशवर्षीय विजयोंसे वास्तवमें वह भारत सम्राट् बन गया था। उसने लगभग सारे भारतके राजाओंको पराजित कर दिया था, केवल बंगाल और आसाम ही बच पाये थे। किन्तु विशेषता यह रही कि जिन राज्योंको उसने जीता, वे उसके करद माण्डलिक भले ही बन गये हों, किन्तु उसने किसी राजाको उसके राज्यसे च्युत नहीं किया और न किसी राज्यको अपने राज्यमें मिलाया ही। इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि समस्त भारत उसके प्रभाव-क्षेत्रमें था।

जन-कल्याणकारी राज्य

खारबेलकी विजय उसकी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाकी परिणाम नहीं थी। उसने जितने अभियान किये, उनका एकमात्र उद्देश्य था अपने देश—कलिंगकी गौरव-वृद्धि। नन्दराज जिस 'कलिंग-जिन' की प्रतिमाको अपनी विजयके उपहारस्वरूप अपने साथ ले गया था, उसको

कलिंगवासी भूल नहीं सके। वह उनका राष्ट्र-देवता था। प्रतिमा क्या गयी मानो उनका गौरव चला गया, उनकी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा चली गयी या दूसरे शब्दोंमें उनकी राष्ट्रीय धरोहर छिन गयी। तीन सौ वर्ष जैसा लम्बा काल बीत गया, किन्तु कलिंग राष्ट्रकी आत्मा अपने इस अपहृत गौरव और प्रतिष्ठाकी बातको एक क्षणके लिए नहीं भूल सकी। इस राष्ट्रीय अपमानका बदला खारबेलने मगधसे लिया और ब्याज समेत लिया। एक बार वह सेना लेकर आया और उसने गोरथगिरिके सैनिक दुर्गोंका विध्वंस करके नगरपर अधिकार कर लिया। चाहता तो वह राजगृही और पाटलिपुत्रको तभी रौंद डालता। किन्तु नहीं, वह वहींसे लौट गया। वह मगधवासियोंपर एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव छोड़ गया, उनके मनमें आतंक और भयकी भावना पैदा कर गया। उसके चार वर्ष बाद वह पुनः आया किन्तु सीधे मार्गसे नहीं। सीधे मार्गसे तो आयी उसकी सेनाकी एक टुकड़ी और स्वयं आया हिमालयकी तलहटी होकर और एक दिन मगधवासियोंने उसके घोड़ोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंकी चिंघाड़ सुनी गंगाके दूसरे तट पर। सारा मगध स्तब्ध रह गया, भयसे बिजड़ित हो गया। वहसतिमित्रकी सेनाओंने गंगा-तटपर ही मोर्चा लिया। खारबेलके हाथी, घोड़े आरामसे गंगामें पैठकर दूसरी ओर निकलते रहे और वहसतिमित्रकी सेनापर आतंकका ऐसा फालिज मारा कि वह उन्हें राह देती रही। उसे चेत आया तब जब खारबेलके सेनापतिने गंगा-तटपर बने राज-प्रासादोंपर कलिंग चक्रवर्ती खारबेलकी ध्वजा फहरा दी और प्रासादपर अधिकार कर लिया। किन्तु बाजी खारबेलने जीती थी। वहसतिमित्र अन्य बहुमूल्य भेंटोंके साथ उस कलिंग-जिन-प्रतिमाको लेकर आया, अपनी तलवार और मुकुट खारबेलके चरणोंमें रखकर हाथ बांधकर खड़ा हो गया।

इसके साथ ही खारबेलके विजय-अभियान पूरे हो गये। उसके जीवनकी साध पूरी हो गयी थी। उसने कलिंग राष्ट्रके अपमानका बदला ले लिया था मगधके राजा और सम्पूर्ण मगधवासियों से। सही अर्थोंमें खारबेल सम्राट् नहीं, जनताकी आकांक्षाओंका सफल प्रतिनिधित्व करनेवाला लोक-नायक था। इसीलिए उसकी विजयोंका लाभ उसकी जनताको मिला; उपहारोंमें मिले बहुमूल्य रत्नोंका उपयोग उसके राष्ट्रके लिए हुआ।

अभिषेक होनेके पहले ही वर्षमें उसने तूफानमें नष्ट या क्षतिग्रस्त हुए कोटद्वार, महल और नगरके मकानोंकी मरम्मत करायी। बाग-बगीचे लगवाये। इन कामोंमें पैंतीस लाख रुपये लगे। तीसरे वर्षमें उसने सांस्कृतिक आयोजनोंपर विशेष ध्यान दिया। गीत, नृत्य, वादित्रसे नगरका उदास मन प्रफुल्लित हो उठा। जनताके सूखे मनोंको रस सींचकर हरा-भरा कर दिया। स्वयं भी गीत, नृत्य और वादित्रकी शिक्षा ली और समाजोंमें भाग लेकर जनताका मनोरंजन किया। उसने धर्मकूट जिनालयमें महापूजा की और उसमें बड़े समारोहके साथ छत्र भृंगार चढ़ाये। नन्दराजने जो नहर बनवायी थी, उसे और बढ़ाया। राजत्वके छठे वर्षमें उसने पौर और जानपद संघोंको विशेष अधिकार प्रदान किये। फिर उसने ३८ लाख रुपये लगाकर महाविजय नामक मन्दिर बनवाया।

उसने अत्याचारी राजाओंके अत्याचारोंसे प्रजाकी रक्षा की तथा तेरह सौ वर्षोंसे चले आ रहे मार्ग-कर और जनपद भावन-करको कलमकी एक नोकसे हटा दिया। उसने राजत्वके नौवें वर्षमें बड़ा भारी धार्मिक उत्सव किया और 'कल्पतरु' बनाकर सबको किमिच्छक दान दिया। योद्धाओंको रथ, हाथी, घोड़े दिये। ब्राह्मणोंको भी दान दिया और प्राची नदीके दोनों तटोंपर 'विजय प्रासाद' बनवाकर अपनी विजयकी स्मृतिको सुरक्षित बना दिया। बारहवें वर्षमें मगधको हराकर और कलिंग-जिनकी प्रतिमा वापस लाकर उसने विशाल समारोहके साथ उस प्रतिमाको

विराजमान किया। इस घटनाकी स्मृतिमें उसने विजय-स्तम्भ बनवाकर बड़ा उत्सव किया। इस प्रकार उसने लोकहितकी भावनासे किये गये अपने सभी कार्योंसे प्रजाके मनको जीत लिया था।

तेरहवाँ वर्ष उसके राजत्वका अन्तिम वर्ष था। कलिंग राष्ट्रका पूर्व गौरव और प्रतिष्ठा उसे पुनः प्राप्त हो गयी थी। सम्पूर्ण भारतपर कलिंगका प्रभाव था। इस तरह खारबेलके जीवनका इहलौकिक कार्य सम्पूर्ण हो चुका था। अतः उसने अब पारलौकिक प्रयोजनमें अपने शेष जीवनको समर्पित कर दिया। यद्यपि वह स्वयं जैनधर्मानुयायी था किन्तु वह अपने आपको 'सर्व पाषण्ड पूजक' कहकर सर्व धर्मोंके अनुयायियोंके प्रति अपनी उदार नीतिकी घोषणा करता है।

कुमारी पर्वतपर, जहाँ भगवान् महावीरने उपदेश दिया था, वहाँ खारबेलने जिन-मन्दिरका निर्माण कराया, अर्हत् निषधिकाका उद्धार कराया और सर्व दिशाओंके महाविद्वानों और तपस्वी साधुओंका समाज एकत्रित किया।

खारबेलका राजत्व काल यद्यपि तेरह वर्ष ही है किन्तु इतने अल्प कालमें ही उसने सम्पूर्ण भारतवर्षको जीत लिया, प्रजा-रंजनके अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। धार्मिक दृष्टिसे उसका योगदान जैन धर्मके इतिहासका एक चमकता हुआ पृष्ठ है। उसकी धार्मिक निष्ठा असन्दिग्ध थी, किन्तु उसमें साम्प्रदायिकताका लेश मात्र भी न था। उसके अहिंसक राज्यशासनमें जैन ही नहीं, ब्राह्मण, बौद्ध तथा अन्य धर्मावलम्बी भी अपने जीवन, अपने धर्मके प्रति आश्वस्त थे।

खारबेलका विवाह

अपने राज्य-शासनके सातवें वर्षमें अर्थात् इकतीस वर्षकी आयुमें खारबेलने वजिराघरकी राजकुमारीके साथ विवाह किया। मंचुपुरीकी गुफाका निर्माण खारबेलकी अग्रमहिषीने जैन मुनियोंके उपयोगके लिए कराया था। उसमें महारानीने जो लेख उत्कीर्ण कराया था, वह लेख इस प्रकार पढ़ा गया है—"राजिनो लालकस हस्तिसिहस पपोतस धुतुनय कलिंगचकवतिनो सिरि खारबेलस अगमहिसी।" इसमें बताया है कि कलिंग चक्रवर्ती खारबेलकी अग्रमहिषी महानात्मा हस्तिसिंहकी पुत्री थी। इतिहासकार वजिराघरकी पहचान मध्यप्रदेशमें चान्दा जिलेके वैरागढ़से करते हैं।

किन्तु खण्डगिरि-उदयगिरिकी गुफाओंके शिलालेखोंके पाठोंके बारेमें सभी इतिहासकार एकमत नहीं हैं। इसलिए अधिकारपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि खारबेलकी अग्रमहिषी कहाँकी और किस वंशकी थी।

खारबेलका राज्याभिषेक

हाथीगुम्फा लेखकी द्वितीय और तृतीय पंक्तिमें खारबेलके राज्याभिषेकके सम्बन्धमें इस प्रकार पाठ मिलता है—"संपुण चतुवीसति वसो तदानि वधमात्रसेसयो वेनाभिविजयो ततिये कलिंग राजनसे पुरिस युगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति" अर्थात् चौबीस वर्षकी आयु पूर्ण होनेपर अपनी बढ़ती हुई उम्रमें राजा वेनके समान जिसके भाग्यमें विजय है; और कलिंगकी तीसरी पीढ़ीमें खारबेलका महाराज्याभिषेक हुआ।

जहाँ तक राज्याभिषेकका सम्बन्ध है, प्रसिद्ध इतिहासकार श्री के. पी. जायसवालका अभिमत है कि खारबेलका महाराज्याभिषेक वैदिक रीतिसे सम्पन्न हुआ। उनका इस बातके कहनेका आशय यह है कि यद्यपि खारबेल जैनधर्मानुयायी थे, किन्तु वैदिक रीतिसे राज्याभिषेक

होनेमें जैन धर्मने कोई बाधा नहीं डाली। जैन धर्म राष्ट्रकी प्रचलित रीति रिवाजोंमें कभी बाधक नहीं बना।

सम्भवतः प्राचीनकालमें राज्याभिषेकके लिए चौबीस वर्षकी आयुको एक आवश्यक शर्त माना जाता था। इसीलिए खारबेलके सोलह वर्षकी अवस्थामें युवराज पदपर अभिषिक्त होनेपर भी उनका राज्यारोहण चौबीस वर्षकी आयु पूर्ण होनेपर ही कर पाया। सम्भवतः इसी नियमके अनुसार अशोकका भी उसके राज्य-प्राप्तिके तीन-चार वर्ष पश्चात् ही राज्याभिषेक हो सका था।

खारबेलकी धार्मिक नीति

हाथीगुम्फा अभिलेख णमोकार मन्त्रसे प्रारम्भ होता है। इसलिए इसमें तो सन्देह नहीं है कि खारबेल जैन धर्मका अनुयायी था। खारबेल ही नहीं, उसके सभी परिवारीजन जैन थे। उदाहरणतः खारबेलकी पटरानी द्वारा निर्मित मंचपुरी गुफामें लेख है कि अर्हन्तोंकी प्रसन्नताके लिए यह गुफा श्रमणोंके लिए समर्पित की गयी। इसी प्रकार खारबेल शासनके तेरहवें वर्षका विवरण चौदहवीं पंक्तिमें बताया गया है, जिसके अनुसार कुमारी पर्वतपर अर्हन्तों अथवा जैन साधुओंके विश्रामके लिए गुफाओंका निर्माण किया गया।

ई० पू० चतुर्थ शताब्दीमें जब नन्दराज महापद्मने मगधपर आक्रमण किया तो वह कलिंग जिन प्रतिमा को उठा ले गया। उस मूर्ति-अपहरणकाण्डसे वह कलिंगकी धार्मिक भावनाओंको दबाना चाहता था। सारी जनतामें व्यापक क्षोभ फैल गया। आखिर खारबेलने अपने राज्य शासनके बारहवें वर्ष मगधपर आक्रमण कर दिया और वहाँके नरेश वहसतिमित्रको हराकर जनताकी भावनाकी पूर्ति की तथा कलिंगजिनको लाकर उसे पुनः प्रतिष्ठित कराया। 'कलिंग-जिन' की इस मूर्तिको न केवल राज्य-परिवारकी श्रद्धा और सम्मान मिला था, अपितु सर्व साधारणकी भी श्रद्धा इसके प्रति थी। एक प्रकारसे कलिंग-जिन-मूर्ति कलिंगकी प्रजाके लिए एकताकी एक सुदृढ़ कड़ी बन गयी थी।

उस समय कलिंगमें अन्य धर्म और उनके धर्मायतन भी थे किन्तु खारबेलने प्रियदर्शी अशोकके समान सभी धर्मों और विश्वासोंका समान सम्मान करनेकी घोषणा की थी। उसने अपने शिलालेखकी पंक्ति १७ में अपने आपको सर्व पाषण्ड पूजक और सर्व देवायतन-संस्कारकारक लिखा है। अर्थात् उसने सभी धर्मोंके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार किया था। उसका राज्याभिषेक वैदिक रीतिसे हुआ। उसने शासनके लिए वे ही सिद्धान्त और तरीके अपनाये, जो ब्राह्मण ग्रन्थोंमें निर्दिष्ट हैं। सैनिक अभियान और दिग्विजयके लिए हुए युद्धोंमें जैनधर्मने कभी बाधा खड़ी नहीं की। वस्तुतः जैन धर्म अत्यन्त उदार और सभी परिस्थितियोंसे समझौता करनेवाला धर्म है। उसके यहाँ जैन निर्ग्रन्थ भी आहार लेते थे और ब्राह्मण ऋषि भी। ब्राह्मणोंको दान आदिसे सम्मानित किया जाता था। इन सब बातोंके उल्लेख करनेसे हमारा तात्पर्य यह है कि इहलौकिक मामलोंमें वह सभी धर्मोंके प्रति उदार और सहिष्णु था और पारलौकिक मामलोंमें वह निष्ठावान् जैन था।

वह दूसरोंके धर्ममें दखल नहीं देता था, बाधा नहीं डालता था, अपने धर्म और विचारोंको दूसरोंके ऊपर थोपने या बलाघात करनेका प्रयत्न नहीं करता था। उसने कभी सब धर्मोंको एक मंचपर लानेका भी प्रयत्न नहीं किया। यद्यपि वह अपने आपको धर्मराज कहता है किन्तु उसने कभी अशोक और अकबरके समान धार्मिक नेता बननेका प्रयत्न नहीं किया। उसके राज्यमें सभीको अपने धर्म, विश्वास और मान्यताको माननेकी पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

खारबेल और जैनधर्म

कलिंगमें जिस समय खारबेलका उदय हुआ था, उस समय वहाँ जैन धर्म समुन्नत अवस्था में विद्यमान था। खारबेलको वंशानुक्रमसे विरासतमें जैन धर्म प्राप्त हुआ था। उसे जैन धर्म प्राप्त करनेके लिए प्रयास नहीं करना पड़ा था अर्थात् उसे यह अनायास मिल गया था। इसीलिए सही अर्थोंमें जैन धर्म उसके लिए अमूल्य था और उसने इसकी रक्षा भी अमूल्य निधिके रूपमें की थी। वह, उसकी रानियाँ और कुमार जैनधर्मके अनुयायी थे, इसलिए जैनधर्मका प्रचार तीव्र-गतिसे हुआ।

हाथीगुम्फाका शिलालेख खारबेलकी देखरेखमें लिखा गया था। खारबेलके जीवनसे परिचित होनेका साधन इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। यदि और कोई प्रमाण रहे भी हों तो लगता है, कलिंग और दक्षिण भारतमें जैनधर्मके विरुद्ध जो शैव और वैष्णव क्रान्ति भयानक वेगसे उठी, उसमें वे सब प्रमाण धुल-पुंछकर साफ हो गये। इस क्रान्तिके फलस्वरूप अनेक जैन मन्दिरोंपर दूसरोंने अधिकार करके उन्हें परिवर्तित कर दिया, अनेक जैन ग्रन्थोंपर अधिकार करके अपना बना लिया; अनेक तीर्थंकर मूर्तियाँ जैनेतर देवताओंका रूप धारण करके देवायतनों-में विराजमान कर दी गयी हैं। किन्तु आश्चर्य है कि खण्डगिरि और उदयगिरिकी ये गुफाएँ सुरक्षित रहीं और क्रान्तिकी आँधी इन्हें अपने साथ नहीं उड़ा ले जा सकी। इसलिए उन गुफाओं और उनके लेखोंने खारबेलको भी सुरक्षित रख छोड़ा है।

हाथीगुम्फाका लेख जैनोंके मान्य 'नमो अरहंतानं, नमो सब सिधानं' इस मंगल पाठसे प्रारम्भ होता है। इससे सम्राट् खारबेलने जैनधर्मके नमस्कार मन्त्र को लक्ष्य करके अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। इस शिलालेखमें जैनधर्म मान्य चार मांगलिक चिह्न भी दिये हैं। उनके नाम हैं—वर्धमगल, स्वस्तिक, नन्दिपद और चौथा चिह्न है चैत्यवृक्ष। वर्धमंगल जूनागढ़की जैनगुफाके द्वारपर भी खुदा हुआ है। साँचीस्तूपके तोरणमें भी यह चिह्न मिलता है। कुछ लोग इस चिह्न-को त्रिशूल, त्रिरत्न या श्रीवत्स चिह्न बताते हैं। स्वस्तिक एक मांगलिक चिह्न है। ॐ शब्दके रूपकके लिए और चारों गति रूप संसारके प्रदर्शनके लिए जैनोंमें इस चिह्नको सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है। नन्दिपद या नन्द्यावर्त भी ॐ के रूपकके लिए प्रयुक्त होता है। इस चिह्नको जैनोंने अधिक अपनाया है। चैत्यवृक्ष तीर्थंकरोंके समवसरणमें होते हैं। एक वृक्षके नीचे युगल-दम्पति बैठे होते हैं और वृक्षके शीर्षपर अरहन्त प्रतिमा विराजमान रहती है। यह चिह्न अनेक मूर्तियोंमें मिलता है और चैत्यवृक्षकी हजारों स्वतन्त्र मूर्तियाँ भी मिलती हैं। इन चिह्नोंको देकर खारबेलने जैनधर्म और उसकी कलाको समुचित सम्मान प्रदान किया है।

शिलालेखकी चौदहवीं और पन्द्रहवीं पंक्तिमें उनके तेरहवें वर्षके कार्योंपर कुछ प्रकाश डाला गया है। इसमें बताया है कि कुमारीगिरिपर खारबेल, राजमहिषी, राजपुत्रों और राज्या-धिकारियोंने जैन साधुओंके लिए गुफाओंका निर्माण कराया। एक निषधिकाका भी निर्माण कराया। इससे खारबेल और उनके परिवारकी जैन साधुओंके प्रति अपार श्रद्धाका परिचय मिलता है।

उदयगिरि-खण्डगिरिकी गुफाएँ

खण्डगिरि-उदयगिरि नामक दो पहाड़ियाँ हैं जो उड़ीसा प्रान्तमें भुवनेश्वरसे ६ कि. मी. दूर हैं। इन दोनों पहाड़ियोंको एक सड़क पृथक् करती है। किन्तु वैसे दोनों पहाड़ियाँ अपने तल

प्रदेशमें मिली हुई हैं। खण्डगिरिकी ऊँचाई एक सौ तेईस फुट है और उदयगिरि एक सौ दस फुट ऊँची है। इनका पाषाण भूरा बलुआ है।

गुफाओंका प्रचलन अतिप्राचीन कालसे चला आ रहा है। प्राचीन कालमें जैनमुनि जंगलोंमें, पर्वतोंपर, नदी-तटपर और गुफाओंमें तप किया करते थे। यहाँका कुमारी पर्वत बहुत कालसे तीर्थभूमि रहा है। ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि भगवान् पार्श्वनाथका इस प्रदेशमें विहार हुआ था और वे इस पर्वतपर भी पधारे थे। पार्श्वनाथके पश्चात् महावीर भगवान् यहाँ पधारे थे और कुमारी पर्वतपर उनका समवसरण लगा था।

तीर्थभूमि और एकान्त स्थान होनेके कारण इन पहाड़ियोंकी ओर निर्ग्रन्थ जैन मुनि जनोंका आकर्षित होना स्वाभाविक था। खारबेल द्वारा जैन धर्मको संरक्षण देने और कलिंग-वासियोंकी जैन धर्मके प्रति निष्ठाके कारण मुनियोंका यहाँ आवागमन निरन्तर लगा रहा। कलिंगमें खारबेलका काल जैन धर्मके लिए स्वर्णकाल माना जाता है। इसलिए इस कालमें निर्ग्रन्थ जैन मुनि बहुसंख्यामें ध्यान, तपस्या और सल्लेखनाके लिए यहाँ आते रहते थे। उन मुनिजनोंकी सुविधाके लिए खारबेल तथा उनके परिजनोंने इन पहाड़ियोंपर छोटी-बड़ी अनेक गुफाओंका निर्माण कराया था।

एक बातकी ओर विशेष रूपसे ध्यान जाता है। यहाँ गुफाओंमें यहाँ तक कि सम्पूर्ण कलिंग प्रदेशमें जितनी जैन मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं, सभी दिगम्बर परम्पराकी मिलती हैं। कहीं पर भी श्वेताम्बर परम्पराकी कोई मूर्ति नहीं मिली। इससे ऐसा लगता है कि प्राचीन निर्ग्रन्थ जैन परम्परासे कुछ साधुओं द्वारा विद्रोह करके अपना अलग पन्थ स्थापित करनेपर भी तब तक एक स्वतन्त्र सम्प्रदायके रूपमें उसका व्यवस्थित गठन नहीं हो पाया था। किसी सम्प्रदायकी स्थापना होनेपर उसका कुछ रूप निखरने, उसको एक व्यवस्थित रूप पानेमें कुछ समय अवश्य लगता है। अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुसे विद्रोह करके आचार्य स्थूलभद्र और उनके साथी कुछ साधुओं द्वारा अपना पृथक् सम्प्रदाय गठित किये हुए केवल दो शताब्दीसे कुछ अधिक काल ही बीता था। न वे अबतक अपने शास्त्र ही व्यवस्थित कर पाये थे और न अपनी पृथक् मूर्तियाँ ही तैयार करा पाये थे। इसलिए खण्डगिरि-उदयगिरि पर श्वेताम्बर परम्पराकी एक भी मूर्ति नहीं मिलती।

इन गुफाओंका निर्माण-काल क्या है, यह निश्चित रूपसे बता पाना प्रायः कठिन है। किन्तु हाथीगुम्फाके प्रसिद्ध शिलालेखसे कुछ प्रकाश पड़नेकी सम्भावना है। कुछ इतिहासकारोंने हाथीगुम्फा अभिलेखका काल ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीका अन्तिम चरण निर्धारित किया है। किन्तु खण्डगिरिपर कुछ गुफाएँ बादमें भी निर्मित हुई थीं।

मन्दिर, गुफाएँ और मूर्तियाँ

खण्डगिरिके जैन मन्दिर

जैन धर्मशालासे लगभग ५० गज चलनेपर बायीं ओर सीढ़ियों द्वारा चढ़कर पहाड़ीकी चोटीपर चार छोटे-बड़े मन्दिर बने हुए हैं। ये सभी मन्दिर आधुनिक हैं। पहला मन्दिर छोटा है। उसमें केवल मण्डप और गर्भगृह बने हुए हैं। गर्भगृहमें संगमरमरकी एक वेदीमें पाँच खड्गासन जैन मूर्तियाँ विराजमान हैं। बायीं ओरसे—

१. ऋषभदेव—अवगाहना दो फुट। मुख कुछ खण्डित है। दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। शीर्षभागपर दोनों ओर पुष्पवर्षा करते हुए गन्धर्व बने हुए हैं। चरण-चौकीपर वृषभ लांछन है।

२. ऋषभदेव—अवगाहना १५ इंच। अधोभागमें चमरवाहक खड़े हुए हैं। उनके ऊपरकी ओर दो-दो पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ दोनों ओर उत्कीर्ण हैं। बायीं ओरकी एक प्रतिमा नहीं है, शायद खण्डित कर दी गयी है। ऊपर दोनों ओर आकाशचारी देव हाथोंमें माला लिये हुए प्रदर्शित हैं। आसनपर वृषभ लांछन है।

३. शान्तिनाथ—अवगाहना १३ इंच। चमरवाहकोंके ऊपर दोनों ओर चार-चार मूर्तियाँ हैं जो उपाध्याय परमेष्ठीकी हैं। एक कीचक प्रदर्शित है। शान्तिनाथके सिरपर २ इंचका केश गुच्छक है जो अत्यन्त भव्य है। प्रतिमा श्याम वर्ण है। हरिण लांछन है।

४. पार्श्वनाथ—अवगाहना तेरह इंच। सिरपर सप्त फणावली शोभित है। अधोभागमें चमरेन्द्र और शिरोभागपर दोनों ओर पुष्पमालधारी आकाशचारी गन्धर्व हैं।

५. तीर्थंकर मूर्ति—लांछन मिटा हुआ है। सम्भवतः ऋषभदेवकी है। अवगाहना तेरह इंच। सिरपर केशोंका जूट है। दोनों ओर चमरेन्द्र और पुष्पमालधारी देव बने हुए हैं।

ये सभी प्रतिमाएँ सलेटी पाषाणकी बनी हुई हैं और प्राचीन हैं।

इस मन्दिरके निकट बड़ा जैन मन्दिर है। इसके द्वारमें प्रवेश करते ही बाह्य मण्डपमें वेदी मिलती है। उसपर वीर संवत् २४७९ की श्वेत मार्बलकी महावीर स्वामीकी प्रतिमा विराजमान है।

इसके गर्भगृहमें सामनेकी मुख्य वेदीपर मध्यमें मूलनायक ऋषभदेव तीर्थंकरकी वीर संवत् २४६९ की श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना तीन फुट है। इसके अतिरिक्त इस वेदीपर १४ मूर्तियाँ विराजमान हैं। सभी प्राचीन हैं। इनकी अवगाहना क्रमशः ९, १५, १८, ९, १५, ९, २१, १९, ८, १७, १४, १३, साढ़े छह और साढ़े छह इंच है। सभीका वर्ण हलका सलेटी है। सभी खड्गासन मुद्रामें हैं। इनमें चौदह इंचवाली मूर्ति यक्षीकी है। यक्षी अम्बिका सुखासनसे बैठी है। एक घुटना मुड़ा हुआ है तथा दूसरा पादपीठपर रखा हुआ है। दायें हाथमें आम्र-गुच्छक है। बायीं गोदमें एक बालक है। बालकका एक हाथ स्तनपर है। अम्बिका मातृत्वकी प्रतीक देवी है और वह बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथकी सेविका यक्षी है। इन प्रतिमाओंमें अन्तिम प्रतिमा सर्वतोभद्रिका है।

गर्भगृहमें दायीं ओर एक झरोखेमें ढाई फुटके एक शिलाफलकपर २४ तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। मध्यमें मूलनायक ऋषभदेवके सिरपर दो इंच ऊँचा जटाजूट है। दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहिका देवियाँ हैं। एक तीर्थंकर और एक चमरवाहिका मूर्ति खण्डित है।

बायीं ओरके झरोखेमें भगवान् नेमिनाथके गोमेद यक्ष और अम्बिका यक्षी सुखासनसे बैठे हुए हैं। यक्षीकी बायीं गोदमें एक बालक बैठा हुआ है तथा एक बालक यक्ष-यक्षीके बीचमें खड़ा हुआ है। इसके ऊपर आम्रगुच्छक लटक रहा है। मूर्तिके शीर्षपर भगवान् नेमिनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। उसके दोनों ओर चमरेन्द्र विनत मुद्रामें खड़े हुए हैं।

इस मन्दिरके बायीं ओर एक छोटा मन्दिर है। वेदीपर कोई प्रतिमा नहीं है। वेदीके आगे एक शिलाफलकपर २४ तीर्थंकरोंके चरणचिह्न बने हुए हैं।

उससे आगे एक अन्य मन्दिर है। उसमें तेरह फुट उत्तुंग कायोत्सर्गासनमें पार्श्वनाथकी श्याम वर्ण प्रतिमा वीर संवत् २४७६ में प्रतिष्ठित विराजमान है। उसके दोनों ओर पार्श्वनाथके यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र और पद्मावती खड़े हुए हैं। दोनोंके शीर्षपर पार्श्वनाथ विराजमान हैं।

इस मन्दिरके बायीं ओर एक कमरा बना हुआ है।

ये सभी प्राचीन मूर्तियाँ इस पहाड़ी अथवा इसके आसपासमें उपलब्ध हुई थीं। इन मूर्तियोंका काल अनुमानतः ८-९वीं शताब्दी प्रतीत होता है। मन्दिरपर जानेके लिए कई मार्ग हैं—(१) आकाशगंगा होते हुए दायीं ओर मुड़कर, (२) गुफा नं. ३ (अनन्त गुम्फा) के निकटसे, (३) गुफा नं. ५ (खण्डगिरि गुम्फा) के दायीं ओर बनी हुई सीढ़ियोंके द्वारा, (४) गुफा नं. ८ (बाराभुजी गुम्फा) के बगलमें बनी हुई सीढ़ियोंसे अथवा (५) श्यामकुण्डसे ऊपर चढ़कर जो मार्ग गया है उससे। इस मन्दिरपर पहुँचकर दृश्य अत्यन्त मनभावन प्रतीत होता है।

इस मन्दिरके निर्माण-कालके सम्बन्धमें कई पुरातत्त्ववेत्ताओंने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। स्टर्लिंग सन् १८२५ में यहाँ आये थे। उन्होंने लिखा है—मन्दिर आधुनिक है। उनकी सूचनानुसार यहाँकी मूलनायक प्रतिमा पार्श्वनाथ भगवान्‌की थी। मि. किट्टोने सन् १८३७ में यहाँकी यात्रा की थी। वे लिखते हैं—मन्दिर आधुनिक है। इसका निर्माण मराठा कालमें हुआ है। श्री राजेन्द्रलाल मित्रकी मान्यता है कि यह मन्दिर १९वीं शताब्दीके प्रथम पादमें कटकके श्री मंजु चौधरी और उनके भतीजे भवानी दादूने बनवाया था। श्री मित्रके मतमें महावीर यहाँके मूलनायक थे।

हमारी विनम्र मान्यता है कि यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। समय-समयपर इसका जीर्णोद्धार होता रहा है। सम्भव है, श्री मित्रने जैसा कि उल्लेख किया है, कटकके चौधरी और दादूने निर्माण नहीं, कुछ मरम्मतका कार्य कराया हो। यह भी सम्भव है कि श्री मित्रको मि. किट्टोकी रिपोर्ट देखनेको नहीं मिली हो। इन विद्वानोंने मूलनायकके रूपमें विराजमान जिस पार्श्वनाथ अथवा महावीरकी प्रतिमाका उल्लेख किया है, वह प्रतिमा कहाँ गयी, यह ज्ञात नहीं हो सका। अब तो उस प्राचीन प्रतिमाके स्थानपर भगवान् ऋषभदेवकी आधुनिक प्रतिमा विराजमान है।

इस मन्दिरके पृष्ठ भागमें जंगलके बीचमें प्राचीन मन्दिरोंके ध्वंसावशेषोंके ढेर पड़े हुए हैं। इस समय तो इन ढेरोंमें कोई मूर्ति आदि नहीं है किन्तु ज्ञात हुआ कि पहले यहाँ अनेक तीर्थंकर मूर्तियाँ थीं। यह स्थान देव-सभा कहलाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सम्राट् खारबेलने जिस अर्हत्प्रासादका जीर्णोद्धार कराया था अथवा जिस निषधिकाका निर्माण कराया था, उन्हींके ये अवशेष हों।

खण्डगिरिकी गुफाओंका संक्षिप्त परिचय

(१) टटोवा अथवा तोता गुम्फा नं. १—बाहरकी ओर एक बरामदा है तथा अन्दर प्रकोष्ठ है। प्रकोष्ठ ग्यारह फुट लम्बा और साढ़े छह फुट चौड़ा है। प्रवेश करनेके लिए २ द्वार हैं। द्वारकी महरावके ऊपर तोतेका चित्र अंकित है। इसलिए इस गुफाका नाम तोता गुफा पड़ गया। गुफाके बाहरी भागमें दोनों ओर द्वारपाल खड़े हुए हैं। वे धोती और अंगरखा पहने हैं और तलवार धारण किये हुए हैं। ये खण्डित हैं। प्रकोष्ठके दायें प्रवेशद्वारके ऊपर वृषभ और बायें प्रवेशद्वारके ऊपर सिंह मूर्ति बनी हुई है। प्रवेशद्वारोंके दोनों तोरणोंके मध्यवर्ती स्थानमें एक पंक्तिका निम्नलिखित लेख है—

"पदमुलिकस कुसुमास लेनं"

अर्थात् पदमुलिकवासी कुसुम सेवककी गुफा।

यह लेख खण्डगिरिके सभी लेखोंमें सबसे प्राचीन है।

(२) टटोवा गुम्फा नं. २—गुफा नं. १ के दायीं ओर सीढ़ियोंसे चढ़कर गुफा नं. २ मिलती है। इस गुफाकी लम्बाई साढ़े पन्द्रह फुट और चौड़ाई सात फुट है। इसमें बाहर बरामदा और अन्दर एक प्रकोष्ठ है। इसमें दो स्तम्भ और तीन प्रवेशद्वार बने हुए हैं। प्रवेशद्वारोंके तोरण अलंकृत हैं। बायीं ओर प्रवेश-द्वारके ऊपर वृक्षोंके बीच सिंह अंकित है, मध्यमें चार हाथी और दायीं ओर दो वृषभ बने हुए हैं। इनके अतिरिक्त कमल, वृक्ष, हंस, तोते और हरिण युगल बने हुए हैं। तोरणोंके शीर्षपर नन्दीपद दिखाई पड़ते हैं। प्रकोष्ठ भित्तिपर ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दीकी वर्णमाला ब्राह्मी लिपिमें अंकित है, कुल ६ पंक्तियाँ हैं। अक्षर इस भाँति पढ़े गये हैं—

१. .... घ
२. .... ण त थ द ध न
३. .... ण त थ द ध न
४. .... ण त थ द ध न प फ ब भ....श
५. .... स ह त थ द ध न प फ ब....ष श स ह
६. ....थ.... ....

सम्भवतः यह वर्णमाला बाल मुनियोंके अभ्यासके लिए अंकित की गयी होगी।

(३) अनन्त गुम्फा—फिर उन्हीं सीढ़ियोंसे उतरकर दर्शक गुफा नं० ३ तक पहुँच जाता है। यह बाईस फुट लम्बी और छह फुट चौड़ी है। बाहर बरामदा है और अन्दर १ प्रकोष्ठ है। बरामदेमें तीन स्तम्भ लगे हुए हैं। स्थापत्य कलाकी दृष्टिसे खण्डगिरिकी गुफाओंमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकोष्ठके पृष्ठ भागकी दीवालपर ढाई फुट ऊँची एक खड्गासन जिन-प्रतिमा बनी हुई है। इसके दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र स्थित हैं। उसके शिरोभागपर नन्दीपद, स्वस्तिक और श्रीवत्स ये मंगल चिह्न बने हुए हैं। स्वस्तिक लांछनके कारण यह मूर्ति सुपार्श्वनाथ तीर्थंकरकी प्रतीत होती है। किन्तु मूर्ति काफी घिस चुकी है। मुख कुछ अस्पष्ट है। इसलिए कुछ विद्वानोंकी मान्यता है कि मूर्ति घिसी हुई नहीं है, अपितु मूर्तिकार इसे सम्पूर्ण नहीं कर सका होगा।

इसके चार प्रवेश-द्वार हैं। प्रत्येक तोरणके ऊपर श्रीवत्स अथवा नन्दीपद बने हुए हैं। आधार-स्तम्भोंपर वृषभ, सिंह आदि पशुओं और कमलोंके चिह्न बने हुए हैं। एक सिरदलपर एक पुरुष राजसी परिधान पहने, कुण्डल, केयूर, हार आदि आभूषण धारण किये हुए दिखाई पड़ता है। वह सिरपर मुकुट और छत्र धारण किये हुए है। उसके पासमें एक स्त्री मूर्ति है जो चार अश्वोंके रथको चला रही है। उसके दोनों ओर चमर रखे हुए हैं। उनके ऊपर चन्द्र, तारे और सूर्य बने हुए हैं। रथके पहियेके निकट एक व्यक्ति जलका घट लिये खड़ा है।

अगले द्वारके सिरदलपर गजलक्ष्मी अंकित है। पद्म सरोवरमें दो गज लक्ष्मीको स्नान करा रहे हैं। दो पक्षी भी वहाँ बैठे दिखाई देते हैं।

चौथे सिरदलपर एक वृक्ष, जो सम्भवतः अशोक वृक्ष है, दिखाई पड़ता है। उसके ऊपर छत्र है। एक पुरुष हाथ जोड़े हुए खड़ा है। एक स्त्री पुष्प अर्पण कर रही है। दो पुरुष सामग्री ला रहे हैं।

इस गुफामें एक छोटा-सा शिलालेख है, जिसमें लिखा है—'दोहद समनामं लेनं' अर्थात् दोहद श्रमणोंकी गुफा।

(४) टेंटुली गुम्फा—पहले एक छोटी गुफा मिलती है। उसका कोई नाम नहीं दिया है। फर्श काफी गहरा खुदा पड़ा है। फिर कुछ ऊँचाईपर गुफा नं. ४ मिलती है। इसमें एक प्रकोष्ठ

और एक बरामदा है। प्रकोष्ठ साढ़े छह फुट चौड़ा और सवा आठ फुट लम्बा है। गुफाका यह नाम एक पेड़के नामपर पड़ गया है। यह पेड़ पहले इसके पास खड़ा था।

(५) खण्डगिरि गुम्फा—गुफा नं. ४ से आगे यह गुफा है। यह छह फुट चौड़ी और पन्द्रह फुट लम्बी है। इसमें चार प्रकोष्ठ बने हैं। अर्थात् दो प्रकोष्ठोंके ऊपर दो प्रकोष्ठ हैं। सभी क्षतिग्रस्त हैं। यह पहाड़ी यहाँपर प्राकृतिक ढंगसे खण्डित है, इसलिए इसका नाम खण्डगिरि पड़ गया। सन् १९५० में इस खण्डित पहाड़ीको मसालेसे कृत्रिम ढंगसे जोड़ दिया गया है। नीचेके प्रकोष्ठोंकी ऊँचाई छह फुट दो इंच और ऊपरके प्रकोष्ठों की चार फुट आठ इंच है।

(६) ध्यान गुम्फा—गुफा नं. ५ के दक्षिणमें यह गुफा है। यह एक हाल-जैसी है। इसकी बायीं ओरकी दीवालपर शंख लिपिका एक लेख उत्कीर्ण है। इस गुफाकी चौड़ाई साढ़े सात फुट तथा लम्बाई अठारह फुट है।

(७) नवमुनि गुम्फा—गुफा नं. ६ से आगे यह गुफा है। इसमें नौ तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ हैं, इसलिए इसका नाम नवमुनि गुफा पड़ गया। यह भी एक खुला हालनुमा है। पहले इसमें दो प्रकोष्ठ और बरामदा था। बादको बीचकी दीवालें हटाकर यह एक हाल-जैसा बना दिया गया। बायीं ओरकी दीवालपर चन्द्रप्रभकी पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति बनी हुई है तथा नीचे चन्द्र लांछन है। पिछली दीवालमें गणेश मूर्ति है। उनका मूषक वाहन उनके अधोभागमें है। उससे आगे पृथक् कोष्ठकोंमें सात पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। मूर्तियोंके नीचे उन तीर्थंकरोंके लांछन भी बने हुए हैं जिनसे तीर्थंकरोंकी पहचान हो जाती है। ये सात तीर्थंकर क्रमशः इस प्रकार हैं—ऋषभदेव (वृषभ), अजितनाथ (गज), सम्भवनाथ (अश्व), अभिनन्दननाथ (बन्दर), वासुपूज्य (भैंसा), पार्श्वनाथ (सर्प) और नेमिनाथ (शंख)। तीर्थंकरोंके ऊपर छत्रत्रयी सुशोभित है। तीर्थंकरोंके दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र खड़े हैं, तीर्थंकरोंकी केशावली नाना प्रकारकी है, किसीका जटाजूट है, किसीको शंकु आकारकी है। नेमिनाथके कुन्तल घुँघराले हैं। इन मूर्तियोंपर न तो श्रीवत्स है और न प्रभामण्डल।

तीर्थंकर मूर्तियोंके लांछनोंके नीचे उनकी शासन देवियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रृंखला, गान्धारी, पद्मावती और कूष्माण्डी (अम्बिका)। देवियोंके नीचे उनके वाहन बने हुए हैं—यथा गरुड़, लोहासन, पक्षी, हंस, मकर, कुक्कुट, सर्प और सिंह। सभी देवियाँ रत्नाभरणोंसे अलंकृत हैं। चक्रेश्वरी अष्टभुजी है।

दायीं ओरकी दीवालपर दो तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं—पार्श्वनाथ और ऋषभदेव। वे दोनों पद्मासनमें विराजमान हैं। उनके दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हुए हैं। पार्श्वनाथ-प्रतिमाके ऊपर सप्त फणावली अलंकृत है। फणावलीके दोनों ओर आकाशचारी गन्धर्वके हाथोंमें पारिजात पुष्पोंकी मालाएँ धारण किये हुए हैं। उनके कमलासनके अधोभागमें नाग-धरणेन्द्रकी कुण्डली है। ऋषभदेव-प्रतिमाके सिरके पृष्ठभागमें प्रभावलय बना हुआ है। उसके नीचे वृषभ लांछन है।

इस गुफामें पाँच शिलालेख उत्कीर्ण हैं। एक पार्श्वनाथ-मूर्तिके नीचे दायीं ओरकी दीवालपर। तीन लेख मध्य दीवालके अवशिष्ट अंशपर और पाँचवाँ लेख बरामदेके तोरणके भीतरी भागपर। यह लेख तीन पंक्तियोंका है जो इस प्रकार है—

"ॐ श्रीमत् उद्योतकेशरी देवस्य प्रवर्द्धमाने विजय राज्ये संवत् १८ श्री आर्यसंघ प्रतिबद्ध ग्रहकुल विनिर्गत देशीगणाचार्य श्री कुलचन्द्र भट्टारकस्य तस्य शिष्य शुभचन्द्रस्य"

इसका आशय यह है कि उद्योतकेशरी देवके उन्नतिशील राज्यके अठारहवें वर्षमें श्री

शुभचन्द्र आचार्य यहाँ विराजमान थे जो आर्यसंघ ग्रहकुल देशीगणके आचार्य कुलचन्द्र भट्टारकके शिष्य थे।

उद्योतकेशरी महाराज ग्यारहवीं शताब्दीमें उत्कलके नरेश थे। वे सोमवंशमें उत्पन्न हुए थे।

तीन शिलालेखोंमें-से एकमें शुभचन्द्रका नामोल्लेख आया है तथा दो लेखोंमें शुभचन्द्रके दो शिष्यों—श्रीधर और विजोका उल्लेख आया है।

कुछ विद्वान् सात तीर्थंकरोंके अधोभागमें बनी हुई उनकी यक्षी-मूर्तियोंको भ्रमवश वैदिक परम्पराकी सप्तमातृकाएँ मानते हैं। उनकी मान्यताका एकमात्र आधार देवियोंकी सात संख्याका होना है। लेकिन लगता है, उन विद्वानोंने वैदिक सप्तमातृकाओं और जैन शास्त्रोंमें मान्य उपर्युक्त शासन देवियोंके रूप, वाहन आदिपर विचार नहीं किया, अन्यथा वे जैन यक्षियोंको वैदिक सप्त मातृकामें बतलानेकी भूल नहीं करते।

८. बाराभुजी गुम्फा—गुफा नं. ७ से मिली हुई और जैन मन्दिरसे आनेवाली सीढ़ियोंके बगलमें यह गुफा है। बरामदेकी दायीं और बायीं दीवालपर बारहभुजी दो शासन देवियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इसलिए इस गुफाका नाम बारहभुजी गुफा पड़ गया। पहले अन्दर प्रकोष्ठ और बाहर बरामदा था किन्तु जब यहाँ मूर्तियाँ उकेरी गयीं, तब प्रकोष्ठ और बरामदेके बीचकी दीवाल हटा दी गयी और गुफाको ऊँचा करनेके लिए फर्शकी गहरी खुदाई कर दी गयी। वर्तमान रूपमें भीतरवाले कक्षकी चौड़ाई सात फुट और लम्बाई इक्कीस फुट है। बरामदेमें दो स्तम्भ नये हैं।

प्रकोष्ठमें बायीं ओरकी दीवालमें पाँच तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ हैं। उनके नीचे चिह्न तथा देवियाँ (यक्षियाँ) बनी हुई हैं। पृष्ठवर्ती दीवालपर सर्वप्रथम पार्श्वनाथकी कायोत्सर्ग मुद्रामें तीन फुट सात इंच ऊँची प्रतिमा है। चरणोंके दोनों ओर हाथ जोड़े हुए नाग पुरुष खड़े हैं। उनके सिरपर तीन फणवाला चिह्न है। मध्य भागमें दोनों ओर चमरवाहक हैं तथा सिरपर सप्त फणावली बनी हुई है और त्रिछत्र शोभित है। उसके दोनों ओर नभचारी देव पुष्पमाल लिये हुए प्रदर्शित हैं। इस प्रतिमाके नीचे शासन देवी अंकित नहीं की गयीं। यही मूर्ति सबसे बड़ी होने और मध्यमें विराजमान होनेके कारण मूलनायक है।

इस प्रतिमासे आगे इस दीवालपर सत्तरह तीर्थंकरोंकी पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उनके ऊपर बोधिवृक्ष बने हुए हैं। दो सिंहोंपर आधारित कमलासनपर वे विराजमान हैं। सिरपर त्रिछत्र सुशोभित हैं। उनके दोनों ओर चमरवाहक, सिरके पीछे भामण्डल है। ऊपर देव-दुन्दुभि और पुष्पवर्षा करते हुए देव दिखाई देते हैं। उनके कमलासनोंके नीचे प्रत्येक तीर्थंकरका लांछन अंकित है। उससे अधोभागमें पृथक् कोष्ठकोंमें प्रत्येक तीर्थंकरकी शासन देवी अंकित है। देवी अर्धपल्यंकासनमें है। केवल महामानसी (भ. शान्तिनाथ) पद्मासनसे बैठी हुई है तथा बहुरूपिणी (भ. मुनिसुव्रतनाथ) शयनासनमें है। तीस देवियाँ सुखासनसे बैठी हैं। बहुरूपिणी और पद्मावती-को छोड़कर शेष देवी मूर्तियोंमें सिरके पीछे भामण्डल बने हुए हैं। पद्मावतीके सिरके ऊपर सर्प-फण बना हुआ है। सभी देवियाँ वस्त्राभूषणों और जटामुकुटसे अलंकृत हैं।

दायीं ओरकी दीवालपर पार्श्वनाथ और महावीरकी पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उनके नीचे उनके चिह्न और शासन देवियोंकी मूर्तियाँ हैं। पद्मावतीके सिरपर सप्त फण है और महावीर-की शासन देवी सिद्धायिका षोडशभुजी है।

सभी तीर्थंकर-मूर्तियोंकी अवगाहना डेढ़ फुट है और देवी-मूर्तियोंकी अवगाहना चौदह इंच है।

बरामदेमें बायीं और दायीं ओरकी दीवालोंमें चक्रेश्वरी और रोहिणी देवी विराजमान हैं। उनके शीर्ष भागपर क्रमशः ऋषभदेव और अजितनाथकी मूर्ति बनी हुई है। ये दोनों ही मूर्तियाँ बारहभुजी हैं। ये हार, कुण्डल, केयूर, भुजबन्द, पहुँची, उपवीत और मुकुट धारण किये हुए हैं तथा ललितासनसे बैठी हैं। चक्रेश्वरीके कमलासनके अधोभागमें उसका वाहन गरुड़ है। गरुड़के निकट एक व्यक्ति जलकी झारी लिये हुए है। देवीके दायें हाथोंमें एक हाथ वरद मुद्रामें, अन्यमें तलवार और चक्र तथा बायें हाथोंमें ढाल, वज्र और चक्र हैं। शेष हाथ खण्डित हैं।

बरामदेकी दायीं ओरकी दीवालमें बनी हुई रोहिणीके बारह भुजाएँ हैं और गायका वाहन है। उसके शीर्षपर गज लांछन मण्डित अजितनाथ तीर्थंकरकी मूर्ति बनी हुई है।

९. महावीर गुम्फा—गुम्फा नं. ८ से मिली हुई है। इसमें भी पहले प्रकोष्ठ और बरामदा था। वे बादमें बीचकी दीवाल हटाकर मिला दिये गये। इसमें २४ तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं जिनमें ८ (ऋषभदेव, अजितनाथ, शीतलनाथ, पार्श्वनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, श्रेयान्सनाथ और महावीर) तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ कायोत्सर्ग मुद्रामें हैं। शेष पद्मासनमें हैं। पद्मासन प्रतिमाओंके दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक बने हुए हैं, जबकि खड्गासन प्रतिमाओंमें नीचे भक्त नागपुरुष दिखाये गये हैं।

इसमें भगवान् ऋषभदेवकी तीन प्रतिमाएँ भी हैं जो मूलतः इस गुफाकी नहीं हैं। वे इस गुफाकी शेष प्रतिमाओंसे प्राचीन हैं।

१०. यह गुफा ध्वस्त दशामें पड़ी हुई है। केवल एक पहाड़ी दीवाल शेष है। उसके ऊपर लगभग पन्द्रह फुट ऊँचाईपर ऋषभदेवकी दो प्रतिमाएँ तथा एक प्रतिमा अम्बिकाकी दिखाई पड़ती हैं। ऋषभदेव प्रतिमाएँ कायोत्सर्गासनमें हैं। वे सिंहोंपर आधारित कमलासनपर विराजमान हैं तथा नीचे उनका वृषभ लांछन बना हुआ है। उनके दोनों पार्श्वोंमें अष्टग्रह तथा चमरवाहक हैं। उनके सिरके ऊपर छत्रत्रय सुशोभित हैं तथा इधर-उधर देव दुन्दुभि एवं नभचारी गन्धर्व पुष्पमालाएँ लिये हुए हैं। दोनोंकी जटाएँ भिन्न प्रकारकी हैं। अम्बिकाका वाम पार्श्व कुछ खण्डित है। देवी एक आम्रवृक्षके नीचे त्रिभंग मुद्रामें खड़ी हुई है। उसके शीर्ष भागपर नेमिनाथकी प्रतिमा है जिनके दोनों ओर आकाशविहारी देव हैं। देवी सिंहाधारित कमलासनपर खड़ी है। उसके दायीं ओर एक बालक खड़ा है।

११. ललाटेन्दु केशरी गुम्फा—गुफा नं १० से मिली हुई जरा-सा घूमनेपर यह गुफा है। इसकी भी दशा अच्छी नहीं है। पहले इसमें दो प्रकोष्ठ और एक बरामदा था। किन्तु ये सब नष्ट हो गये। अब तो खुला हुआ घेरा मात्र है। इस समय इसकी चौड़ाई ग्यारह फुट और लम्बाई बारह फुट है। पृष्ठ दीवालपर बायीं ओर ५ तीर्थंकर खड्गासन-मूर्तियाँ हैं—२ ऋषभदेवकी और ३ पार्श्वनाथकी। इसी प्रकार दायीं ओर उसी दीवालपर २ पार्श्वनाथकी और १ ऋषभदेवकी मूर्तियाँ हैं। ये भी खड्गासन हैं। इनके पृष्ठ भागमें एक वेदीनुमा स्थानके ऊपर एक क्षतिग्रस्त पाँच पंक्तियोंका शिलालेख है। यह सोमवंशी महाराज उद्योतकेशरीके शासन-कालके ५वें वर्षका है। वह इस प्रकार है—

ॐ श्री उद्योतकेशरी विजय राज्य संवत् ५
श्री कुमार पर्वत स्थाने जीर्णं वापि जीर्णं इसान

उद्योतित तस्मिन् थाने चतुर्विंशति तीर्थंकर
स्थापिताः प्रतिष्ठा काले हरि ओप जसनंदिके
क्ष.......हु........ति ... दुथा...... श्री
पार्श्वनाथस्य कर्मक्षयाय।

इसका आशय यह है कि सोमवंशी महाराज ललाटेन्दु केशरीके शासन-कालके ५वें वर्षमें जीर्णवापी और जीर्ण मन्दिरका जीर्णोद्धार किया और २४ तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ विराजमान कीं। प्रतिष्ठाके समय आचार्य यशनन्दी उपस्थित थे।

इसके निकट ही आकाशगंगा नामक कुण्ड है। इसमें जानेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। शिलालेखमें जिस वापीका उल्लेख किया गया है, सम्भवतः वह यही है और जिस मन्दिरका उल्लेख किया गया है, उसके अवशेष कुछ दूर चलनेपर मिलते हैं। जिन २४ तीर्थंकर प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें संकेत किया गया है, वे कहाँ हैं, यह ज्ञात नहीं हो सका।

गुफा नं. १२ से १५—आकाशगंगासे जैन मन्दिरको मार्ग जाता है। आकाशगंगासे थोड़ा आगे जानेपर राधाकुण्ड मिलता है। इसके दक्षिण-पश्चिम किनारेपर गुफा नं. १२ है। इसमें दो कक्ष हैं। इससे मिली हुई गुफा नं. १३ है। इसमें दो बड़े कक्ष हैं। आगेका भाग गिर चुका है। कक्षोंके आगे बरामदा है। उसमें चार स्तम्भ हैं।

राधाकुण्डके बगलसे ऊपरको पगडण्डीपर लगभग सौ गज चलनेपर प्राकृतिक गुफा मिलती है। इसमें जल भरा हुआ है। जनतामें यह श्यामकुण्डके नामसे प्रसिद्ध है।

यहाँसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर थोड़ा उतरनेपर गुफा नं १४ मिलती है। इसका नाम एकादशी गुफा है। यह आगेसे खुली है। एक आधुनिक स्तम्भ लगा हुआ है।

गुफा नं. १५ के लिए पगडण्डी जाती है जो यहाँसे कुछ दूर है और पश्चिमकी तरफ पहाड़ीकी तलहटीके पास है। यह सामनेसे खुली हुई है। इस गुफासे उत्तर-पूर्वकी ओर कुछ ऊँचाईपर एक लम्बी सुरंग है और इसके आखिरी छोरपर गुप्तगंगा नामक कुण्ड है। इसकी बायीं ओर तीन छोटी-छोटी गुफाएँ हैं।

उदयगिरिकी गुफाएँ

उदयगिरिकी पहाड़ी जैन धर्मशालाके पार्श्वमें है। ऊपर जानेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सीढ़ियाँ चढ़नेपर दायीं ओर मुड़ जाना चाहिए। कुछ दूर चलकर बायीं ओर गुफा नं. १ मिलती है। इस पहाड़ीपर कुल १८ गुफाएँ बनी हुई हैं।

१. रानी गुम्फा—उदयगिरि-खण्डगिरिकी गुफाओंमें यह सबसे बड़ी और सबसे सुन्दर है। यह दो-मंजिली है। इसका दक्षिण-पूर्व पार्श्व खुला हुआ है। तीन दिशाओंमें प्रकोष्ठ बने हुए हैं। नीचेकी मंजिलमें कुल आठ प्रकोष्ठ हैं तथा ऊपरकी मंजिलमें छह। आगे बरामदे हैं। ऊपरकी मंजिल नीचेकी मंजिलके एकदम ऊपर नहीं है, बल्कि कुछ फीट पीछे हटकर है। इसके कारण ऊपरकी मंजिलके आगे भी काफी विस्तृत सहन निकल आया है। इस गुफाकी ख्याति इसके स्थापत्यके कारण नहीं, अपितु पाषाणोंमें किये गये विविध और मनोरम दृश्यांकनोंके कारण है।

नीचेकी मंजिल—दक्षिण पक्षमें एक प्रकोष्ठ, तीन प्रवेशद्वार और बरामदा है। भित्तियोंपर दो द्वारपाल बने हुए हैं। बायीं ओरके द्वारपालकी वेषभूषा राजसी है। कानोंमें मुरकी, बाहुओंमें भुजबन्द, गलेमें मुक्तकमाल, दायें हाथमें भाला सँभाले और बायें कन्धेपर तलवार लटकाये वह खूब जँचता है। स्तम्भोंपर पशु-मूर्तियोंका अंकन है।

प्रवेश-द्वारोंके तोरण अत्यन्त अलंकृत हैं। उनके ऊपर कमल आदि अंकित हैं। उनके ऊपर मध्यमें श्रीवत्स और दोनों पार्श्वोंमें नन्दीपदका अंकन अति भव्य प्रतीत होता है। यहाँ कई दृश्य भी अंकित हैं। एक दृश्यमें भक्त स्त्री-पुरुष भगवान्के बोधिवृक्षके समक्ष हाथ जोड़े हुए खड़े हैं। एक स्त्री हाथोंमें पुष्प-करण्डक लिये खड़ी है। दूसरे कोष्ठकमें एक पुरुष और दो स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। राजपुरुष और रानी राजसी वस्त्रालंकार धारण किये हुए हाथोंमें स्वर्ण-पात्र लिये हुए हैं जिसमें पूजन-सामग्री है। तीसरे दृश्यमें समाज एकत्रित है, जिसमें वाद्य और नृत्य चल रहा है। एक स्त्री नृत्य-मुद्रामें खड़ी है। चार स्त्रियाँ मृदंग, ढोलक, मँजीरा और बाँसुरी बजा रही हैं। चतुर्थ दृश्यमें एक पुरुष हाथ जोड़े हुए पूजन-स्थानको जा रहा है। एक बालक और दो स्त्रियाँ पूजन सामग्री लिये हुए हैं।

वाम पक्ष—इसमें तीन कक्ष और बरामदा है। स्तम्भ नष्ट हो गये हैं, प्रहरियोंकी मूर्तियाँ खण्डित हैं।

सामनेका मुख्य भाग—इसमें चार कक्ष हैं और बरामदा है। बरामदेकी छत और स्तम्भ नहीं हैं। इसमें आठ प्रवेशद्वार बने हुए हैं। उनके तोरणोंका अलंकरण अत्यन्त भव्य है। कुल नौ कोष्ठकोंमें दृश्योंका अंकन है। प्रथम दृश्यमें दो-मंजिला भवन है जिसके नीचेकी मंजिलके दोनों द्वारोंपर दो स्त्रियाँ बैठी हैं। ऊपरी मंजिलके द्वारमें-से एक पुरुष झाँक रहा है। भवनके निकट आम्रवृक्ष है। द्वितीय दृश्य अस्पष्ट है। सम्भवतः तीन पुरुष किसी पशुपर आरूढ़ हैं और एक पुरुष तलवार लिये हुए है। तृतीय दृश्यमें एक नरेश किसी जानवर (सम्भवतः घोड़ा) पर आरूढ़ है, छत्र लगा हुआ है। उसके साथ उसके सेवक हैं। चतुर्थ कोष्ठकमें मनुष्योंका एक जलूस जा रहा है। कुछ गजारूढ़ हैं। पाँचवाँ दृश्य एक राजाका है। उसके पीछे एक व्यक्ति छत्र ताने हुए है और दूसरा तलवार लिये है। दायीं ओर चार राजपुरुष हैं। छठे दृश्यमें एक राजा प्रदर्शित है। उसके सिरपर छत्र है। दो सेवक उसके अगल-बगलमें हैं। सातवें दृश्यमें एक राजाको प्रजाजन घेरे हुए खड़े हैं। कुछ हाथ जोड़े हुए प्रार्थना कर रहे हैं। एक व्यक्ति तलवार लिये हुए है। आठवें दृश्यमें एक राजा प्रदर्शित है। एक सेवक छत्र धारण किये हुए है। एक व्यक्ति समक्षमें हाथ जोड़े हुए खड़ा है। दो स्त्रियाँ पूजन-पात्र और सामग्री लिये हुए हैं। दो व्यक्ति घुटनोंके बल बैठे हुए हैं। उनमें-से एकके सिरपर यूनानी ढंगका फीता बँधा हुआ प्रतीत होता है। इसीसे सम्बन्धित आगेके दृश्यमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्तिके पैर पकड़े हुए है। एक अन्य व्यक्ति हाथ जोड़े खड़ा है। पासमें दो घोड़े खड़े हुए हैं। घोड़ोंके दूसरी ओर तीन व्यक्ति हाथ जोड़े हुए खड़े हैं। नौवें दृश्यमें दिग्विजयसे लौटे हुए राजाके स्वागतका भव्य अंकन है। एक व्यक्ति राजाका छत्र उठाये हुए है। दो सैनिक कन्धेपर तलवार धारण किये हैं। छह मानव-मूर्तियाँ—चार स्त्रियाँ और दो पगड़ीधारी पुरुष स्वागत कर रहे हैं।

इन सारे दृश्योंको एक सूत्रमें पिरोकर देखा जाये तो ये दृश्य सम्राट् खारबेलकी दिग्विजय-से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं।

ऊपरकी मंजिल—शिल्प-चातुर्य और कलाकी दृष्टिसे यदि दोनों मंजिलों की तुलना की जाये तो लगता है कि नीचेकी मंजिलकी अपेक्षा ऊपरकी मंजिलके शिल्पकार और कलाकार अधिक कल्पनाशील और चतुर थे। ऐसा भी लगता है कि ऊपरी मंजिलका शिल्प नीचेकी मंजिलकी अपेक्षा बादका है और उसके ऊपर पश्चिम भारतकी कलाका स्पष्ट प्रभाव लगता है।

इसके बरामदेका आगेका भाग और खम्भे नहीं रहे। वर्तमान बरामदेके नौ आधार स्तम्भोंमें-से सात आधुनिक हैं। इस मंजिल में कुल छह प्रकोष्ठ बने हुए हैं—दो वाम और दक्षिण

पक्षमें और चार मध्यमें सामनेकी ओर। सामनेवाले पक्षमें आठ प्रवेशद्वार हैं। उनके तोरणोंपर श्रीवत्स, नन्दीपद, सर्प और कमल बने हुए हैं। स्तम्भोंके शीर्षपर अश्व, गज, वृषभ और सिंहकी मूर्तियाँ अंकित हैं। दृश्यांकनके लिए इसमें भी नौ कोष्ठक बनाये गये हैं। ये इस प्रकार हैं—

प्रथम दृश्यमें एक आकाशचारी विद्याधरका अंकन है जो मुकुट और रत्नाभरणोंसे अलंकृत है। उसके एक हाथमें एक पात्र है जिसमें माला और पुष्प हैं, दूसरे हाथमें कमलनाल और पुष्प-करण्डक है। द्वितीय दृश्य पहाड़ीका है। उसमें फूलवाला वृक्ष, गुफामें बैठा हुआ सिंह, कमल सरोवर। सरोवरमें तीन हाथी। एक पुरुष दस स्त्रियोंके साथ वन-विहारके लिए आता है। हाथी कुपित होकर उनपर आक्रमण करते हैं। स्त्री-पुरुष उनसे अपनी रक्षा करते हुए उनको भगानेका प्रयत्न करते हैं। तृतीय दृश्यमें—एक पहाड़ी गुफामें दो वानर अपनी ओर आते फुंकारते हुए साँप-से भयभीत हैं। गुफाके सामने एक पुरुष स्त्रीकी गोदमें सिर रखे हुए विश्राम कर रहा है। इतनेमें कोई सशस्त्र शत्रु आ पहुँचता है और स्त्री-पुरुष दोनों उसका प्रतिरोध करते हैं, किन्तु शत्रु स्त्री-का बलात् अपहरण कर ले जाता है।

चतुर्थ दृश्यमें एक सुसज्जित राजपुरुष घोड़ेसे उतरकर एक हरिणका पीछा कर रहा है। हरिणके पीछे उसके दो बच्चे हैं। इतनेमें एक स्त्री एक वृक्षके नीचे राजाको मिलती है। हरिण भी वहीं खड़ा है। स्त्री राजाको हरिणको मारनेका निषेध कर रही है।

पाँचवें दृश्यमें वाद्य और नृत्य हो रहा है। राजदम्पति देख रहे हैं। रानी बायीं ओर बैठी है। एक सेविका उसके ऊपर छत्र ताने हुई है। दूसरी पंखा झल रही है। तीसरी पुष्प लिये है। चौथी रानीके नीचेकी ओर सुरा-चषक लिये हैं। और पाँचवीं सामने माला लिये खड़ी है। मध्यमें तीन नर्तकियाँ नृत्य कर रही हैं तथा तीन स्त्रियाँ वाद्य यन्त्र बजा रही हैं। राजा दायीं ओर बैठा है। उसके हाथ छातीपर हैं जो खण्डित हैं। उसके नीचेकी ओर हाथ जोड़े हुए कोई दरबारी या सेवक बैठा है।

छठा दृश्य खण्डित होनेके कारण अस्पष्ट है। सातवाँ दृश्य रसिकतापूर्ण है। एक युगलको तीन बार दिखाया गया है। आठवाँ दृश्य भी खण्डित है। केवल हाथी और दो मनुष्योंके पैर दिखाई पड़ते हैं। नौवें दृश्यमें माला लिये हुए एक आकाशगामी विद्याधर दीख पड़ता है।

बरामदेमें प्रहरी-मूर्तियाँ हैं।

दायीं ओर एक प्रकोष्ठ, बरामदा और एक स्तम्भ है। बायें स्तम्भमें बना हुआ प्रहरी कोई विदेशी प्रतीत होता है। वह बूट पहने हुए है और सिरपर फीता बाँधे है। दायाँ हाथ जंघापर रखा है। बायें कन्धेपर तलवार लटक रही है। दायें स्तम्भपर प्रहरीकी वेषभूषा भारतीय है। इसके भी बायें कन्धेपर तलवार लटक रही है।

बायीं ओर एक कक्ष है। वह बरामदेके सामने न होकर बायीं ओर है। एक खिड़की है। बरामदा कम चौड़ा है।

(२) बाजघर गुम्फा—पहली गुफासे लौटनेपर दूसरी गुफा मिलती है। इसमें दो प्रकोष्ठ और बरामदा है। बायें प्रकोष्ठकी सामनेकी दीवाल नहीं है। आधारस्तम्भ आधुनिक हैं। स्तम्भों-पर पशु-पक्षियोंका अंकन है।

(३) छोटा हाथी गुम्फा—गुफा नं. २ के बायीं ओर यह गुफा है। दो प्रकोष्ठ हैं। बरामदा नहीं है। तोरणोंपर हाथियों, कमलों और पेड़-पौधोंके अंकन अत्यन्त भव्य हैं। हाथियोंकी सूँड़ोंमें पुष्प-स्तवक हैं। दायीं ओर आम्रवृक्ष बना है। दिलहापर एक पंक्तिका लेख है। उसके 'स लेनम्' केवल ये अक्षर ही पढ़े जा सके हैं।

(४) अलकापुरी गुम्फा—गुफा नं. ३ से मिली हुई यह गुफा है। इसमें ऊपर-नीचे तीन प्रकोष्ठ हैं—एक नीचे और दो ऊपर। नीचेकी मंजिलके बरामदेके स्तम्भपर चौकड़ी भरते हुए अश्वोंका अंकन है। ऊपरी मंजिलके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। दीवारगिरीपर हाथी और सिंह बने हुए हैं। स्तम्भोंपर कुछ अद्‌भुत चित्रांकन मिलता है, जैसे पंखवाले पशु, पंखधारी मनुष्य, पक्षीके सिरवाले मानव। बायें खम्भेपर एक मनुष्य द्वारा बायें हाथसे एक स्त्रीको ले जाने और दूसरे हाथसे एक हाथीकी सूँड़ पकड़नेका दृश्य है। बरामदेके बाहर भग्न दशामें द्वाररक्षक और रक्षिका खड़े हैं। द्वाररक्षिका त्रिभंग मुद्रामें खड़ी है। उसके दायें हाथमें तोता है। सिरका केश विन्यास दर्शनीय है। दो मुक्तावलियाँ जूड़ेमें सुशोभित हैं।

(५) जय-विजय गुम्फा—गुफा नं. ४ की ऊपरी मंजिलके निकट यह गुफा है। नीचे और ऊपर दो-दो कक्ष हैं। स्तम्भ आधुनिक है। प्रत्येक कक्षमें एक-एक प्रवेशद्वार है। इनके ऊपर पंख-धारी पशुओंका अंकन है। तोरणोंपर कमल आदि अंकित है। तोरणोंके मध्यवाले स्थानमें बोधिवृक्ष (अथवा अशोकवृक्ष) और उसके दोनों ओर पूजा करते हुए भक्त अंकित हैं। भक्त हाथ जोड़े खड़े हैं। सेवक पुष्प और पुष्पमालाएँ ला रहे हैं। वृक्षके ऊपर छत्र और ध्वजा हैं। तोरणोंके सिरोंपर नभचारी देव पुष्पमाल लिये दीख पड़ते हैं।

इस गुफाके नीचे एक गुफा है और ऊपरकी ओर भी दो गुफा हैं। ये अच्छी दशामें नहीं हैं।

(६) पनासा गुम्फा—गुफा नं. ५ से आगे यह गुफा है। इसमें एक खुला प्रकोष्ठ और दो आधुनिक स्तम्भ हैं। सामने पनस वृक्ष है, उसके कारण गुफाका यह नाम पड़ गया है।

(७) ठकुरानी गुम्फा—बायीं ओर यह गुफा है। इसमें दो मंजिलें हैं। नीचेकी मंजिल अपेक्षाकृत अच्छी दशामें है। बरामदा है। इसकी दीवालगिरी, और स्तम्भोंपर भागते हुए पंखधारी पशुओं और पक्षीमुख पशुओंका भव्य अंकन है। ऊपरी मंजिलके लिए आधुनिक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इस मंजिलपर एक प्रकोष्ठ और बरामदा है।

(८) पातालपुरी गुम्फा—इसमें चार प्रकोष्ठ और बरामदे हैं। दो प्रकोष्ठ पीछेकी ओर हैं और दो अगल-बगलमें हैं। स्तम्भोंपर पंखधारी पशु पीठ मिलाये हुए खड़े दिखायी देते हैं। एक दीवालगिरी पर भाला और ढाल धारण किये हुए एक मनुष्यको सिंहसे लड़ते हुए अंकित किया गया है। पृष्ठ भागके दो प्रकोष्ठोंके मध्यकी दीवाल गिर जाने के कारण दोनों मिलकर एक हो गये हैं। दीवालमें सम्भवतः खूँटियोंके छेद बने हुए हैं।

(९) मंचपुरी और स्वर्गपुरी गुम्फा—सीढ़ियाँ चढ़कर उत्तरकी ओर यह गुफा है। यह दो मंजिल है। नीचेकी मंजिल मंचपुरी कहलाती है और ऊपरकी मंजिल स्वर्गपुरी। नीचेकी मंजिलमें अर्धवृत्तमें चार प्रकोष्ठ बने हुए हैं—तीन एक ओर और एक एक ओर। दोनों ओर दो-दो सशस्त्र द्वारपाल बने हुए हैं। प्रवेशद्वारोंके ऊपर श्रीवत्स या नन्दीपद बने हुए हैं। दूसरे और तीसरे प्रवेश-द्वारोंके मध्यवर्ती स्थानमें प्रतीक-पूजाके दृश्य अंकित हैं। दुर्भाग्यवश प्रतीक नष्ट हो गया है। अतः प्रतीककी पहचान नहीं हो पाती। मध्यमें एक चरणचौकीपर प्रतीक रखा है। उसके ऊपर छत्र सुशोभित है। भक्त उसे नमस्कार कर रहा है। दायीं ओर चार भक्त हाथ जोड़े हुए खड़े हैं जो अभी हाथीसे उतरकर आ रहे हैं। हाथी अलग खड़ा हुआ है। इनमें मुकुटधारी राजा प्रतीत होता है। ऊपर सूर्य है तथा दो नभचारी देव दुन्दुभि लिये हुए हैं। एक देव आकाशसे पुष्पवर्षा कर रहा है।

यहाँ चौथे द्वारपर एक पंक्तिका शिलालेख है जो इस भाँति पढ़ा गया है—

'स्वरस महाराजस कलिंगाधिपतिनो महामेघवाहनस कुडेपसिरिनो लेनम्' अर्थात् चतुर महाराज कलिंगाधिपति महामेघवाहनके कुडेपश्रीकी गुफा।

यह ज्ञात नहीं होता कि कुडेपश्री महाराज खारबेलका उत्तराधिकारी था अथवा वंशज। सम्भवतः उपर्युक्त प्रतीक-पूजाके दृश्यमें उसी राजपुरुषका अंकन किया गया है।

इसी प्रकारका एक शिलालेख बरामदेके उत्तरकी ओर प्रकोष्ठमें है। वह इस प्रकार पढ़ा गया है—

'कुमार वदुखस लेनम्' अर्थात् कुमार वदुखकी गुफा।

यह वदुख कुडेपश्री का भाई था या पुत्र, यह भी ज्ञात नहीं होता।

इस गुफाकी ऊपरी मंजिलमें दूसरी-तीसरी तोरणके मध्य भागमें एक शिलालेख है जो इस प्रकार पढ़ा गया है—

'अरहन्त पसादयं कलिङ्गनम् समनानम् लेनम् कारितम् राज्ञो लालकस हाथीसाहस पपोतस धुतुनाकलिङ्ग चक्रवर्तिनो श्रीखारबेलस अग्ग महिसिना कारितम्।'

अर्थात् यह अरहन्त प्रासाद कलिंग देशके श्रमणोंके लिए बनाया गया है। यह प्रासाद कलिंग चक्रवर्ती खारबेलकी पटरानी द्वारा निर्मित हुआ जो राजा लालकसकी पुत्री थी और जो हाथीसहसके पौत्र थे।

इसकी ऊपरकी मंजिलमें दो प्रकोष्ठ हैं और बरामदा है। इसके पार्श्वस्तम्भों, रेलिंग आदि-पर हाथियों आदिके जलूसके दृश्य अंकित हैं।

इस गुफाके सामने एक टूटी-फूटी गुफा है जो सम्भवतः गुफा नं. ९ से प्राचीन है।

(१०) गणेश गुम्फा—सीढ़ियोंसे चढ़कर दायीं ओर घूमनेपर यह गुफा मिलती है। गुफाका यह नाम गणेशकी मूर्तिके कारण पड़ गया है जो दायीं ओरके प्रकोष्ठमें उत्कीर्ण है। इस गुफामें दो प्रकोष्ठ और बरामदा है। बरामदेमें पाँच स्तम्भ हैं। बरामदेके बाहर दो पाषाण गज खड़े हुए हैं। इनकी सूँड़में कमलके ऊपर आम्रगुच्छक है। आसन सहित हाथीकी ऊँचाई पाँच फुट और लम्बाई चार फुट है। द्वारपर दोनों ओर दृश्य उत्कीर्ण हैं, जिनमें पशु-पक्षी, पुष्प आदि हैं। ऊपर मध्यमें नन्दीपद या श्रीवत्स अंकित है।

दोनों द्वारोंके तोरणोंके मध्यवर्ती भागमें लम्बोदर स्त्री-पुरुष बने हुए हैं। बरामदेकी दीवालपर रानी गुम्फाके समान एक दृश्य उत्कीर्ण है, जिसमें एक पुरुष पेड़के निकट लेटा हुआ है। उसका दायाँ हाथ सिरपर रखा हुआ है। एक स्त्री उसके पैरोंके पास बैठी हुई उसे देख रही है। उसका हाथ पुरुषकी जंघापर रखा है। बिस्तरके पास उसकी ढाल-तलवार रखी है। आगेके दृश्यमें स्त्री-पुरुष ढाल-तलवारसे सुसज्जित होकर प्रथम युगलकी ओर बढ़ रहे हैं और अन्तमें एक पुरुष स्त्रीका अपहरण करते हुए दिखाई पड़ता है।

दूसरे दृश्यमें इसी दीवालपर तीन व्यक्ति गजारूढ़ हैं। ढाल-तलवारसे सुसज्जित सैनिक उनका पीछा कर रहे हैं ये सैनिक विदेशी प्रतीत होते हैं। गजारोहियोंमें एक स्त्री है। वह महावतके स्थानपर है। उसके हाथमें अंकुश है। एक व्यक्ति सैनिकोंपर बाण-वर्षा कर रहा है और दूसरा व्यक्ति उनकी ओर स्वर्ण-मुद्राएँ फेंक रहा है। दूसरे दृश्यमें तीनों व्यक्ति हाथीसे उतरते हुए दिखाई पड़ते हैं। हाथी घुटने टेककर खड़ा है। पास ही वृक्ष है। इससे आगे स्त्री अपने दायें हाथमें आम्रगुच्छक लिये हुए है तथा बायाँ हाथ पुरुषके कन्धेपर रखा है। तीसरा व्यक्ति—जो सम्भवतः कर्मचारी है—कन्धेपर मुद्राओंकी थैली लिये हुए है। इसके अन्तिम दृश्यमें स्त्री रूठी हुई मुद्रामें पर्यंकपर लेटी हुई है और पुरुष हाथ जोड़कर उसे मना रहा है। कर्मचारी अपने स्वामी-का धनुष और थैली लिये सिरेपर दीख पड़ता है।

इस प्रकोष्ठसे मिला हुआ एक भग्न प्रकोष्ठ है। बायें कक्षमें तीर्थंकर मूर्ति है तथा दायें

कक्षमें गणेश-मूर्ति है। हाथोंमें मोदकोंका पात्र, अंकुश, मूली और माला है। उनके नीचे उनका वाहन मूषक है। गणेशमूर्तिके दायीं ओर पाँच पंक्तियोंका लेख है। यह ८-९वीं शताब्दीमें भौम-नरेश शान्तिकारके शासन-कालमें नन्नट-सुत भीमट भिषक्ने खुदवाया था। सम्भवतः इसी भीमट-का एक शिलालेख धौली पर्वतपर भी है।

इस कक्षसे कुछ आगे दायीं ओर ऊपर जानेका मार्ग है। ऊपर दो कक्ष बने हुए हैं। इन्हींके नीचे प्रसिद्ध हाथी गुम्फा है।

(११) जम्बेश्वर गुम्फा—गणेश गुम्फासे पगडण्डी द्वारा आगे जानेपर एक पक्का कुण्ड मिलता है। कुण्डसे वापस लौटकर गणेश गुम्फाके पास दायीं ओर एक पगडण्डी जाती है। कुछ ऊपर चढ़नेपर प्राचीन मन्दिरके भग्नावशेष मिलते हैं। उससे कुछ उतरनेपर जम्बेश्वर गुम्फा मिलती है। इसमें एक प्रकोष्ठ और बरामदा है। बरामदेमें एक खम्भा है। द्वारके सिरदलपर एक पंक्तिका लेख है जो इस प्रकार पढ़ा गया है—

'महामदास वारियाय नाकियस लेनम्'

अर्थात् यह गुफा महामदकी स्त्री नाकिय द्वारा बनायी हुई है। यह लेख मंचपुरी गुहा-लेखके समकालीन माना जाता है।

(१२) बाघ गुम्फा—गुफा नं. ११ के दक्षिण-पूर्वमें यह छोटी-सी गुफा है। बाघके खुले हुए मुखके समान इस गुफाका आकार है। इसलिए इसका नाम बाघ गुफा पड़ गया। इसमें केवल एक कक्ष है। द्वारके तोरणकी दायीं ओर बाहरी दीवालपर दो पंक्तियोंका एक शिलालेख है। इसके अन्तमें स्वस्तिक बना हुआ है। यह लेख इस प्रकार पढ़ा गया है—

नगर अखदंस

सभूतनो लेनम्

अर्थात् नगर जज सभूतिकी गुफा।

यह लेख भी सम्राट् खारबेलके कालका है।

(१३) सर्प गुफा—इसमें दो कक्ष हैं—एक ऊपर और दूसरा नीचे। ऊपरी कक्ष पूर्वाभि-मुखी है। गुफा-द्वारपर तीन फणवाले सर्पका अंकन है, इसलिए इसका नाम सर्प गुम्फा पड़ गया है। गुफामें दो लघु लेख हैं। एक द्वारके ऊपर है और दूसरा द्वारके पाखेके पास। ये लेख इस प्रकार पढ़े गये हैं—

'कम्मस हलखिणय च पसादो'

अर्थात् कम्म और हलखिनका प्रासाद।

'चूलकमस कोथाजेयाय'

अर्थात् चूलकर्मका अजेय कोठा।

(१४) हाथी गुम्फा—यह एक बेढंगी प्राकृतिक खुली गुफा है। बादमें इसमें बरामदा बनाया गया है, जिसमें तीन स्तम्भ हैं। यह गुफाकी बजाय वर्षा और धूपसे सुरक्षाके लिए आश्रय-स्थल कहा जा सकता है। यह अधिक गहरी नहीं, लम्बी है। गुफाका अन्तर्देश बावन फीट लम्बा और अट्ठाईस फीट चौड़ा है। द्वारकी ऊँचाई साढ़े ग्यारह फीट है। बरामदेके माथेपर ऐल सम्राट् खारबेलका प्रसिद्ध शिलालेख है। इस शिलालेखमें सत्रह पंक्तियाँ हैं। इस गुफाका महत्त्व कलाकी दृष्टिसे न होकर इस शिलालेखके कारण है।

इस गुफाके पासमें कई छोटी गुफाएँ हैं। इनमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। इनमें कई गुफाएँ पवनारी या पवन गुम्फा कहलाती हैं।

(१५) धानघर गुम्फा—गुफा नं. चौदहके दायीं ओर सीढ़ियाँ चढ़कर एक लम्बा कक्ष है जिसमें तीन प्रवेशद्वार, बरामदा और दो स्तम्भ हैं। बायीं ओरके आधार-स्तम्भके सामने द्वारपाल बना हुआ है तथा दायें आधार स्तम्भके ऊपर सिंह-मुख बना हुआ है। इस गुफाकी दायीं ओर एक खुली गुफा है। कुछ ऊपर पहाड़ीपर भी एक भग्न गुफा है।

(१६) हरिदास गुम्फा—गुफा नं. बारहसे कुछ नीचे उतरनेपर तीन गुफाएँ हैं, जिनमें पूर्वी गुफा हरिदास गुम्फा कहलाती है। विगत शताब्दीमें हरिदास नामक किसी साधुने इसपर अनधिकृत रूपसे अधिकार कर लिया था। उसीके नामपर इस गुफाका नाम हरिदास गुम्फा पड़ गया। इसमें एक कक्ष और बरामदा है। तीन प्रवेशद्वार हैं। इसके द्वारपर एक पंक्तिका शिलालेख है जो इस प्रकार पढ़ा गया है—

'चूलकमस पसातो कोथा जेयाय'

अर्थात् चूलकर्मका प्रासाद और अजेय कोठा।

इसी प्रकारका लेख गुफा नं. तेरहमें भी है।

(१७) जगन्नाथ गुम्फा—गुफा नं. सोलहकी बायीं ओर यह गुफा है। इसको भीतरी दीवालपर जगन्नाथजीका चित्र बना हुआ था, ऐसा कहा जाता है। किन्तु वह चित्र आजकल नहीं है। कहते हैं, इस चित्रके कारण ही गुफाका यह नाम पड़ गया। इसका कक्ष उदयगिरिकी अन्य गुफाओंकी अपेक्षा सबसे अधिक लम्बा है। यह सत्ताईस फीट सात इंच लम्बा और सात फीट चौड़ा है। इसमें चार प्रवेशद्वार, बरामदा और तीन स्तम्भ हैं। आधार-स्तम्भोंके सिरे विभिन्न पशु-पक्षियोंकी आकृतियोंसे अलंकृत हैं। इसमें दीपक रखनेके लिए तीन ताख भी बने हुए हैं।

(१८) रसूई गुम्फा—कहा जाता है कि जब गुफा नं. सत्रहमें जगन्नाथजीका चित्र विद्यमान था और लोग उसकी पूजाको आते थे तो प्रस्तुत गुफामें रसोई बनाया करते थे। इसमें केवल एक छोटा-सा कक्ष है।

आवश्यक ज्ञातव्य

खण्डगिरिके दक्षिण-पश्चिममें नीलगिरि है। यह भी उदयगिरि-खण्डगिरिके समान इस पर्वतपर एक भाग है। इन तीनों पर्वतोंपर जो गुफाएँ हैं, उनमें मुख्य गुफाएँ उदयगिरिमें ४४, खण्डगिरिमें १९ तथा नीलगिरिमें ३ हैं। यहाँके एक लेखसे ज्ञात होता है कि खण्डगिरि-उदयगिरि १०–११वीं शताब्दी तक कुमार-कुमारी पर्वत कहलाते थे।

इन गुफाओंका सही काल-निर्धारण करना प्रायः कठिन है। यहाँके शिलालेखोंमें ऐसा कोई स्रोत नहीं मिलता, जिसके सहारे इन गुफाओंका निर्माणकाल ज्ञात हो सके। ऐसे सूत्र अवश्य हैं, जिनसे खारबेलका समय निर्धारित करनेमें सहायता मिल सकती है, जैसे सातवाहन सातकर्णी, बहसतिमित्र, दिमित। इसके अतिरिक्त 'नन्दराज ति-वस-सत ओ (घा) टितं' इस पाठके अनुसार नन्दराजसे तीन सौ वर्ष पश्चात् नहरका पुनर्निर्माण हुआ। इसमें सन्देह नहीं है कि खारबेल और उनके परिजन-पुरजनोंने यहाँ अनेक गुफाओंका निर्माण किया था, किन्तु कई गुफाएँ उनसे पहले भी विद्यमान थीं, कुछ उनके पश्चात् ९-१०वीं शताब्दी तक भी बनीं। इसलिए इतिहासकारों और पुरातत्त्वविदोंने इन गुफाओंके सम्बन्धमें जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनपर अपना अभिमत प्रकट किये बिना संक्षेपमें उन्हें यहाँ दे रहे हैं।

इन गुफाओंमें हाथी गुफाका निर्माण-काल ई. सन्से १५८ या १५३ वर्ष पूर्व है। उदयगिरिकी स्वर्गपुरी, मंचपुरी, सर्प गुफा, बाघ गुफा, जम्बेश्वर गुफा और हरिदास गुफा इन छह गुफाओंमें और खण्डगिरिकी तोता गुफा और अनन्त गुफा इन सभी गुफाओंमें जो शिलालेख हैं, वे ब्राह्मी लिपिमें हैं और ये खारबेलके समयके अक्षरोंसे मिलते-जुलते हैं। इसलिए इन शिलालेखोंका काल ईसवी सन्से पूर्वका तो है ही। यह भी सम्भव है, इनमें कुछ गुफाओंका निर्माण और भी पहले हो चुका हो। इस पहाड़ीकी ख्याति पूर्वसे थी, अनेक जैन मुनि यहाँ निवास करते थे। इसीलिए खारबेलने इस पहाड़ीको चुना और यहाँ गुफा बनायीं। ऐसी स्थितिमें उससे पहले यहाँ कुछ गुफाएँ हों, इस सम्भावनासे इनकार नहीं किया जा सकता। अनुमान तो यह भी किया जाता है कि ईसवी पूर्व तीसरी शताब्दीसे ईसा पूर्व पहली शताब्दी तक ही यहाँकी अधिकांश गुफाएँ बनी होंगी।

यहाँ सबसे बड़ी गुफा रानी गुफा है। इसमें जो श्रेणीबद्ध स्तम्भ और दृश्यांकन मिलता है, उससे लगता है, यह गुफा कितनी समृद्ध और कलासम्पन्न है। इसमें कोई लेख नहीं है। इसलिए इसका निर्माण-काल अथवा इसके निर्माताका पता नहीं चलता। इसकी रचना-शैलीसे यह प्राचीन लगती है।

कुछ गुफाएँ पश्चात्कालीन हैं, जैसे नवमुनि गुफा, छोटी हाथी गुफा, गणेश गुफा आदि।

सम्राट् खारबेलका हाथी गुम्फा शिलालेख

१. (वर्द्धमंगल-चिह्न) (स्वस्तिक चिह्न) नमो अरहंतानं नमो सवसिधानं ॥ ऐरेण[1] महाराजेन महामेघवाहनेन चेर्ते[2]-राजवंश वधनेन पसथ-सुभ-लेखनेन[3] चतुरंत रखेण[4] गुण-उपेतेन[5] कलिंगाधिपतिना सिरि खारबेलेन।

२. पंदरस-वसानि सिरि कडार-सरीर-वता कीडिता कुमार कीडिका ॥ ततो लेख-रूप गणना-ववहार-विधि-विसारदेन सव विजा वदातेन नव वसानि योवराज पसासितं ॥ संपुण चतुनीसति-वसो तदानि वधमान-सेसयो-वेनाभिविजेयो[6] ततिये

३. कलिंग-राज-वसे[7] पुरिस-युगे महाराजाभिसेचनं[8] पापुनाति ॥ (नन्दिपद-चिह्न) अभिसितमतो[9] च पधमे वसे बात-विहत-गोपुर-पाकार-निवेसनं पटिसंखारयति कलिंगनगरिखिवीर[10] सितल तडाग पाडियो च बंधापयति सवूयान पटि संथपनं च

४. कारयति पनति साहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति ॥ दुतिये च वसे अचितयिता सातकनि पछिमदिसं हय-गज-नर-रथ-बहुलं दंडं पठापयति[11] कन्हबेंणा-गताय च सेनाय वितासिति[12] असिकनगरं[13] (॥) ततिये पुन वसे

५. गंधव-वेद-बुधो दप-नत-गीत-वादित-संदसनाहि उसव समाज-कारापनाहि च कीडापयति नगरिं (॥) तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहतपुवं कलिंग-युवराजानं धमेन व नितिना व पसासति सवत धमकुटेन भीततसिते च निखित-छत-

---

१. डॉ. बी. एम. बरुआके मतानुसार। २. डॉ. डी. सी. सरकार—चेति। ३. बरुआ—लखणेन। ४. डॉ. सरकार—लुठण। ५. डॉ. सरकार—उपितेन; डॉ. के. पी. जायसवाल—लुठित गुणोपहितेन। ६. बरुआ—वधमान—सेसयोवनाभिविजयो। ७. बरुआ—राजवंसे। ८. जायसवाल—माहा.। ९. प्रिसेप—मते। १०. बरुआ—गभीरे; जायसवाल और बनर्जी—कलिंग नगरि अकस पद। फिर खिबीर—इसिताल-तडाग ऐसा पाठ पढ़ें। ११. जायसवाल, बनर्जी—कह्न.। १२. जायसवाल—वितासिर्त। १३. जायसवाल, बनर्जी—मुसिक.।

६. भिंगारे हित-रतन-सपतेये सव-रठिक-भोजके पादे वंदायपति (॥) पंचमे च दानी वसे नंदराज-ति-वस-सत-ओघाटितं तनसुलिय-वाटा पणाडिं नगरं पवेसयति सतसहसेहि च खनापयति। अभिसितो च छटे वसे राजसेयं[1] संदंसयंतो सवकर-वण

७. अनुगह अनेकानि सत-सहसानि विसजति पोर-जानपदं (॥) सतमं च वसं पसासतो[2] वजिरघर[3]....... समतुक-पद........कुम........(॥) अठमे च वसे महता[4] सेनाय मधुरं अनुपणे (।) गोरधगिरिं

८. घातापयिता राजगहं उपपीड़पयति (।) एतिना च कंमपदानसंनादेन संभीतसेनवाहने विपमुचितुं मधुरं अपयातो यवनराज (डिमित[6]) सवधर वासिनं च सदगहतिनं च स पान भोजन च सदराज भिकान च। सवगह पतिकान च शव ब्रह्मणानं च पान भोजनं ददाति। कलिंगजिन पलवभार

९. कपरुख हय-गज-नर-रथ-सह याति[7] सर्द[8] घर बासिनं च सब राज मतकानं च सब प्रहमतिकानं च सब ब्रह्मणानं च पान भोजनं[9] ददाति अरहतानं समणानं च ददाति सत सहसेहि (।) नवमे च वसे वेडुरिय

१०. कलिंग राज निवासं महाविजय पासादं कारयति अठतिसाय सत सहसेहि (॥) दसमें च वसे दंड संधी साममयो भरध....सपठानं मह जयनं....कारापयति[10] (॥) एकादसमे च वसे मणि रतनानि उपलभते (।)

११. कलिंग पुवं राज निवेसितं पीथुंड गदभ-नंगलेन कासयति (।) जनपदभावनं च तेरस वस सतकतं भिदति त्रमिर दह संघातं (।) बारसमे च बसे सत सह सेहि वितासयति उत्तरापथ राजानो

१२. मागधानं च विपुलं भयं जनेतो हथसं गंगाय पाययति (।) मगधानं च राजानं वहसतिमितं पादे वंदापयति (।) नंदराजनीतं कलिंग जिनं संनिवेसं अंगमगधवसुं न नयति (॥)

१३. हय गज सेन वाहन सहसेहि अंग मगध वासिनं च पादे वंदापयति (।) वीथि चतर पलिखानि गोपुरानि सिहरानि निवेसयति सतविसिकनं परिहारेहि (।) अभुत मछरियं च हथी निवास परिहरंति मिग-हय-हथी-उपानामयंति पंडराजा विविधाभरणानिसृता मनि रतनानि आहरापयति इथ सत सहसानि।

१४. सिनो वसीकरोति (।) तेरसमे च वसे सुपवत विजय चके कुमारी पवते अरहतेहि पखिन संसितेहि कायनिसीदियाय यापूजावकेहि राजमितिनि चिनवतानि वासासितानि पूजानुरत सवासग खारबेल सिरिना जीव देहसयिका परिखाता (॥)

१५. सकत-समण सुविहितानं च सव दिसानं अननं तपसि इसिन संघियनं अरहत निसीदिया समीपे पाभारे वराकार समुथापिताहि अनेक योजना हिताहि पनति साहि सत सहसेहि सिनाहि सिनथंभानि च चेतियानि च कारापयति (॥)

---

१. जायसवाल—राजसूयं। २. बरुआ—सतमे च वसे (व) स—सतो। ३. बरुआ—वजिरघर-खतिय-सत-घटनि-समतक-पदपनं संहिपद, जायसवाल—घरवति घुसितघरिनि स मतुक-पद-पुंञ। ४. बरुआ—महति सेनाय। ५. जायसवाल—संवित, बरुआ—पर्वतं। ६. यह शब्द सन्देहास्पद है। ७. बरुआ—यंति, जायसवाल—सहयंते। ८. जायसवाल—घरावासपरिवेसने अगिणाथिया। ९. सरकार—सदगहणं च कारयितुं ब्रह्मणानं जयपरिहार। १०. दसवें वर्षका पाठ समीका संदिग्ध है।

१६. पटलिक चतरे च वेडुरिय गभे थंभे पतिठापयति पानतरीय सत सहसेहि मुखिय कल वोच्छिनं च चोयठि अंग संतिक तुरियं उपादयति (।) खेम राजा स वढराजा स भिखुराजा धमराजा पसंतो सुनंतो अनुभवतो कलानानि

१७. गुणविसेस कुसलो सव पूजको सव देवायतन संकारकारको अपहिहत चको वाहनबलो चकधरो गुतचको पवतचको राजसिवसुकुल विनिसितो महाविजयो राजा खारबेल सिरि (॥)

(चिह्न चैत्य-वृक्ष)

पुरी

पुरीका धार्मिक महत्त्व

हिन्दुओंके चार परम पवित्र धामोंमें बद्रीनाथ, द्वारका, रामेश्वरम् और जगन्नाथपुरी माने जाते हैं। हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार बद्रीनाथ सतयुगका, रामेश्वरम् त्रेताका तथा द्वारका द्वापरका धाम है। किन्तु पुरी कलियुगका धाम है। हिन्दुओंकी यह भी मान्यता है कि भगवान् जगन्नाथजी बद्रीनाथमें स्नान करते हैं, द्वारकामें शृंगार करते हैं, पुरीमें अन्नका भोग ग्रहण करते हैं और रामेश्वर धाममें शयन करते हैं। शाक्त सम्प्रदायके लोग इसे उड्डियान पीठ कहते हैं और ५१ शक्तिपीठोंमें इसकी गणना करते हैं।

पुरीके विभिन्न नाम

जगन्नाथपुरीके अतिरिक्त इस क्षेत्रके कई नाम बताये जाते हैं, जैसे उच्छिष्ट क्षेत्र, श्रीक्षेत्र, पुरुषोत्तमपुरी, शंखक्षेत्र, जमनिक तीर्थ, कुशस्थली, नीलाद्रि अथवा नीलाचल, मर्त्य वैकुण्ठपुरी, जगन्नाथ धाम, उड्डीयान पीठ।

मार्ग

यह क्षेत्र बंगालकी खाड़ीके तटपर कटकसे लगभग ९० कि. मी. तथा भुवनेश्वरसे ६२ कि. मी. रेल और सड़क मार्गपर अवस्थित है। यह दक्षिण-पूर्व रेलपथके हवड़ा-पुरी रेलपथका अन्तिम स्टेशन है। आसनसोल, हवड़ा, मद्रास तथा तलचरसे पुरीके लिए सीधी ट्रेन चलती है। कटक, भुवनेश्वर, खुरदा रोड आदिसे पुरीके लिए मोटर बसें भी चलती हैं। पुरी स्टेशनसे श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर लगभग १ मील है।

जगन्नाथ मन्दिर

जगन्नाथजीका मन्दिर बहुत विशाल है। मन्दिर दो परकोटोंके भीतर है। इसमें चारों ओर चार महाद्वार हैं—पूर्वमें सिंहद्वार, दक्षिणमें अश्वद्वार, पश्चिममें व्याघ्रद्वार और उत्तरमें हस्तिद्वार। बाहरी परकोटा या प्राचीरकी ऊँचाई बाईस फुट और चौड़ाई छह फुट पाँच इंच है। मन्दिरके शिखरकी ऊँचाई दो सौ चौदह फुट है। इसकी चूड़ापर नीलचक्र विराजता है। मन्दिरमें दक्षिणकी ओर एक वटवृक्ष है, जिसे अक्षयवट कहा जाता है।

सिंहद्वारसे प्रवेश करनेपर २५ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। फिर दूसरा प्राकार मिलता है। यहाँ दोनों ओर प्रसाद मिलनेका बाजार है। जगन्नाथजीके निज मन्दिरके द्वारके सामने मुक्ति-

मण्डप है। मुक्तिमण्डपके पीछेकी ओर मुक्त नृसिंहका मन्दिर है। इसके निकट रोहिणी कुण्ड है। उसके समीप विमलादेवीका मन्दिर है। जैन लोग इसको सरस्वतीकी मूर्ति मानते हैं।

मुक्ति मण्डपके सामने निज मन्दिरके दक्षिण द्वारमें प्रवेश करनेसे पूर्व बाहर ही बायीं ओर दीवालमें भगवान् ऋषभदेव तीर्थंकरकी एक मूर्ति विराजमान है। यह हलके सिलेटी वर्णकी खड्गासनमें लगभग एक फुट अवगाहनाकी है। पीठासनके दोनों ओर इन्द्र-इन्द्राणी विनीत मुद्रामें खड़े हुए हैं। मध्यमें दोनों ओर चमरेन्द्र चमर लिये हुए खड़े हैं। शीर्ष भागके दोनों ओर आकाशचारी देव पुष्पमाल लिये हुए हैं। मूर्ति दिगम्बर जैन है। मूर्तिका जटाजूट भव्य है। कुछ वर्ष पूर्व तक यह मूर्ति दीवालमें उत्कीर्ण अपने मूल रूपमें थी, किन्तु सुरक्षा भी दृष्टिसे बा. सखीचन्दजी कैसरे हिन्द कलकत्ताने इसके ऊपर शीशेका एक फ्रेम लगवा दिया है। इन जैन मूर्तिकी स्थापना एक हिन्दू मन्दिरमें क्यों की गयी, ऐसी कुतूहलपूर्ण जिज्ञासा मनमें उठना स्वाभाविक है। यह जिज्ञासा करनेपर वहाँके पण्डों और पब्लिक रिलेशंस आफीसरने बताया कि "यह मन्दिर आजसे २१-२२ सौ वर्ष पहले महाराज खारबेलने 'कलिंग-जिन'की मूर्तिको विराजमान करनेके लिए बनाया था। खारबेल महाराज जैनी थे। उन्होंने सर्वसामान्यके दर्शनकी सुविधाके लिए एक जैन प्रतिमा विराजमान करायी।" पण्डों आदिने उक्त जैन मूर्तिके प्रसंगमें जो बातें बतायीं, वे किंवदन्तीके रूपमें अबतक चली आ रही हैं।

निज मन्दिरमें सोलह फुट लम्बी और चार फुट ऊँची वेदी है। इसे रत्नवेदी कहते हैं। इस वेदीमें बायेंसे दायेंको—क्रमशः बलराम, सुभद्रा और जगन्नाथजी (श्रीकृष्ण) विराजमान हैं। जगन्नाथजीका वर्ण श्याम है। वेदीपर एक ओर छह फुट लम्बा सुदर्शन चक्र विराजमान है। यहीं नीलमाधव, लक्ष्मी तथा सरस्वतीकी छोटी मूर्तियाँ भी हैं।

तीनों ही मुख्य मूर्तियाँ अपूर्ण हैं। उनके हाथ पूरे नहीं बने हैं। मुखमण्डल भी सम्पूर्ण निर्मित नहीं है। ये दारु विग्रह हैं अर्थात् लकड़ीके बने हुए हैं।

इन प्राकारोंके भीतर और बाहर अनेक मन्दिर बने हुए हैं। इनमें एक स्थान विशेष उल्लेखनीय है, वह है कैवल्य वैकुण्ठ अथवा कोयल वैकुण्ठ। जगन्नाथजीका कलेवर प्रति वर्ष बदला जाता है। पुराने कलेवरकी समाधि इसी स्थानपर दी जाती है। इस स्थानको देव निर्वाण भूमि भी कहा जाता है। इस स्थानपर एक शाल्मलीलता छायी हुई है।

उल्लेखनीय उत्सव

यों तो वर्षमें जगन्नाथजीकी द्वादश यात्राएँ होती हैं, किन्तु इनमें सबसे प्रधान महोत्सव आषाढ़ शुक्ला द्वितीयाको होता है। उस दिन तीन रथोंमें बलराम, सुभद्रा और जगन्नाथजी विराजमान होकर गुण्डीचा मन्दिर जाते हैं। दूसरे दिन मूर्ति मन्दिरमें पहुँचायी जाती है। सात दिन तक मूर्ति वहींपर विराजमान रहती है। दशमीको रथयात्राकी वापसी होती है। इन नौ दिनोंके जगन्नाथजीके दर्शनको 'आड़पदर्शन' कहते हैं। जगन्नाथजीकी इस रथयात्रामें लाखों व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। रास्तेमें तीन दिन लगते हैं। रथयात्रा दिवसको स्मृतियोंमें कल्याणक दिवस माना जाता है।

रथयात्रासे पूर्व ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमाको तीनों मूर्तियोंको स्नान-मण्डपमें लाकर १०८ घड़ोंसे स्नान कराया जाता है।

एक रोचक किंवदन्ती

जगन्नाथजीके कलेवर-परिवर्तनके सम्बन्धमें एक रोचक किंवदन्ती प्रचलित है, जिससे कलेवरका परिवर्तन एक रहस्य बन गया है। कहते हैं, जो पण्डा कलेवर-परिवर्तन करता है, उसकी आँखोंपर पट्टी बाँध दी जाती है। वह टटोलकर पुराने कलेवरके हृदयके स्थानसे एक छोटी मूर्ति निकालता है और उसे नव कलेवरमें हृदयके स्थानपर रखकर उसे बन्द कर देता है। आँखोंपर पट्टी बाँधनेका कारण यह बताया जाता है कि यदि कोई विग्रह-परिवर्तन करते हुए देख ले तो उसकी और उसके परिवारकी तत्काल मृत्यु हो जाती है।

मन्दिर-निर्माणका इतिहास

इस मन्दिरके निर्माणका क्या इतिहास है, इसका उल्लेख श्री जगन्नाथ मन्दिर परिचालना समितिकी ओरसे प्रकाशित 'श्री क्षेत्र परिचय' में इस प्रकार किया है—

"पण्डु वंशके राजा उदयनके पुत्र थे इन्द्रबल। वे इन्द्रद्युम्नके नामसे अधिक परिचित थे। राजा इन्द्रद्युम्न इसी स्थानके मूल निवासियोंको साथ लेकर पहले श्री जगन्नाथजीकी पूजा-अर्चना करते थे। उन दिनों श्री जगन्नाथजीका नाम नीलमाधवके रूपमें परिचित था। इसके कई वर्षोंके बाद मगधके नन्दवंशीय नरपति महापद्मनन्द इस देवताके प्रति इतने आकृष्ट हुए कि उन्हें सबकी आँखोंसे बचाकर मगध ले गये थे। ईसाके १०० वर्ष पूर्व कलिंगके तत्कालीन महापराक्रमशाली सम्राट् खारबेलने मगधपर चढ़ाई की थी और श्री जगन्नाथजीको वहाँसे लाकर इस क्षेत्रमें फिरसे प्रतिष्ठित किया। ई. ८२४ में उत्कलके केशरीवंशीय पुण्यश्लोक नरपति ययाति केशरीने इस महान् देवताके लिए एक भव्य मन्दिरका निर्माण कराया था। परन्तु समुद्र तटवर्ती स्थान होनेके कारण नमकीन हवासे यह मन्दिर थोड़े ही वर्षोंमें नष्ट हो गया। इसके बाद ई. १०३८में उत्कलके गंगवंश सम्भूत चिरस्मरणीय नरपति महामना चोड गंगदेव या चुड़ गंगदेवके द्वारा आजके इस जगद्विख्यात मन्दिरका पुनः निर्माण हुआ।

इसके प्रमाणमें गंगराज राघवदेवके ताम्रशासनपर लिखा नीचेका श्लोक दिया जा रहा है—

पादौ यस्य धरान्तरीक्षमखिलं नाभिश्च मुर्वादिशः
श्रोत्रे नेत्रयुगं रवीन्दुयुगलं मूर्द्धापि च द्यौरसौ।
प्रासादं पुरुषोत्तमस्य नृपतिः को नाम कर्तुं क्षमः
तस्येत्यादि नृपैरयक्षितमयं चक्रेऽथ गंगेश्वरः॥

११०० ई. के लगभग उत्कलके तत्कालीन नृपति अनन्तवर्मनने, अब हम जिस जगन्नाथ मन्दिरको देख रहे हैं, उसका निर्माण-कार्य प्रारम्भ करवाया था। उनकी एक पीढ़ीके बाद उनके नाती (पौत्र) उत्कलके प्रसिद्ध गंगवंश नृपति राजा अनंग भीमदेवके द्वारा इस विश्वप्रसिद्ध भव्य मन्दिरका निर्माण-कार्य समाप्त हुआ। इस मन्दिरके निर्माणमें प्राचीन उत्कलके आ. गंगा-गोदावरी तकके एक विशाल साम्राज्यके १२ सालोंका राजस्व खर्च हो गया था। इतने वर्षोंके बाद भी वही मन्दिर बिना किसी परिवर्तनके आज हमारे सामने ज्योंका त्यों खड़ा है।"

उपर्युक्त विवरणसे कई बातोंपर प्रकाश पड़ता है। (१) नील माधव मूर्ति, जिसे बादमें जगन्नाथजी कहा जाने लगा, महाराज उदयनके पुत्र इन्द्रद्युम्नके कालमें भी विद्यमान थी। (२) नन्दवंशका प्रतापी सम्राट् महापद्मनन्द कलिंगपर विजय प्राप्त करके इस मूर्तिको अपने साथ ले गया था। (३) सम्राट् खारबेल मगधको पराजित करके इस मूर्तिको पाटलिपुत्रसे वापस लाये और उसे उसके मूल क्षेत्रमें प्रतिष्ठित किया। (४) केशरी वंशके ययाति केशरीने सन् ८२४ में

एक मन्दिरका निर्माण कराया। (५) सन् १०३८ में उत्कलके गंगवंशी चोड गंगदेवने ययाति केशरी द्वारा निर्मित मन्दिरके जीर्ण होनेपर नये मन्दिरका निर्माण प्रारम्भ किया। (६) इसके ६२ वर्ष बाद अनन्त वर्मनने मन्दिरका कार्य आगे बढ़ाया और उसके पौत्र अनंग भीमदेवने उसे पूरा कराया। अन्तिम तीनों नरेश गंगवंशके थे।

कलिंग जिनमूर्तिकी खोज

उपर्युक्त विवरणमें जिस नीलमाधव या जगन्नाथकी मूर्तिका उल्लेख किया है, वह वस्तुतः 'कलिंगजिन' की मूर्ति थी। सम्राट् खारबेलने उदयगिरिपर स्थित हाथी गुम्फामें जो अभिलेख उत्कीर्ण कराया था, उसमें इस मूर्तिका भी उल्लेख किया गया है। उसमें इस मूर्तिका नाम 'कालिंगजिन' दिया है। शिलालेखमें स्पष्ट उल्लेख है कि अपने राज्यके बारहवें वर्षमें मगधवासियोंमें विपुल भय उत्पन्न करके खारबेलने अपने हाथियोंको गंगाका जल पिलाया, मगधके राजा वहसतिमित्र (बृहस्पतिमित्र) को अपने चरणोंमें झुकाया तथा अंग-मगधको जीतकर नन्दराज (महापद्मनन्द) द्वारा आनीत 'कलिंगजिन' (मूर्ति) को कलिंग वापस ले गये।

इस 'कलिंगजिन'के सम्बन्धमें उड़ीसाके प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. लक्ष्मीनारायण साहूने अपनी पुस्तक 'उड़ीसामें जैनधर्म'के पृ. ६१-६२ पर लिखा है—"शिलालेखीय साक्षीसे हमें ज्ञात है कि यह जिनमूर्ति ही कलिंगके अधिवासियोंकी आराध्य देवता थी। इसलिए विजयी महापद्मका विजय गर्वसे उत्फुल्ल होकर 'कलिंगजिन' की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। जैनधर्मका कलिंगमें प्राधान्य विस्तार होनेके कारण जिनमूर्तिका प्रभाव भी प्रत्येक कलिंगवासीके ऊपर कम या ज्यादा पड़ा ही होगा। अधिक क्या, महापद्म स्वयं ही जैन धर्मके उपासक थे, अन्यथा कलिंग अधिकृत करनेके उपलक्ष्यमें महापद्मने समग्र जातिके, देशके तथा अपने इष्टदेवको सुदूर पाटलिपुत्र ले जानेका प्रयास नहीं किया होता। यदि वे जैनधर्मावलम्बी न होते तो वे जिनमूर्तिको नष्ट कर देते। परन्तु हाथी गुम्फा शिलालेखसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि खारबेलके मगधपर अधिकार करनेके समय तक अर्थात् ३०० वर्षोंके दीर्घ कालमें उपरोक्त मूर्ति पाटलिपुत्रमें सुरक्षित रही थी।"

आगे आप इस सम्बन्धमें लिखते हैं—"इसी सुअवसरपर उन्होंने शोभायात्रा निकालनेकी तैयारी की थी। खारबेलकी विराट् सैन्यवाहिनी और कलिंगके असंख्य नागरिकोंने उस महोत्सवमें योगदान दिया था और कलिंग साम्राज्यके सम्राट् ही स्वयं उसके उत्सवको सुन्दर रूपसे सम्पन्न करनेके लिए यत्नवान् हुए थे। संगीत और वादित्रोंके ध्वनि-समारोहमें 'कलिंगजिन' को पुनः कलिंगमें स्थापित किया गया। हाथी गुम्फा शिलालिपिसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि खारबेल और उसके परिवारके सभी लोग जैन धर्मावलम्बी थे। उनकी भक्ति और स्नेह 'कलिंगजिन' के साथ ओतप्रोत था।"

इससे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि 'कलिंगजिन' की वह मूर्ति जैनमूर्ति थी। वस्तुतः वह जैन तीर्थंकर ऋषभदेवकी मूर्ति थी और वह नीलमणिकी थी। सम्राट् खारबेलने मगधसे उस मूर्तिको वापस लाकर पहले कुमारी पर्वत (खण्डगिरि) पर अर्हन्त जिनालयमें विराजमान किया था और उसके लिए समुद्र-तटपर एक भव्य और समुन्नत जिनालयका निर्माण करके उस मूर्तिकी शोभा-यात्रा बड़े समारोहके साथ निकाली थी और उस जिनालयमें उसकी प्रतिष्ठा की थी।

खारबेल द्वारा निर्मित जिनालय

इसमें सन्देह नहीं है कि 'श्रीक्षेत्र परिचय'के अनुसार जगन्नाथपुरीका वर्तमान मन्दिर मूलतः खारबेल द्वारा निर्मित वही जिनालय है। किन्तु प्रश्न यह है कि 'कलिंगजिन' की वह मूर्ति कहाँ गयी तथा 'कलिंगजिन'का मन्दिर जगन्नाथजीका मन्दिर कैसे बन गया?

प्रथम प्रश्नका उत्तर जगन्नाथजीके कलेवर-परिवर्तनकी रहस्यमय विधिमें मिल जायेगा। दारुविग्रहमें जो छोटी-सी मूर्ति रखी जाती है, वही 'कलिंगजिन'की रत्नमूर्ति है, ऐसा हमारा विश्वास है। जहाँ तक दूसरे प्रश्नका सम्बन्ध है, विश्वासपूर्वक यह कह सकना कठिन है कि 'कलिंगजिन' कब जगन्नाथजी बन गये और उनका जिनालय कब जगन्नाथजीका मन्दिर बन गया। ऐसा लगता है, जब आद्य शंकराचार्यने चारों दिशाओंमें चार धामोंकी स्थापना की थी, उसी समय ये परिवर्तन हुए। जिस कलिंगमें सुदीर्घ काल तक जैन धर्म राष्ट्र धर्मके रूपमें पल्लवित हुआ, आज उसका एक भी प्राचीन मन्दिर अवशिष्ट नहीं है। इसका तर्कसंगत एक ही कारण हो सकता है कि कलिंगमें जैनोंकी संख्या और प्रभावमें ह्रास होनेपर वे सभी जैन मन्दिर परिवर्तित कर दिये गये हों। जगन्नाथजीका मन्दिर इसी परिवर्तन-शृंखलाकी एक कड़ी रहा है। नारदीय पंचरात्र, सूतसंहिता और नीलाद्रि अर्चनचन्द्रिका आदि जिनग्रन्थोंके अनुसार जगन्नाथपुरीके मन्दिर-में चौंसठ उपचारोंके साथ पूजा, नैवेद्य आदि कार्य सम्पन्न हुआ करते हैं, वे सभी ग्रन्थ इस कालके बादके हैं।

मूलतः यह जैन मन्दिर है, इस विश्वासके अन्य भी कई कारण हैं। जैसे—पुरी मन्दिरके दक्षिण द्वारपर ऋषभदेव तीर्थंकरकी मूर्तिका होना और वहाँ इस परम्परागत अनुश्रुतिका होना कि इस मन्दिरका निर्माण खारबेल महाराजने कराया था और वे जैन थे, हमारी इस धारणाका समर्थन करते हैं कि मूलतः यह वही मन्दिर है, जिसका निर्माण खारबेलने 'कलिंगजिन' मूर्तिके लिए कराया था। केशरी वंश अथवा गंग वंशके राजाओंने उसीका पुनरुद्धार अथवा पुनर्निर्माण कराया था।

अभिधान राजेन्द्र कोष (चतुर्थ खण्ड १३८५) में ऋषभदेवका एक नाम जगन्नाथ भी माना है। आचार्य जिनसेन कृत महापुराणके जिनसहस्रनाम स्तोत्रमें भी जगन्नाथ शब्द ऋषभदेवका नामान्तर माना है। इस समन्वय दृष्टिसे विचार करते हैं तो जगन्नाथ और ऋषभदेवकी अनेक बातोंमें समानता दृष्टिगोचर होती है। जगन्नाथजीका नीलचक्र ऋषभदेवके धर्मचक्रका ही प्रतीक है। जगन्नाथ मन्दिरका वटवृक्ष ऋषभदेवके बोधि-वृक्षको सूचित करता है। यह बोधि-वृक्ष अक्षय वट कहलाता है। विमलादेवी सचमुच ही ऋषभदेवकी पुत्री ब्राह्मी (सरस्वती) से अभिन्न हैं। जगन्ननाथजीका अभिषेक जैन मूर्तियोंके अभिषेकके समान होता है। जगन्नाथ मन्दिरके बेड़ामें कोहली वैकुण्ठ नामक स्थान है। कोहली शब्द संस्कृतके कैवल्य शब्दसे निष्पन्न हुआ है जो जैनोंका पारिभाषिक शब्द है।

पुरीमें आषाढ़ शुक्ला दो को रथयात्राका उत्सव होता है। हिन्दू परम्परामें वार, नक्षत्रका विचार किये बिना शुभ कार्यका अनुष्ठान वर्जित बताया है। किन्तु आषाढ़ शुक्ला दोको वार नक्षत्रका विचार किये बिना सब तरहके शुभ कार्य किये जाते हैं। इसलिए हिन्दू परम्परामें इसे कल्याणक दिवस माना गया है। वास्तवमें यह कल्याणक दिवस तो है ही। ऋषभदेव भगवान्‌के पाँच कल्याणक मनाये जाते हैं—गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण। ये ही पाँच कल्याणक प्रत्येक तीर्थंकरके होते हैं। जिन तिथियों में ये कल्याणक होते हैं वे कल्याणक दिवस कहलाते

हैं। ऋषभदेवका गर्भ-कल्याणक इसी तिथिको हुआ था। यहाँ एक बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय है कि पुरीको रथयात्रा श्री कृष्णजी की घोषयात्रा नहीं है। घोषयात्रामें फिर बाडड़ा (लौटना) नहीं होता।

जगन्नाथजीमें अन्य वैष्णव तीर्थोंसे कई बातोंमें अन्तर है। यहाँके महाप्रसादमें छुआछूतका दोष नहीं माना जाता, उच्छिष्टताका भी दोष नहीं माना जाता। एकादशी आदि व्रत-पर्वादिके दिन भी उसे ग्रहण करना विहित है।

इसमें तो सन्देह नहीं है कि मूलतः पुरीका मन्दिर जैनमन्दिर है। कलिंग जिनकी वह विख्यात मूर्ति भी अबतक सुरक्षित है। इसके लिए वैष्णव समाजके प्रति आभार प्रकट करना हमारा नैतिक कर्तव्य है कि उसने उस मूर्तिकी अबतक रक्षा की तथा जैन मन्दिरमें प्रचलित कई प्राचीन परम्पराओंका अबतक निर्वाह किया है। क्या यह धार्मिक सहिष्णुताकी पराकाष्ठा नहीं कही जा सकती कि अब भी मुख्य मन्दिरके द्वारकी दीवालपर ऋषभदेवकी मूर्ति उसी प्रकार विराजमान है, जैसे सम्राट् खारबेलने इसे विराजमान किया होगा। यद्यपि मन्दिरके अहातेमें कैमरा ले जाना और चित्र लेना वर्जित है, किन्तु कोई जैन बन्धु किसी भी पण्डेसे जैन मूर्तिके सम्बन्धमें कोई प्रश्न करता है तो वे बड़े प्रेमपूर्वक उसका उत्तर देते हैं। लगता है, मानो यहाँ आकर जैन धर्म और वैष्णव धर्मका संगम हुआ है। इस मन्दिर और मूर्तिके रूपमें दोनों धर्म यहाँ प्रेमपूर्वक रह रहे हैं।



---

१. महापुराणके अनुसार ऋषभदेवका गर्भकल्याणक आषाढ़ कृष्णा दो को हुआ था। पुरीकी रथयात्रा आषाढ़ शुक्ला दो को होती है। कृष्णा और शुक्लाका यह अन्तर प्रान्त-भेदके कारण है।

परिशिष्ट–१

कोटिशिला

कोटिशिला

सिद्धक्षेत्र

कोटिशिला निर्वाण-क्षेत्र है। निर्वाण-काण्ड (गाथा) में इस सम्बन्धमें एक गाथा निम्न प्रकार है।

'जसहर-रायस्स सुआ पंचसया कलिंग देसम्मि।
कोडिसिलाए कोडिमुणी णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥'

इस गाथाके हिन्दी भाषानुवादकने इसका अर्थ निर्वाण काण्ड (भाषा) में इस प्रकार किया है—

जसरथ राजाके सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमाण, वन्दन करूँ जोर जुग पान ॥

अर्थात् कलिंग देशमें स्थित कोटिशिलासे यशोधर राजाके पाँच सौ पुत्र और एक करोड़ मुनि मोक्ष गये।

इस गाथाके अनुसार कोटिशिला सिद्धक्षेत्र या निर्वाण-क्षेत्र है। और यह स्थान कलिंग-में था।

'विविध तीर्थकल्प' के कर्ता आचार्य जिनप्रभ सूरिने 'कोटिशिला तीर्थकल्प' नामसे एक कल्प की रचना की है। इसमें कोटिशिलाकी अवस्थितिका निर्णय करते हुए वे लिखते हैं—

'इह भरह खित्तमज्झे तित्थं मगहासु अत्थि कोडिसिला।'

अर्थात् इस भरत क्षेत्रमें मगध देशमें कोटिशिला अवस्थित है।

कोटिशिलाकी विशेषता बताते हुए उन्होंने आगे लिखा है कि यह एक योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी है। अर्धचक्री नारायण सुर-नर-खेचरोंके समक्ष इसे उठाकर अपने बलकी परीक्षा करते हैं। प्रथम नारायणने इसे उठाकर सिरके ऊपर तान दिया था। दूसरा नारायण सिर तक ही उठा सका। तीसरा गर्दन तक, चौथा वक्षस्थल तक, पाँचवाँ उदर तक, छठा कटिप्रदेश तक, सातवाँ जंघा तक, आठवाँ घुटनों तक तथा अन्तिम नारायण भूमिसे केवल चार अंगुल ऊपर ही उठा पाया। अवसर्पिणी कालके कारण मनुष्योंका बल क्रमशः हीन होता जाता है; यद्यपि तीर्थंकरोंका बल सभीका समान होता है।

दिगम्बर शास्त्रोंमें कोटिशिलाके सम्बन्धमें अन्य विवरण समान है, किन्तु कोटिशिला मगधमें थी, इसका समर्थन दिगम्बर शास्त्र नहीं करते।

ब्र. शीतल प्रसादजीने[1] मद्रास (वर्तमान तमिलनाड) प्रदेशके गंजाम जिलेमें स्थित मालती पर्वतकी उस शिलाको कोटिशिला माना है जिसमें एक दीपक बना हुआ है। उसमें २५० सेर तेल आ सकता है। ग्रामवाले इसको दीपशिला कहते हैं। गंजाम जिला प्राचीन कलिंगमें था। यदि

---

१. मद्रास व मैसूर प्रान्तके प्राचीन जैन स्मारक।

वास्तवमें मालती पर्वतपर ही कोटिशिला है तो उसे कलिंग देशमें मानना होगा। इस मान्यतासे निर्वाण काण्डवाली मान्यताका समर्थन ही होता है।

पं. नाथूराम प्रेमी कलिंग और मगधका सामंजस्य इस प्रकार बैठाते हैं कि सम्राट् अशोकके आक्रमणके बाद कलिंग मगधके अधिकारमें आ गया था। इसलिए उसे मगधमें गिना जाता होगा।

कोटिशिला और पौराणिक साक्ष्य

जैन पुराणोंमें कोटिशिलाका वर्णन अनेक स्थलोंपर आया है। उससे कोटिशिलाके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश पड़ सकनेकी आशा है।

'हरिवंश पुराण' में कृष्णकी दिग्विजयका उल्लेख करते हुए कोटिशिलाका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"सब रत्नोंसे युक्त नारायणने चक्ररत्नकी पूजा करके देव, असुर और मनुष्योंके साथ जाकर दक्षिण भरत क्षेत्रको जीता। लगातार आठ वर्षों तक मनोवांछित भोग भोगे, समस्त राजाओंको जीत लिया। फिर वे कोटिशिलाकी ओर गये। चूँकि उस उत्कृष्ट शिलापर अनेक करोड़ मुनिराज सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए हैं, इसलिए वह पृथ्वीमें कोटिक शिलाके नामसे प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णने सर्वप्रथम उस पवित्र शिलाकी पूजा की। उसके बाद अपनी दोनों भुजाओंसे उसे चार अंगुल ऊपर उठाया। वह शिला एक योजन ऊँची, एक योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी है तथा अर्ध भरत क्षेत्रमें स्थित देवों द्वारा रक्षित है। पहले त्रिपृष्ठ नारायणने इस शिलाको जहाँ तक भुजाएँ ऊपर पहुँचती हैं, वहाँ तक ऊपर उठाया। दूसरे द्विपृष्ठने मस्तक तक, तीसरे स्वयम्भूने कण्ठ तक, चौथे पुरुषोत्तमने वक्षःस्थल तक, पाँचवें नृसिंहने हृदय तक, छठे पुण्डरीकने कमर तक, सातवें दत्तकने जाँघों तक, आठवें लक्ष्मणने घुटनों तक और नौवें कृष्ण नारायणने उसे चार अंगुल ऊपर तक उठाया। शिला उठानेके बलसे समस्त सेनाने जान लिया कि श्रीकृष्ण महान् शारीरिक बल सहित हैं।[1]"

इस वर्णनसे कई बातोंपर प्रकाश पड़ता है। प्रथम तो यह कि इस कोटिशिलासे करोड़ों मुनि मुक्त हुए अर्थात् यह शिला महान् सिद्धभूमि है। द्वितीय यह कि नारायणोंके लिए इस शिलाका उठाना सदासे इसलिए आवश्यक समझा जाता रहा है जिससे इनके शारीरिक बल-विक्रमकी परीक्षा हो सके। लोगोंको अपनी शारीरिक शक्तिसे प्रभावित करनेके लिए इस शिलाका उठाना मानो नारायण-पदकी एक अनिवार्य शर्त थी। तीसरे यह कि द्वारिकासे दक्षिण भारतको जीतकर कृष्ण कोटिशिला उठाने गये अर्थात् कोटिशिलाका मार्ग दक्षिण भारतसे सीधा था।

इसी प्रकार पद्मपुराणमें लक्ष्मण द्वारा कोटिशिलाको उठानेका वर्णन मिलता है। अनेक मुनिजन इस शिलापर तपस्या करके मोक्ष पधारे हैं, अतः इस शिलाको पद्मपुराणमें निर्वाण शिला कहा है और सिद्धशिला भी। वस्तुतः कोटिशिला कोई नाम नहीं है। करोड़ों मुनि जिस शिलासे मुक्त हुए हैं, उस शिलाको ही कोटिशिला कहा जाने लगा है।

'विविध तीर्थकल्प' में किन्हीं पूर्वाचार्योंकी कुछ गाथाएँ कोटिशिलाके सम्बन्धमें उद्धृत की हैं। उनके अनुसार कोटिशिला दशार्ण पर्वतके समीप थी। वहाँसे छह तीर्थंकरोंके तीर्थमें अनेक कोटि मुनि मुक्त हुए थे। शान्तिनाथ भगवान्के प्रथम गणधर चक्रायुध अनेक साधुओंके साथ वहाँसे मुक्त हुए तथा भगवान्के तीर्थमें संख्यात कोटि मुनि मुक्त हुए। कुन्थुनाथ तीर्थंकरके तीर्थमें संख्यात

---

१. हरिवंश पुराण, सर्ग ५३, श्लोक ३९-४०।

कोटि मुनि सिद्ध हुए। अरनाथके तीर्थमें बारह कोटि मुनि मुक्त हुए। मल्लिनाथके तीर्थमें छह कोटि मुनि मोक्ष गये। मुनिसुव्रतनाथके तीर्थमें तीन कोटि मुनि यहाँसे मुक्त हुए। नमि तीर्थंकरके तीर्थमें यहाँसे एक कोटि मुनि मोक्ष पधारे।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' (भाग ३, पृ. ६७६) में कुछ प्रश्न उठाये हैं—कोटिशिला शाश्वत है या अशाश्वत ? वह कहाँपर है ? सभी नारायण उस सम्पूर्ण शिलाको उठाते हैं अथवा उसके एक देशको ? इन प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार दिये हैं—कोटिशिला अशाश्वत प्रतीत होती है क्योंकि शास्त्रोंमें गंगा-सिन्धु-वैताढ्य आदि शाश्वत स्थानोंमें कोटिशिलाका नाम उपलब्ध नहीं होता। वह मगध देशमें दशार्ण पर्वतके समीप थी। सभी नारायण सम्पूर्ण शिलाको ही उठाते हैं, उसके एक भागको नहीं।

कोटिशिलाकी अवस्थिति

वस्तुतः कोटिशिला कहाँ थी और वह अब कहाँ है, इससे इतिहासकार अनभिज्ञ हैं। पुराणोंके विवरणोंसे भी इस विषयपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। लगता है, पुराणकार आचार्योंके समक्ष भी यह विषय अस्पष्ट रहा है। यह भी सम्भव है कि उन्हें इसे स्पष्ट करना कुछ आवश्यक न लगा हो। 'विविध तीर्थकल्प' में इस स्थानको दशार्ण पर्वतके समीप बताया है और मगधमें बताया है। इसलिए पहले दशार्ण पर्वतके सम्बन्धमें कुछ ज्ञातव्य ढूँढ़ना होगा। महाभारतमें दशार्ण नामक दो देशोंका उल्लेख मिलता है—एक पश्चिममें जिसे नकुलने जीता था (सभा पर्व अध्याय ३२)। दूसरा पूर्वमें जिसे भीमने जीता था (सभापर्व, अध्याय ३०)। मालवाका पूर्वी भाग, जिसमें भोपाल भी सम्मिलित था, पश्चिम दशार्ण कहलाता था और उसकी राजधानी विदिशा या भेलसा थी।[1] इसका उल्लेख कालिदासने किया है।[2] अशोकके कालमें इसकी राजधानी चैत्यगिरि अथवा चेतियगिरि थी। पूर्वी दशार्ण वर्तमान छत्तीसगढ़का कुछ भाग था जो मध्यप्रदेशमें है।[3] इसमें पटनाका आदिवासी राज्य भी सम्मिलित था।

दशार्णके इस भौगोलिक विवरणके पश्चात् कलिंगका थोड़ा-सा इतिहास और उसकी प्राचीन भौगोलिक सीमाएँ समझनेकी आवश्यकता है। प्राचीन कालमें उत्कल प्रदेशमें, जिसे कलिंग भी कहते हैं, छह राष्ट्र सम्मिलित थे—ओड्र, कलिंग, कंगोद, उत्कल, दक्षिण कोशल और गंगराड़ी। कूर्मपुराणके अनुसार इसकी सीमा गंगासे लेकर गोदावरी तक और पूर्वी समुद्रसे लेकर दण्डकारण्य तक फैली हुई थी। जब दक्षिण कोशलका कुछ भाग इससे अलग हो गया, तब यह प्रदेश त्रिकलिंग कहलाने लगा। पूर्वी दशार्ण और दक्षिण कोशल विभिन्न कालोंके भिन्न-भिन्न नाम हैं, किन्तु ये दोनों नाम कुछ साधारण परिवर्तनोंके साथ एक ही प्रदेशके हैं। भिन्न-भिन्न कालोंमें यों तो राज्योंकी सीमाएँ बदलती रहती हैं, किन्तु फिर भी इस प्रदेशमें छत्तीसगढ़का कुछ भाग, गोण्डवाना और विदर्भ सम्मिलित थे।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री बी. सी. मजूमदारका अभिमत है कि कलिंग और दक्षिण कोशलका मध्यवर्ती पार्वत्य प्रदेश ओड्र था।

दक्षिण कोशलका निकटवर्ती पर्वत ही दशार्ण अथवा पूर्वी दशार्ण पर्वत है। इस दशार्ण पर्वतके निकट ही कोटिशिला अवस्थित थी।

---

१. Dr. Bhandarkar's History of the Dekkan, Sec. III. २. मेघदूत, भाग १, श्लोक २५-२६। ३. Prof Wilson's Vishnu P., Hall's ed., Vol. II, page 160, note 3.

कोटिशिलाके सम्बन्धमें विभिन्न मान्यताएँ

कोटिशिला और भुवनेश्वरके निकटस्थ उदयगिरि-खण्डगिरिके कुमारी पर्वतको एक माननेकी मान्यताको विद्वानोंके एक वर्गमें समर्थन प्राप्त है। यह पर्वत सिद्धक्षेत्र था। इसका समर्थन भी हमें पुराण साहित्यसे प्राप्त होता है। भगवान् महावीरके कालमें कलिंग देशपर जितशत्रु राजा राज्य करता था। इसके साथ वर्धमान महावीरके पिता सिद्धार्थकी छोटी बहनका विवाह हुआ था। जब महावीरका जन्मोत्सव हो रहा था, उस समय यह अपनी रानी यशोदयाके साथ कुण्डपुरमें आया था। राजा सिद्धार्थने इसका खूब स्वागत-सत्कार किया था। इसकी रानी यशोदयासे यशोदा नामक एक कन्या हुई थी। जब महावीरकी वय विवाह योग्य हुई, तब भी यह राजा अपनी पुत्रीका महावीरके साथ विवाह सम्बन्ध करनेके उद्देश्यसे आया था। राजा सिद्धार्थ भी इस सम्बन्धसे सहमत थे। किन्तु महावीर दीक्षा लेकर तप करने चले गये। इससे पिता और पुत्रीको बड़ी निराशा हुई और कुछ समय बाद जितशत्रु भी गृह त्याग दिया। वे कुमारी पर्वतपर तप करने लगे। कुछ काल पश्चात् उन्हें केवलज्ञान हुआ और अन्तमें कुमारी पर्वतसे वे मुक्त हुए। इस प्रकार उदयगिरिका यह कुमारी पर्वत सिद्धक्षेत्र माना जाता है।

यह स्थान सदासे दिगम्बर मुनियोंकी तपोभूमि रहा है। सम्राट् खारवेलके समयमें तो यहाँ अनेक दिगम्बर जैन मुनि तपस्या किया करते थे।

प्रसिद्ध हाथी गुम्फा लेखकी १४-१५वीं पंक्ति इस प्रकार है कि "कुमारी पर्वतके ऊपर अर्हन्त मन्दिरके बाहरकी निषद्या (नशिया) में......काले रक्ष्य.......सवं दिशाओंके महाविद्वानों और तपस्वी साधुओंका समाज एकत्र किया था.......अर्हन्तकी निषद्याके पास पर्वत-शिखरके ऊपर समर्थ कारीगरोंके हाथोंसे पतालक, चेतक और वैडूर्य गर्भमें स्तम्भ स्थापित कराये।"

इस लेखसे ज्ञात होता है कि सम्राट् खारवेलने कुमारी पर्वतपर अर्हन्त मन्दिर बनवाया; वहाँपर विद्वानों और साधुओंका सम्मेलन कराया।

यहाँ और भी अनेक धार्मिक घटनाएँ हुई हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि कुमारी पर्वत अथवा कुमारगिरि सुप्रसिद्ध तीर्थ-स्थान रहा, मुनियोंके लिए तपोभूमि अथवा आश्रम रहा था। सम्भवतः इस कारण यहाँपर स्थित शिलाको कोटिशिला माननेकी कल्पनाको जन्म मिला।

कुछ विद्वानोंने गंजाम जिलेके मालती पर्वतपर स्थित शिलाको कोटिशिला स्वीकार किया है। मालती पर्वतके सम्बन्धमें भारत सरकारके पुरातत्त्व अधिकारी श्री रौबर्ट श्रीबेलने एक पुस्तक या रिपोर्ट[1] लिखी है। उसके अनुसार यहाँ प्राचीन किला और मन्दिर थे, जो भग्नावशेष दशामें यहाँ बिखरे पड़े हैं। कभी-कभी किसानोंको यहाँ सोनेकी मुहरें और सोनेकी मूर्तियोंके टुकड़े मिल जाते हैं। इस पहाड़ीपर एक पाषाणमें एक दीपक खुदा हुआ है जिसमें २५० सेर तेल आ सकता है। ग्रामीण जनता इसे दीपशिला कहती है। पर्वतकी तलहटीको केशरपल्ली कहा जाता है। प्राचीन कालमें यहाँ केशरी नामक एक राजा राज्य करता था। वह राजा बहुत प्रभावशाली था। सम्भवतः उसीके नामपर केशरपल्ली नाम पड़ा है। केशरपल्लीके आसपास कमलोंसे सुशोभित ७२ सरोवर हैं। ये सरोवर राजाने अपनी ७२ रानियोंके लिए बनवाये थे। पर्वत और तलहटीमें कुछ जैन मूर्तियाँ भी मिली थीं। इसमें तो सन्देह नहीं है कि इस पर्वतपर प्राचीन कालमें जैन मन्दिर थे।

---

१. List of antiquarian remaind of Madras (1882),

एक तीसरी मान्यता इन दोनों मान्यताओंसे भिन्न है। यह स्थान देवगिरि है। देवगिरि कोरापुट जिलेमें गंजाम और विजगापट्टमके बीचमें नागावली नदीके किनारेपर अवस्थित है। तीस मील पर्यन्त यहाँ पर्वत श्रेणियाँ फैली हुई हैं। सभी पहाड़ोंपर जंगल होते हैं, सघन वृक्ष होते हैं किन्तु इस देवगिरि पर्वतपर वृक्ष बिलकुल नहीं हैं। इस पर्वतका आकार बिलकुल हाथी-जैसा है। यह पहाड़ शायद ग्रेनाइट पाषाणका है। पाषाण एकदम लोहा जैसा है। इसलिए लोगोंके चलने-फिरनेपर भी कहीं पगडण्डी या मार्ग नहीं बन पाया। इसके पाषाणमें चाँदी-जैसी सफेद बुन्दकियाँ पड़ी हुई हैं।

इस गजाकार पर्वतके पूँछाकारकी ओरसे धीरे-धीरे सँभलकर चढ़ना होता है। पीठाकार-पर ग्यारह निर्मल जल-कुण्ड हैं। गर्दन और सूँडके आकारके स्थानपर एक विशाल गुफा है, जिसमें छोटी-छोटी अन्तर्गुफाएँ हैं। इन सबमें बैठकर चलना पड़ता है और अन्धकार रहता है। मुखाकार-के स्थानपर पीले फूलोंके झाड़ हैं।

इस पहाड़की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। इसके ऊपर घास-फूस, झाड़-झंखाड़ कुछ भी नहीं है। यह पहाड़ एक ही शिला का है। इसलिए यह ऊबड़-खाबड़ नहीं है। इधरके हजारों व्यक्ति इस पहाड़की पूजा करने आते हैं। विशेषता यह है कि जो मांसाहारी भी व्यक्ति पूजा करनेके लिए यहाँ आता है उसे भी उस दिन मांस-भक्षणका नियम करना पड़ता है अन्यथा वह बीचमें-से ही गिर पड़ता है, ऐसी कुछ मान्यता है। जैनेतर जनता यहाँ मनौती मनाने आया करती है। विवाहके बाद वर और वधू दोनों यहाँ पूजनको आते हैं। यहाँ वर्षमें कई मेले, यात्राएँ होती हैं। देवगिरि-पूजाको यहाँ महाप्रभुकी पूजा कहा जाता है।

यहाँका मार्ग इस प्रकार है। रायपुर-विजयनगरम् लाइनपर रायगड़ा स्टेशन है। वहाँसे ३० मील कल्याणसिंहपुर है। इसीके निकट देवगिरिकी पहाड़ी है।

उपर्युक्त सभी पक्षोंपर विचार करनेपर यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि कोटिशिला कहाँ थी और अब उसकी पहचान क्या है?

●

परिशिष्ट–२

बिहार-बंगाल-उड़ीसामें सराक जाति

बंगाल-बिहार-उड़ीसामें सराक जाति

प्राचीन कालमें भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें जैन धर्मानुयायियोंकी बहुत बड़ी संख्या थी। उत्तर भारतमें अधिकांश तीर्थंकरोंका जन्म और विहार हुआ था। स्थान स्थानपर उनका समवसरण लगता था, वहाँ उनके उपदेश होते थे। अतः सम्पूर्ण उत्तर भारतमें जैन धर्मका बड़ा प्रचार था। पूर्व भारतमें भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीरका विशेष रूपसे विहार हुआ था। जनतापर उनके लोकोत्तर व्यक्तित्व और लोक कल्याणकारी उपदेशोंका गहरा प्रभाव पड़ा था। इसका परिणाम यह हुआ कि बिहार, बंगाल और उड़ीसा ये तीन प्रान्त तो एक प्रकारसे जैन धर्मके रंगमें रँग गये। दक्षिण भारतमें स्वयं अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु और मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त मुनि बनकर बारह हजार साधुओंके साथ गये। वहाँ वे साधु श्रुतकेवली भद्रबाहु गुरुकी आज्ञासे दक्षिणके प्रान्तोंमें—विशेषतः कर्नाटक और तमिल देशमें टोलियोंमें बँट गये। उन साधुओंके त्यागमय और निस्पृह आचार-विचार तथा उनके बुद्धिगम्य उपदेशोंसे प्रभावित होकर इन दो प्रान्तोंकी अधिकांश जनताने और राजाओंने जैन धर्म अंगीकार कर लिया। अनेक आचार्योंने तो कई राजवंशोंके राज्य स्थापित करनेमें भी सहायता दी और उन राजवंशोंने जैन आचार्योंको अपना गुरु ही नहीं स्वीकारा, उन्हें राजगुरु भी बनाया। इसी प्रकार पश्चिम भारतमें भट्टारकों और श्वेताम्बर आचार्योंने अपनी विद्वत्ता और निमित्त ज्ञान एवं मान्त्रिक बलसे राजा और प्रजा दोनोंको अनेक प्रकारसे अनुगृहीत किया और अपना शिष्य बना लिया। आठ-दस शताब्दी पूर्व तक प्रायः सम्पूर्ण भारतमें यही स्थिति बनी रही।

किन्तु अलग-अलग प्रान्तोंमें अलग-अलग कारणोंसे जैन धर्मका प्रभाव कम होता गया, जैन धर्मानुयायियोंकी संख्या क्षीण होती गयी और कुछ प्रान्तोंमें तो जैन धर्मानुयायी प्रायः नाम-शेष हो गये। इस स्थिति तक पहुँचनेके लिए जैनोंको अनेक अत्याचार सहने पड़े, उन्हें बलात् धर्म-परिवर्तन करनेको बाध्य किया गया, अनेकोंको अपने धर्म-प्रेमका मूल्य प्राण देकर चुकाना पड़ा। बलात्-धर्म-परिवर्तन करनेवाले कुछ जैन हृदयसे तो जैन धर्मको प्रेम करते थे, उसके सिद्धान्तोंको आत्म-कल्याणके लिए आवश्यक समझते थे, किन्तु ऊपरसे उन्हें दूसरे धर्मका पालन करना पड़ता था। हर प्रान्तमें ऐसे छद्म जैनोंका एक बड़ा वर्ग रह गया, जो नामसे तो अपने आपको जैन नहीं कहता था, किन्तु उसके संस्कार जैन धर्मके ही बने रहे। अभी इस प्रकारकी जातियोंकी पूरी तरह खोज नहीं हो पायी है। किन्तु जितना पता चल सका है, उसके अनुसार तमिलनाडके नैनार, उत्तराखण्डके डिमरी, बिहार-बंगाल-उड़ीसाके सराक तथा उड़ीसाके रंगिया और मेदिनीपुर जिलेके सद्गोप ऐसे ही हैं।

तमिलनाडके नैनार अथवा नयनारका अर्थ ही जैन है। इस प्रान्तके जैन लोग प्राचीन कालसे अपने तीर्थंकरों और मुनियोंको नयनार ही कहते आये हैं। तमिल-रचना शिलप्पडिकारम्में इलंगोवडिगलने मदुराईकाण्डम् नामक अध्याय अर्हन्तोंके मंगलाचरणसे प्रारम्भ किया है। मंगलाचरणकी टीकामें अधियरक्कू नल्लार लिखता है कि अर्हन्त मन्दिर नयनार मन्दिर कहा जाता है। कलुगुमलइ और थिरुवडिकाइके शिलालेखोंमें जैन मुनियोंको नयनार और जैन मन्दिर-

को नयनार मन्दिर कहा गया है। तिरुपरित्ति कुनरम् मन्दिरमें जो शिलालेख है, उसमें तीर्थंकरों-को नयनार कहा गया है। कोलियानूर (विल्लुपुरम् जंकशन) के एक जैन मन्दिरपर लेख खुदा हुआ है—स्वस्ति श्री नयनार मन्दिर। दूसरे मन्दिरपर लेख यों अंकित है—कोलियानूर नल्लुर नयनार मन्दिर। किन्तु अब नयनार एक अलग जाति बन गयी है जो जैन धर्मके तो अनुयायी नहीं है, किन्तु उनमें जैन संस्कार हैं और वे जैन विचारधाराको उचित भी मानते हैं।

ऐसी ही एक जाति टिहरी-गढ़वाल (उत्तर प्रदेश) में और उसके आसपास बसती है, जिसका नाम है डिमरी। डिमरी शब्द दिगम्बरीसें बिगड़ते-बिगड़ते बना है। इनके जीवन-मरण आदि जातीय संस्कार यहांके लोगोंसे पृथक् हैं तथा जैनोंसे बहुत मिलते-जुलते हैं। बदरीनाथका मन्दिर प्रारम्भसे डिमरी जातिके अधिकारमें रहा है। यह भी कहा जाता है कि प्राचीन कालमें बदरीनाथ और केदारनाथ धामोंके पुजारी डिमरी ही रहते थे। जबसे आद्य शंकराचार्यने इस मन्दिरपर अधिकार किया, तबसे इतना ही अन्तर पड़ा है कि यहाँ दो पुजारी रहने लगे हैं—एक डिमरो और दूसरा दाक्षिणात्य। शीतकालके प्रारम्भमें बदरीनाथ मन्दिरकी उत्सव मूर्तिको डिमरी जातिका पुजारी ही जोशी मठ ले जाता है। यही पुजारी बदरीनाथकी मूर्तिकी पूजा करता है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि वह रात्रिमें भोजन नहीं करता, दिनमें ही करता है वह भी एक बार। वह आलू आदि कन्द भी नहीं खाता। अन्य डिमरी लोगोंका आचार-व्यवहार देखनेपर उनमें जैनत्वकी छाप दीख पड़ती है।

उड़ीसामें इस प्रकारकी कई जातियाँ हैं जो पहले जैन थीं। यद्यपि अब वे जैन नहीं हैं, किन्तु जैनत्वके संस्कार उनमें अबतक पाये जाते हैं। जैसे अखिनी जुलाहे, रंगणी जुलाहे, सराक, मंजिनाथ, अलेखी आदि जातियाँ और सम्प्रदाय। बिहारमें इस प्रकारकी जातियोंमें जथरिया भूमिहार और सराक हैं तथा बंगालमें सराक जाति है। मेदिनीपुर जिलेमें सद्गोप हैं। इन जातियोंमें अन्य हिन्दुओंकी अपेक्षा एक भेद यह भी है कि इन जातियोंके लोग विवाह और शुद्धि-क्रिया ब्राह्मणों द्वारा नहीं कराते बल्कि उनमें-से कोई शिक्षित वृद्ध यह कार्य करा देता है।

इन जातियोंमें सबसे अधिक जनसंख्या सराक जातिकी है। पहले इन्हें श्रावक कहा जाता था। श्रावक शब्दका अपभ्रंश होते-होते सराक बन गया। सिंहभूमि आदि जिलोंमें आदिवासी उन्हें 'सोराख' कहते हैं। इन सराकोंके रीति-रिवाजोंका अध्ययन करनेपर उनके सम्बन्धमें हम जिस परिणाम पर पहुँचते हैं, वह यह है—ये पक्के शाकाहारी हैं, मांसाहारसे इन्हें घृणा है। हिंसासे परहेज करते हैं। पशु-रक्षा या जीव-रक्षाकी ओर उनका विशेष ध्यान है। वे 'काटना' इस शब्दका व्यवहार नहीं करते। यदि भोजनके समय इस शब्दको सुन भी लें तो वे भोजन छोड़ देते हैं। गूलर आदि पंच उदुम्बर फल नहीं खाते। दिनमें खाना अच्छा समझते हैं। पार्श्वनाथको अपना कुलदेवता मानते हैं। ये प्याज, आलू और गोभी नहीं खाते। पानी प्रायः छानकर पीते हैं। णमोकार मन्त्र अधिकांश सराकोंको स्मरण है।

इन लोगोंके गोत्र आदिदेव, धर्मदेव, शान्तिदेव, ऋषभदेव, शाण्डिल्य, काश्यप, अनन्तदेव, भारद्वाज, क्षेमदेव, कृष्णदेव, गौतम, ब्रह्मपुरी, वत्सराज, पाराशर, गार्गी, जिगनेश आदि हैं। जातीय स्थानकी अपेक्षा इनके चार थोक या पोट हैं—(१) पाँच कोटिया-मानभूमके पाँचेत राज्य-के निवासी। (२) नदीपारिया—वे सराक जो मानभूममें दामोदर नदीके दाहिने तटपर रहते हैं। (३) वीरभूमिया—वीरभूमिके रहनेवाले सराक। (४) तमारिया—जो राँचीके तमार परगनाके निवासी हैं। इनके अतिरिक्त सारकी ताँती या ताँती सराक भी हैं। यह जाति बुननेका काम करती है और जिला बाँकुड़ाके विष्णुपुर भागमें रहती हैं। इनमें भी चार भाग हैं—अश्विनी ताँती,

पात्रा, उत्तरकुली और मन्दरानी। सन्थाल परगनेमें इनको फूलसारकी, सिखरिया, कन्दल और सारकी तांती कहते हैं।

नवाडीह, देवलडीह (सिंहभूम जिला) आदिमें श्रावकोंमें गृहस्थाचार्य भी पाये जाते हैं। ये लोग यज्ञोपवीत धारण करते हैं, पार्श्वनाथ भगवान्‌की प्रतिमा (प्रायः धातुकी) रखते हैं और उसका अभिषेक भी करते हैं। अन्य सराक यज्ञोपवीत धारण नहीं करते। ये माँझी, महापात्र, पात्र, दृत, सान्तरा, वर्धन, महात्र, आर्हवुधि, सामग्री, देवता, प्रमाणिक, आचार्य, वेहेरा, दास, साधुपुष्टि, महात, मोहता, मण्डल, वैशाख, राउत, नायक, निशंक, मौधुरी, मुदी, सेनापति, उच्च, नाहक आदि भिन्न-भिन्न संज्ञाधारी हैं।

सराक लोग बड़े शान्त नागरिक हैं। वे झगड़ा-फसादसे बचते हैं और पड़ोसियोंके साथ प्रेमपूर्वक रहते हैं। इनके वृद्ध लोगोंसे पता चलता है कि मूलतः ये लोग सरयू नदीके तटपर अयोध्या, गाजीपुरके निकटवर्ती प्रदेशके रहनेवाले थे और अग्रवाल थे। इनके १७ गोत्र हैं। इनके पूर्वज व्यापारके निमित इधर आये थे। वामनघाटी ताम्र शासन (बारहवीं शताब्दी) से ज्ञात होता है कि मयूरभंजके भंजवंशीय राजाओंने श्रावकोंको बहुत ग्राम दिये थे। श्रावकोंने जंगलोंमें ताँबेकी खानें ढूंढ़ी और अपनी सारी शक्ति लगाकर इन खानोंका विकास किया। किन्तु विश्वास किया जाता है कि सन् १०२३ ई. में चोल नरेश राजेन्द्रदेवने बंगालके नरेश महीपालपर आक्रमण किया, तब आते-जाते दोनों ही समय चोल सेनाने धर्म-द्वेषवश सरकोंके बनवाये हुए जैनमन्दिरोंका विध्वंस कर दिया। इसके बाद पाण्ड्यनरेशोंने लिंगायत शैव सम्प्रदायके उन्मादमें जैन धर्मायतनोंका विनाश किया और सराकोंको धर्म-परिवर्तन करनेके लिए बाध्य किया। जिन्होंने अपना धर्म छोड़ना स्वीकार नहीं किया, उनपर भारी अत्याचार किये गये। जब दक्षिणकी ओरसे शैव धर्म और आन्ध्र प्रदेशकी ओरसे वैष्णव धर्मका झंझावात प्रबल वेगसे बढ़ता हुआ उड़ीसा, बंगाल और उत्तर बिहारमें आया, उस समय उसके सामने जो झुक गये, वे बच गये; जिन्होंने कुछ साहस बटोरकर उसके सामने खड़े होनेका प्रयत्न किया, वे नष्ट हो गये या मार दिये गये। एक बार तो इन श्रावकोंको अपना स्थान, धन्धा, धर्मालय सब कुछ छोड़कर भागना पड़ा। किन्तु राज्याश्रयमें पला हुआ धार्मिक विप्लव बंगाल, उड़ीसा और उत्तर बिहारमें श्रावकोंका सफाया करके ही माना। ये विस्थापित लोग जहाँ-तहाँ प्रायः गाँवोंमें सुरक्षाकी दृष्टिसे बस गये। व्यापार छोड़कर खेती-बाड़ीका धन्धा करने लगे। धर्म छोड़कर भी संस्कार न छोड़ सके और हिन्दू कहलाकर भी अपने आपको श्रावक अथवा सराक ही कहते रहे। ऐसा करनेमें उनका उद्देश्य सम्भवतः यह रहा हो कि जब साम्प्रदायिकताका यह उन्माद और अत्याचार समाप्त हो जायेंगे और अनुकूल अवसर आयेगा, तब पुनः अपने मूल धर्म—जैन धर्मको ग्रहण कर लेंगे।

किन्तु लगता है, अनुकूल समय नहीं आ पाया और ये लाखों निरीह सराक जैन धर्मकी धारासे पृथक् हो गये। इन लोगोंको हिन्दू-धर्म अपनाना पड़ा। सिर्फ थोड़े-से जैन संस्कारोंकी पूँजी अभी इनके पास बची हुई है, जिसके कारण यह पता चलता है कि मूलतः इनके पूर्वज जैन थे और ये उस प्रदेशसे आये थे जहाँ (अयोध्या, रतनपुरी और श्रावस्ती) सात तीर्थंकर उत्पन्न हुए और जिनके ये वंशज हैं। इनके बीच भगवान् पार्श्वनाथने वर्षों तक विहार और उपदेश किया था। इनके पूर्वज सर्राफा और व्यापारका धन्धा छोड़कर इन प्रान्तोंमें अधिक लाभजनक व्यापारकी तलाशमें कभी आये थे। आकर उन्होंने खूब कमाया, जिसके प्रमाणस्वरूप इन तीन प्रान्तोंमें इधर-उधर बिखरे पड़े बहुमूल्य जैनमन्दिर, कलापूर्ण मूर्तियाँ और अन्य विपुल जैन कीर्तियाँ हैं।

किन्तु यहाँ आकर उन्होंने पाया क्या, खोया ही। धर्म खोया, जन्म-स्थान खोया, धन खोया, अपना व्यवसाय खोया और मिला क्या—खेती-बाड़ीका धन्धा, जुलाहेका धन्धा।

अब समय अनुकूल है। इन्हें इनका विगत गौरव, इनके पूर्वजोंका धर्म और विरासतमें मिले संस्कारोंका स्मरण दिलाया जाये। जैन लोगोंका धर्म—वात्सल्य मिले तो ये पुनः अपने मूल धर्मको स्वीकार कर सकते हैं और इन प्रान्तोंमें बिखरी हुई प्राचीन कला-सामग्रीको उचित एवं व्यवस्थित रूप दे सकते हैं।

उड़ीसामें सराक

इस प्रान्तमें मुख्यतः सराकोंकी दो जातियाँ हैं—एक रंगूनी ताँती, दूसरी सराक ताँती। रंगूनी ताँतीके लोग ब्राह्मणोंके हाथका पानी भी नहीं पीते। शुद्ध शाकाहारी हैं। जल छानकर पीते हैं। प्रत्येक कार्यमें छने हुए जलका ही प्रयोग करते हैं। रात्रि भोजन नहीं करते। कार्तिक वदी १५ को दीपक जलाकर आपसमें लड्डू बाँटते हैं। वर्षमें एक बार खण्डगिरि-उदयगिरिकी यात्राको जाते हैं। ये नग्नगुरुके उपासक हैं जिसे ये लोग 'अलक' कहते हैं। ये साधु केवल कौपीन धारण करते हैं, मोरका पंखा और नारियलका कमण्डलु धारण करते हैं। दिनमें एक बार भोजन करते हैं। रंगूनी ताँतीको रंगिया भी कहा जाता है। दूसरी जाति सराक ताँती है। इनका व्यवसाय कपड़ा बुननेका है। ये लोग पंच उदुम्बर, प्याज, गोभी, आलू आदि नहीं खाते। ये लोग माघ शुक्ला सप्तमीको खण्डगिरिकी यात्राको जाते हैं। इनमें भी दो दल हैं। एक वे जिनके विवाह, शुद्धि संस्कार आदि इनके आचार्य कराते हैं। दूसरे वे जो स्वयं ही सब संस्कार कर लेते हैं। सराक ताँती और रंगूनी ताँती इन दोनोंमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। बरहमपुर, गंजाम, कटक और पुरी जिलोंमें इनका निवास अधिकतर है। इनके गोत्र इस प्रकार हैं—काशीनाग, जिनेश, साहू, दास, सेनापति, श्रीकृष्ण आदि। ये लोग साहू, पुष्टि, राउत, दास, सनावती, वेहरा, साँथरा, नायक, पात्र और महापात्र संज्ञाधारी हैं। ये उड़िया भाषा भाषी हैं।

बंगालमें सराक

इस प्रान्तके मेदिनीपुर, पुरुलिया, मानभूम, सिंहभूम, वीरभूम, वर्धमान आदि कई जिलोंमें सराक लोग निवास करते हैं तथा इनमें प्राचीन जैन मन्दिर, उनके अवशेष और मूर्तियाँ भी मिलती हैं। कुछ स्थानोंपर जैन मूर्तियोंको जैनेतर लोग विभिन्न देवी-देवताओंके कल्पित नामोंसे पूजते हैं। मानभूम जिलेमें सराक लोग बड़ी संख्यामें निवास करते हैं। मि. कूपलैण्डने सन् १९११ में मानभूम गजेटियर प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने सराकोंके बारेमें लिखा है—

"इस जिलेमें एक विशेष जातिके लोग रहते हैं, जिन्हें सराक कहते हैं। इनकी संख्या बहुत है। ये लोग मूलतः जैन हैं। अनुश्रुतियोंके अनुसार ये और भूमिज एक ही जातिकी सन्तान हैं। ये लोग भूमिजोंके साथ बड़े हेल-मेलसे रहते हैं। सराक सदासे शान्तिप्रिय जाति रही है। यह जाति इस जिलेमें ईसासे पाँच-छह शताब्दी पूर्वसे रहती आयी है। पाकवीरमें एक बड़ी मूर्ति भीरमर अथवा चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामीकी है जो इस जातिके लिए आराध्य देव है। प्रो. सर विल्सनने लिखा है कि महावीर स्वामी साधु दशामें वज्रभूमि और शुभ्रभूमिके देशोंमें आये थे, जहाँ भूमिज लोगोंने उन्हें दुर्वचन कहे, मारा भी, उनके ऊपर तीर भी चलाया और उनके ऊपर कुत्ते छोड़े। किन्तु इन उपसर्गोंका उन्होंने कुछ खयाल नहीं किया। कर्नल डैल्टनका विचार है कि महावीर तीर्थंकरके लिए यह कोई कठिन कार्य नहीं था। यह भी असम्भव नहीं

लगता कि जहाँ-जहाँ महावीर गये हों, वहाँ-वहाँ लोगोंने मन्दिर बनवा दिये हों तथा उनका उपदेश सुनकर उनके विरोधी भूमिज उनके अनुयायी हो गये हों। अथवा ऐसा हो कि वे वहाँ गये हों जहाँ जैन पहलेसे ही (शिखरजीके आसपास) बसे हुए थे।''

कर्नल डैल्टनने बंगाल ऐशियाटिक सोसाइटी जर्नल अंक ३५ सन् १८६८ में सराकोंके अहिंसा-प्रेम और उनकी शान्तिप्रियताके सम्बन्धमें एक लेख लिखा था। जिसका आशय इस प्रकार है—

''मानभूममें प्राचीन कलाके अनेक चिह्न प्राप्त होते हैं जो सर्वाधिक प्राचीन हैं और जैसा कि यहाँके लोग कहते हैं, ये वास्तवमें उन लोगोंके हैं, जिस जातिके लोगोंको सिराव, सिराफ या सरावक कहते हैं। जो शायद भारतके इस भागमें सबसे प्राचीन निवासी थे। सिंहभूमके पूर्वीय भागोंमें भी सराकोंकी प्राचीन बस्ती प्रसिद्ध है। ये नदियोंके तटोंपर आकर बसे और हम उनके खण्डित मन्दिर दामोदर, कसाई तथा अन्य नदियोंके तटोंपर पाते हैं। ये लोग जीव-हिंसासे घृणा करते हैं और ये सूर्योदयसे पहले भोजन नहीं करते। ये पार्श्वनाथकी पूजा करते हैं। लेखक झापरामें कुछ गाँववालोंसे मिला था। वे बहुत ही प्रतिष्ठित और बुद्धिमान् पुरुष मालूम होते थे। वे अपने आपको श्रावक कहते थे तथा वे इस बातका अभिमान करते थे कि इस ब्रिटिश राज्यमें उनमें-से किसीको अबतक कोई फौजदारी अपराधका दण्ड नहीं मिला है।''

इधरके सराक यह बात विश्वासके साथ कहते हैं कि वे पहले अग्रवाल थे, पार्श्वनाथकी पूजा करते थे और सरयू नदीके तटवर्ती देशमें रहते थे। सरयू गाजीपुरके पास जहाँ गंगा मिलती है, वहाँ वे व्यापार और सर्राफेका धन्धा करते थे।

विशेष उल्लेखनीय यह है कि इस देशके इस भागके सराकोंकी सेवा ब्राह्मण करते हैं जो कहीं-कहीं पुजारीका काम करनेसे हलके माने जाते हैं।

मानभूम जिलेमें अनेक स्थान ऐसे हैं, जहाँ सराक मिलते हैं। अथवा प्राचीन जैन मन्दिरोंके अवशेष मिलते हैं। बलरामपुरमें बैजनाथके मन्दिर-जैसा एक मन्दिर है। यह पुराने जैन मन्दिर-को तोड़कर बनाया गया है। इसमें अभी तक नग्न मूर्तियाँ अंकित हैं। बोरममें तीन मन्दिर जीर्ण दशामें खड़े हैं। इनमें जो ईंटें प्रयुक्त हुई हैं, वे बारह इंचसे लेकर अठारह इंच तक लम्बी और दो इंच मोटी हैं। इन मन्दिरोंकी सब जैन मूर्तियाँ यहाँसे एक मील दूरपर स्थित एक हिन्दू मन्दिर-में रख दी गयी हैं। पुरुलियासे उत्तर-पूर्वमें चार मील दूर छर्रा गाँव है। यहाँ गाँवमें जैन मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। कुछ मन्दिरोंके अवशेष पड़े हुए हैं। आसपासके सरोवर सराकों द्वारा बनाये हुए हैं। स्वर्णरेखा नदीके किनारे डलमा या दयापुर डलमी नामक नगरमें जैन मन्दिरोंके अवशेष मिलते हैं। डालमीसे १० मील उत्तर-पश्चिममें देवली गाँवमें करण वृक्षके नीचे मन्दिरोंके चिह्न विद्यमान हैं। एक मूर्ति अरहनाथ भगवान्की तीन फुटकी है। सिरके दोनों ओर छह-छह तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। सम्भवतः यहाँ पाँच मन्दिर थे, जिनमें दो अभी मौजूद हैं। ईसागढ़के पास देवलटाँडमें जैन चिह्न मिलते हैं। कतरासगढ़के पास दामोदर नदीके दोनों तटोंपर चेचगाँव-गढ़ और वैलेंजामें प्राचीन भग्न मन्दिर हैं। यहाँ दोनों तटोंपर लगभग बीस भग्न जैन मन्दिर मौजूद हैं। पराभूम परगनेके एक गाँव पवनपुरमें बहुत-से मन्दिरोंके चिह्न मिलते हैं।

पाकबीर

पुरुलियासे ३६ मील तथा बड़ा बाजारके उत्तर-पूर्वमें बीस मील और पोंचाके पूर्वमें एक मीलपर एक छोटा-सा गाँव है, जिसे पाकबीर कहते हैं। यहाँ बहुत-से प्राचीन मन्दिर और कला-

सामग्री चारों ओर बिखरी पड़ी हैं, मुख्यतः यह जैनोंसे सम्बन्धित है। यहाँकी कुछ प्रमुख कला-सामग्री एकत्रित करके एक छप्पर के नीचे जमाकर दी गयी है। यह छप्पर किसी प्राचीन मन्दिरके अवशेषोंके ऊपर बना हुआ है। उस मन्दिरकी नींव वहाँ अबतक मौजूद है। यहाँ सबका ध्यान आकृष्ट करनेवाली एक विशाल मूर्ति है। यह मूर्ति ऋषभदेव तीर्थंकरकी है। यह नौ फुट ऊँची है और श्यामवर्णकी है। अजैन जनता इसे 'भैरव देव' मानकर पूजती है। और भी कई मूर्तियाँ हैं, जिनपर तीर्थंकरोंके चिह्न बने हुए हैं। दो छोटी मूर्तियोंपर बैलके चिह्न अंकित हैं। एक छोटी मूर्तिपर कमलका चिह्न बना है। एक चैत्य है, जिसके चारों ओर क्रमशः महावीर, शान्तिनाथ, ऋषभदेव और कुन्थुनाथ तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ हैं। इन चारों मूर्तियोंके ऊपर दोनों ओर उड़ते हुए हंस चोंचमें पुष्पमालाएँ लिये हुए दिखलाई पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त एक और चैत्य है। बड़ी मूर्ति जिस मन्दिरकी थी, वह मन्दिर बड़ा विशाल रहा होगा, और लगता है, उसका मुख पश्चिमकी ओर होगा।

बड़ी मूर्ति पैरों और जाँघोंपर खण्डित है। कहा जाता है कि जब मुसलमानोंने इस देशको जीता था तो उन्होंने तलवारोंसे इस मूर्तिको तोड़ा था। ये निशान उसीके हैं।

इसके पास ही सन् १८७१-७२ में एक टीलेकी खुदाई करायी गयी थी। उसमें पाँच जैन कला-वस्तु निकलीं। ईंटोंका एक पूर्वाभिमुख मन्दिर अब भी भग्न दशामें खड़ा हुआ है। इसके उत्तरमें चार पाषाण मन्दिर एक पंक्तिमें हैं। जब ये बने थे, तब इनमें केवल गर्भ-गृह ही था, किन्तु बादमें मण्डप बना दिये गये, जो बादमें टूट गये। ये सब उत्तराभिमुखी हैं।

इनके उत्तरमें पाँच मन्दिर हैं। ये पंक्तिबद्ध न होकर अक्रम से हैं। इनमें दो मन्दिर पत्थरोंके हैं और तीन मन्दिर ईंटोंके हैं। ईंटोंके मन्दिर टूटे पड़े हैं। पत्थरोंके मन्दिरोंमें एक साबुत है, दूसरा भग्न हो चुका है।

इनके उत्तरमें चार मन्दिरोंकी एक पंक्ति है। इनमें तीन पाषाणके हैं और एक ईंटोंका है। सभी भग्न हैं। ईंटोंके मन्दिरके पूर्वमें दो टीले हैं जो ईंटोंके दो मन्दिरोंके अवशेषोंसे बन गये हैं। मन्दिरोंकी इस पंक्तिके दक्षिणमें तीन पाषाण मन्दिरोंकी पंक्ति है, किन्तु वे सब भग्न हैं।

ये सब लगभग तीन-साढ़े तीन सौ वर्गफुटमें फैले हुए हैं।

मन्दिरोंके निकट कई तालाब हैं। एकमें पत्थरके घाट बने हुए हैं। लेकिन ये घाट टूट-फूट चुके हैं। मन्दिरोंमें जो पत्थर लगाये गये हैं, वे बलुए पाषाण हैं। वे बिना चूनेके जोड़े गये हैं। कारीगरी सादा, किन्तु सुन्दर है। मण्डप या महामण्डपमें जो स्तम्भ काममें लाये गये हैं; वे बिलकुल सादा हैं।

इस प्रकार लगता है, यहाँ पन्द्रह-सोलह या इससे भी अधिक मन्दिर थे। इससे सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कभी यह स्थान उन जैनोंका, जिन्हें आज सराक कहा जाता है, बहुत बड़ा केन्द्र रहा होगा और यहाँ उस समय जैनोंकी संख्या बहुत रही होगी। यहाँ जो सामग्री उपलब्ध हुई है, वह ईसा पूर्वसे लेकर गुप्त काल तककी है। इस सम्भावनासे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इतनी बड़ी संख्यामें यहाँ मन्दिरोंका निर्माण इसलिए किया गया क्योंकि यह एक तीर्थक्षेत्र था। सम्भवतः भगवान् महावीर विहार करते हुए यहाँ पधारे थे और उनके उपदेशसे प्रभावित होकर अनेक व्यक्तियोंने जैनधर्मको अंगीकार किया था। भगवान् महावीरसे पहले भगवान् पार्श्वनाथ भी यहाँ पधारे थे। इन तीर्थंकरोंकी किसी विशेष घटनाकी स्मृति स्वरूप इन मन्दिरोंका निर्माण किया गया।

वर्तमानमें यहाँ एक भी अखण्डित मन्दिर नहीं है। आमने-सामने दो भग्न मन्दिर खड़े हैं, जिनमें-से एकमें ऋषभदेव भगवान्‌की विशाल मूर्ति विराजमान है। इस मूर्तिके इधर-उधर कई चौबीसी मूर्तियाँ, ऋषभदेव प्रतिमाएँ और यक्ष-यक्षिणीकी मूर्तियाँ रखी हुई हैं। इस मन्दिरके सामने एक भग्न मन्दिर है जिसमें ऋषभदेवकी दो मूर्तियाँ अत्यन्त कलापूर्ण प्रतीत होती हैं। ये शिलाफलकपर उत्कीर्ण हैं। इनके चारों ओर २३ तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पार्श्वनाथ स्वामीकी एक खण्डित मूर्ति है। इसमें भगवान्‌के सेवक धरणेन्द्र यक्ष और पद्मावती यक्षिणी भी उत्कीर्ण हैं। इस मन्दिरके बगलमें चार गुफाएँ हैं, फिर तालाब है।

यहाँसे एक मील दूर पंखा ग्राममें अम्बिका देवी की प्रतिमा बहुत मनोज्ञ है। दूसरी एक मूर्ति ऋषभदेव भगवान्‌की है। अवगाहना साढ़े तीन हाथसे अधिक है। इसमें चौबीसी बनी हुई है। इसका सिर काट लिया गया है। इसके अतिरिक्त चार प्रतिमाएँ यहाँ रखी हुई हैं, जिनको खण्डित किया गया है। इन दोनों प्रतिमाओंकी गाँववाले वर्षमें एक बार पूजा करते हैं। इसके निकट बुधपुरमें बहुत जैन प्रतिमाएँ पड़ी हुई हैं। गाँववाले विभिन्न देवी-देवताओंके नामसे इनकी पूजा करते हैं।

इसी प्रकार बड़ा बाजार, नीमड़ी स्टेशन, कतरासगढ़, चैचो, बाटबिनूर आदि ग्रामोंमें जैन मन्दिरोंके खण्डहर अथवा मूर्तियाँ मिलती हैं।

सिंहभूमके सम्बन्धमें मेजर टिकलने जर्नल एशियाटिक सोसाइटी १८४० पृ. ६९६ में लिखा था कि सिंहभूम सराकोंके हाथमें था जो अब करीब-करीब नहीं रहे। परन्तु तब वे बहुत थे। उनका असली देश शिखरभूमि और पांचेत कहा जाता है। सराकोंको सताकर कोलेहानसे निकाला गया।

कोलेहानमें बहुत-से प्राचीन सरोवर हैं, जिन्हें हो जातिके लोग सरावक सरोवर कहते हैं। इन्हीं सराकोंने सिंहभूम जिलेमें ताँबेकी खानोंका पता लगाया था और उनका विकास किया था।

प्राचीन कालमें वर्धमान तथा उसके आस-पासके जिलेको राढ़भूमि कहते थे। श्वेताम्बर साहित्यमें भगवान् महावीरके छद्मस्थकालके विहारका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। भगवान्‌ने लाढ़ (राढ़) देशके वज्रभूमि और शुभ्रभूमि प्रदेशमें अपनी छद्मस्थ अवस्थामें विहार किया। उस समय वहाँके निवासियोंने भगवान्‌के ऊपर घोर उपसर्ग किये। किन्तु भगवान्‌के व्यक्तित्वका यह चमत्कार ही कहना होगा कि वे ही लोग भगवान्‌के अनुयायी बन गये और देशका नाम ही भगवान्‌के नामपर वर्धमान रख दिया। तबसे राढ़के स्थानपर वर्धमान नाम ही चला आ रहा है।

वीरभूम जिला भी पहले राढ़ देशका एक भाग था। इसीके एक भागको वज्रभूमि कहा जाता था। इस स्थानका नाम भी वीर भगवान्‌के नामपर उनके विहार क्षेत्रका नाम वीरभूम पड़ गया। इस जिलेके सराकोंके नामोंके अन्तमें हृद्, रक्षित, दत्त, प्रामाणिक, सिंह, दास आदि उपाधियाँ लगती हैं तथा इनके गोत्र गौतम ऋषि, अन्ध्र ऋषि, अनन्त ऋषि, काश्यप और आदिदेव हैं।

पुरुलिया जिलेमें ही अनाई महादेव बेड़ा या अनाई जामावाद स्थान है। यह स्थान पुरुलियासे ८ मील दूर है। यह कंसा नदीके किनारेपर वृक्षों और लताओंसे सुशोभित रमणीय स्थान है। यहाँ खुदाईमें ११ जैन मन्दिर और अनेक जैन मूर्तियाँ निकली थीं, किन्तु सभी भग्न दशामें। किन्तु अभी कुछ वर्ष पूर्व वहाँके महन्त शिवानन्दजीको भूगर्भमें स्थित जैन मूर्तियोंके सम्बन्धमें स्वप्न हुआ। तदनुसार जमीन खोदी गयी। फलतः भगवान् पार्श्वनाथकी पाँच फुट ऊँची

नील वर्ण पाषाणकी खड्गासन प्रतिमा उपलब्ध हुई। यह प्रतिमा एक शिलाफलकमें उत्कीर्ण है। इसके दोनों ओर छह-छह कोष्ठकोंमें चौबीस तीर्थंकरोंकी खड्गासन प्रतिमाएँ अंकित हैं। भगवान्‌के शीर्षपर सप्तफणावली मण्डप है। भगवान्‌के पृष्ठ भागमें सर्पकुण्डली अत्यन्त कलापूर्ण प्रतीत होती है। अधोभागमें दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हुए हैं। चमर कन्धे पर रखा हुआ है। दोनों चमरवाहकोंका एक चरण नृत्य मुद्रामें उठा हुआ है। चरणोंके दोनों ओर हाथ जोड़े हुए धरणेन्द्र और पद्मावती खड़े हुए हैं। पार्श्वनाथकी यह मूर्ति अति भव्य और अतिशय सम्पन्न है। इसके अतिरिक्त और भी कई मूर्तियाँ निकली थीं। वे सब वहीं विराजान हैं।

वर्धमान जिलेमें आसनसोलके निकट पूचड़ा गाँव है। इस गाँवके बाहर एक टीला है जिसे देवलगढ़ (राजपाड़ा) कहते हैं। इस टीलेके ऊपर भगवान् ऋषभदेवकी दो फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा विद्यमान है। इसके अतिरिक्त पंचबालयतिकी प्रतिमा भी रखी हुई है। चारों ओर प्राचीन ईंटें बिखरी हुई हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह टीला किसी प्राचीन जैन मन्दिरका अवशेष है।

खड़गपुरसे ४४ मील दूर रूपनारायण नदी तटपर कोयल घाट नामक स्थान है। इस नदीका पुल बनाते समय एक खम्भेकी खुदाईमें भगवान् चन्द्रप्रभकी एक प्रतिमा निकली थी जो यहाँके पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिरमें विराजमान कर दी गयी। यह मूर्ति हलके पीले और काले रंगकी है। इस मूर्तिके सम्बन्धमें दो बातें बहु प्रचलित हो गयी हैं। एक तो यह कि यह मूर्ति समय-समय पर रंग बदलती है। दूसरे इसके समक्ष जो भी मनोकामना की जायेगी, वह अवश्य पूर्ण होगी। इन किंवदन्तियोंके कारण अनेक जैन और जैनेतर नर-नारी यहाँ मनौती मनाने आते रहते हैं। इस प्रकार यह मन्दिर धीरे-धीरे एक अतिशय क्षेत्र बनता जा रहा है।

बिहारमें सराक

बिहार प्रदेश प्राचीन कालमें मगध, अंग, वैशाली संघ आदिमें बँटा हुआ था। तीनों ही राज्य प्रबल थे। महावीरके उत्तर कालमें मगध राज्य अन्य राज्योंकी अपेक्षा अधिक प्रबल हो गया। वैशाली और अंगके राज्योंपर मगधका आधिपत्य हो गया। तब यह प्रदेश मगध कहा जाने लगा। मनुस्मृति, महाभारत आदि हिन्दू ग्रन्थोंमें महावीरसे पूर्वकालीन इस प्रदेशका कोई एक नाम नहीं उपलब्ध होता, बल्कि अंग और मगध ये दो नाम मिलते हैं। किन्तु शिशुनागवंशी अजातशत्रुने अंग, वैशाली आदि राज्योंको सदाके लिए समाप्त कर दिया। तब राज्य-शक्तिकी अपेक्षा इस प्रदेशको मगध कहने लगे। किन्तु यह नाम अधिक समय तक नहीं चल पाया। अजातशत्रुके उत्तराधिकारी इस राज्यको छिन्न-भिन्न होनेसे नहीं बचा पाये। तब फिर मगध नाम छोड़ देना पड़ा। वस्तुतः प्रदेशका नाम मगध कभी नहीं रहा। मगधमें तो केवल वर्तमान पटना और गया जिले सम्मिलित रहे हैं। उसकी राजधानी पहले राजगृह और बादमें पाटलिपुत्र रही है। इसलिए इस प्रदेशपर जब मगधका राज्य हो गया तो इसे मगध कहा जाने लगा। किन्तु वह प्रदेशका नाम न होकर राज्यका नाम रहा है। तब प्रदेशका नाम क्या था? प्रदेशको एक नाम कब मिला और क्यों मिला? ये कुछ प्रश्न हैं, जिनका समाधान इतिहास चाहता है।

इतिहासके इस तथ्यसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि जिसे आजकल बिहार प्रदेश कहा जाता है, उस समूचे प्रदेशका कोई एक नाम भगवान् महावीरसे पहले कभी नहीं रहा। वैदिक, जैन और बौद्ध इन तीनोंमें-से किसीके साहित्यमें इस प्रदेशकी कोई एक संज्ञा या नाम नहीं मिलता। भगवान् महावीर अपने कालमें सर्वाधिक प्रभावशाली महापुरुष थे। उन्होंने इस प्रदेशमें विहार करके धर्मकी ज्योतिको जन-जनके मानसमें प्रज्वलित कर दिया। तब यहाँकी जनताने

उनके नामपर वर्धमान, वीरभूमि, मानभूमि आदि कई नगरोंके नाम रख दिये तथा इस प्रदेशमें भगवान्‌का निरन्तर विहार हुआ था, अतः इस प्रदेशका नाम ही बिहार रख दिया।

महावीरसे ढाई सौ वर्ष पहले पार्श्वनाथने भी इस समूचे प्रदेशमें विहार किया था। उनके आकर्षक व्यक्तित्वसे लाखों लोग उनके धर्मकी ओर आकृष्ट हुए थे और वे अनुयायी उनके इतने कट्टर श्रद्धालु बन गये, जिसका कुछ आभास वर्तमानमें सराक जातिके विश्वासोंसे मिलता है। यद्यपि वे लोग आज जैन नहीं हैं, किन्तु वे अबतक भी पार्श्वनाथको अपना कुल देवता मानते हैं। पार्श्वनाथके प्रति उनके विश्वासकी जड़ें कितनी गहरी थीं, इसका एक और भी उदाहरण दिया जा सकता है। पार्श्वनाथका निर्वाण सम्मेदशिखर पर हुआ था। जनताने उनकी भक्तिसे प्रेरित होकर उस पर्वतका नाम ही पारसनाथ पहाड़ रख दिया।

यहाँ दो तीर्थंकरोंके व्यक्तित्व और प्रभावकी तुलना नहीं की जा रही। दो तीर्थंकरोंकी किसी भी बातमें तुलना नहीं की जा सकती। तीर्थंकर अनुपम और असाधारण होते हैं। यहाँ तो केवल यह दिखाना है कि दोनों तीर्थंकरोंका अपने-अपने कालमें जनतापर कितना प्रभाव रहा है। एक तीर्थंकरको उसके अनुयायी अबतक अपना कुल देवता मानते हैं और दूसरे तीर्थंकरके बिहार-की स्मृति सुरक्षित रखनेके लिए जनताने उस प्रदेशका नाम ही बिहार प्रदेश रख दिया।

बिहार प्रदेशमें पार्श्वनाथके अनुयायी सराक लोगोंकी संख्या बहुत अधिक नहीं है। अधिकांशतः, ये लोग सिंहभूमि, धनबाद और राँची जिलोंमें हैं।

गोत्र—इस प्रान्तके सराकोंके गोत्र इस प्रकार हैं—आदिदेव, धर्मदेव, गौतम, शाण्डिल्य, वत्सराज, आचार्य, पाराशर।

सराक जातिमें जैन धर्म प्रचारका प्रारम्भ सिंहभूमि, धनबाद और राँची जिलोंसे हुआ था। इस क्षेत्रमें सराकोंके साथ जैनोंका सम्पर्क भी अविच्छिन्न रूपसे चल रहा है। इसलिए इस क्षेत्रके सराक बन्धुओंमें जैन धर्मके प्रति रुचि बढ़ती जा रही है। सराक बन्धुओंके कई ग्रामोंमें दिगम्बर जैन मन्दिरोंका भी निर्माण हो चुका है। इसलिए दिगम्बर आम्नायके अनुसार पूजन, णमोकार मन्त्रका जाप्य, रथयात्रा आदि करते हैं। ये सराक बन्धु अपने नामके अन्तमें जैन, श्रावक भी लगाते हैं।



परिशिष्ट–३

बिहार-बंगाल-उड़ीसाके जैन तीर्थ
संक्षिप्त परिचय और यात्रा-मार्ग

बिहार-बंगाल-उड़ीसाके जैन तीर्थ
संक्षिप्त परिचय और यात्रा-मार्ग

भद्रिकापुरी और कुलुहापहाड़—दिल्ली जंकशनसे ट्रेन द्वारा गया जाना चाहिए। गया दिल्ली-हवड़ा मेन लाइनपर दिल्लीसे नौ सौ चौरासी कि. मी. दूर प्रसिद्ध जंकशन है। गयामें ठहरनेके लिए सुविधापूर्ण स्थान जैन भवन है जो स्टेशनसे लगभग तीन कि. मी. है और जैन मन्दिरके निकट अवस्थित है। वहाँसे बस द्वारा डोभी बत्तीस कि. मी., डोभीसे हण्टरगंज पन्द्रह कि. मी., हण्टरगंजसे चंपरी आठ कि. मी. है। यहाँ तक सड़क पक्की है। चंपरीसे दन्तारगाँव कच्ची सड़कपर आठ कि मी. पड़ता है। दन्तारगाँवके लिए चंपरीसे रिक्शे मिलते हैं। दन्तारगाँवमें जैन धर्मशाला और चैत्यालय बना हुआ है।

भद्रिकापुरी आजकल भोंदलगाँव कहलाता है। यहाँके लिए पक्की सड़कसे कच्चा मार्ग जाता है। यह भगवान् शीतलनाथका गर्भ और जन्म-कल्याणक स्थान माना जाता है। किन्तु आजकल यहाँ प्राचीन जैन मन्दिर और जैन धर्मशालाके चिह्नों और अवशेषोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कुलुहापहाड़पर भगवान् शीतलनाथके दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक मनाये गये थे। कुलुहापहाड़के लिए चंपरी होते हुए दन्तारगाँव जाना सुविधाजनक है।

दन्तारगाँवकी जैन धर्मशालाके कर्मचारीको लेकर पहाड़पर जाना चाहिए। दन्तारगाँवसे यह पहाड़ एक मील दूर है। फिर लगभग दो मीलकी चढ़ाई है। दो मील चढ़नेपर ईंटोंका ध्वस्त प्राकार मिलता है। यह तिरपन एकड़में फैला हुआ है। इससे आगे बढ़नेपर एक विशाल सरोवर मिलता है। दायीं ओरको ऊपर चढ़नेपर पार्श्वनाथ जैन मन्दिरके दर्शन होते हैं। इसमें पार्श्वनाथकी एक प्राचीन मूर्ति है जो सुरक्षाकी दृष्टिसे सीमेण्टसे दीवालमें जड़ दी गयी है। यह श्याम वर्ण, पद्मासन और २२ इंच ऊँची है। यह काफी घिस चुकी है। इससे आगे पगडण्डी द्वारा जानेपर पहाड़की खड़ी दीवालमें दस तीर्थंकर मूर्तियोंके दर्शन होते हैं। ये सभी पद्मासन हैं और इनकी अवगाहना दस इंच है। मूर्तियोंके नीचे उनके लांछन (चिह्न) बने हुए हैं। इससे थोड़ा और आगे जानेपर दूसरी पहाड़ी दीवालमें पाँच पद्मासन और पाँच खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पद्मासन मूर्तियाँ एक फुट और खड्गासन मूर्तियाँ सवा दो फुट ऊँची हैं। सबके नीचे उनके चिह्न अंकित हैं।

यहाँसे आगे जानेपर एक ऊँची चट्टानपर प्राचीन चरण-चिह्न बने हुए हैं। शिला एकदम सपाट और चिकनी है। इसके ऊपर चढ़नेमें काफी कठिनाई होती है। इन चरणोंके कारण ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें यहाँसे कोई मुनि मुक्त हुए होंगे।

इस शिलासे आगे चलनेपर ढलावपर पाण्डुक शिला बनी हुई है। फिर कौलेश्वरी देवीका छोटा-सा मन्दिर मिलता है। इसमें महिषके ऊपर खड़ी हुई चतुर्भुजी कौलेश्वरी देवीकी मूर्ति विराजमान है। इस मन्दिरसे आगे जानेपर एक गुफामें भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति रखी हुई है। इसकी अवगाहना दो फुट है। सिरपर नौ फण हैं।

इस प्रकार सरोवरकी परिक्रमा देते हुए जिस मार्गसे आये थे, उसीसे वापस लौटते हैं। यहाँसे गया लौटना चाहिए।

सम्मेदशिखर—गया जंकशनसे ट्रेन द्वारा चलकर पारसनाथ स्टेशन उतरना चाहिए। पारसनाथ स्टेशन दिल्ली-हबड़ा मेन रेलमार्गपर गया-हजारीबाग और गोमोके बीच अवस्थित है। यहाँ कुछ गाड़ियोंको छोड़कर प्रायः सभी गाड़ियाँ रुकती हैं। दिल्लीसे पारसनाथ स्टेशन ११३५ कि. मी. है और गया से १५२ कि. मी. है। पारसनाथ स्टेशनसे ईसरीकी दिगम्बर जैन तेरहपन्थी तथा बीसपन्थी धर्मशालाएँ केवल दो फर्लांग दूर हैं। पहले तेरहपन्थी दिगम्बर जैन धर्मशाला मिलती है। इसका प्रवेशद्वार सड़कके किनारेपर ही है। बीसपन्थी धर्मशालाका प्रवेशद्वार तेरहपन्थी धर्मशालाके बराबरवाली गलीमें है। स्टेशनसे कुली आदिका रेट निश्चित है। धर्मशालाके मैनेजरसे पूछ लेना चाहिए। ईसरीमें चार जैन मन्दिर हैं—(१) तेरहपन्थी दिगम्बर जैन मन्दिर, (२) बीसपन्थी दिगम्बर जैन मन्दिर, (३) दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मन्दिर उदासीनाश्रम, (यहाँ पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णीकी समाधि भी बनी हुई है) (४) महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर मुमुक्षु महिलाश्रम।

ईसरीसे मधुवन २२ कि. मी. है। ईसरीसे तेरहपन्थी कोठीकी बस मधुवनके लिए जाती है। टैक्सियाँ भी मिलती हैं। मधुवन सम्मेदशिखरकी तलहटीमें स्थित है। यहाँ दिगम्बर जैन समाजकी दो कोठियाँ बनी हुई हैं—दिगम्बर जैन तेरहपन्थी कोठी और दिगम्बर जैन बीसपन्थी कोठी। यहाँ और ईसरीकी तेरहपन्थी कोठीकी व्यवस्था बंगाल-बिहार-उड़ीसा दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, २ वैशाख लेन, कलकत्ता-७, करती है। ईसरी और यहाँकी बीसपन्थी कोठियोंकी व्यवस्था भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, हीराबाग, बम्बईके अन्तर्गत है। तेरहपन्थी कोठीमें ५ धर्मशालाएँ, उनमें २०५ कमरे, ३ मन्दिर, उनमें कुल १२ वेदियाँ बनी हुई हैं। इसका नन्दीश्वर मन्दिर विशेषतः दर्शनीय है। बीसपन्थी कोठीमें ३ धर्मशालाएँ, उनमें कुल १६६ कमरे, दो मन्दिर, उनमें कुल चौदह वेदियाँ बनी हुई हैं। इस कोठीके सामने बाहुबली मन्दिर बना हुआ है, जिसमें चौबीस तीर्थंकरोंकी चौबीस देवकुलिकाएँ अथवा मन्दरियाँ बनी हुई हैं। इस मन्दिरके बराबरमें अत्यन्त भव्य समवसरण मन्दिर बन रहा है।

यहाँकी धर्मशालाओंमें नल, कुआँ, बिजली, गर्म जल आदिकी सुन्दर व्यवस्था है। पहाड़पर जानेके लिए प्रातः तीन बजे शौच, स्नान आदिसे निवृत्त हो लेना चाहिए। साथमें लाठी और लालटेन ले लेनी चाहिए। आवश्यकता हो तो भील और डोली ले लेनी चाहिए। दोनों कोठियोंमें इस सबकी व्यवस्था है। वस्त्र हलके और कम धारण करने चाहिये। धूप निकलनेपर वस्त्र असह्य लगने लगते हैं।

कोठियोंसे चलकर सवा दो मीलपर गन्धर्व नाला मिलता है। वहीं श्वेताम्बर और दिगम्बर कोठियाँ बनी हुई हैं। यहाँ यात्रासे लौटनेपर नाश्ता मिलता है। अगर मूत्रादिकी बाधा हो तो यहाँ निवृत्त हो लेना चाहिए। इससे आगे मल-मूत्रादि नहीं करते। यहाँसे पौने दो मील आगे जानेपर सीता नाला मिलता है। यहाँ अपनी सामग्री धो लेनी चाहिए। यहाँसे दो मीलकी कठिन चढ़ाई पड़ती है।

सबसे प्रथम गौतम स्वामीकी टोंक मिलती है। यहाँ विश्रामके लिए एक कमरा बना हुआ है। टोंकसे बायें हाथकी ओर मुड़कर पूर्व दिशाकी पन्द्रह टोंकोंकी वन्दना करनी चाहिये। इन टोंकों (कूटों) के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) भ. कुन्थुनाथकी ज्ञानधर कूट, (२) भ. नमिनाथकी मित्रधर कूट, (३) भ. अरहनाथकी नाटक कूट, (४) भ. मल्लिनाथकी सम्बल कूट, (५) भ. श्रेयान्सनाथकी संकुल कूट, (६) भ. पुष्पदन्तकी सुप्रभ कूट, (७) भ. पद्मप्रभकी मोहनकूट, (८) भ. मुनिसुव्रतनाथकी निर्जरकूट (९) भ. चन्द्रप्रभकी ललित कूट, (१०) भ. आदिनाथकी टोंक, (११) भ. शीतलनाथकी विद्युत्कूट, (१२) भ. अनन्तनाथकी स्वयम्भू कूट, (१३) भ. सम्भवनाथकी धवलदत्त कूट, (१४) भ. वासुपूज्यकी टोंक, (१५) भ. अभिनन्दननाथका आनन्द कूट।

सभी टोंकोंके लिए मार्ग बने हुए हैं। इन टोंकोंमें भ. चन्द्रप्रभकी टोंक सबसे ऊँची है। इन टोंकोंमें तीर्थंकर भगवान्‌के चरण-चिह्न बने हुए हैं। भ. अभिनन्दननाथकी टोंकसे उतरकर जल मन्दिरमें जाते हैं। यहाँसे पुनः गौतमस्वामीकी टोंकपर पहुँचते हैं, जहाँसे यात्रा प्रारम्भ की थी। यहाँसे पश्चिम दिशाकी ओर जाकर नौ टोंकोंकी वन्दना करनी चाहिए। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) भ. धर्मनाथकी सुदत्तवर कूट, (२) भ. सुमतिनाथकी अविचल कूट, (३) भ. शान्तिनाथकी शान्तिप्रभ कूट, (४) भ. महावीरकी टोंक, (५) भ. सुपार्श्वनाथकी प्रभास कूट, (६) विमलनाथकी सुवीर कूट, (७) भ. अजितनाथकी सिद्धवर कूट, (८) भ. नमिनाथकी मित्रधरकूट (९) भ. पार्श्वनाथकी सुवर्णभद्र कूट।

पार्श्वनाथकी टोंक अन्तिम और प्रमुख टोंक है। यहाँ पूजन करना चाहिए। यहाँपर यह यात्रा समाप्त हो जाती है और यहाँसे वापस लौटते हैं। कुल यात्रा १८ मीलकी पड़ती है, जिसमें ६ मील चढ़ाई, ६ मीलकी वन्दना और ६ मीलकी उतराई पड़ती है।

सम्मेदशिखर तीर्थराज कहलाता है। यहाँसे बीस तीर्थंकर और असंख्यात मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ है। इसलिए यहाँका कण-कण वन्दनीय है। यहाँकी महिमा अचिन्त्य है। यहाँके माहात्म्यके बारेमें ठीक ही कहा है—"एक बार बन्दै जो कोई। ताहि नरक पशु गति नहिं होई॥" वस्तुतः यह तीर्थ अनादिनिधन है। अनादिनिधन तीर्थ दो ही बताये गये हैं—अयोध्या और सम्मेदशिखर। अयोध्यामें सभी तीर्थंकरोंका जन्म होता है और सम्मेद शिखरमें सबका निर्वाण होता है। किन्तु इस हुण्डावसर्पिणी कालके प्रभावसे इस नियममें व्यतिक्रम हो गया। फलतः अयोध्यामें केवल ५ तीर्थंकरोंका जन्म हुआ और सम्मेदशिखरसे २० तीर्थंकर मुक्त हुए। ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ और महावीर—इनका निर्वाण क्रमशः कैलाश, चम्पापुर, गिरनार और पावापुरसे हुआ। शेष २० तीर्थंकरोंका निर्वाण सम्मेदशिखरसे हुआ।

डाकका पता—

मैनेजर, दिगम्बर जैन तेरहपन्थी अथवा बीसपन्थी कोठी, मु. सम्मेदशिखर,
पो. मधुवन (जिला–हजारीबाग) बिहार।

कलकत्ता—मधुवनसे ईसरी लौटकर पारसनाथ स्टेशनसे हवड़ा या स्यालदाको जाना चाहिए। स्टेशनपर रिक्शा, टैक्सी मिलते हैं। मछुआ बाजारके दिगम्बर जैन भवनमें ठहरना सुविधाजनक रहता है। कलकत्ता भारतका सबसे बड़ा शहर है। यहाँ चार दिगम्बर जैन मन्दिर हैं—(१) दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर चावल पट्टी, (२) दिगम्बर जैन नया मन्दिर लोअर चितपुर रुपर, (३) दिगम्बर जैन मन्दिर पुरानी बाड़ी, (४) पारसनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, बेलगछिया।

इन मन्दिरोंके अतिरिक्त पाँच चैत्यालय हैं।

यहाँके दर्शनीय स्थानोंमें से कुछ ये हैं—महाजाति सदन (नेताजी सुभाषचन्द्र बोसका स्मारक), मल्लिक कोठी (दुर्लभ मूर्तियों आदिका संग्रह), रवीन्द्र भारती (रवीन्द्रनाथ ठाकुरका स्मारक), बेलगछियाका पारसनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, बद्रीदास मुकीमका श्वेताम्बर जैन-मन्दिर, राजभवन, राज्य विधान सभा, शहीद मीनार, इण्डियन नेशनल म्यूजियम, चिड़ियाघर, नेशनल लाइब्रेरी, वेलूरमठ आदि।

यहाँ लोकल ट्रेन, बस, ट्राम, रिक्शा, टैक्सी आदि वाहनोंकी पर्याप्त सुविधा है। ट्राम और बसें सर्वत्र जाती हैं और सस्ती भी हैं।

कटक—कटक उत्कल या उड़ीसा प्रदेशकी प्राचीन राजधानी है। यह हवड़ा जंकशनसे पुरीको जानेवाली रेलवे लाइनपर ४०९ कि. मी. दूर है। स्टेशनसे लगभग ५ कि. मी. दूर चौधरी बाजारमें जैन भवन है। यहाँ ठहरनेकी सुन्दर व्यवस्था है। इसीके पृष्ठ भागमें प्राचीन चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैनमन्दिर है। इसी बाजारमें मन्दिरसे थोड़ी-सी दूरपर दिगम्बर जैन चैत्यालय है। मन्दिरका शिखर बहुत सुन्दर बना हुआ है। इस मन्दिरमें कुछ मूर्तियाँ बहुत प्राचीन हैं। अनुमान किया जाता है कि ये १०वीं शताब्दीकी हैं। अधिकांश प्राचीन मूर्तियाँ खण्डगिरिसे लायी गयी हैं।

भुवनेश्वर—यह उत्कल प्रदेशकी राजधानी है। यह कटकसे २८ कि. मी. है। यह हिन्दुओं-का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। कहते हैं, भारतमें सबसे अधिक मन्दिर इसी नगरमें पाये जाते हैं। इनमें लिंगराज मन्दिर सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसके शिखर द्रविड़ कलाके अन्यतम उदाहरण कहे जाते हैं। इसका शिखर ४४ मीटर ऊँचा है। यहाँके राजकीय संग्रहालयमें पाषाण और धातुकी कुछ जैन मूर्तियाँ ८-१० वीं शताब्दी की हैं।

खण्डगिरि-उदयगिरि—इस नगरसे छह किलो मीटर दूर खण्डगिरि-उदयगिरिकी गुफाएँ हैं। इन गुफाओंकी प्रसिद्धि हाथी गुम्फाके शिलालेखके कारण अत्यधिक हुई है। इसके अतिरिक्त इनका अपना ऐतिहासिक और धार्मिक महत्त्व भी है। इनमें-से कुछ गुफाएँ भगवान् महावीरके कालमें थीं। कुछ गुफाओंका निर्माण कलिंग सम्राट् खारबेल और उसके परिवारके सदस्योंने कराया था। खारबेलका काल ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीका उत्तरार्ध माना जाता है। इस प्रकार इनमें-से कई गुफाओंको बने हुए २००० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इन गुफाओंके अतिरिक्त शेष गुफाएँ १०वीं शताब्दी तक निर्मित होती रहीं। ये गुफाएँ प्रायः जैन मुनियोंके ध्यानादिके निमित्त बनायी गयी थीं। खण्डगिरिकी पहाड़ी प्राचीन कालमें कुमारी पर्वत कहलाती थी। यहाँपर भगवान् महावीरका समव-सरण आया था। उस समय कलिंगनरेश जितशत्रु और उनकी पुत्री यशोदाने भगवान्के चरणोंमें संयम धारण किया था तथा जितशत्रु मुनिने केवलज्ञान प्राप्त करके यहींसे निर्वाण प्राप्त किया था। इस प्रकार यह तीर्थभूमि सिद्धक्षेत्र भी है। इसी पर्वतपर सम्राट् खारबेलने जैन मुनियों और विद्वानोंका सम्मेलन बुलाया था।

यहाँ दिगम्बर जैन धर्मशाला है जहाँ ठहरनेकी अच्छी सुविधा है। धर्मशालासे इन पहा-ड़ियोंकी ओर चलनेपर बायीं ओर खण्डगिरि है और दायीं ओर उदयगिरिकी पहाड़ी है। खण्ड-गिरिके ऊपर चार दिगम्बर जैनमन्दिर और कुल १५ गुफाएँ हैं। इनमें-से ६ गुफाओंमें जैन मूर्तियाँ हैं। इनमें-से कुछ मूर्तियाँ गुफाके निर्माणके समय ही बनायी गयी थीं और कुछ मूर्तियाँ ऐसी भी होंगी जो गुफाके निर्माणके बाद कभी बनायी गयी होंगी। सभी गुफाओंके बाहर एक पत्थरपर गुफाका नम्बर और नाम लिखा हुआ है। इससे इन्हें देखनेमें बड़ी सुविधा रहती है।

इसी प्रकार उदयगिरि पर्वतके ऊपर कुल १८ गुफाएँ हैं। इस पहाड़ीके ऊपर किसी गुफामें कोई मूर्ति नहीं है। इन गुफाओंमें प्रथम रानी गुफा सबसे बड़ी है। इसके सिरदलों आदिपर विभिन्न पौराणिक दृश्य उत्कीर्ण हैं। गणेश गुफामें भी तोरणोंके मध्य भागमें कुछ दृश्य उत्कीर्ण हैं। कई गुफाओंमें शिलालेख भी अंकित हैं। हाथी गुम्फा (नं. १४) में सम्राट् खारबेल द्वारा उत्कीर्ण लेख है। इसमें कुल १७ पंक्तियाँ हैं। इस शिलालेखका बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है। इससे सम्राट् खारबेलके जीवनपर प्रकाश पड़ता है।

पुरी—उदयगिरि-खण्डगिरिसे भुवनेश्वर जाकर पुरी (जगन्नाथपुरी) जा सकते हैं। भुवनेश्वरसे पुरी ६२ कि. मी. दूर है। सड़क और रेलमार्ग हैं। ठहरनेके लिए सरकारी अतिथि गृह तथा धर्मशालाएँ हैं।

जगन्नाथपुरी हिन्दुओंके चार धामोंमें-से एक सुप्रसिद्ध धाम है तथा ५१ शक्तिपीठोंमें-से एक शक्तिपीठ है। इसका विशाल मन्दिर है, जिसके चारों ओर दो परकोटे हैं। मन्दिरमें चारों दिशाओंमें चार विशाल द्वार हैं। इसके शिखरकी ऊँचाई दो सौ चौदह फुट है। इसकी चूड़ापर नीलचक्र सुशोभित है। मुख्य मन्दिरको निजमन्दिर कहा जाता है। निजमन्दिरके दक्षिण द्वारके बाहर दीवालमें भगवान् ऋषभदेवकी एक फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है। सुरक्षाकी दृष्टिसे इसके ऊपर शीशेका एक फ्रेम लगा दिया गया है। मन्दिरके पण्डोंकी आम धारणा है कि इस मन्दिरका निर्माण महाराज खारबेलने 'कलिंगजिन' की मूर्तिको विराजमान करनेके लिए कराया था।

निजमन्दिरकी वेदीमें बलराम, सुभद्रा और जगन्नाथजी (श्रीकृष्ण) विराजमान हैं। ये तीनों लकड़ीके बने हुए हैं। जगन्नाथजीकी प्रसिद्ध रथयात्रा आषाढ़ शुक्ला २ को प्रारम्भ होती है और दसमीको समाप्त होती है। वर्षमें एक बार जगन्नाथजीका विग्रह बदला जाता है। जो पण्डा विग्रह बदलता है, उसकी आँखोंपर काली पट्टी बाँध दी जाती है। वह पुराने कलेवरके हृदयके स्थानसे मूर्ति निकालता है और उसे नवीन कलेवरमें रख देता है। ऐसी किंवदन्ती है, कि यदि कोई व्यक्ति विग्रह-परिवर्तन करते हुए देख ले तो वह और उसका सारा परिवार नष्ट हो जाता है। इस बदलते हुए पुराने कलेवरकी समाधि जिस स्थानपर दी जाती है, उस स्थानको देव निर्वाण भूमि कहते हैं।

इतिहास ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि प्राचीन कालमें कलिंगमें 'कलिंगजिन' नामक एक प्रतिमा थी। नन्द वंशके प्रतापी सम्राट् महापद्मनन्दने जब कलिंगको पराजित किया तो वह इस मूर्तिको अपने साथ ले गया था। यह मूर्ति जैन तीर्थंकर ऋषभदेवकी थी। नन्दराजके तीन सौ वर्ष पश्चात् खारबेलने मगधपर आक्रमण करके वहसतिमित्रको हराया और वह उस 'कलिंग-जिन' प्रतिमाको अपने साथ वापस ले गया। इस मूर्तिका उत्सव उसने कुमारी पर्वतपर मनाया। फिर इस मूर्तिके लिए उसने विशाल जिनालय बनवाया। पुरीका मन्दिर खारबेल द्वारा निर्मित वही जिनालय है तथा जगन्नाथजी की मूर्ति वही 'कलिंगजिन' प्रतिमा है, ऐसा लोगोंका विश्वास है।

पटना—पुरीसे रेलमार्ग द्वारा आसनसोल होते हुए पटना सिटी और पटना जंकशनके बीच गुलजारबाग स्टेशन उतरना चाहिए। यहाँ गाड़ी थोड़ी देर ही रुकती है। पुरीसे आसनसोल ५९४ कि. मी. है। तथा आसनसोलसे गुलजारबाग ३२६ कि. मि. और पटना जंकशन ३३३ कि. मी. है। गुलजारबाग स्टेशनसे दिगम्बर जैन धर्मशाला केवल एक फर्लांग दूर है। स्टेशनपर कुली, रिक्शा और ताँगे मिलते हैं। धर्मशालामें जैन मन्दिर भी बना हुआ है।

जैन धर्मशालासे सड़कपर कुछ दूर चलने पर और रेलवे लाइन पार करके लगभग १ फर्लांग दूर कमलदह नामक स्थान है। वहाँ एक टेकरीपर सुदर्शन मुनिके प्राचीन चरण बने हुए हैं। यहींसे सुदर्शन मुनिको निर्वाण प्राप्त हुआ था। अतः यह सिद्ध क्षेत्र कहलाता है। इस टेकरीके चारों ओर चार तालाब हैं। तालाबोंमें कमल हैं। तालाबोंके चारों ओर बेरके वृक्ष हैं।

पटनामें कुल ५ दिगम्बर जैन मन्दिर और १ चैत्यालय हैं। पटना बहुत बड़ा शहर है और बिहार प्रान्तकी राजधानी है। यहाँ प्रान्तीय विधान सभा, राजभवन, राजकीय संग्रहालय, जालान संग्रहालय (किला भवन, पटना सिटी), अगम कुआँ, पाटलिपुत्रके ध्वंसावशेष, हैवतजंगका मकबरा और शहीद स्मारक दर्शनीय हैं।

वैशाली—गुलजारबागसे गंगाके किनारे महेन्द्रू घाट जाना चाहिए। गुलजारबागसे यह लगभग ४ मील है। इस घाटसे पहलेजा घाटके लिए स्टीमर जाता है। टिकट घरसे स्टीमरका टिकट ले लेना चाहिए। पहलेजा घाटसे लगभग २ फर्लांग चलकर स्टेशन और बस स्टैण्ड है। वहाँसे ट्रेन और बस हाजीपुरके लिए मिलती हैं। महेन्द्रू घाटसे हाजीपुर ५८ कि. मी. है। हाजीपुरसे वैशाली ३६ कि. मी. है। बस और टैक्सी मिलती हैं। पहलेजा घाटसे वैशालीके लिए सीधी बस भी जाती है। वैशालीमें सड़कके किनारे जैन विहार (धर्मशाला) बना हुआ है। वहींपर पर्यटक केन्द्र और उसका डाक बँगला बना हुआ है।

जैन विहारसे लगभग ५ कि. मी. दूर बासुकुण्ड स्थान है। यही प्राचीन कुण्डग्राम है जो अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरकी जन्म-भूमि है। भगवान्के जन्म-स्थान पर राष्ट्रपति स्व. डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीके करकमलों द्वारा शिलान्यास हो चुका है और उसकी प्रशस्ति एक शिलापटपर अंकित है। शताब्दियोंसे स्थानीय जनताका यह विश्वास रहा है कि भगवान् महावीरने ढाई हजार वर्ष पूर्व यहींपर जन्म लेकर इस प्रदेशको और देशको गौरव प्रदान किया। इन सरल और भक्त ग्रामीणोंने जन्मस्थानवाली डेढ़ एकड़ भूमिपर अबतक हल नहीं चलाया है। वहाँ प्रदेश सरकारकी ओरसे महावीर जन्मोत्तर जयन्तीका उत्सव विशाल रूपमें मनाया जाता है। इस उत्सवमें हजारोंकी संख्यामें जथरिया, भूमिहार आदि कृषक आते हैं और आकर वे भगवान् महावीरको श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

इस स्थानके निकट ही प्राकृत-अहिंसा-जैन शोध संस्थानका भव्य भवन बना हुआ है। इसकी व्यवस्था बिहार सरकारका शिक्षा मन्त्रालय करता है तथा इसके भवन-निर्माण और पुस्तकालयके लिए समाजके मान्य नेता और प्रसिद्ध उद्योगपति साहू शान्तिप्रसादजीने सवा छह लाख रुपये की राशि प्रदान की थी।

इस वासुकुण्डसे ईशानकोणमें दो मील आगे कोल्हुआ गाँव है जिसका प्राचीन नाम कोल्लाग सन्निवेश था। यहाँपर अशोक सम्राट् द्वारा निर्मित स्तम्भ है जिसके शीर्षपर एक सिंह मूर्ति ऊपरकी ओर मुख किये हुए बैठी है। इसके निकट एक सरोवर है, जिसे मर्कट ह्रद माना जाता है। अशोक स्तम्भसे थोड़ा आगे जानेपर बनिया गाँव मिलता है जो प्राचीन वाणिज्य ग्राम है। ढाई हजार वर्ष पूर्व यह अत्यन्त समृद्ध नगर था। इसमें व्यापारी जनोंका निवास था। इस ग्रामसे प्रायः एक मील चलनेपर लोक कर्म विभाग (P. W. D.) का रैस्ट हाउस बना हुआ है जो एक विशाल सरोवरके तटपर अवस्थित है। यह सरोवर ही प्राचीन कालमें मंगल पुष्करिणी कहलाता था। रैस्ट हाउसके निकट सरकारी संग्रहालय बन गया है। पुष्करिणीसे लगभग एक मीलपर वामन पोखर है। उसके किनारेपर एक पक्के चबूतरे पर तीन कटनीदार गन्धकुटी बनी हुई है।

उसमें भगवान् महावीरके श्वेत संगमरमरके चरण-चिह्न विराजमान हैं। इसके सामने नवनिर्मित दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसमें केवल गर्भगृह है। वेदीपर मूलनायक महावीरकी पाषाण प्रतिमा है। उसके आगे पीतलकी विधिनायक महावीरकी मूर्ति विराजमान है।

यहाँसे लौटते हुए मार्गमें जल भरा हुआ मिलता है। मार्गमें राजा विशालके गढ़के ध्वंसावशेष मिलते हैं जो टीलेकी शकलमें बिखरे हुए हैं। विभिन्न समयोंमें भारत सरकारके पुरातत्त्व विभाग, वैशाली संघ तथा काशीप्रसाद जायसवाल इन्स्टीट्यूटकी ओरसे यहाँ खुदाई करायी गयी, फलतः मुहरें, मिट्टीकी मूर्तियाँ और अन्य सामग्री पायी गयी हैं। प्राचीन भवनोंके अवशेष भी मिले हैं। इस गढ़को पार करके जैन विहार पहुँच जाते हैं।

जैन विहारसे लगभग एक मील दूर कम्मन छपरा गाँव है। पहले इसीका नाम कर्मार ग्राम अथवा कूर्मग्राम था, जहाँ भगवान्‌का प्रथम आहार हुआ था।

राजगृही—वैशालीसे पहलेजाघाट होते हुए पटना वापस लौटना चाहिए। पटनासे राजगृहीके लिए सीधी बस जाती है। पटनासे राजगृही कुल ९९ कि. मी. है। ट्रेन द्वारा पटनासे ४६ कि. मी. बख्त्यारपुर जाकर वहाँसे बस, टैक्सी या ट्रेनसे ५३ कि. मी. राजगृही जा सकते हैं। राजगृहीमें दिगम्बर जैन धर्मशालामें ठहरनेकी सुन्दर व्यवस्था है। राजगृहीका जिला पटना है।

यहाँ पाँच अलग-अलग पहाड़ी हैं, जिनकी यात्रा और वन्दनाके लिए भक्तजन जाते हैं। यदि एक दिनमें पाँचों पहाड़ोंकी वन्दना करनेकी श्रद्धा, संकल्प और शक्ति हो तो एक दिनमें वन्दना करनी चाहिए। यदि एक दिनमें न कर सकें तो दो दिनमें कर सकते हैं—एक दिन दो पर्वतोंकी तथा दूसरे दिन तीन पर्वतोंकी। यदि सारी यात्रा पैदल ही करनेके भाव हों तो पैदल करनी चाहिए। यदि सामर्थ्य न हो तो ताँगा करके धर्मशालासे पहाड़की तलहटी तक जायें। वहाँसे पैदल यात्रा करें। वापसीमें ताँगे द्वारा आ सकते हैं।

(१) पहला पहाड़ विपुलाचल है। इसपर पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सीढ़ियोंकी संख्या ११५० है। इसके ऊपर तीन टोंकें दिगम्बर समाजकी और एक टोंक श्वेताम्बर समाज की है। विपुलाचलपर विराजमान होकर ही भगवान्‌ने श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके दिन समवसरणमें धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया था और उनकी प्रथम दिव्यध्वनि खिरी थी।

(२) विपुलाचलसे उतरने और रत्नागिरिपर चढ़नेके लिए पृष्ठभागमें सीढ़ियाँ नहीं हैं। मार्ग ऊबड़-खाबड़ है। दूसरे पहाड़का नाम रत्नागिरि है। इसकी सीढ़ियोंकी संख्या १३०० है। इस पर्वतपर तीन टोंकें दिगम्बरोंकी हैं और एक टोंक श्वेताम्बरों की है।

(३) तीसरा पर्वत उदयगिरि है। इसके ऊपर जानेके लिए ७८६ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यहाँ तीन टोंकें या मन्दिर दिगम्बर समाजका और एक टोंक श्वेताम्बर समाजकी है।

इस पर्वतपर दो प्राचीन जैन मन्दिरोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। इनमें जो प्रतिमाएँ निकली थीं, वे नीचे दिगम्बर जैन लाल मन्दिरमें पहुँचा दी गयी हैं। एक मन्दिरमें यहाँ केवल श्याम पाषाणके चरण विराजमान हैं। पर्वतसे उतरकर जलपानगृह बना हुआ है जहाँ दिगम्बर जैन कार्यालयकी ओरसे यात्रियोंको जलपान कराया जाता है।

यहाँसे कुछ आगे चलकर सड़कके किनारे पत्थरोंपर शंखलिपिमें लेख खुदे हुए हैं तथा रथोंके पहियोंकी गहरी लीक बनी हुई है।

जो लोग पाँचों पर्वतोंकी वन्दना एक दिनमें नहीं करना चाहते, वे यहाँसे धर्मशालाको लौट जाते हैं और दूसरे दिन शेष दो पर्वतोंकी वन्दना करते हैं।

यहाँसे लौटनेपर मार्गमें एक टीलेके ऊपर कूपाकार भवनपर टिन शेड है। यह एक प्राचीन जैन मन्दिर था। यह मन्दिर खुदाईके समय गिरा दिया गया था। इस मठसे लगभग पौन मील दक्षिणकी ओर बिम्बसार बन्दीगृह है, जिसके भग्नावशेषोंमें छह फुट मोटी पत्थरोंकी दीवार मिलती है। कहते हैं, श्रेणिक बिम्बसारको उसके पुत्र अजातशत्रुने इसी बन्दीगृहमें रखा था।

(४) स्वर्णगिरि अथवा सोनागिर चौथा पहाड़ है। यह पहाड़ धर्मशालासे ५ कि. मी. है। इस पहाड़पर चढ़नेके लिए कुल १०६१ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। पहाड़पर दो मन्दिर और एक टोंक दिगम्बर समाजकी है तथा एक टोंक श्वेताम्बर समाजकी है।

इस पहाड़से उतरकर एक मील चलनेपर सोन भण्डार गुफा मिलती है। यहाँ दो गुफाएँ हैं। बायीं ओरकी गुफा ठीक है किन्तु दायीं ओरकी गुफा भग्न दशामें है। बायीं ओरकी गुफामें दीवालोंपर शिलालेख अंकित हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि आचार्य वैरदेवके उपदेशसे ईसाकी तीसरी शताब्दीमें इन गुफाओंका निर्माण किया गया।

दूसरी पूर्वी गुफाकी छत, बरामदा गिर चुके हैं। द्वारमें घुसते ही दायीं ओर दीवालमें २ खड्गासन और १३ पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ उकेरी हुई हैं तथा बायीं ओरकी दीवालमें ३ पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। शेष सारा भाग खण्डित है।

(५) चौथे पर्वतसे लगभग एक मील चलनेपर वैभारगिरि नामक पाँचवाँ पर्वत है। इस पर्वतकी सीढ़ियोंकी संख्या ५६५ है। यहाँ एक श्वेताम्बर मन्दिर है और एक दिगम्बर मन्दिर है। दिगम्बर मन्दिरके निकट महादेव मन्दिरके पथपर एक प्राचीन भग्न जैन मन्दिर है। पुरातत्त्व विभागकी ओरसे यहाँ खुदाई की गयी थी। फलतः २८ कोठरियाँ निकली हैं। पहले सभी कोठरियों-में मूर्तियाँ रही होंगी। किन्तु इस समय १० कोठरियोंमें १८ तीर्थंकर मूर्तियाँ रखी हुई हैं, शेष कोठरियाँ खाली पड़ी हैं। कुछ अच्छी-अच्छी मूर्तियाँ नालन्दा संग्रहालयमें भेज दी गयी हैं। कुछ मूर्तियाँ नीचे लाल मन्दिरमें रख दी गई हैं।

मन्दिरसे थोड़ा आगे जानेपर सप्तपर्णी गुफा बनी हुई है। इस पर्वतकी वन्दना करके लौटते हुए 'जरासन्धकी बैठक' नामक एक स्थान है। वास्तवमें यह एक गुफा है। गुफाकी छत अवश्य ऐसी है, जिसपर कुछ लोग आरामसे बैठ सकते हैं।

राजगृहमें भगवान् महावीरने धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया, इतना ही नहीं, उनके अनेक बार यहाँ उपदेश हुए, अनेक बार यहाँ उनका समवसरण लगा और श्वेताम्बर आगमोंके अनुसार यहाँ उनके १४ चातुर्मास हुए।

राजगृही निर्वाण क्षेत्र भी है। यहींसे भगवान् महावीरके ११ गणधर मुक्त हुए। जम्बूकुमार, जीवन्धर कुमार, श्वेतवाहन, श्वेतसन्दीव, वैशाख, प्रीतिंकर आदि अनेक मुनियोंने यहींसे मुक्ति प्राप्त की है। निर्वाणकाण्ड (संस्कृत) में राजगृहके पर्वतोंके नाम देकर उन्हें निर्वाण-भूमि कहा है। यहींपर भगवान् मुनिसुव्रतनाथके गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान ये चार कल्याणक हुए थे। इस प्रकार यह क्षेत्र सदासे मान्य पावन क्षेत्र रहा है।

नीचे तलहटीमें दो मन्दिर हैं—धर्मशालाका मन्दिर और लाल मन्दिर। लाल मन्दिरमें ऊपर पहाड़से लायी हुई प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। धर्मशाला मन्दिरमें भी कई प्रतिमा बड़ी भव्य हैं।

यहाँपर उल्लेख योग्य गर्म जलके कुण्ड हैं। सात कुण्ड वैभार पर्वतकी तलहटीमें हैं और छह विपुलाचलके नीचे हैं। इनमें स्नान करनेसे गठिया, वायु, त्वचा सम्बन्धी रोग ठीक हो जाते हैं। हिन्दू, बौद्ध और मुसलमान भी इसे अपना तीर्थ मानते हैं।

कुण्डलपुर—यह पटना जिलेमें है। यहाँका पोस्ट आफिस और स्टेशन नालन्दा है। राजगृहीसे नालन्दाके लिए पक्की सड़क है। राजगृहीसे नालन्दा तेरह कि. मी. है और नालन्दासे कुण्डलपुर तीन कि. मी. है। बड़गांव नगरके बाहर एक मन्दिर है। उसे ही भगवान् महावीरकी जन्म-भूमि माना जाता है। राजगृहीसे पावापुरी अथवा पावापुरीसे राजगृही जाते हुए मार्गमें यह क्षेत्र पड़ता है। कुण्डलपुरसे लौटते समय नालन्दाके प्राचीन विश्वविद्यालयके भग्नावशेष और संग्रहालय अवश्य देखने चाहिए।

पावापुरी—नालन्दासे पटना-राँची रोडपर पावापुरीका मोड़ ८ कि. मी. है। मोड़से दिगम्बर जैन धर्मशाला ३ कि. मी. है। यहाँ दिगम्बर समाजकी दो विशाल धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। बड़ी धर्मशालाके अन्दर ही ऊपर-नीचे कुल ७ मन्दिर हैं। सभी मन्दिर और मूर्तियाँ नवीन हैं। केवल चार मूर्तियाँ—एक चौबीसी, दो पार्श्वनाथ और एक शान्तिनाथ भगवान्की—अत्यन्त प्राचीन हैं। ये मूर्तियाँ कहीं निकटके स्थानसे भग्नावशेषोंमें पड़ी हुई मिली थीं। सम्भवतः वहाँ कोई प्राचीन जैन मन्दिर रहा होगा।

धर्मशाला पद्म सरोवरके तटपर बनी हुई है। इसी सरोवरके मध्यमें एक टीलेपर श्वेत संगमरमरका भव्य मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर तक जानेके लिए लाल पाषाणका पुल बना हुआ है। मन्दिरमें भगवान् महावीरके चरण-चिह्न विराजमान हैं। उसके बायीं ओरकी वेदीपर भगवान्के मुख्य गणधर गौतम स्वामी और दायीं ओरकी वेदीपर अन्य गणधर सुधर्मा स्वामीके चरण-चिह्न स्थापित हैं। इस मन्दिरमें केवल गर्भगृह ही है। उसके चारों ओर बरामदा और चबूतरा है। इसी स्थानसे भगवान् महावीरने योग निरोध करके अघातिया कर्मोंका नाश किया था और निर्वाण प्राप्त किया था। भगवान्का निर्वाण कल्याणक मनानेके लिए असंख्य देव-देवियाँ और मनुष्य यहाँ एकत्रित हुए थे। कहते हैं, भगवान्का निर्वाण हो जानेपर उपस्थित लोगोंने भगवान्के प्रति अपनी भक्ति-प्रदर्शनके लिए उस स्थानकी धूल चुटकीसे उठाकर माथेपर लगायी। भीड़ इतनी अधिक थी कि एक-एक चुटकी धूल ले लेनेसे ही यह सरोवर बन गया। भगवान्का निर्वाण-स्थान होनेके कारण यहाँ यात्रियोंकी संख्या बहुत अधिक रहती है। यहाँका दृश्य अत्यन्त प्रशान्त और मनमोहक है।

कुछ लोगोंका विश्वास है कि भगवान् महावीरका निर्वाण यहाँ नहीं हुआ था, बल्कि उत्तर प्रदेशमें देवरिया जिलेके फाजिलनगर-सठियाँव गाँवमें हुआ था। प्राचीन कालमें उसका नाम भी पावा था।

पावापुरी—मन्दिरके बाह्य प्रवेशद्वारके सामने गोलाकार समवसरण मन्दिर बना हुआ है। उसमें भगवान्के बहुत प्राचीन चरण हैं। पावापुरी मन्दिरसे लगभग एक मील दूर श्वेताम्बर समाजकी ओरसे समवसरण मन्दिर बनवाया गया है। वह संगमरमरका बना हुआ है और उसकी लागत नौ लाख रुपये बतायी जाती है।

गुणावा—इसका जिला नवादा है। यह गया-क्यूल रेलवे लाइनके नवादा स्टेशनसे तीन कि. मी. है तथा पावापुरीके मोड़से भी तीन कि. मी. है। सड़कके किनारे दिगम्बर मन्दिर और धर्मशाला हैं। पावापुरीके समान यहाँ भी जल मन्दिर है। एक तालाबके मध्यमें मन्दिर बना हुआ है। वहाँ तक जानेके लिए दो सौ फुट लम्बा पुल बना हुआ है। मन्दिरपर दोनों सम्प्रदायोंका समान अधिकार है। मन्दिरमें गौतम स्वामीके चरण विराजममान हैं। पुलके पास दक्षिणमें धर्मशाला है। यह सड़कसे एक फर्लांग दूर है।

यह स्थान भगवान् महावीरके मुख्य गणधर गौतम स्वामीका निर्वाण-स्थान माना जाता है। इसीलिए इसे सिद्धक्षेत्र कहा जाता है।

चम्पापुरी—गुणावासे नवादा स्टेशन जाकर रेल द्वारा भागलपुर जाना चाहिये। भागलपुर शहरके बाहर नाथनगर मुहल्ला है। वहीं चम्पापुरी क्षेत्र है। भगवान् वासुपूज्यके पाँचों कल्याणक चम्पापुरीमें हुए थे। वर्तमानमें मान्यता है कि चम्पावालेमें वासुपूज्य भगवान्के गर्भ और जन्म कल्याणक मनाये गये। मन्दारगिरि पर्वतपर दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए तथा चम्पापुरीमें भगवान्का चौरानबे मुनियोंके साथ निर्वाण हुआ।

चम्पापुर क्षेत्रपर दो प्राचीन स्तम्भ बने हुए हैं, जिन्हें मानस्तम्भ कहा जाता है। वे लगभग नौ सौ वर्ष प्राचीन हैं। पहले ऐसे स्तम्भ चार थे। उनमें से दो भूकम्पमें नष्ट हो गये।

ठहरनेकी व्यवस्था जैन मन्दिर, भागलपुरकी धर्मशालामें भी है और चम्पापुर क्षेत्रकी धर्मशालामें भी है। यहांके जैन मन्दिरोंमें भागलपुर शहरका जैन मन्दिर, चम्पापुर क्षेत्रका मन्दिर और छपरावालोंका मन्दिर मुख्य है। छपरावालोंका मन्दिर चम्पापुर क्षेत्रके ठीक सामने है।

मन्दारगिरि—भागलपुरसे मन्दारगिरि उनचास कि. मी. है। भागलपुरसे मन्दारगिरिके लिए ट्रेन भी जाती है और बस भी जाती है। बस स्टैण्डसे जैन धर्मशाला दो फर्लांग है। गाँवका नाम बौंसी है। जैन धर्मशालामें मन्दिर भी बना हुआ है। क्षेत्र कार्यालयसे मन्दारगिरि लगभग तीन कि. मी. दूर है। कार्यालयसे पर्वतकी ओर चलनेपर लगभग एक फर्लांग दूर सेठ तलकचन्द कस्तूरचन्दजी बारामती द्वारा वीर संवत् २४६१ में बनवाया हुआ श्वेत-कृष्ण पाषाणोंका जैन मन्दिर मिलता है जो किसी कारणवश पूरा नहीं बन सका। उससे आगे जानेपर पर्वतकी तलहटीमें पापहारिणी नामक एक सरोवर है। मकर संक्रान्तिके दिन यहाँ हिन्दुओंका भारी मेला लगता है। पहाड़ी केवल ७०० फुट ऊँची है। पहाड़ीकी चढ़ाई लगभग एक मील है। कुछ सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं। पहाड़के ऊपर बड़ा दिगम्बर जैन मन्दिर, छोटा दिगम्बर जैन मन्दिर और एक गुफा है। तीनों स्थान निकट हैं और तीनों ही स्थानोंपर भगवान् वासुपूज्यके चरण-चिह्न विराजमान हैं।

हिन्दू लोग इस पर्वतको मन्दराचल मानते हैं। उनकी मान्यता है कि शेषनागकी नेति बनाकर मन्दराचलको रई बनाया गया और उससे समुद्र-मन्थन किया गया, जिससे चौदह रत्न निकले।

यहाँसे पुनः भागलपुर लौटकर इच्छित स्थानको जा सकते हैं।

आवश्यक निवेदन

कुछ यात्री दिल्लीसे पहले चम्पापुरी-मन्दारगिरि होकर फिर गुणावा-पावापुरी आदिकी वन्दना करते हैं। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। जो बन्धु उत्तर प्रदेशके तीर्थोंकी वन्दना करके बिहार-बंगाल-उड़ीसाके तीर्थोंकी वन्दनाके लिए जाना चाहते हैं, वे नवीन पावा, ककुभग्राम और काकन्दीकी यात्रा करके देवरियासे छपरा होते हुए वैशालीके दर्शन कर सकते हैं। वहाँसे उपर्युक्त यात्रा-मार्गमें सम्मेदशिखर आदिकी यात्रा कर सकते हैं।

●

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

अथर्ववेद
अनुत्तरौपपातिक सूत्र
अभिधान राजेन्द्र कोष—आ. विजयराजेन्द्र सूरि।
आचाराङ्ग-सूत्र
आदिपुराण—भगवज्जिनसेन
आराधना कथाकोश—ब्र. नेमिदत्त
आवश्यक चूर्णि
आवश्यक निर्युक्ति
आवश्यक वृत्ति
आवश्यक सूत्र
उत्तरपुराण—आ. गुणभद्र
उत्तराध्ययन
औपपातिक सूत्र
अंगुत्तर निकाय
कूर्म पुराण—महर्षि व्यास
कौटिल्य अर्थशास्त्र—आ. कौटिल्य
गौतमचरित्र—आ. धर्मचन्द्र
ज्योतिष्करण्ड टीका
जयधवला—आ. वीरसेन
जिणदत्तिकहा—भट्टारक यशःकीर्ति
जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह—पं. परमानन्द शास्त्री
जैन सिद्धान्त भास्कर
तित्थोगाली पइन्नय
तीर्थ जयमाला—भट्टारक सुमतिसागर
,, —भट्टारक जयसागर
तीर्थवन्दना—मेघराज
,, —चिमणा पण्डित
तीर्थवन्दना
दीघनिकाय
धर्मामृत—भट्टारक गुणकीर्ति
नन्दि चूर्णि—आ. जिनदास महत्तर
नाममाला—कवि धनञ्जय
निर्वाण काण्ड—आ. कुन्दकुन्द
निर्वाण भक्ति—आ. पूज्यपाद
निरयावलियाओ
निशीथचूर्णि
प्रतिक्रमणपाठ
परिशिष्ट पर्व—आ. हेमचन्द्र
पुरातत्त्व निबन्धावली—राहुल सांकृत्यायन
पेरियपुराणम्
बृहत्कल्पतरु
बृहत्कथा कोश—आ. हरिषेण
बृहत्कल्प सूत्र
भद्रबाहुचरित—भट्टारक रत्ननन्दी
भगवती आराधना—आ. शिवकोटि
भगवती सूत्र
भारतीय इतिहासकी रूपरेखा—जयचन्द्र विद्यालंकार
भावसंग्रह—आ. देवसेन
मगध—बैजनाथसिंह विनोद
मज्झिम निकाय
महाभारत—महर्षि व्यास
महावग्ग सुत्त
महावस्तु संग्रह
यशोधर चरित—भट्टारक ज्ञानकीर्ति
रायपसेणी सूत्र
ललितविस्तर
वरांगचरित—आ. जटासिंहनन्दी
वामन पुराण—महर्षि व्यास
वायु पुराण ,,
वाराह पुराण ,,
वाल्मीकि रामायण—महर्षि वाल्मीकि
विनयपिटक
विपाक सूत्र
विविध तीर्थकल्प—आ. जिनप्रभसूरि
विष्णु पुराण—महर्षि व्यास
श्रवणबेलगोलके शिलालेख—आ. नरसिंहाचारी

शक्तिसंगम तन्त्र
शासनचतुस्त्रिंशिका—यति मदनकीर्ति
श्रीमद्भागवत—महर्षि व्यास
श्रीक्षेत्रपरिचय—जगन्नाथ मन्दिर परिचालनासमिति
षट्खण्डागम—आ० पुष्पदन्त-भूतबलि
समाचारी शतक—आ. समयसुन्दरगणि
सर्वतीर्थ वन्दना—भट्टारक ज्ञानसागर
सिंहासन द्वात्रिंशिका
सुमंगल विलासिनी
सुभौमचक्रीचरित्र—भट्टारक जिनसेन
सुवर्णदल माहात्म्य—कवि देवदत्त
सूत्रकृताङ्ग
संतिणाह चरिय—महाकवि चन्द्र
संयुत्त निकाय
संबोध प्रकरण—आ. हरिभद्र
हरिवंश पुराण—आ. जिनसेन
त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्र—आ. हेमचन्द्र
Ancient Geography of India : Cunningham
A Sanskrit-English Dictionary : Monier Williams
Ashok : Dr. Mookerji
Collected Essays : Hodson
Dynasties in the Kaling : Pargiter
Eastern India : Martin
Geography of Early Buddhism
Indian Antiquary : V. A. Smith, Dr. Vidyabhushan
Indian Culture
Jainism and Buddhism : Dr. Hoernel
Jain Sutras Introduction : Prof. Herman Jacoby
The Life of Buddha : Rockhill
Life of Hiuen Tsiang : Beal
Mandar Hill : Rasbihari Bose
Modern India : Monier William
The Nation in Arms : Gltz
Old Brahmi Inscriptions : Dr. B. M. Barua
Oxford History of India : V. A. Smith
Petavatthu : Dr. B. M. Barua
Sacred Books of the East : Dr. Herman Jacoby
Site of Ancient Palibothra : Major Franklin
The Struggle for Empire : Dr. Mazumdar
Tribes in Ancient India
Upasagdasao : Dr. Hoernel
Yuan Chwang : Watter

चित्र-सूची

३९–पटना—कानोडिया भवनमें पार्श्वनाथ प्रतिमा, समय तीसरी शताब्दी।

४०–गुलजारबाग (पटना)—दिगम्बर जैन मन्दिरमें मूलनायक भगवान् नेमिनाथ।

४१–पटना—सिद्धक्षेत्र कमलदहमें सुदर्शन मुनिके चरण।

४. भंगि जनपद

४२–सम्मेदशिखर—मधुवनके जैन मन्दिर।

४३–सम्मेदशिखर—मधुवनमें तेरापन्थी कोठीके मन्दिरकी मूलवेदीपर भ. पुष्पदन्तकी प्रतिमा।

४४–सम्मेदशिखर—मधुवन : तेरापन्थी कोठीमें नन्दीश्वर जिनालय।

४५–सम्मेदशिखर—मधुवन : तेरापन्थी कोठीमें स्थित मानस्तम्भ।

४६–सम्मेदशिखर—मधुवनके बीसपन्थी मन्दिरकी मुख्य वेदी।

४७–सम्मेदशिखर—मधुवनके बाहुबली-मन्दिरमें बाहुबली स्वामीकी मूर्ति।

४८–सम्मेदशिखर—पर्वतपर भ. पार्श्वनाथकी टोंक।

४९–सम्मेदशिखर—पर्वतपर जलमन्दिर।

५०–सम्मेदशिखर—ईसरीमें पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णीका समाधि-स्तूप।

५१–कुलुहापहाड़—एक गुफामें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति।

५२–कुलुहापहाड़—एक गुफाकी दीवालमें पाँच तीर्थंकर मूर्तियाँ।

५. बंग जनपद

५३–कलकत्ता—बेलगछियाका दिगम्बर जैन मन्दिर।

५४–कलकत्ता—बेलगछिया दिगम्बर जैन मन्दिर की मूलनायक प्रतिमा।

५५–कलकत्ता—इण्डियन म्यूजियममें तीर्थंकर मूर्ति।

५६–कलकत्ता—इण्डियन म्यूजियममें भगवान् पार्श्वनाथपर कमठका उपसर्ग, ५वीं शती।

५७–कलकत्ता—इण्डियन म्यूजियममें तीर्थंकर चन्द्रप्रभकी मूर्ति और चौबीसी, ९वीं शताब्दी।

५८–कलकत्ता—इण्डियन म्यूजियम : त्रिशला माताका स्वप्नदर्शन। समय ५वीं शताब्दी। महास्थान (बँगलादेश) में प्राप्त।

६. कलिंग जनपद

५९–कटक—श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिरका भव्य शिखर।

६०–कटक—चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिरमें श्री पार्श्वनाथकी प्राचीन मूर्ति।

६१–कटक—चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिरमें मुख्य वेदीपर स्थित चैत्य।

६२–कटक—चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिरमें मुख्य वेदीपर भ. ऋषभदेवकी मनोज्ञ धातु प्रतिमा।

६३–भानपुर (कटक)—भूगर्भसे प्राप्त भगवान् ऋषभदेवकी धातु-प्रतिमा।

६४–भानपुर (कटक)—भूगर्भसे प्राप्त चौबीसीका धातु-मूर्ति-फलक।

६५–भुवनेश्वर—स्टेट म्यूजियममें ऋषभदेवकी पाषाण मूर्ति, आठवीं शती।

६६–भुवनेश्वर—स्टेट म्यूजियममें तीर्थंकर महावीरकी लगभग ५ फुटकी पाषाण मूर्ति, समय आठवीं शताब्दी।

६७–खण्डगिरि—पर्वतके बड़े मन्दिरमें चौबीसी, मध्यमें तीर्थंकर ऋषभदेव।

६८–खण्डगिरि—पर्वतके बड़े मन्दिरमें गोमेद और अम्बिका यक्षी। शीर्ष भागपर तीर्थंकर नेमिनाथ।

६९–खण्डगिरि—पर्वतके बड़े मन्दिरमें अम्बिकाकी मूर्ति।

७०–खण्डगिरि—नवमुनि गुम्फा (नं. ७)।

७१–खण्डगिरि—बाराभुजी गुम्फामें तीर्थंकर मूर्तियाँ और शासन देवियाँ।

७२–खण्डगिरि—गुम्फा (नं. ९) में अनेक तीर्थंकर मूर्तियाँ।

७३–उदयगिरि—गुफाओं का एक विहगावलोकन।

७४–उदयगिरि—रानी गुम्फा(नं. १)में भित्तिचित्र।

७५–उदयगिरि—रानी गुम्फा(नं. १)में भित्ति-चित्र।

७६–उदयगिरि—स्वर्गपुरी-मंचपुरी गुम्फा (नं. ९)।

७७–उदयगिरि—गणेश गुम्फा (नं. १०) के बाहर सूँड़में आम्र-गुच्छक लिये हाथी।

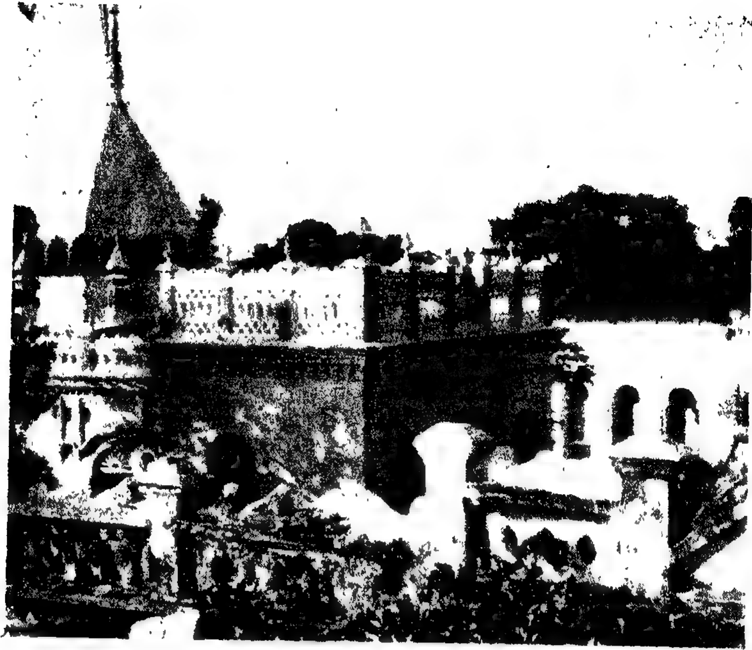
७८–उदयगिरि—हाथी गुम्फा (नं. १४) में सम्राट् खारवेल का प्रसिद्ध शिलालेख।

७९–जगन्नाथपुरी—मन्दिरका बाह्य दृश्य।

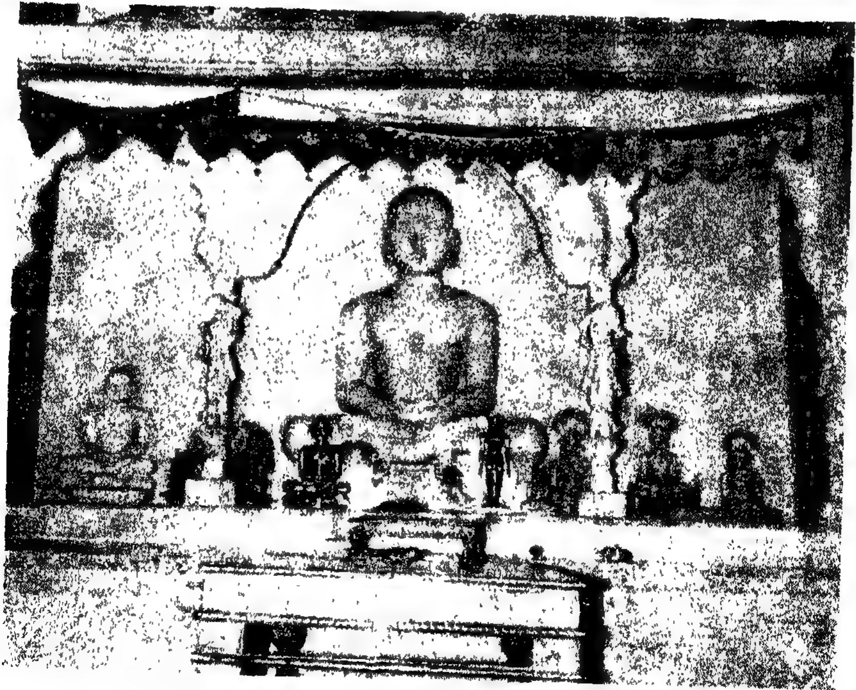
चित्र



१. वैशाली—वासुकुण्ड में भगवान् महावीर की जन्मभूमि, जहाँ भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद द्वारा शिलान्यास किया गया था।



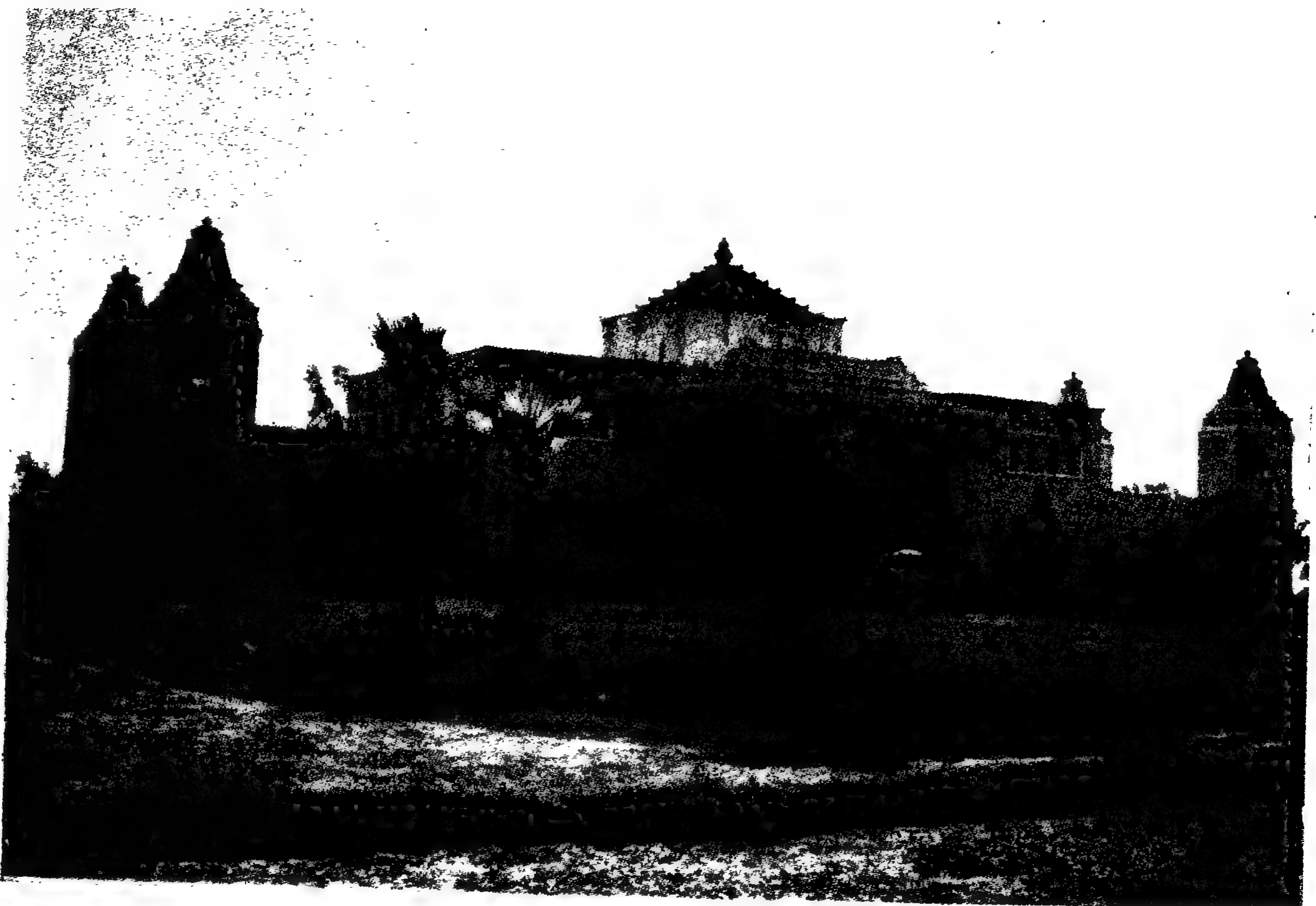
२. कुण्डलपुर का दिगम्बर जैन मन्दिर



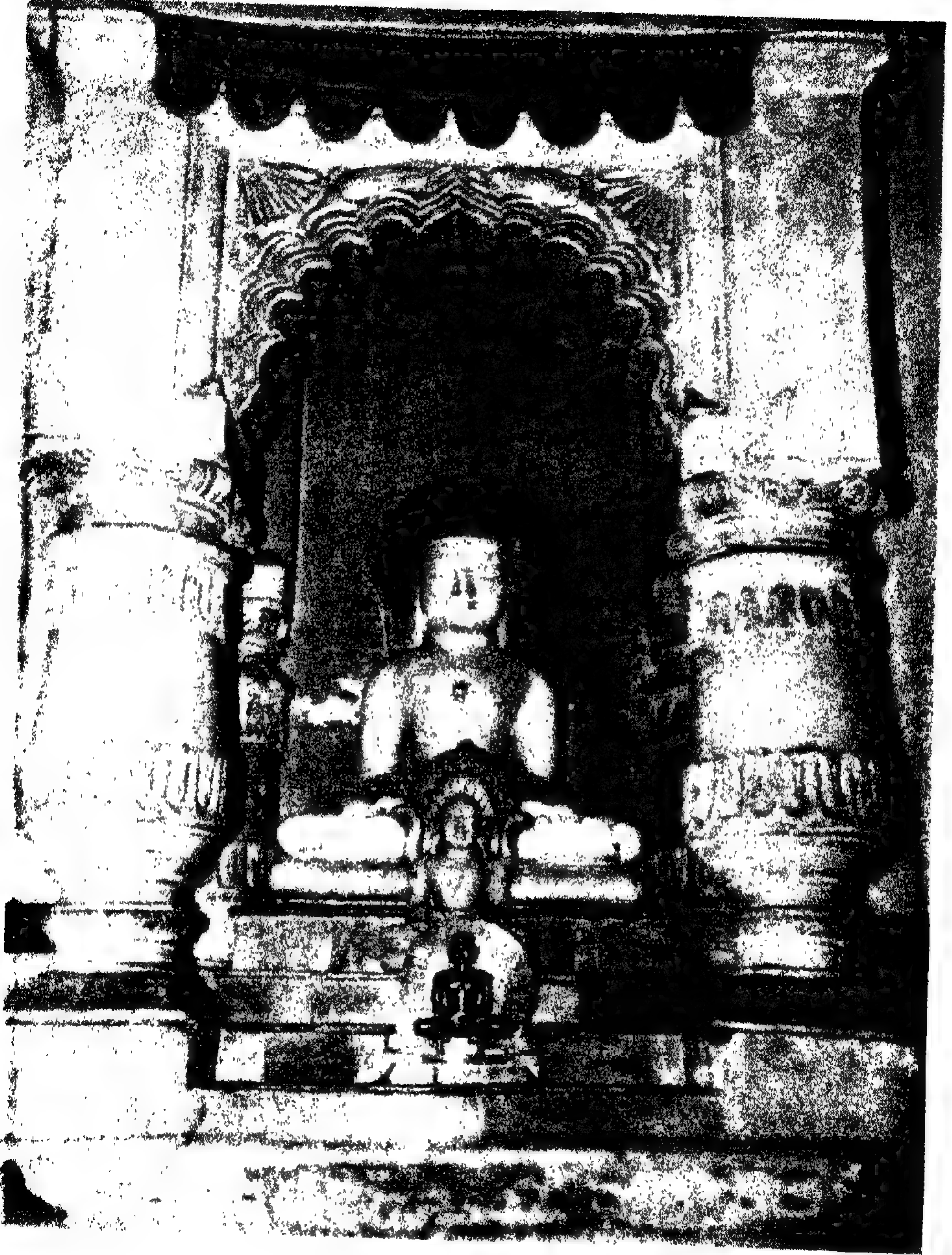
३. कुण्डलपुर के दिग. जैन मन्दिर में मूलनायक भगवान् महावीर



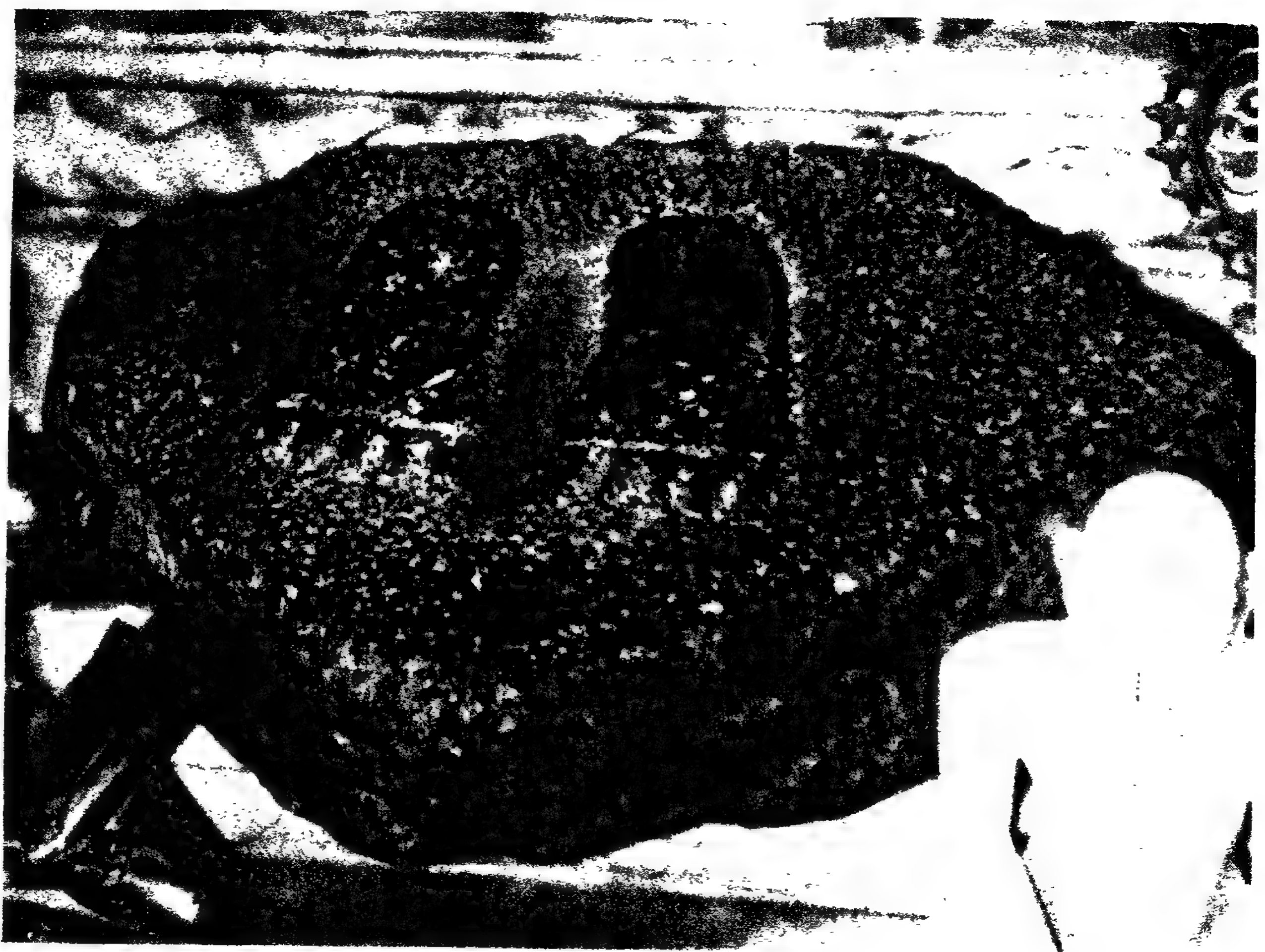
४. वैशाली—वामन पोखर के जैन मन्दिर में मूलनायक भगवान् महावीर की मूर्ति



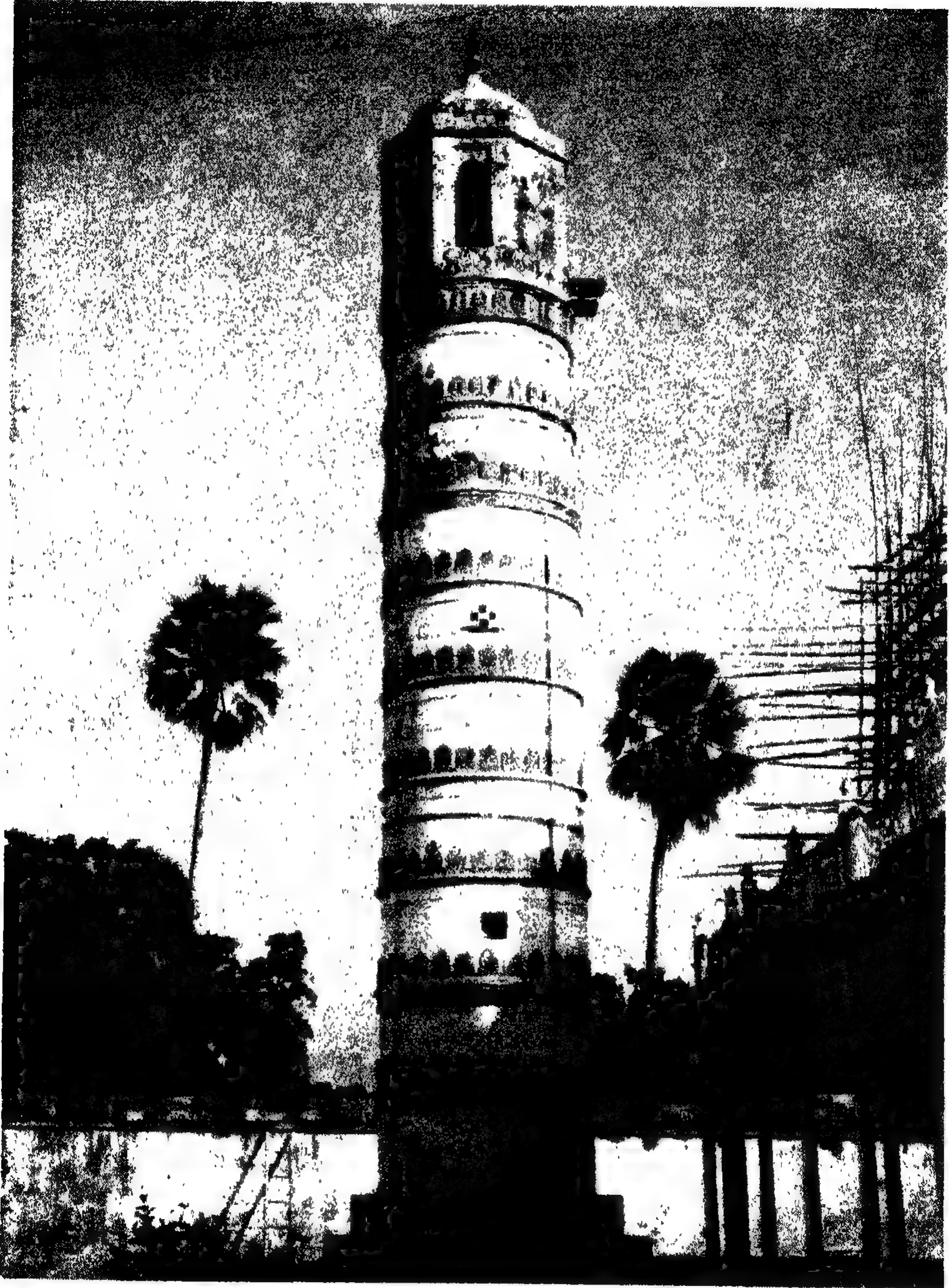
५. वैशाली—अहिंसा, प्राकृत और जैन शोध-संस्थान



६. चम्पापुरी—मूलनायक भगवान् वासुपूज्य



७. चम्पापुरी—भगवान् वासुपूज्य के चरण चिह्न



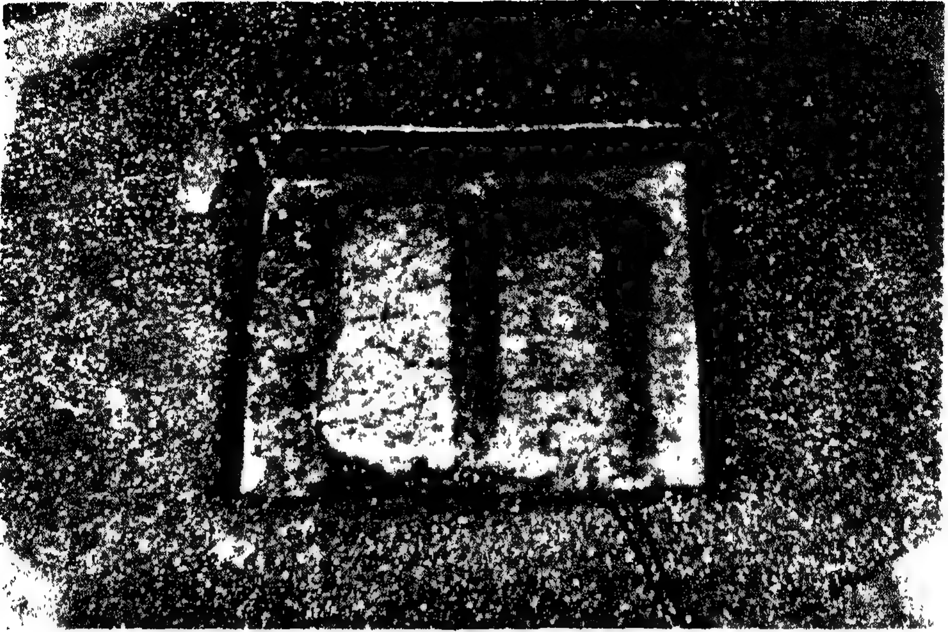
८. चम्पापुरी—५० फुट ऊँचा प्राचीन स्तम्भ



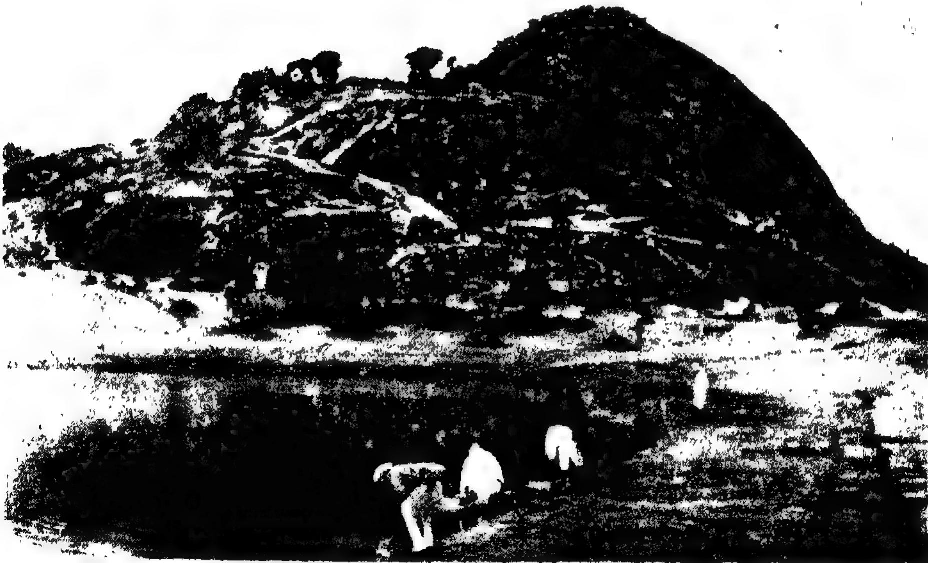
९. भागलपुर—जैन मन्दिर में एक फलक में चौबीस तीर्थंकर प्रतिमाएँ



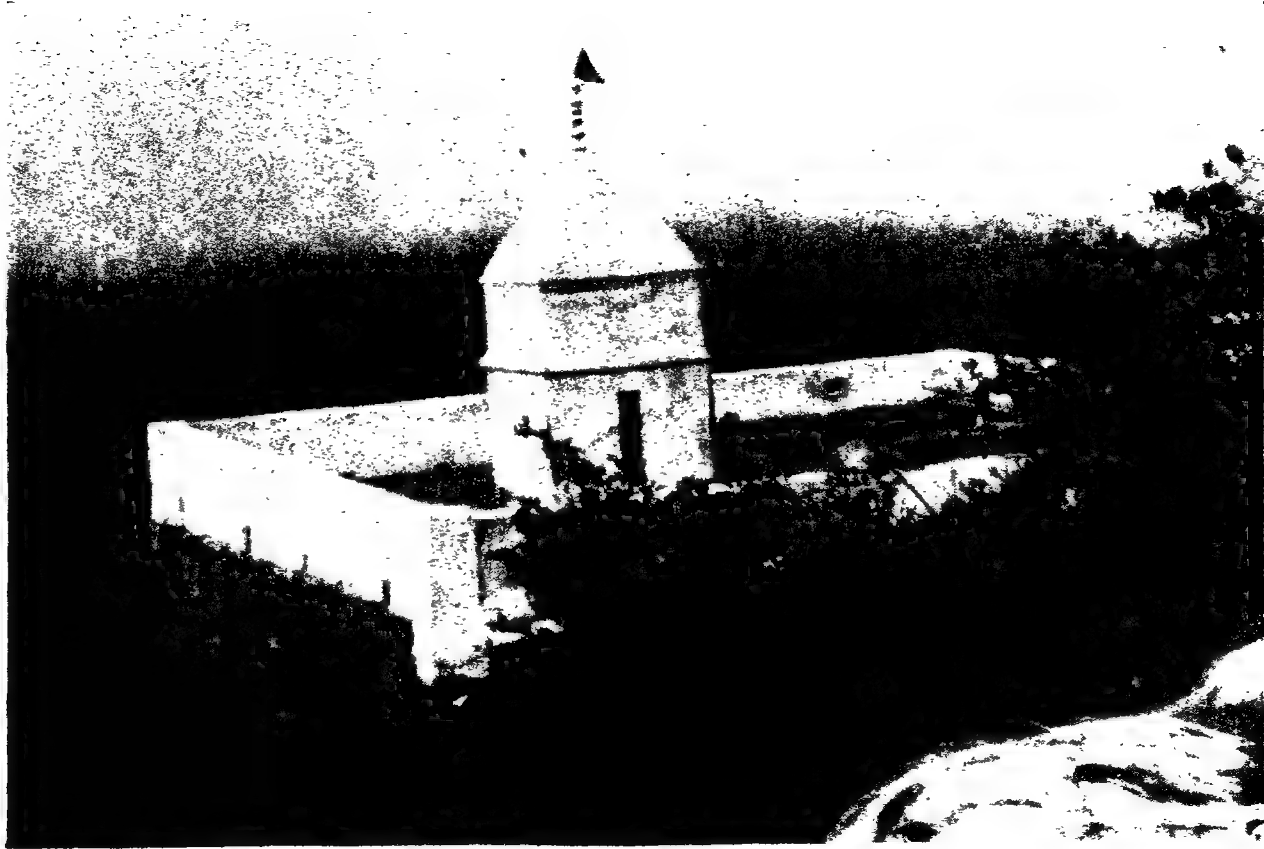
१०. मन्दारगिरि पर्वत के ऊपर प्राचीन जैन मन्दिर।



११. मन्दारगिरि—पर्वत के ऊपर जैन मन्दिर में भगवान् वासुपूज्य के प्राचीन चरण।



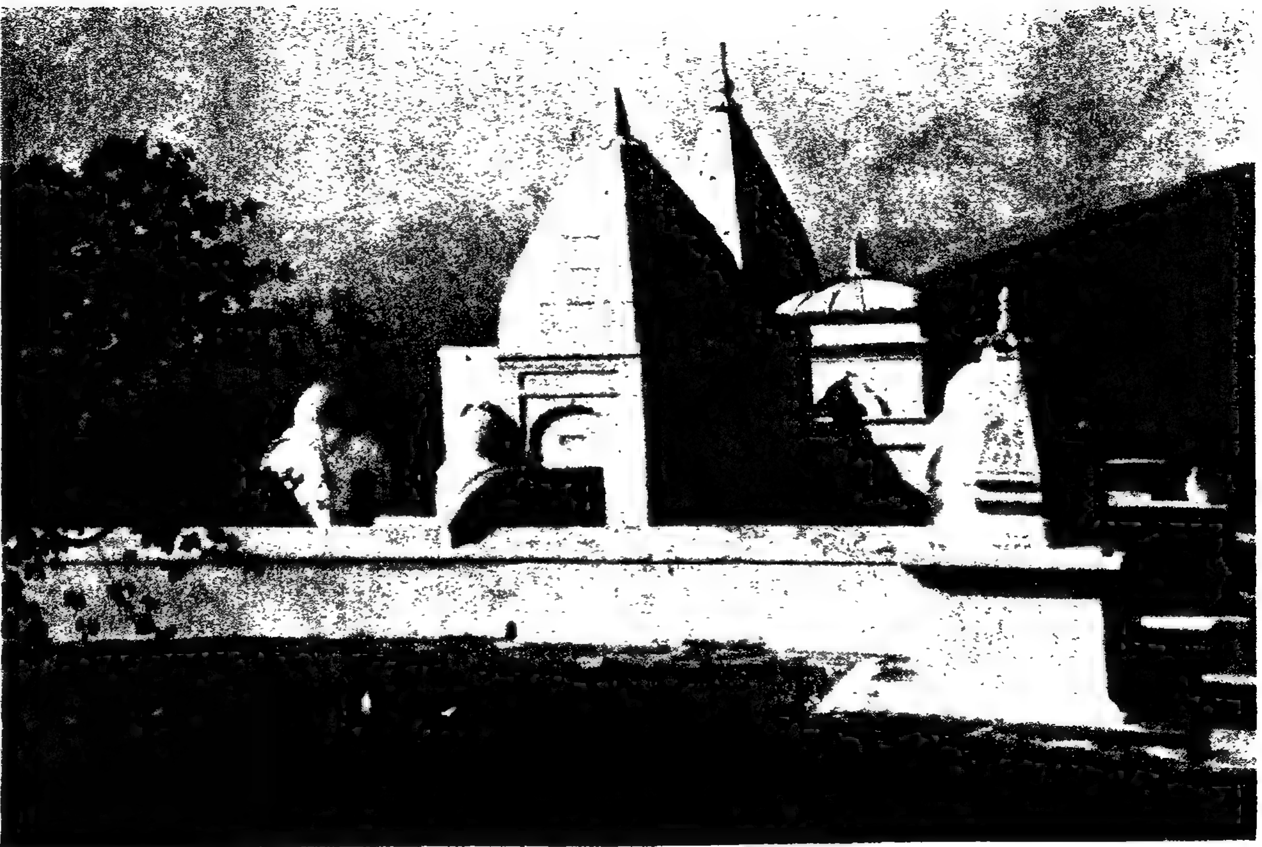
१२. मन्दारगिरि—पर्वत की तलहटी में प्रसिद्ध पापहारिणी कुण्ड।



१३. राजगृही—विपुलाचल पर भगवान् महावीर की टोंक।



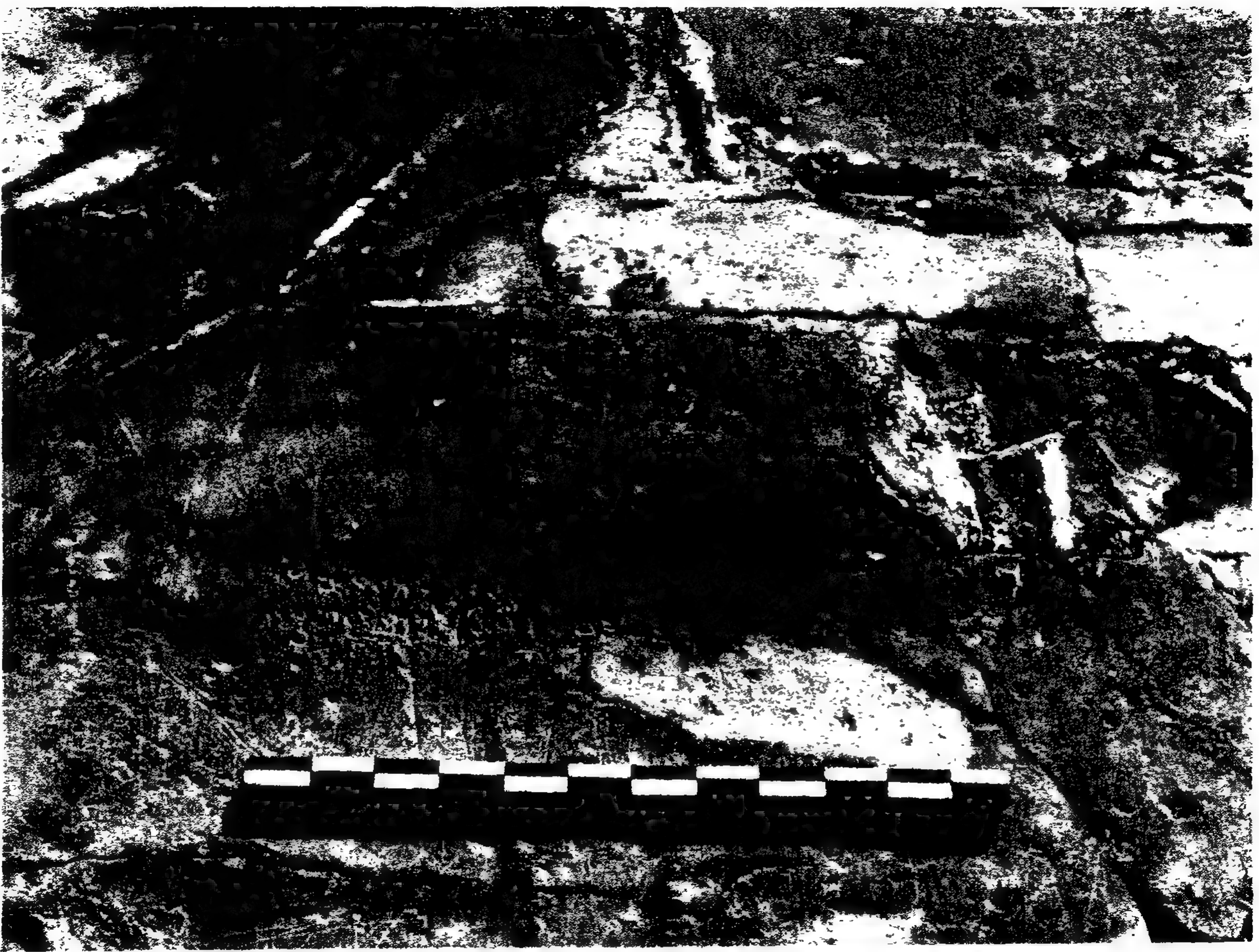
१४. राजगृही—रत्नागिरि पर्वत पर भगवान् शान्तिनाथ ।



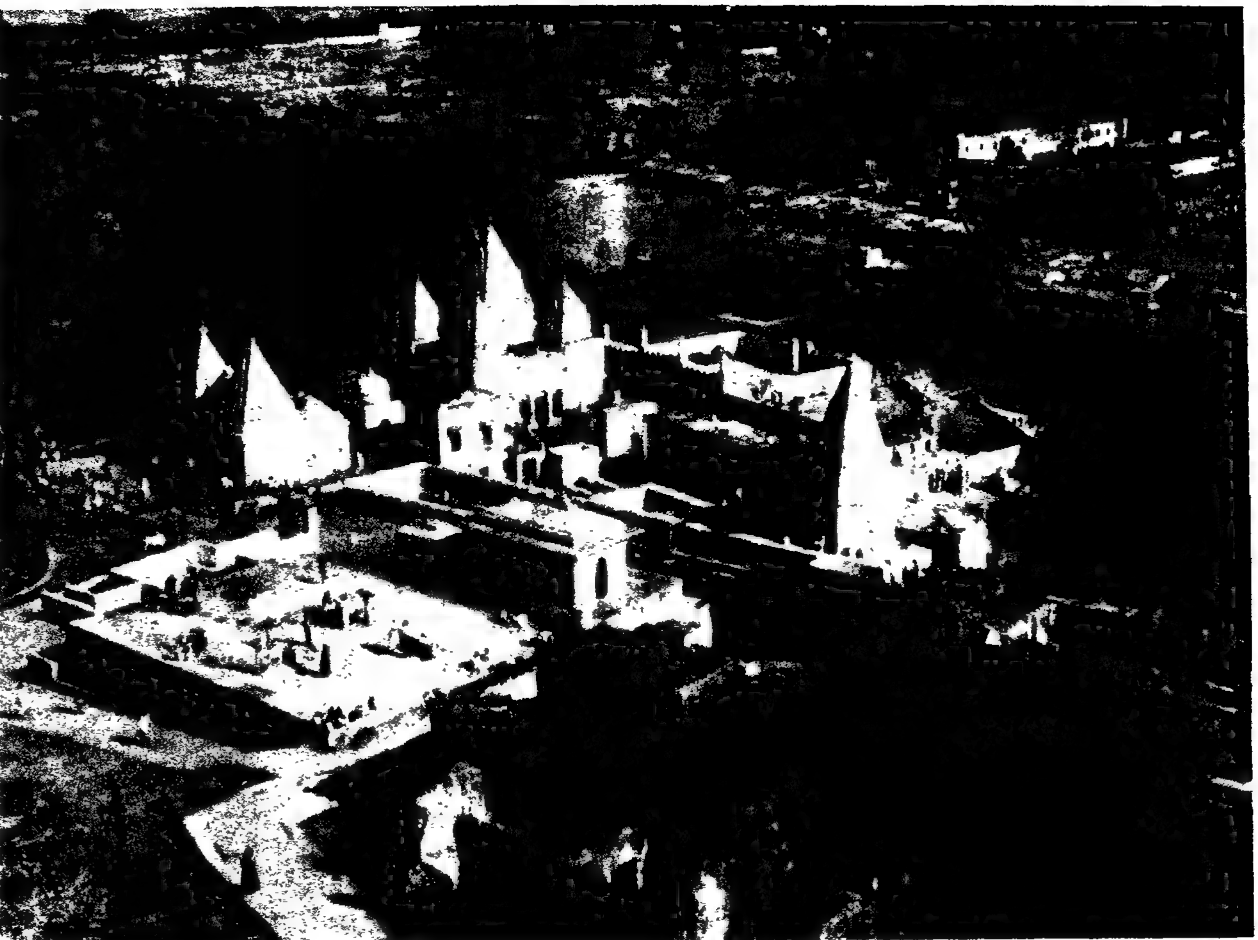
१५. राजगृही—उदयगिरि पर्वत पर भगवान् महावीर का मन्दिर।



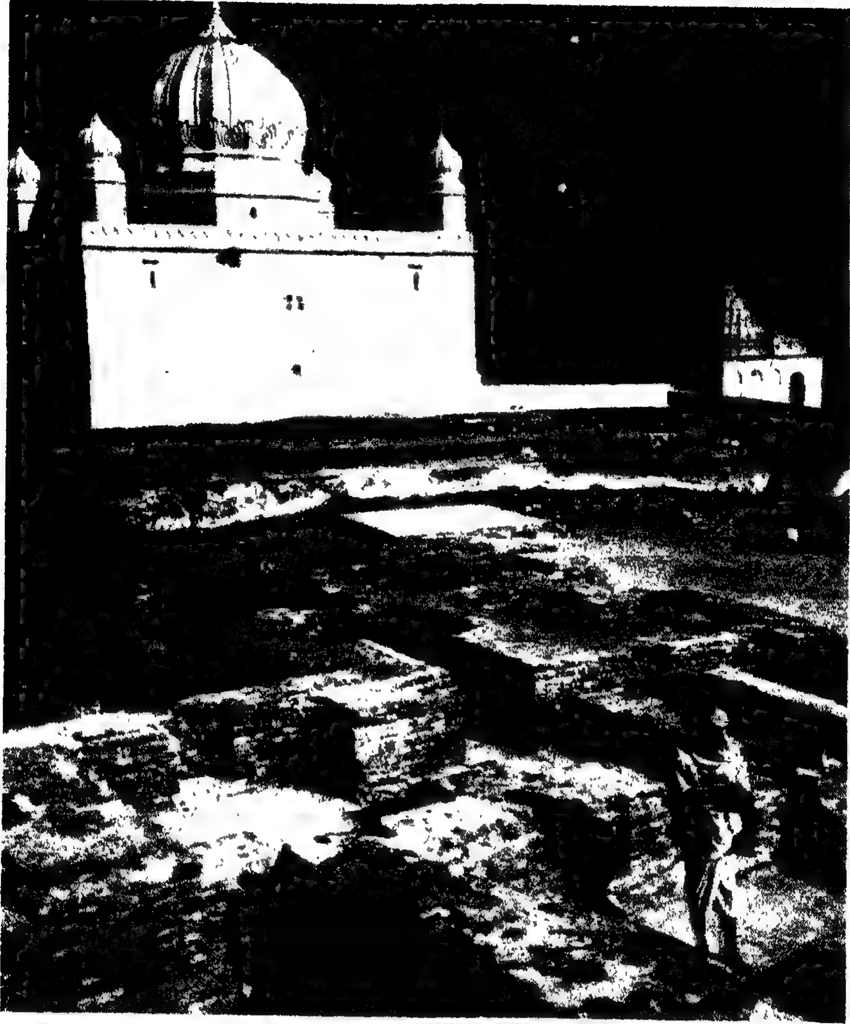
१६. राजगृही—सोन भण्डार गुफा।



१७. राजगृही—सोन भण्डार गुफा का शिलालेख।



१८. राजगृही—वैभारगिरि की तलहटी में गरम कुण्डों का दृश्य।



१९. राजगृही—वैभारगिरि पर उत्खनन से प्राप्त
प्राचीन मन्दिर। समय ८वीं शताब्दी।



२०. राजगृही—वैभारगिरि से उत्खनन में प्राप्त जैन मूर्तियाँ। नालन्दा म्यूजियम।



२१. राजगृही—वैभारगिरिपर तीर्थंकर महावीरकी मूर्ति ।



२२. राजगृही—वैभारगिरिपर तीर्थंकर मूर्ति । समय ८वीं शताब्दी ।



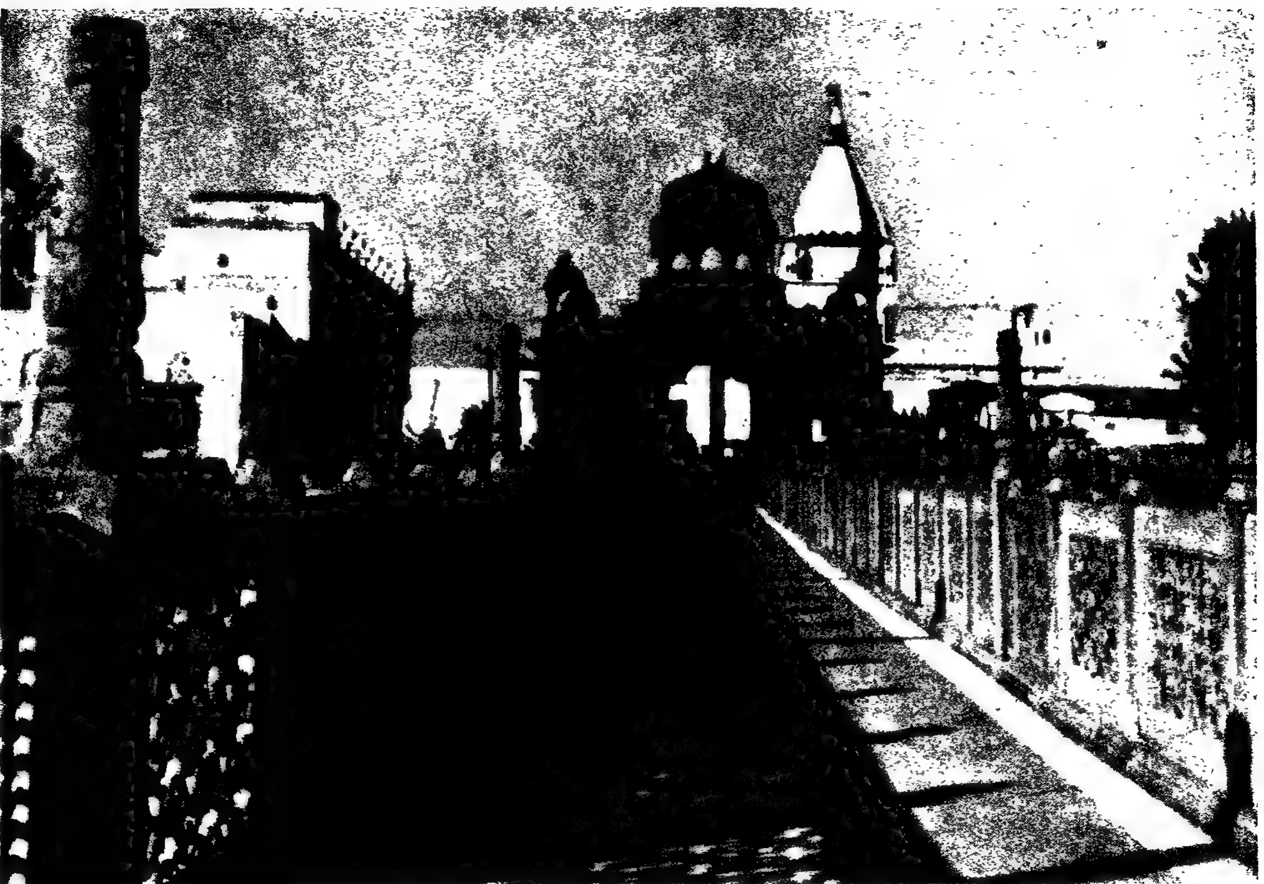
२३. राजगृही—उत्खननमें प्राप्त तीर्थंकर आदिनाथकी मूर्ति। समय ८वीं शताब्दी।



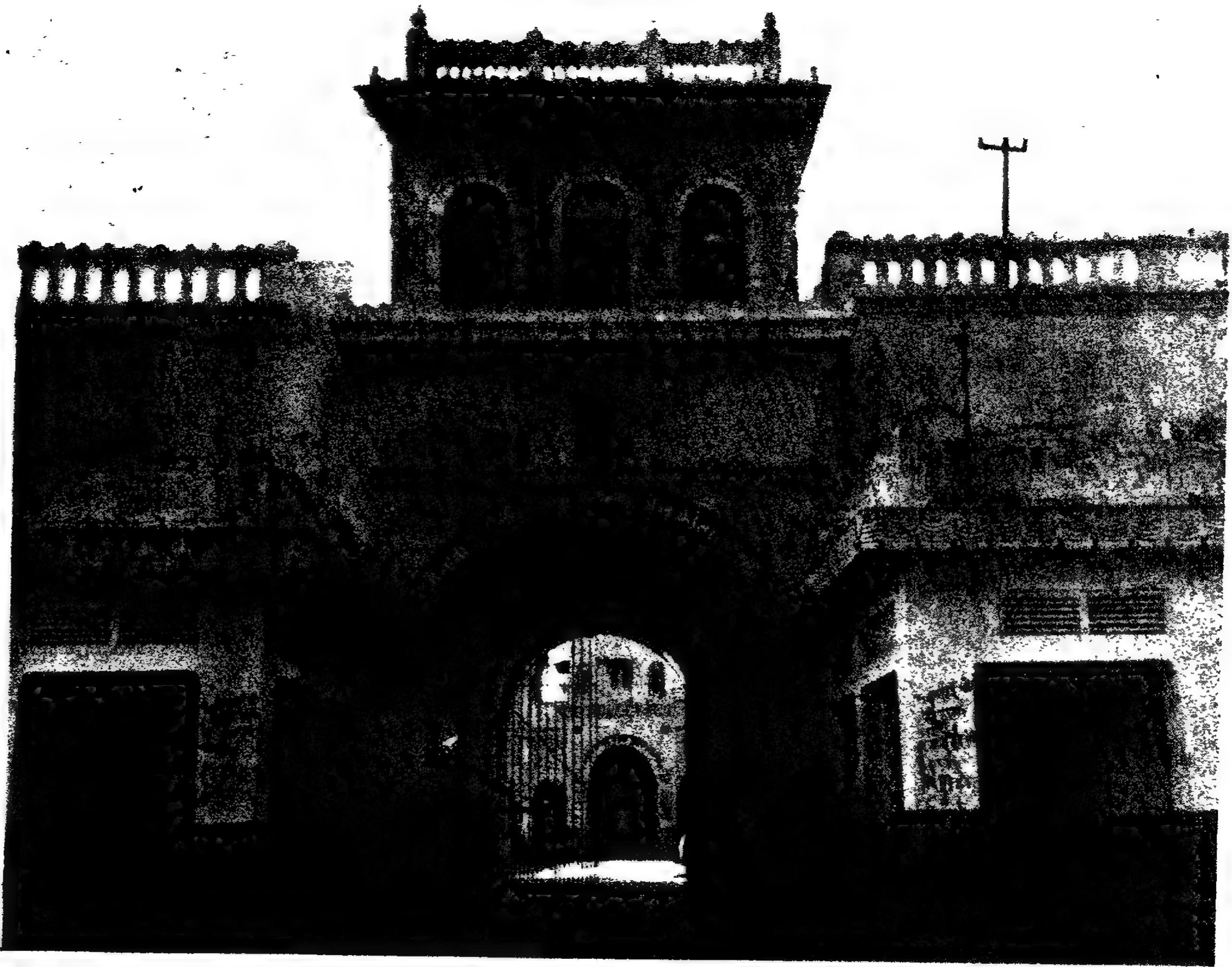
२४. राजगृही—श्रेणिक बिम्बसारकी जेल।



२५. पावापुरी—जलमन्दिर (महावीर निर्वाण भूमि) ।



२६. पावापुरी—जलमन्दिरके मुख्य द्वारका भीतरी दृश्य।



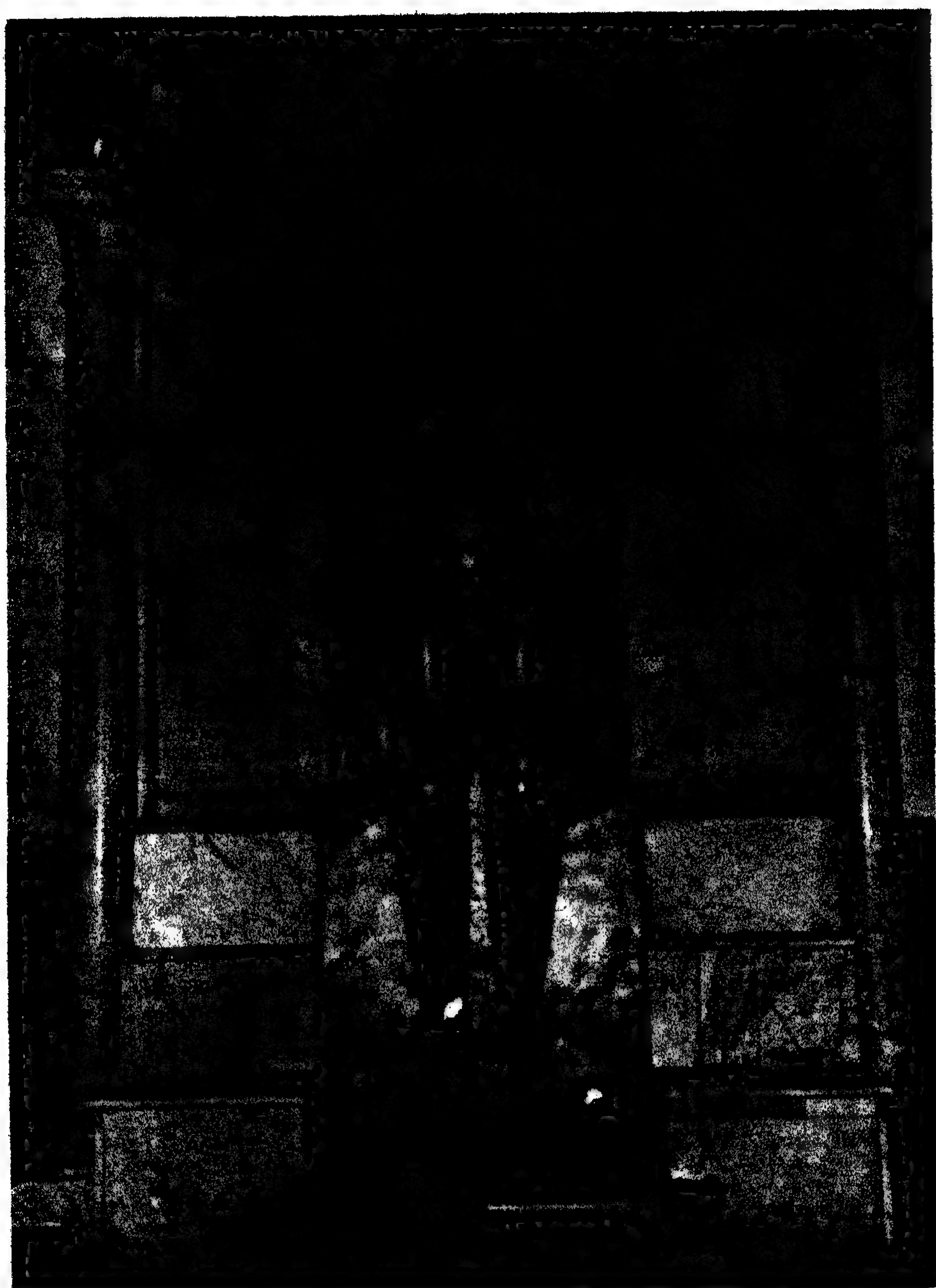
२७. पावापुरी—दिगम्बर जैन कोठी।



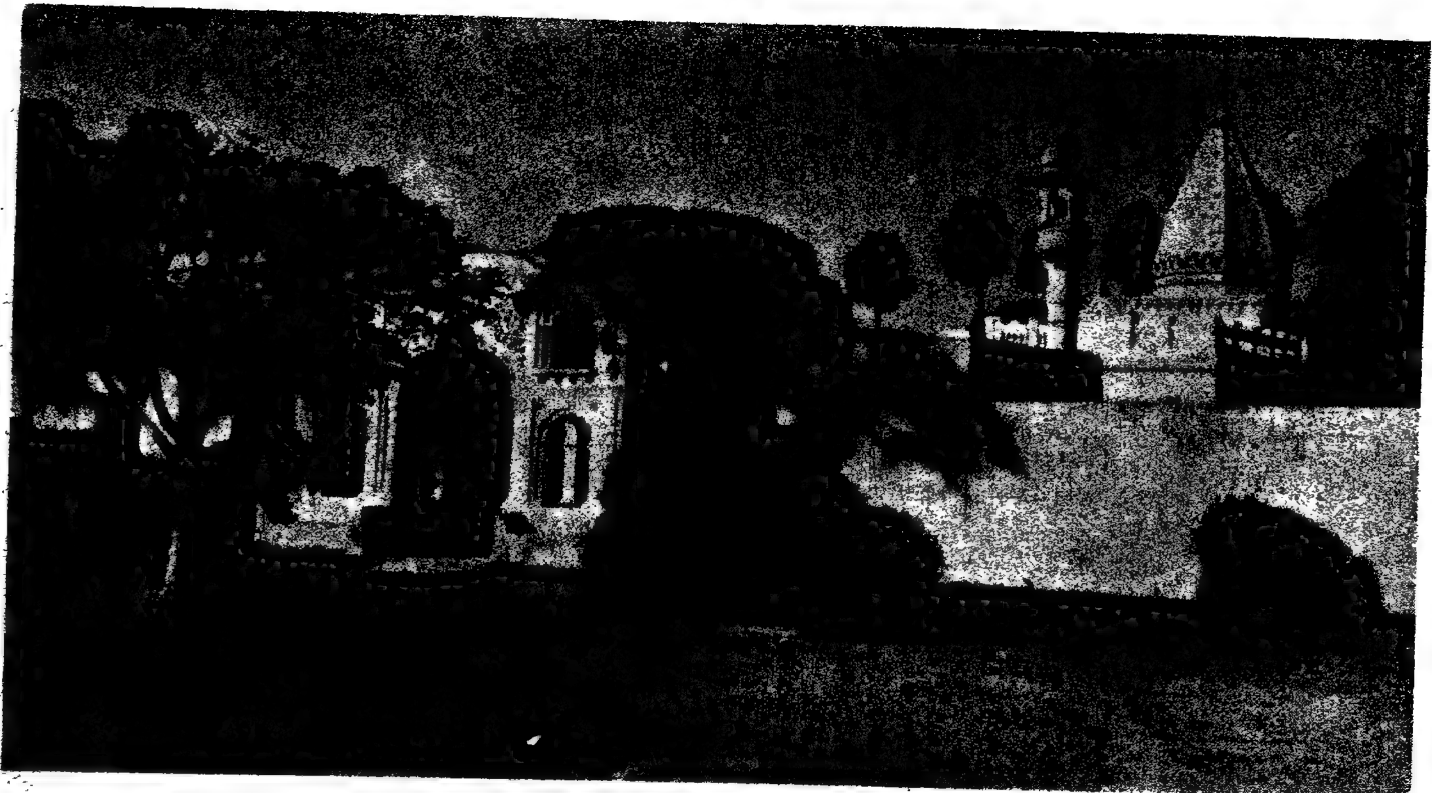
२८. पावापुरी—दिगम्बर जैन मन्दिरकी मुख्य वेदी।



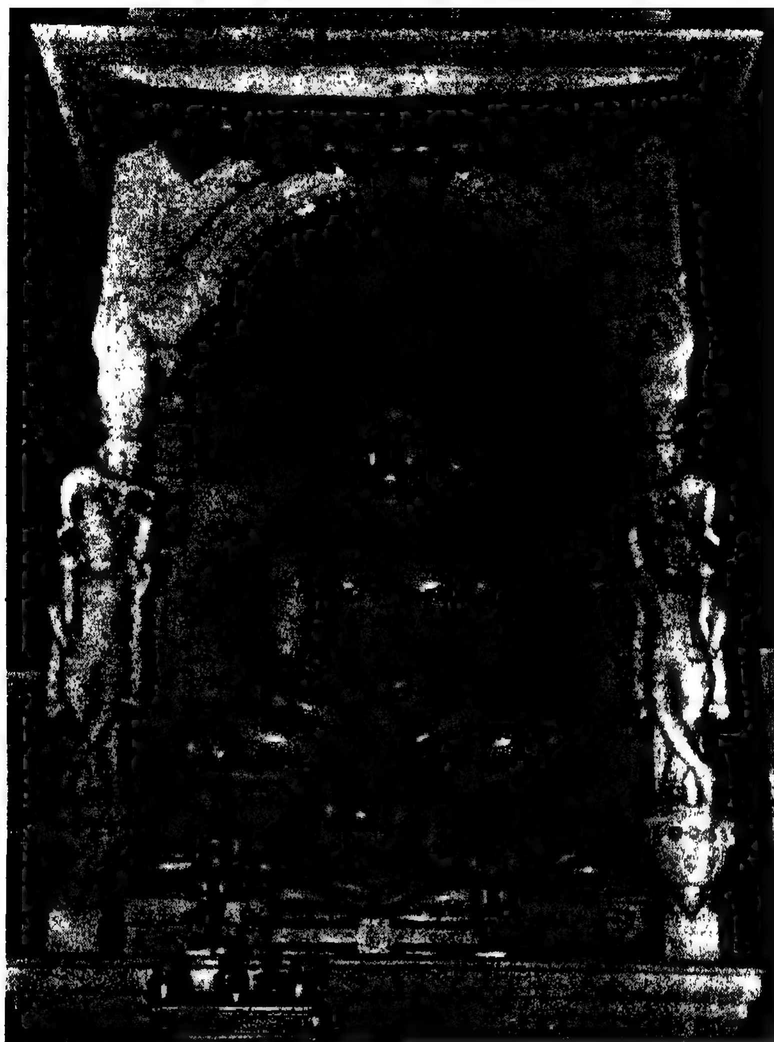
२९. पावापुरी— दिगम्बर जैन मन्दिरमें बायीं ओरकी वेदीमें चौबीसी और पार्श्वनाथकी प्राचीन प्रतिमाएँ ।



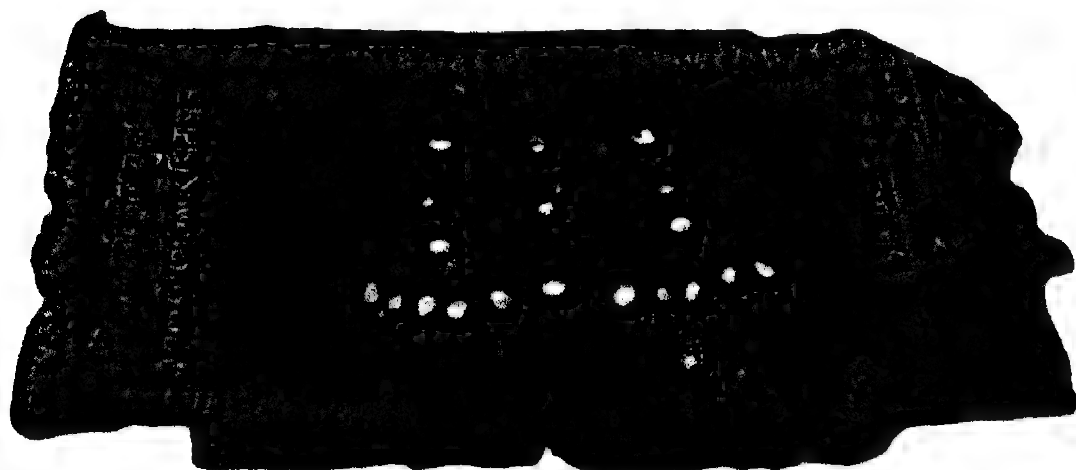
१०. पावापुरी—दिगम्बर जैन मन्दिर में तीर्थंकर महावीरकी ७ फुट ऊँची भव्य प्रतिमा ।



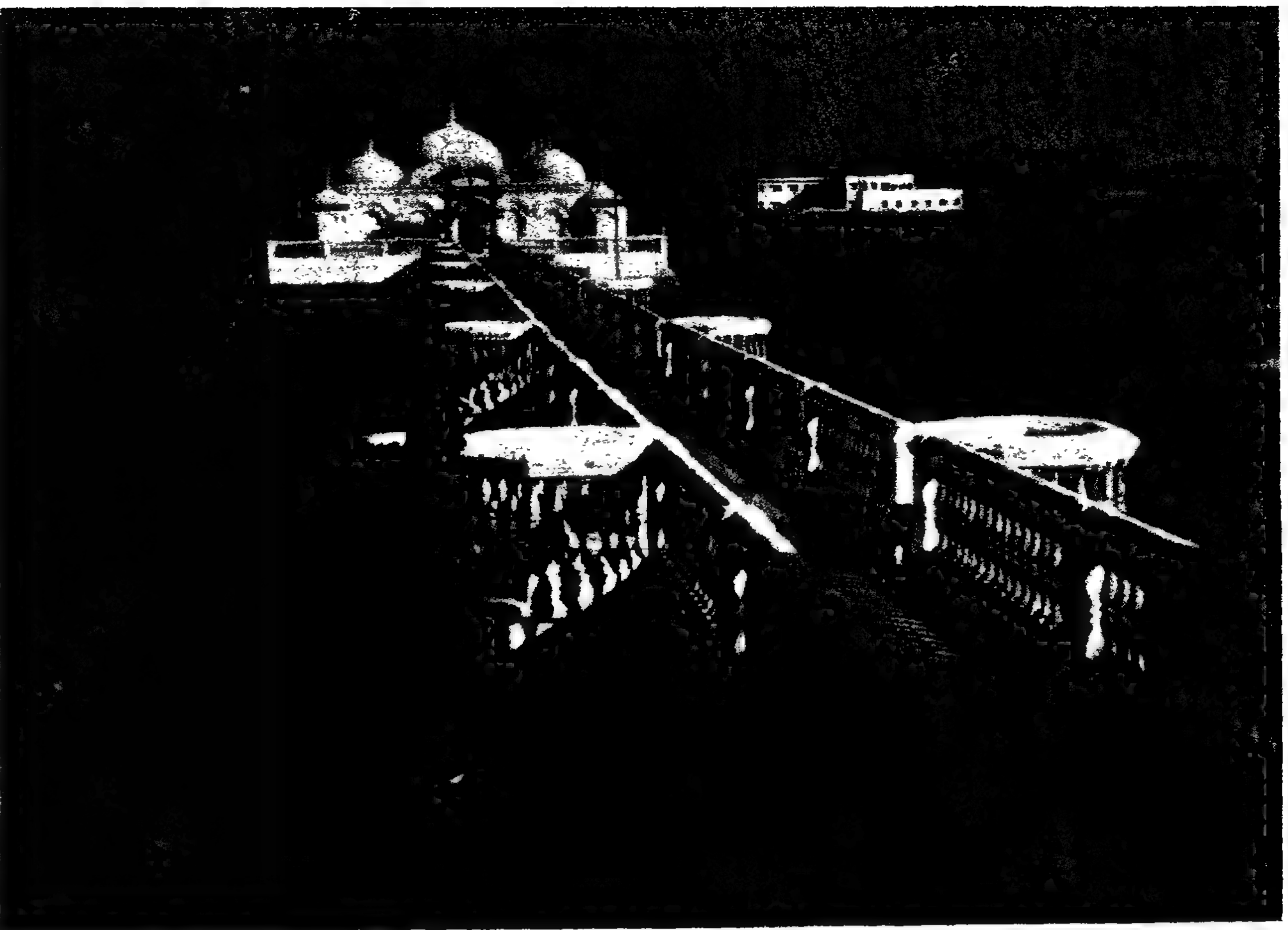
२६. गुणावा—दिगम्बर जैन क्षेत्रका बाह्य दृश्य ।



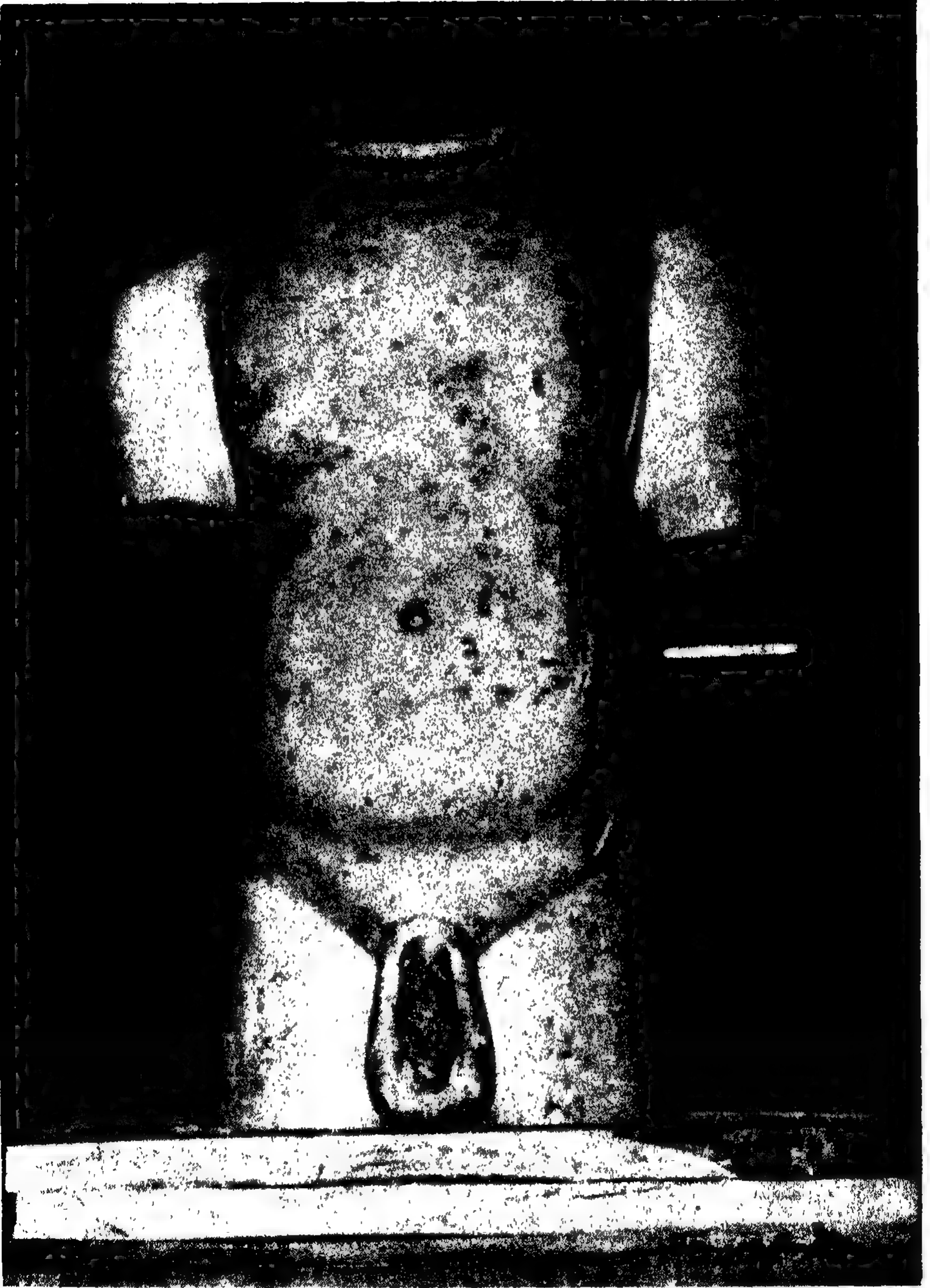
३२. गुणावा—दिगम्बर जैन मन्दिरकी वेदी का दृश्य।



३३. गुणावा—श्री गौतमस्वामीके चरण-चिह्न।



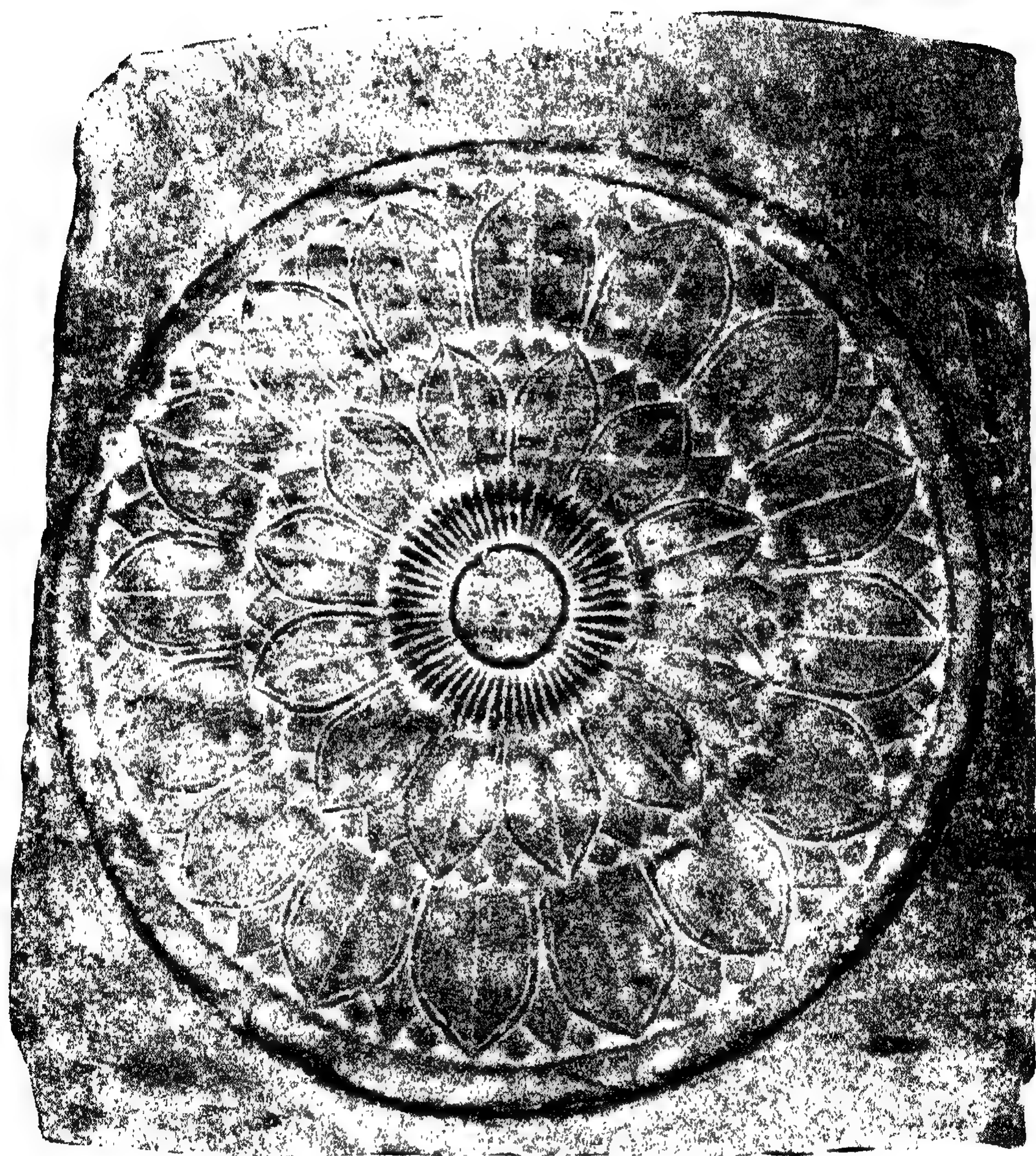
३४. गुणावा—जलमन्दिर।



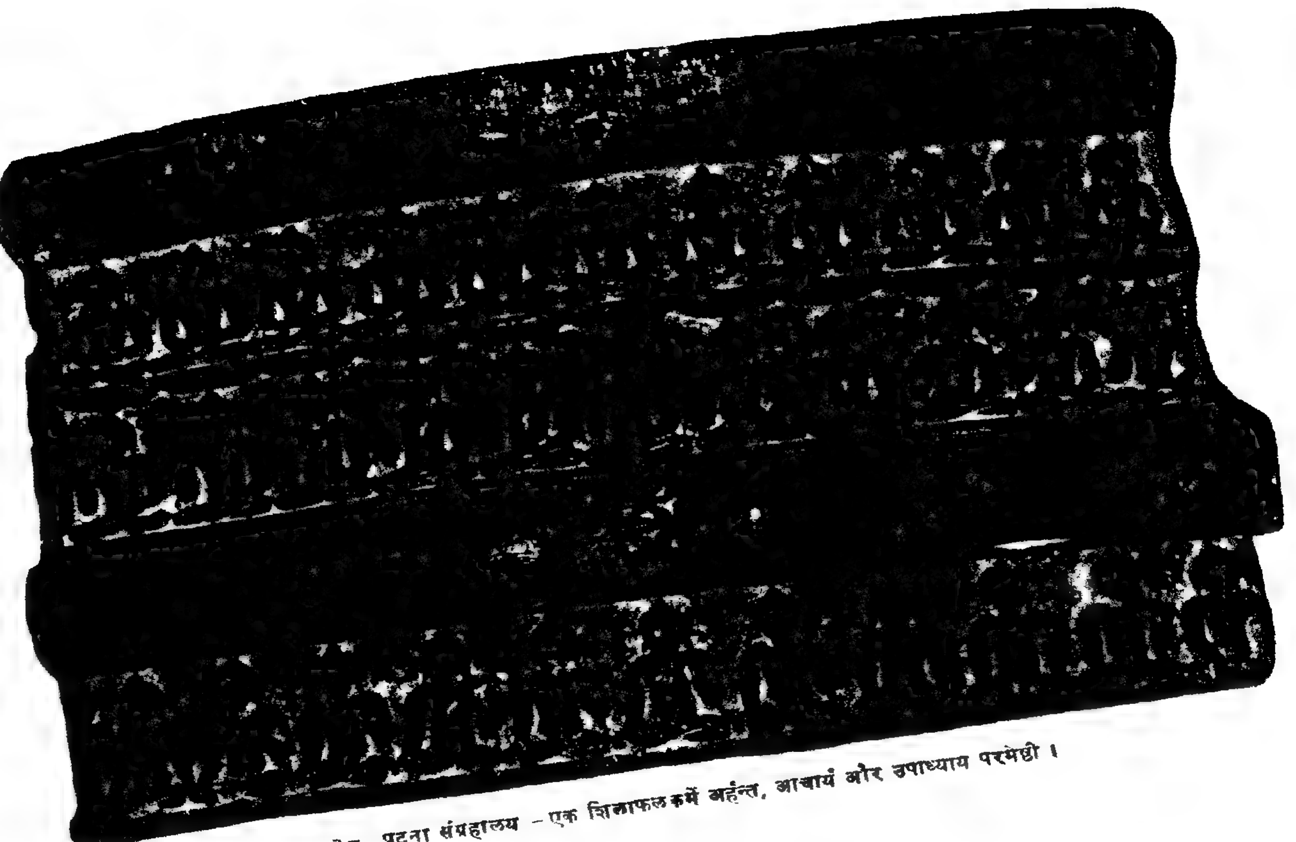
१५ पटना-संग्रहालय—लोहानीपुरमे प्राप्त मौर्यकालीन जैन प्रतिमाकी धड़ ।



३६. पटना संग्रहालय—दीदारगंज (पटना) से प्राप्त मौर्यकालीन चमरधारिणी यक्षी ।



२७. पटना संग्रहालय—पाषाणका एक भामण्डल ।



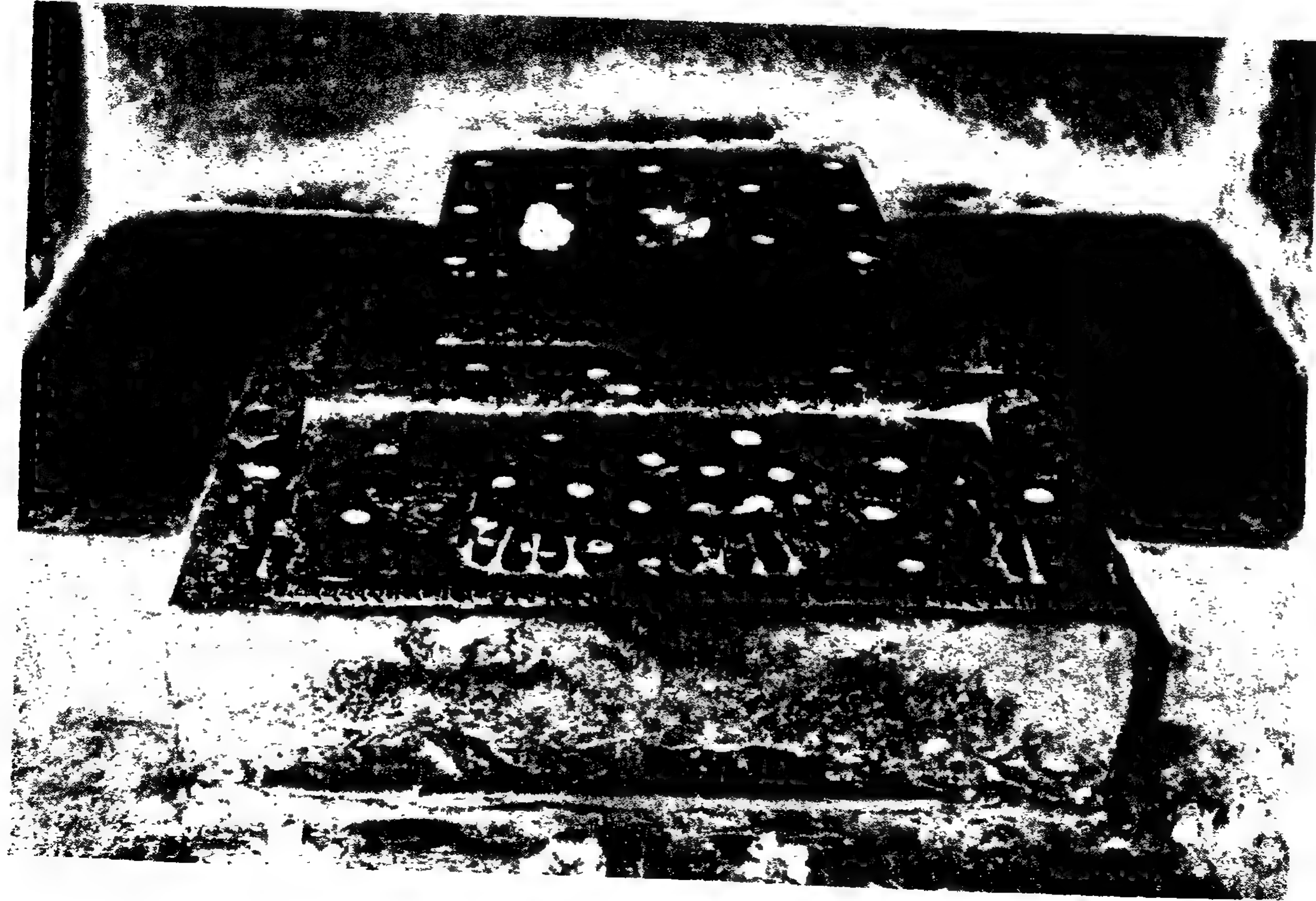
३८ पटना संग्रहालय – एक शिलाफलकमें अर्हन्त, आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी ।



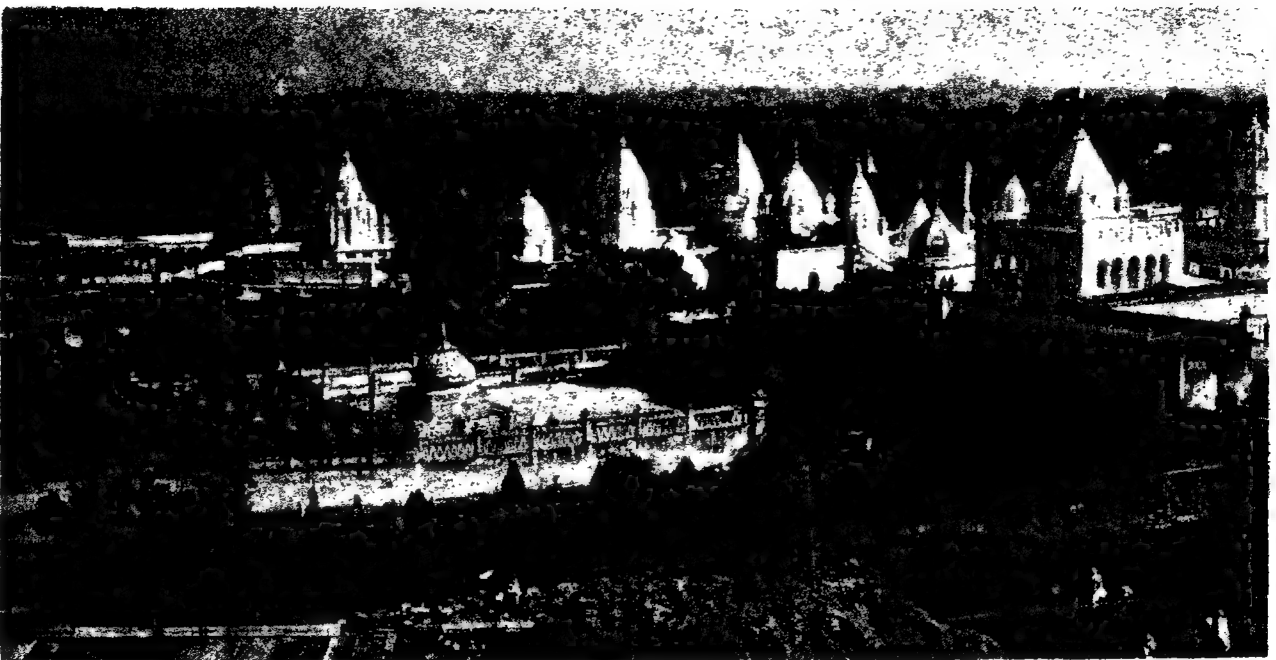
३९ पटना —कानोडिया भवनमें पार्श्वनाथ प्रतिमा । समय तीसरी शताब्दी ।



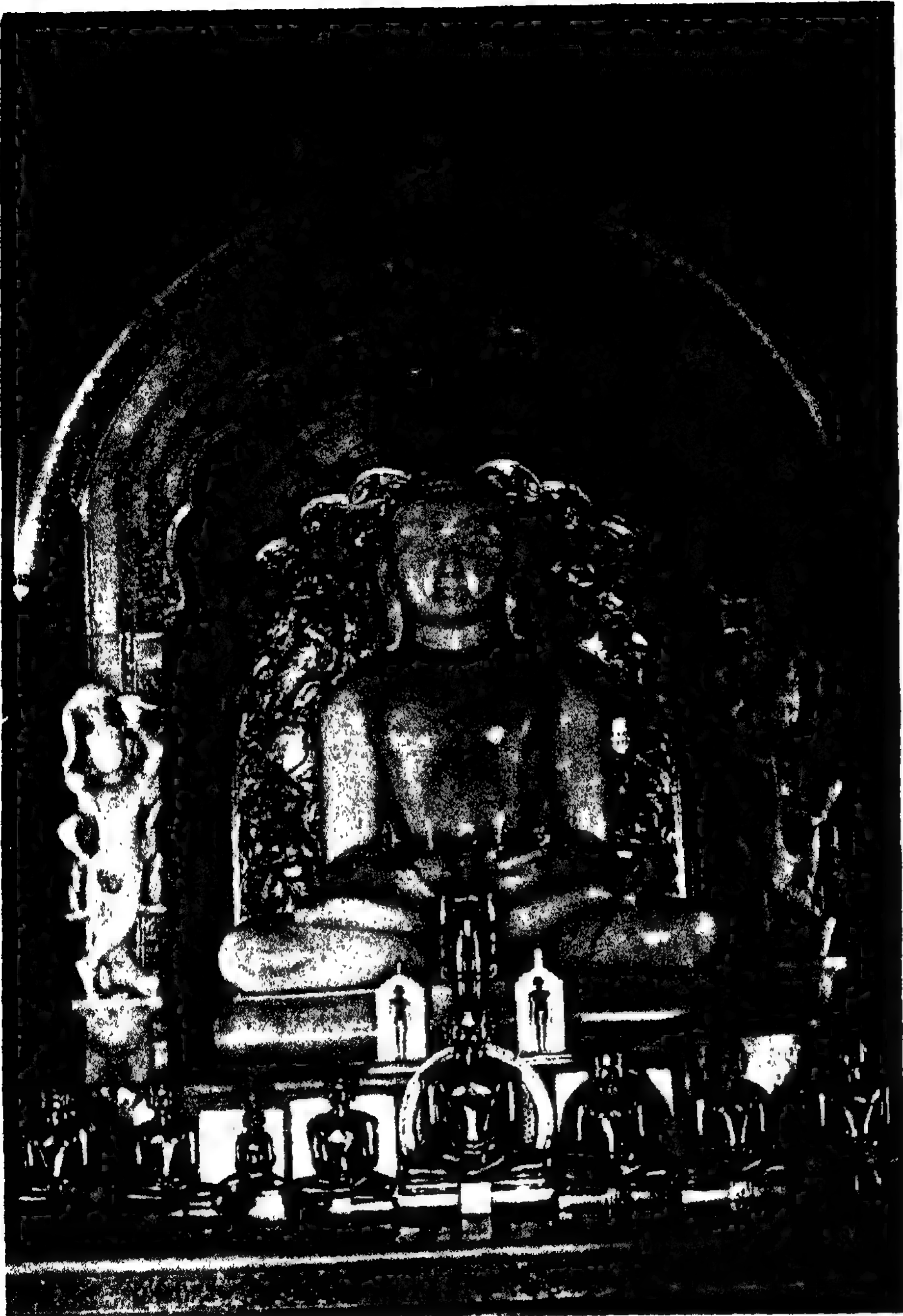
४० गुलजारबाग (पटना)—दिगम्बर जैन मन्दिरमें मूलनायक भगवान् नेमिनाथ।



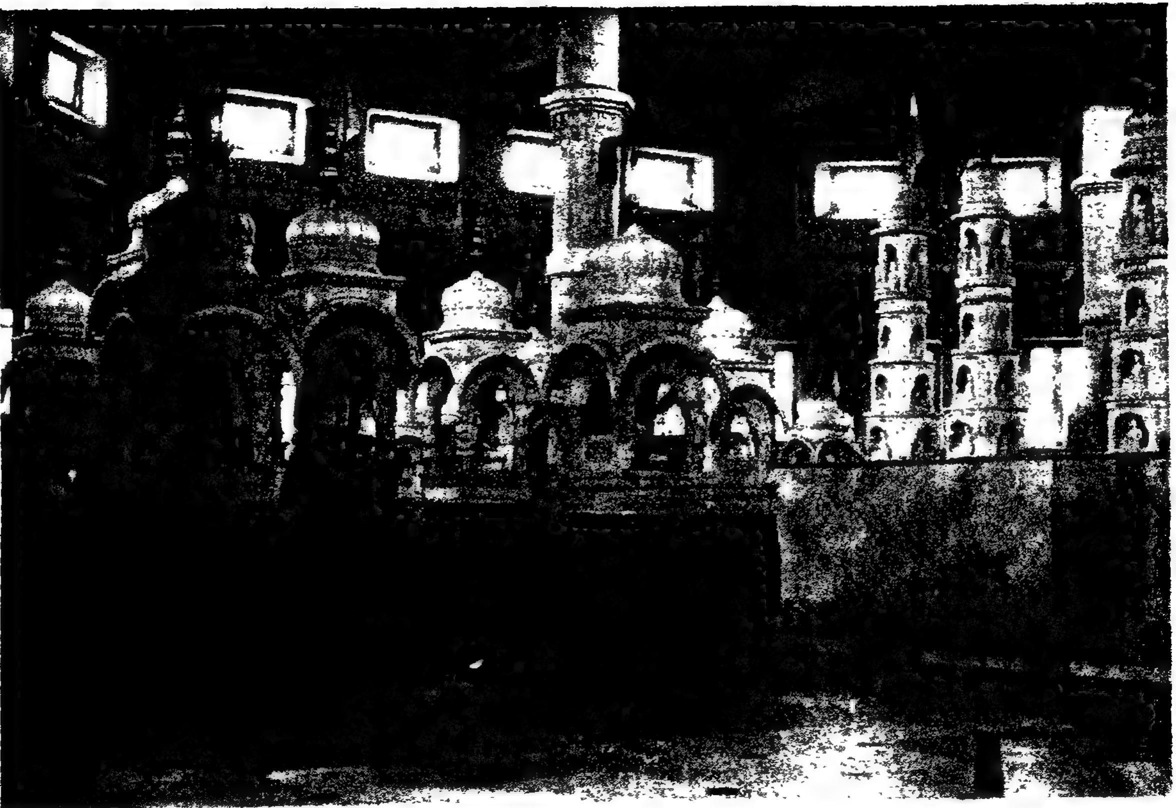
४१. पटना—सिद्धक्षेत्र कमलदहमें सुदर्शन मुनिके चरण ।



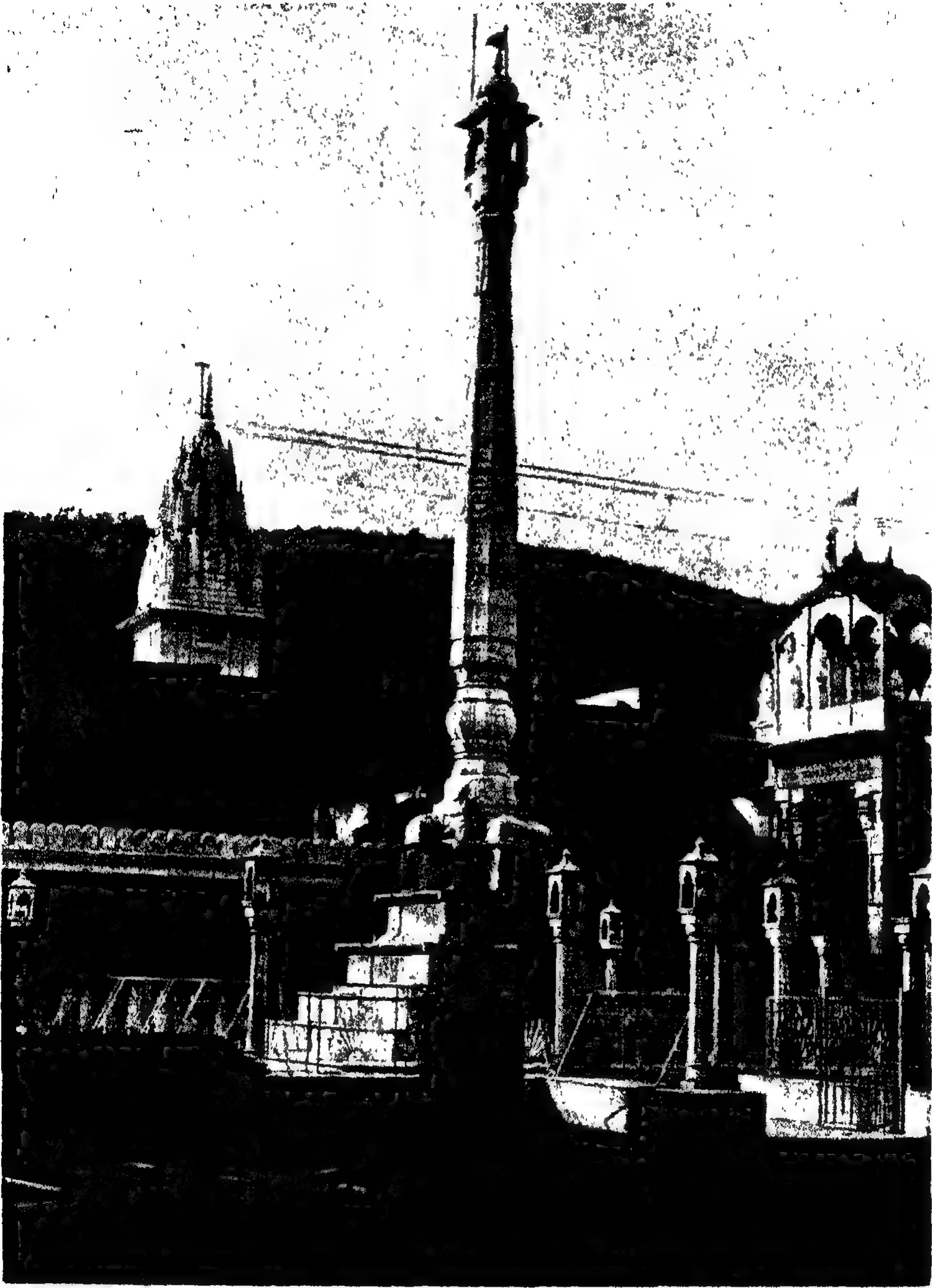
४२. सम्मेदशिखर—मधुवन के जैन मन्दिर



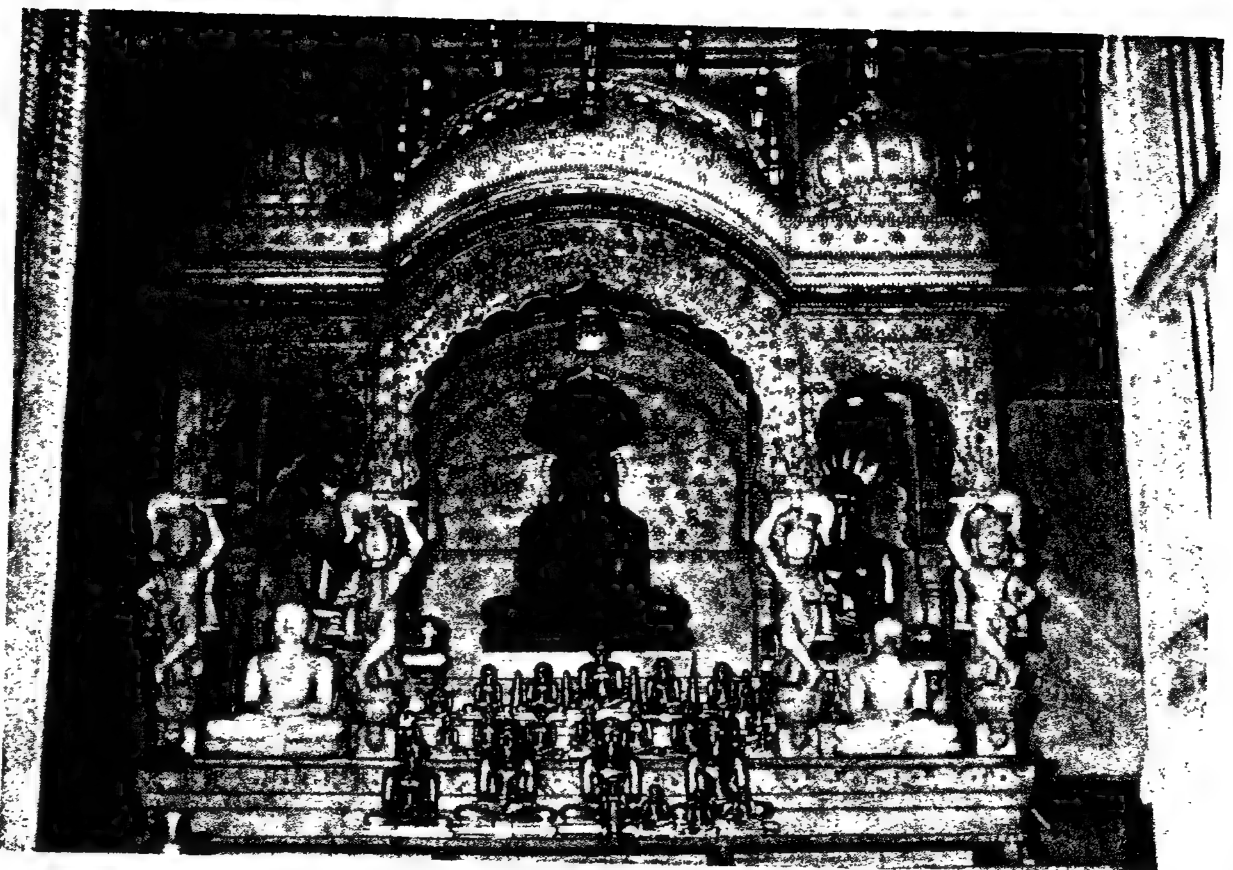
४३. सम्मेदशिखर—मधुवन में तेरापन्थी कोठी के मन्दिर की मूल वेदी पर भगवान् पुष्पदन्त की प्रतिमा



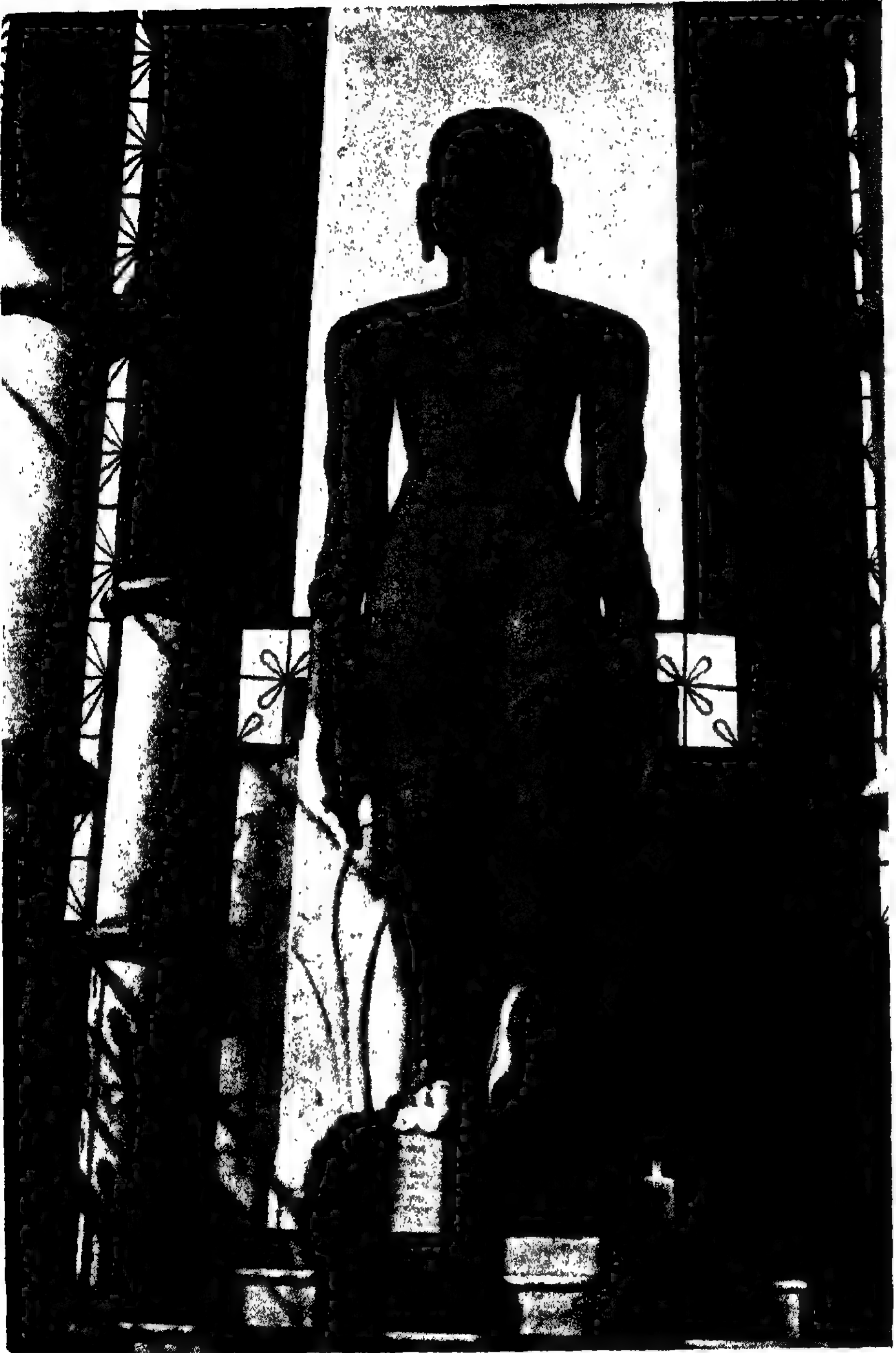
४४. सम्मेदशिखर—मधुवन : तेरापन्थी कोठी में नन्दीश्वर जिनालय



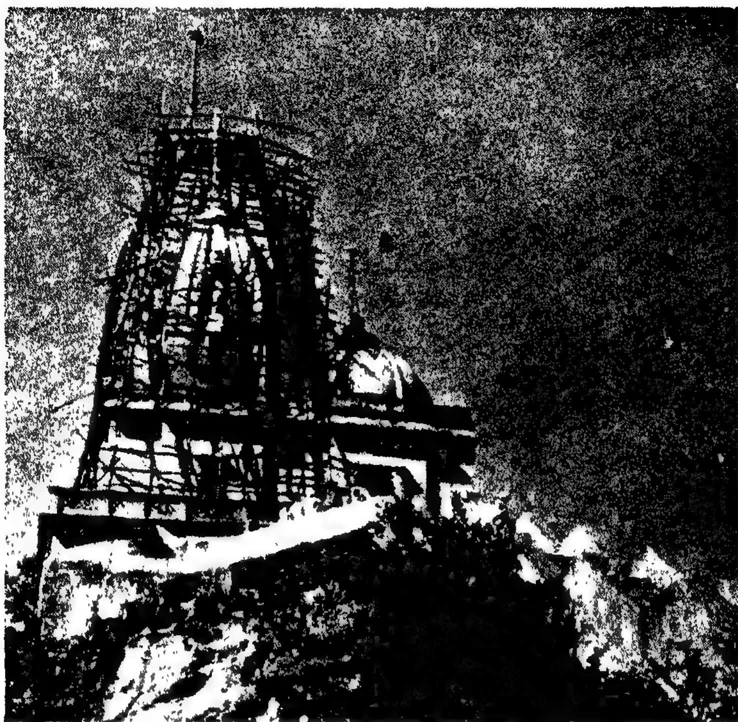
४५. सम्मेदशिखर—मधुवन : तेरापन्थी कोठी में स्थित मानस्तम्भ



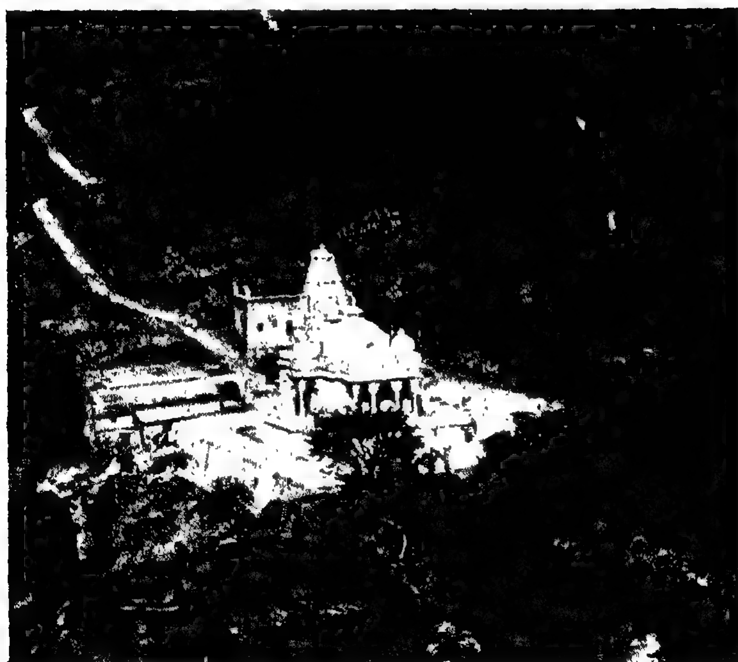
४६ सम्मेदशिखर—मधुवन में बीसपन्थी मन्दिर की मुख्य वेदी



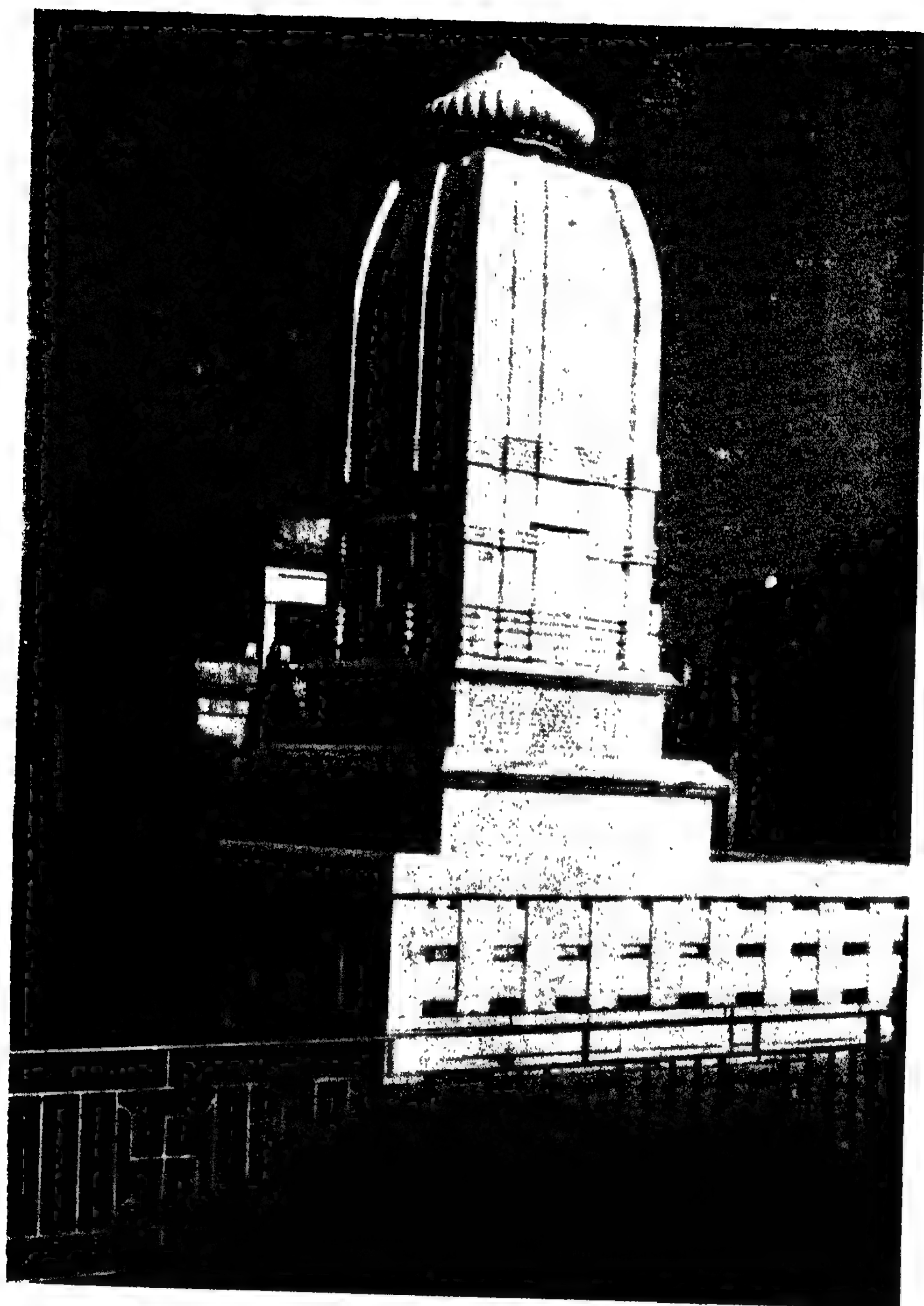
४७. सम्मेदशिखर—मधुवन के बाहुबली-मन्दिर में बाहुबली स्वामी की मूर्ति



४८. सम्मेदशिखर—पर्वत पर पार्श्वनाथ टोंक



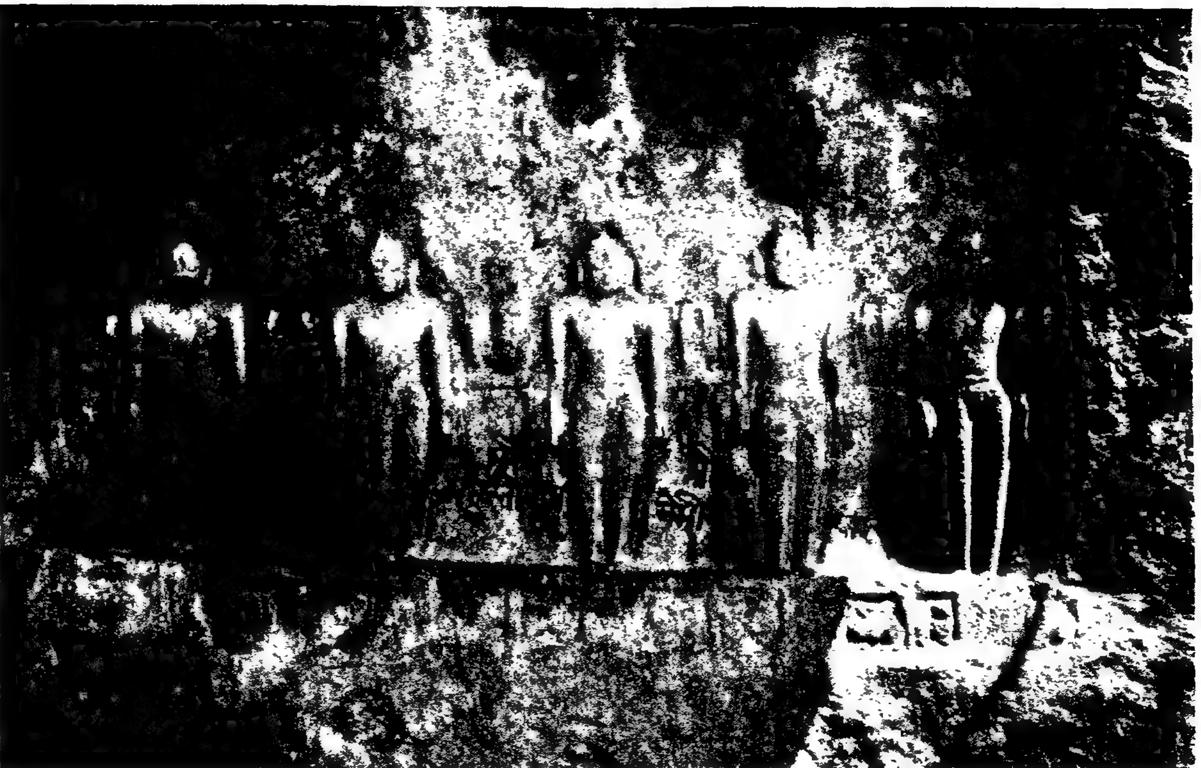
४९. सम्मेदशिखर—पर्वत पर जलमन्दिर



५०. सम्मेदशिखर—ईसरी में पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी का समाधि-स्तूप



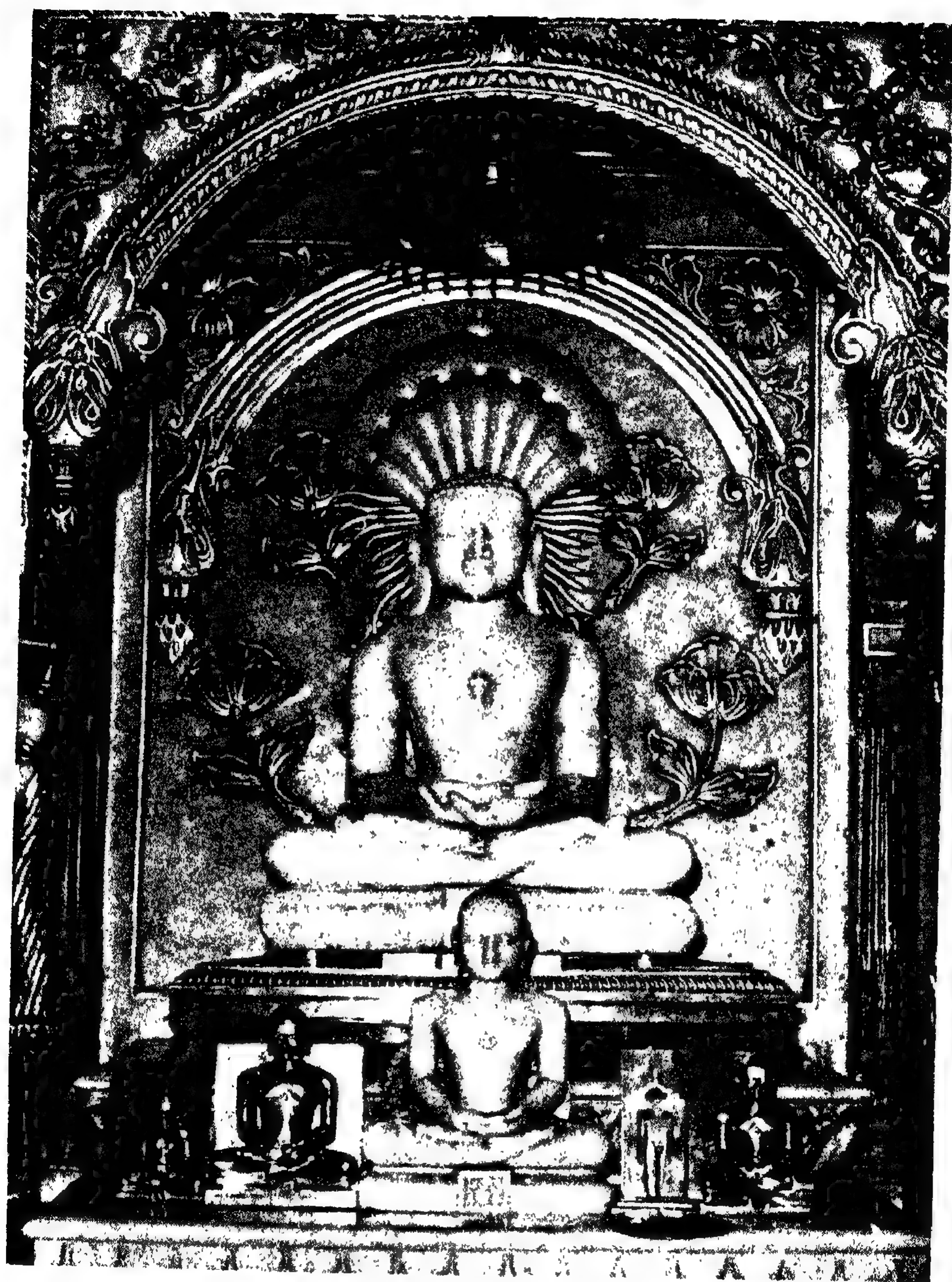
५१. कुलुहा पहाड—एक गुफा में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति



५२. कुलुहा पहाड़—एक गुफा की दीवार मे पाँच तीर्थंकर मूर्तियाँ



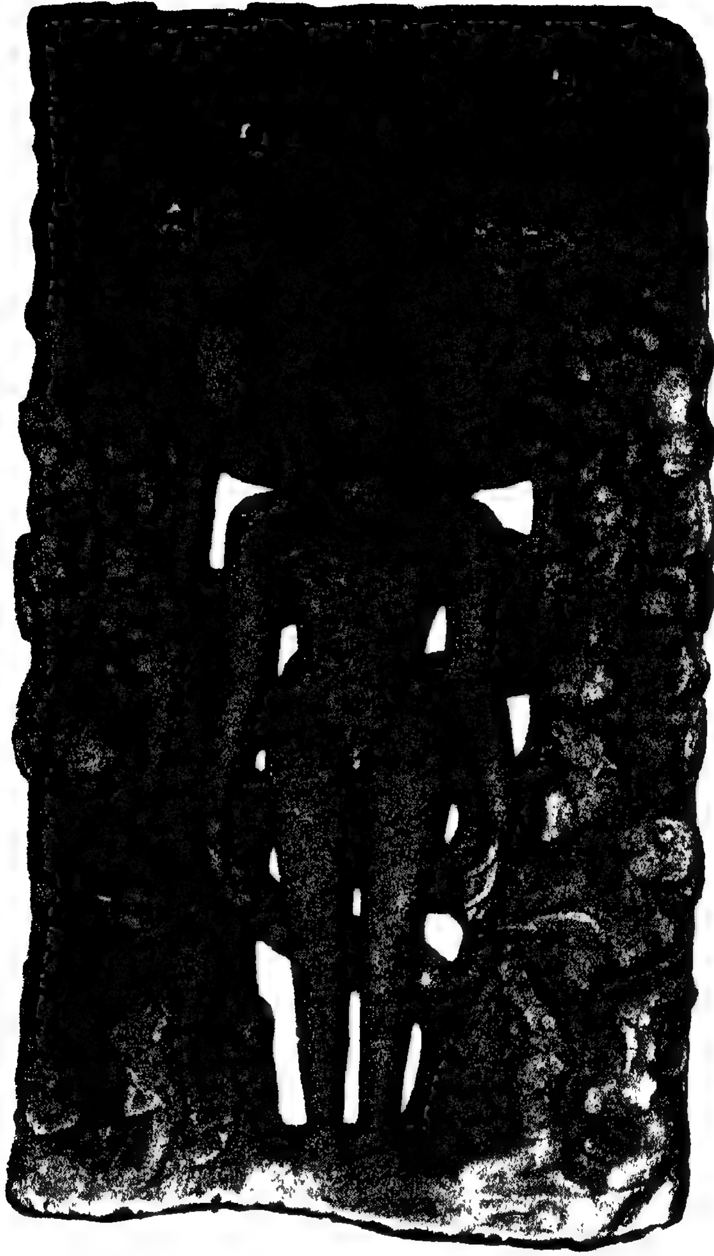
५३. कलकत्ता—बेलगछिया का दिगम्बर जैन मन्दिर



५४. कलकत्ता—बेलगछिया दिगम्बर जैन मन्दिर की मूलनायक प्रतिमा



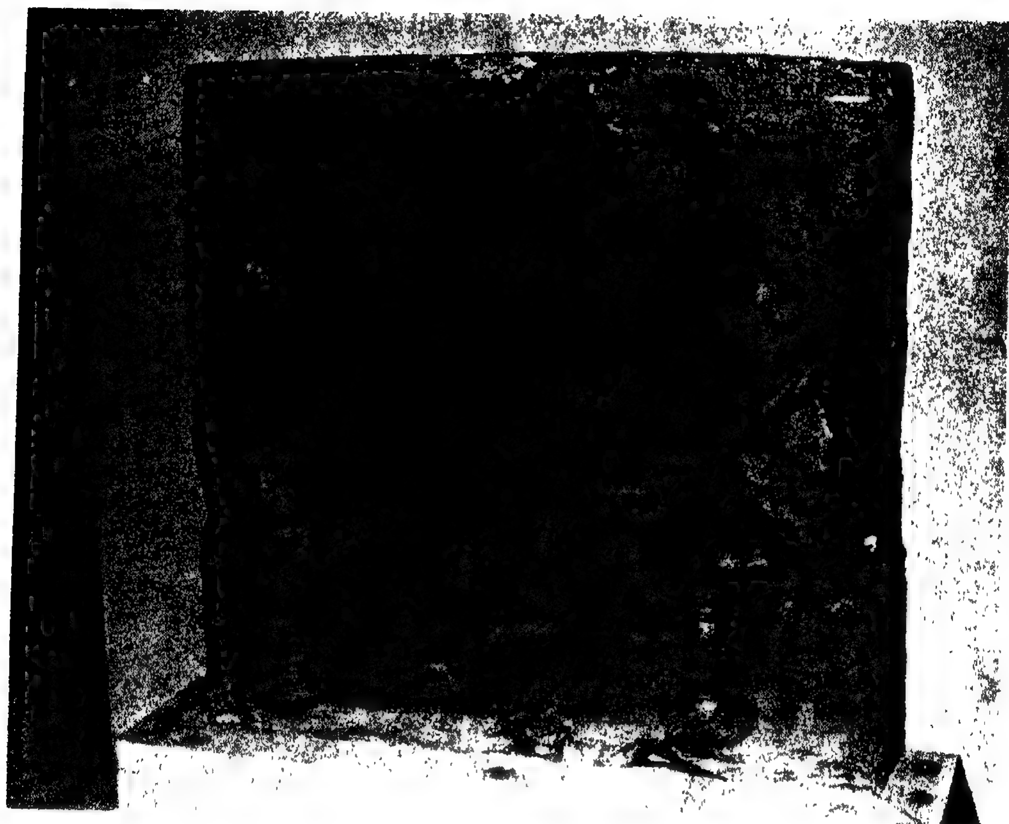
५५. कलकत्ता—इण्डियन म्यूजियम में तीर्थंकर मूर्ति



५६. कलकत्ता—इण्डियन म्यूजियम, भगवान्
पार्श्वनाथ पर कमठ का उपसर्ग, ५वीं शती



।—इण्डियन म्यूजियम में तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की मूर्ति और चौबीसी, ९वी शती



५८. कलकत्ता—इण्डियन म्यूजियम, त्रिशला माता का स्वप्नदर्शन,
५वीं शती । महास्थान (बंगलादेश) से प्राप्त



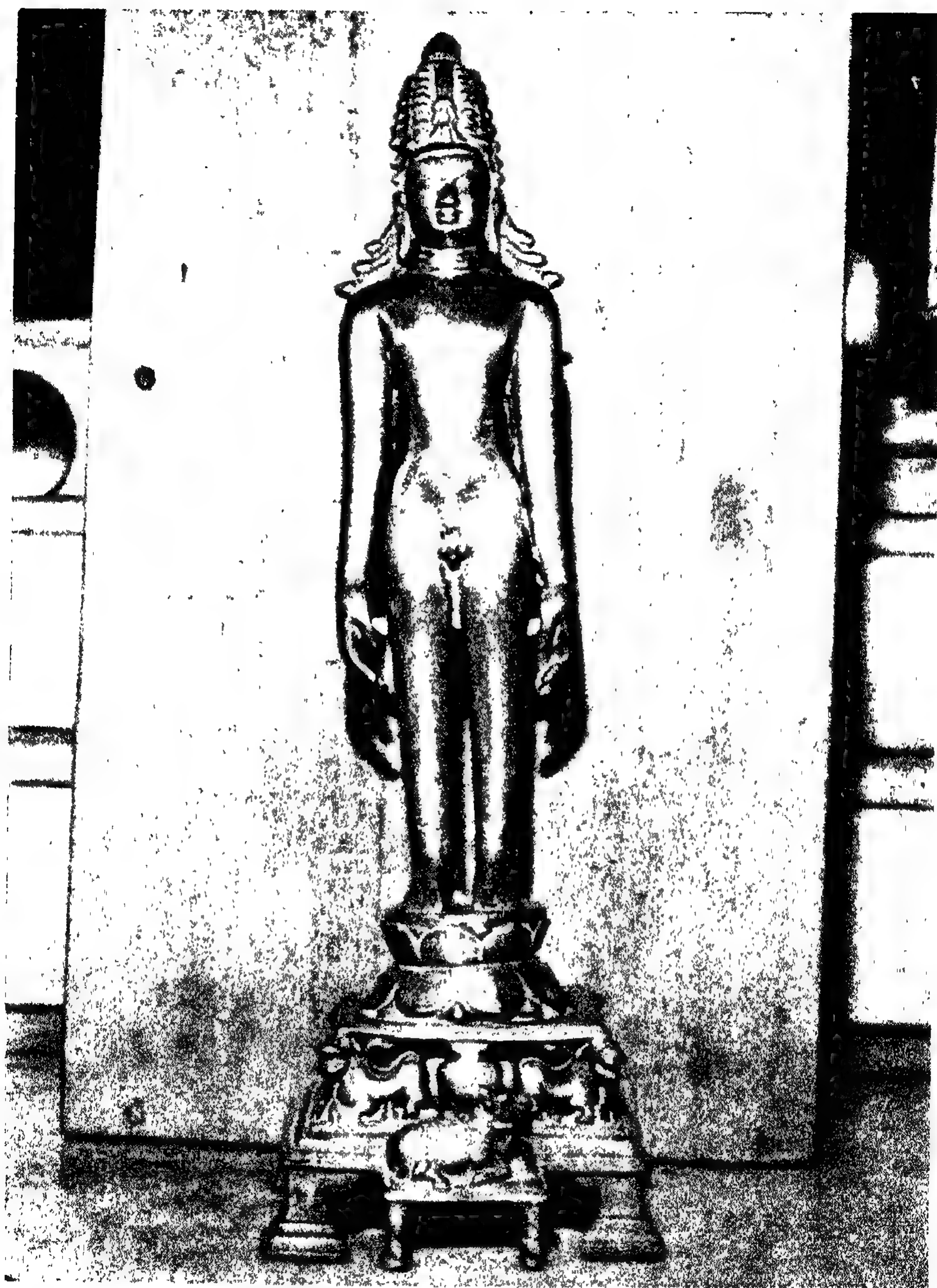
५९. कटक—चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर का भव्य शिखर।



६०. कटक—चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिरमें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी प्राचीन मूर्ति ।



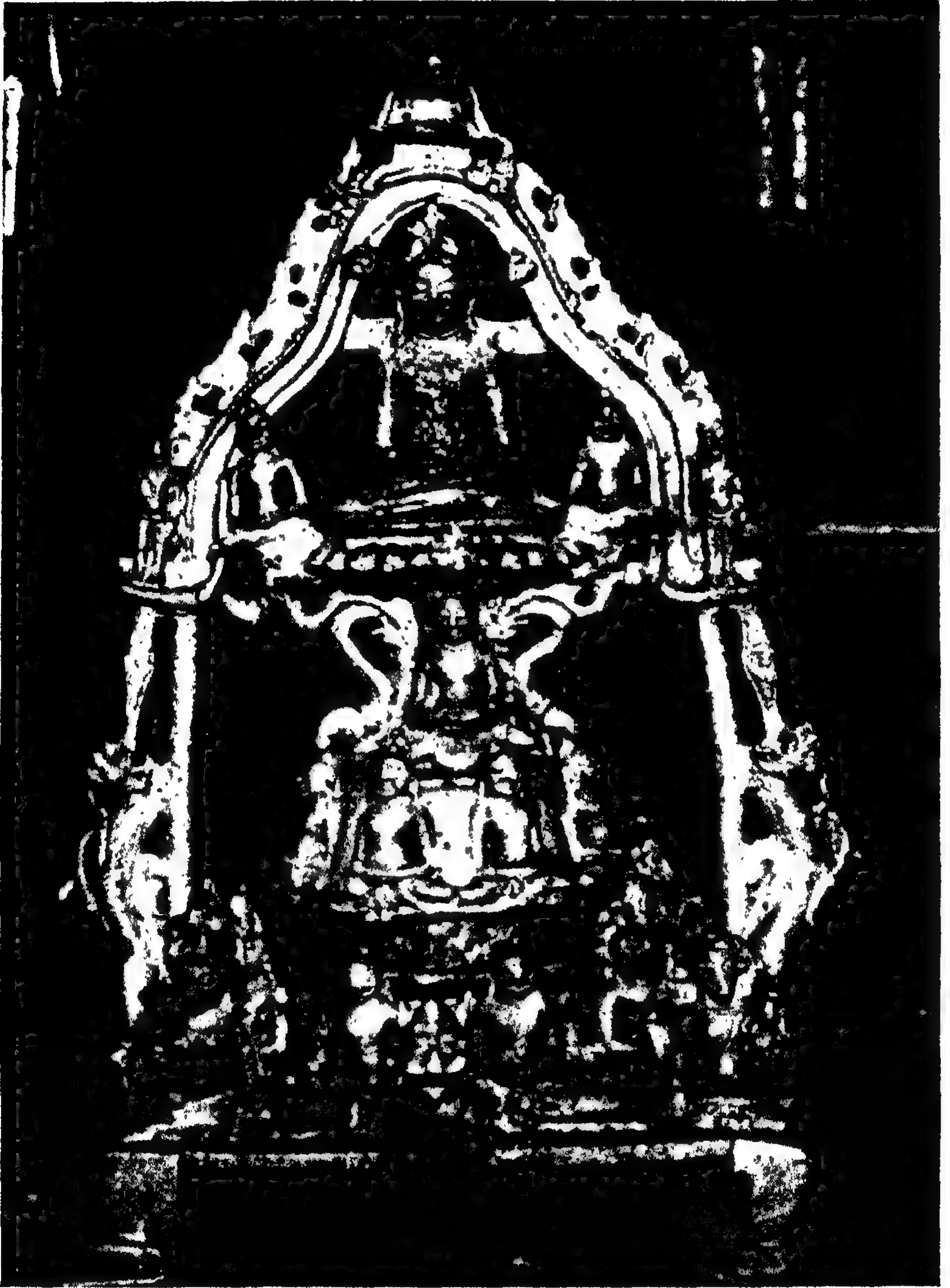
६१. कटक—चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिरमें मुख्य वेदीपर स्थित चैत्य।



६२. कटक—चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिरमें मुख्य वेदीपर ऋषभदेवकी मनोज्ञ धातु प्रतिमा।



६१. भानपुर-कटक—भूगर्भसे प्राप्त भगवान् ऋषभदेवकी धातु-प्रतिमा ।



६४. मानपुर-कटक—भूगर्भसे प्राप्त चौबीसीका धातु-मूर्ति-फलक।



६५. भुवनेश्वर—स्टेट म्यूजियममें ऋषभदेवकी पाषाण मूर्ति, ८वीं शती।



६६. भुवनेश्वर—स्टेट म्यूजियममें तीर्थंकर महावीरकी लगभग
५ फुटकी पाषाण मूर्ति, ८वीं शती ।



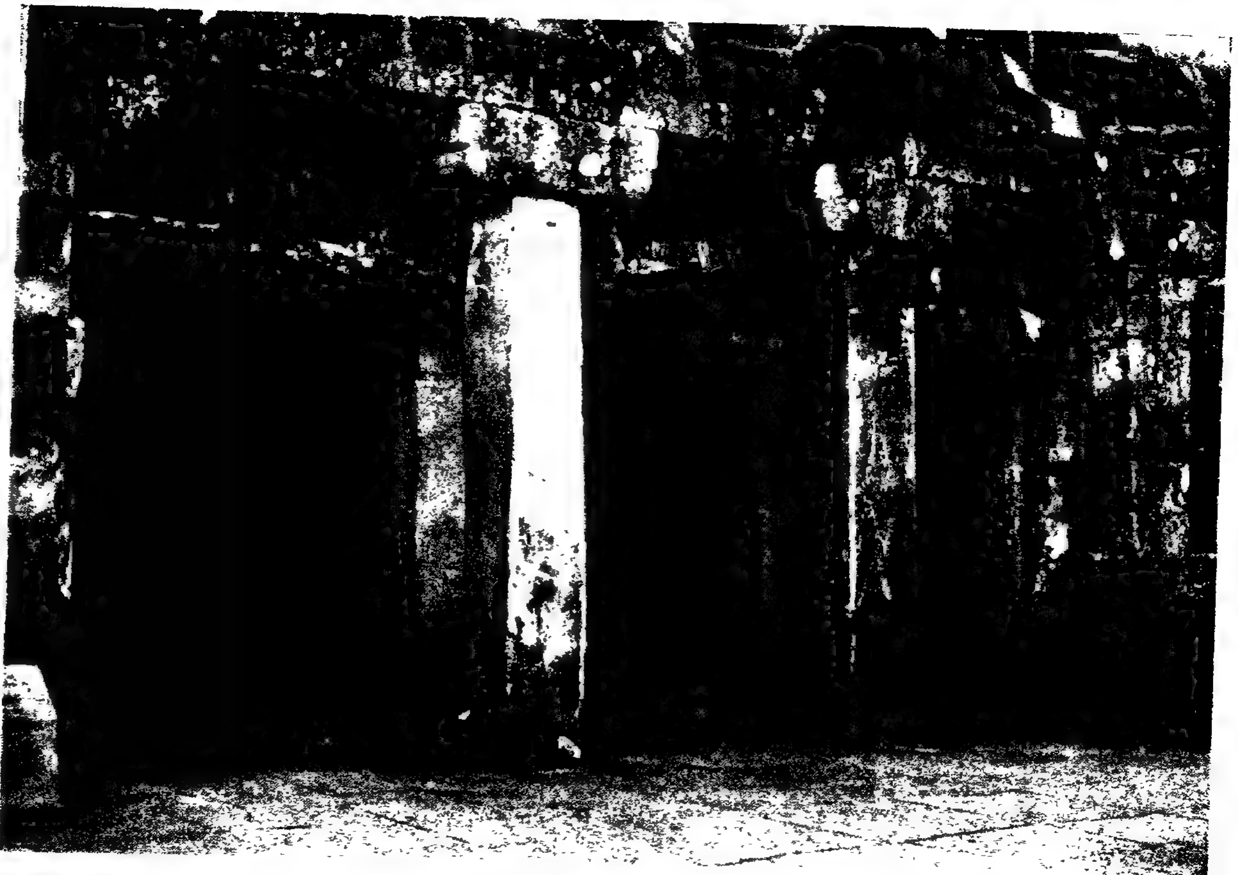
६७. खण्डगिरि—पर्वतपर बड़े मन्दिरमें चौबीसी, मध्यमें तीर्थंकर ऋषभदेव ।



६८. खण्डगिरि—पर्वतपर बड़े मन्दिरमें गोमेद और अम्बिका यक्षी । शीर्ष भागपर तीर्थंकर नेमिनाथ ।



६९. खण्डगिरि—पर्वतके बड़े मन्दिरमें अम्बिकाकी मूर्ति।



७०. खण्डगिरि—नवमुनि गुम्फा (न. ७)।



७१. खण्डगिरि—बाराभुजी गुम्फामें तीर्थंकर मूर्तियाँ और शासन देवियाँ।



७२. खण्डगिरि— महावीर गुम्फा (नं. ९) में अनेक तीर्थंकर मूर्तियां।



७३. उदयगिरि—गुफाओंका एक विहगावलोकन ।



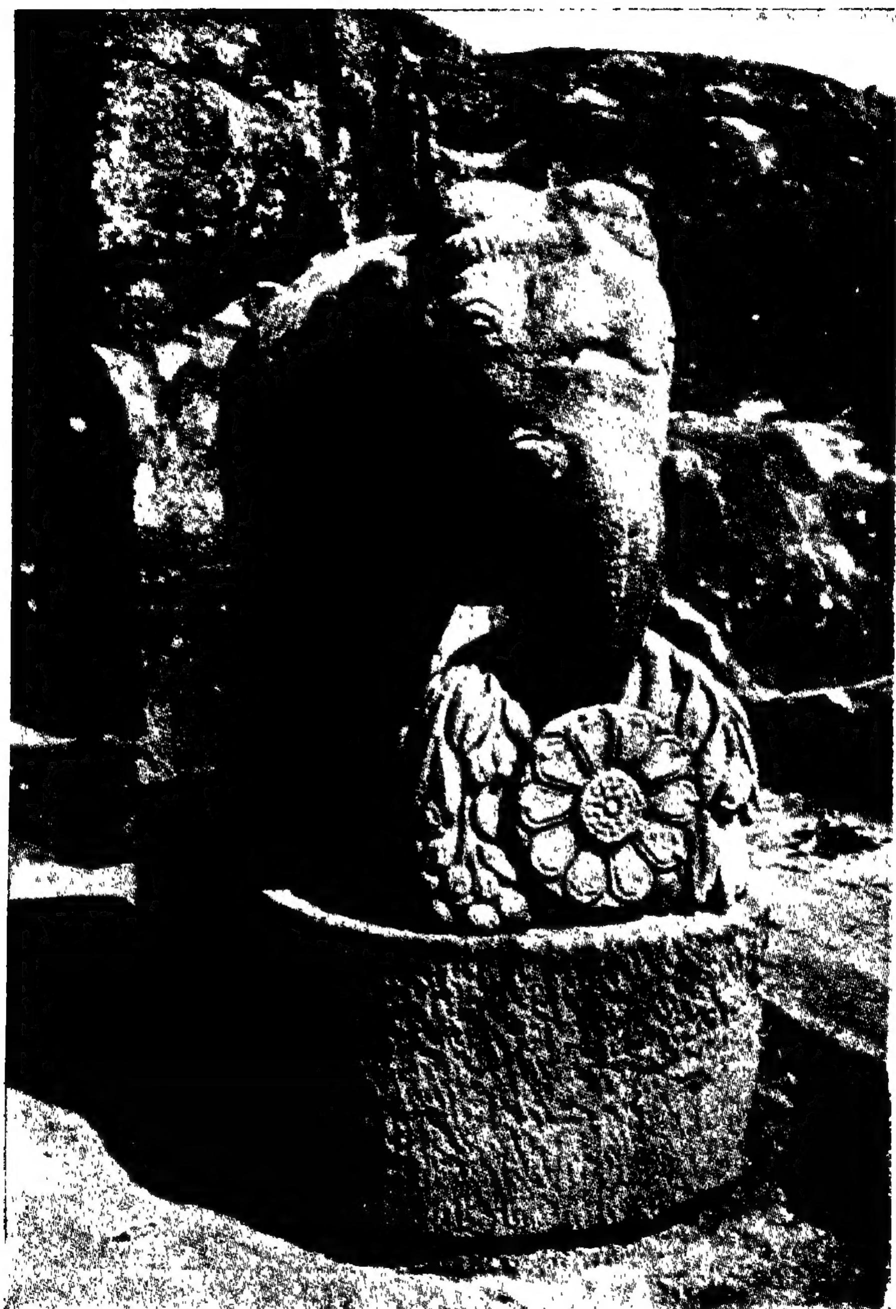
७४. उदयगिरि—रानी गुम्फा (नं. १) में भित्ति-चित्र।



७५. उदयगिरि—रानी गुम्फा (नं. १) में भित्ति-चित्र ।



७६. उदयगिरि—स्वर्गपुरी-मंचपुरी गुम्फा (नं. ९)।



७७. उदयगिरि—गणेश गुम्फा (नं. १०) के बाहर सूँड़में आम्र-गुच्छक लिये हाथी।



७८. उदयगिरि—हाथी गुम्फा (नं. १४) में सम्राट् खारवेलका प्रसिद्ध शिलालेख ।



७९. जगन्नाथपुरी—मन्दिरका बाह्य दृश्य ।